कामायनी की टीका

देशराजसिंह भाटी

कामायनी की टीका

कामायनी की टीका

[कवि प्रसाद रचित 'कामायनी' की सर्वांगपूर्ण टीका]

तृतीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण

लेखक

प्रो० देशराजसिंह भाटी

एम० ए०

प्रकाशक

अशोक प्रकाशन
नई सड़क, दिल्ली-६

दो शब्द

यह हमारे लिए अत्यन्त गर्व एवं संतोष का विषय है कि हमारे द्वारा प्रकाशित सभी टीका तथा व्याख्या ग्रंथों का विद्यार्थी-जगत में भारी समादर हुआ है। उन्हीं लब्धप्रतिष्ठ टीका ग्रन्थों की शृंखला में प्रस्तुत टीका ग्रन्थ एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

कामायनी आधुनिक युग के लब्धप्रतिष्ठ प्रबन्ध काव्यों में अपनी विशेषताओं के कारण अमर है। अतः सभी विश्वविद्यालयों में इसका अध्ययन-अध्यापन होता है। किन्तु भाषा की कठिनता एवं भावों की गम्भीरता के कारण यह ग्रंथ विद्यार्थी जगत् के लिए दुरुह प्रतीत होता रहा है। अतः इसकी एक प्रामाणिक टीका की भारी आवश्यकता थी। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रणयन किया गया है।

यद्यपि बाजार में अन्य टीकाएँ भी उपलब्ध हैं, किन्तु प्रस्तुत टीका अद्यतन होने के कारण विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रंथ में कठिन शब्दों के अर्थ एवं व्याख्या प्रामाणिक रूप में उपलब्ध है। इन सभी उपादेय तत्त्वों के कारण प्रस्तुत टीका विद्यार्थियों के लिए संग्रहणीय है।

प्रस्तुत टीका को लिखने का श्रेय आपके सुपरिचित लेखक श्री देशराजसिंह भाटी को है। आलोचना भाग लिखने का श्रेय प्रो० सतीशकुमार जी को है। अतः हम उनको बधाई देते हैं।

—प्रकाशक

तृतीय संस्करण

कामायनी की टीका के प्रथम दो संस्करणों का हाथों-हाथ बिक जाना ही इसकी उपयोगिता का प्रमाण है। अतः हम सोत्साह इस पुस्तक का तृतीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि यह संस्करण अपेक्षाकृत अधिक उपादेय सिद्ध होगा।

—प्रकाशक

विषय-सूची

आलोचना भाग

व्याख्या भाग

१. कामायनी की ऐतिहासिकता

कामायनी की मूल कथावस्तु में ऐतिहासिक तथ्य बहुत कम है लेकिन कवि ने कल्पना तत्व का सम्मिश्रण कर इसे विस्तृत कर दिया है। यह तो निर्विवाद रूप से मान्य है कि कोई भी कथानक विना कल्पना तत्व के सम्मिश्रण किये नहीं लिखा जा सकता क्योंकि इसके विना काव्य सृजन सर्वथा असम्भव है। अतः कल्पना ही के कुछ ऐसे तत्वों तथा तथ्यों को निवेशित कर दिया जाता है, जिनकी भित्ति पर एक भव्य प्रासाद की सफल रचना हो सके। आधार और आधेय का सम्वन्ध चिरकालीन है। प्रसादजी ने अपने कामायनी ग्रन्थ के लिए सृष्टि के प्रारम्भ से ही कथा का चयन किया है। ग्रन्थारम्भ में ही उपनिषद और पुराणों का प्रमाण देकर कवि ने कामायनी की कथावस्तु में इतिहास और कल्पना के मणि-कांचन संयोग की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित किया है। स्वयं ही कवि ने लिखा है --

"मनु भारतीय इतिहास के आदि पुरुष है। राम, कृष्ण और बुद्ध इसी के वंशज हैं। हाँ कामायनी की कथा शृंखला मिलाने के लिए वही थोढ़ा बहुत कल्पना को भी ले आने का आधार मैं नहीं छोड़ सका हूँ।

प्रसाद जी को भारत के अतीत इतिहास के प्रति लगन है क्योंकि उनका अपना दृष्टिकोण था कि वर्तमान समाज को प्रगति के शिखर तक ले जाने के लिए अतीत का ही सहारा लेना पड़ेगा। इसलिए उन्होंने भारतीय इतिहास के उन पत्रों से उन घटनाओं का चयन किया है जो वस्तुतः मनुष्य समाज को प्रेरणा दे सके। ऐतिहासिक प्रगति का यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि मनुष्य का विकास समाज की दिशा में होता है और समाज का इतिहास की दिशा में। इसीलिए उनके ग्रन्थों में प्राचीन इतिहास से अनेकानेक घटनाओं का चयन किया गया है जिससे कि प्राचीन संस्कृति जो लुप्त होती जा रही है, वह पुनः

प्रकाश में आ सके । 'बिशाख' नाटक की भूमिका में इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है :—

"इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए होता है, क्योंकि हमारे जलवायु के अनुकूल जो हमारी अतीत सभ्यता है, उससे बढ़कर और कोई भी आदर्श हमारे अनुकूल होगा कि नहीं, इसमें पूर्ण संदेह है ।"

कामायनी के मूलाधार ग्रन्थ शतपथ ब्राह्मण, ऋग्वेद तथा पुराणों में श्रद्धा, मनु तथा इड़ा की कथाएँ क्रमहीन असम्बद्ध तथा परस्पर उलझी हुई हैं । ये घटनाएँ परम्परा से सर्वथा भिन्न तथा विविध रूपोंमें मिलती है जिसके कारण श्रद्धा और मनु के जीवन में घटने वाली वटनाओं का स्पष्ट रूप से पता नहीं चलता । नव-सृष्टि के निर्माण से पूर्व इनका मिलन किस प्रकार हुआ तथा उनका जीवन किस प्रकार व्यवस्थित हुआ आदि कुछ घटनाएँ ऐसी हैं, जिन पर प्रकाश नहीं पड़ा । फिर भी अध्ययन करने पर यह पता चल ही जाता है कि कौन सी ऐसी घटना है जिसका प्रयोग कवि ने केवल कथानक में शृंखला को जोड़ने के लिए किया है तथा कौन सी अपने वास्ततिक रूप में ऐतिहासिक है ।

कामायनी की कथा के चार सोपान हैं । १. जलप्लावन और मनु. २. मनु-श्रद्धा का मिलन और उनका गृहस्थ जीवन, ३. मनु-इड़ा मिलन तथा सारस्वत नगर की दुर्घटना, ४. मनु की कैलाश यात्रा तथा तत्वदर्शन । कथा के इन सोपानों में ही ऐतिहासिक तथा कल्पना के अंश सन्निहित है ।

१. जलप्लावन तथा मनु—जलप्लावन की घटना विश्व-इतिहास में एक प्राचीन घटना है । शतपथ ब्राह्मण में इसे 'ओघ' पुराणों में प्रलय कहा गया है । कामायनी में जिस प्रलय का वर्णन किया गया है उसे अग्निपुराण तथा श्रीमद् भागवत पुराण में ब्राह्म नैमित्तिक प्रलय कहा गया है । शतपथ ब्राह्मण में जलप्लावन की घटना इस प्रकार दी गई है—एक बार प्रभात के समय हाथ धोने के लिए जब मनु ने हाथ में जल लिया तो उनके हाथ में एक छोटी सी मछली आ गई और उसने मनु से अपने प्राणों की रक्षा करने की प्रार्थना की । उस मछली ने मनु को बतलाया कि प्रलय होने वाली है तुम एक नौका बनाकर उस पर चढ़ जाना, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी । मनु ने उस मछली की रक्षा की और कालान्तर में उसने मनु की रक्षा की और मनु को उत्तर गिरि की मनोखसर्पण नामक चोटी पर पहुँचा दिया ।

जैमिनीय ब्राह्मण में मत्स्य मनु को नहीं बचाता बल्कि सामवेद की ऋचाएं ही स्वयं नौका बनकर मनु को बचाती हैं। महाभारत में यह कथा असाधारण काव्यरूप ग्रहण कर लेती है और इस पर धार्मिक प्रभाव गहन दृष्टिगोचर होता है। इस कथा के अनुसार मनु एक महर्षि थे और मत्स्य स्वयं प्रजापति ब्रह्मा था। जलप्लावन में केवल मनु ही नहीं अपितु सप्त ऋषि, समस्त पदार्थों के बीज भी शेष रहे थे। मत्स्य पुराण में मत्स्य बीस अयुत योजन आकार का विष्णु भगवान का अवतार है। मनु के साथ ऋक्, यजु, साम समस्त विद्याओं के साथ सभी पुराण, सूर्य, नर्मदा नदी, महिष मार्कंडेय तथा शंकर के अवशिष्ट रहने का उल्लेख मिलता है। नौका का निर्माण भी देवताओं ने किया था स्वयं मनु ने नहीं। साथ ही यहाँ पर यह वर्णन नहीं मिलता कि मनु सर्वप्रथम किस स्थान पर उतरे थे। श्रीमद्भागवत पुराण तथा अग्नि पुराण में भी यह कथा मिलती है। भविष्य पुराण में मनु का नाम न्यूह दिया गया है और उन्हें आदम की संतान माना गया है। स्वप्न में विष्णु ने न्यूह को आदेश दिया था कि तुम एक नाव बनवाकर उस पर परिवार सहित पर उस चढ़ जाना। न्यूह ने विष्णु के कथनानुसार एक ५० हाथ चौड़ी तथा ३०० हाथ लम्बी नाव बनाई और भारत के जल मग्न हो जाने पर समस्त जीवों के साथ अपने परिवार के भी प्राणों की रक्षा की। हिमालय पर्वत की जिस चोटी पर मनु जाकर उतरे उसका नाम शिषिणा दिया है।

बाइबिल में हजरत नूह का भी ऐसा ही आख्यान है। नूह एक धर्मात्मा व्यक्ति थे। उनके समय में सारी पृथ्वी अनाचार एवं दुष्कर्मों से परिपूर्ण हो गई। सारी जनता चरित्र-भ्रष्ट हो गई थी। तब भगवान यहोवा ने सृष्टि के नाश करने की सोची और उन्होंने नूह से ३०० हाथ लम्बी, ५० हाथ चौड़ी तथा ३० हाथ ऊंची नौका बनाकर अपनी रक्षा करने के लिए कहा। परमेश्वर के कथनानुसार ठीक सातवें दिन प्लावन प्रारम्भ हो गया और नूह अपने परिवार तथा प्राणियों के एक-एक जोड़े तथा अन्य आवश्यक सामग्री लेकर नौका पर चढ़ गये। नूह की नौका अराराट पर्वत पर जाकर रुकी और वहाँ आकर नूह ने पहले देवताओं को बलि प्रदान की तथा एक नई सृष्टि का विकास किया। कुरान-शरीफ में भी यह बाइबिल के समान ही है। ईश्वर में अविश्वास करने वाले लोगों का विनाश करने के लिए जलप्लावन का होना बतलाया गया है। कुरान में उस पर्वत का नाम जूदी दिया गया है। प्रसादजी

ने भी बाइबिल तथा कुरान शरीफ की भाँति देवसृष्टि के विनाश तथा देवताओं के अनाचार का वर्णन किया है।

वह उन्मत्त विलास हुआ क्या ? स्वप्न रहा या छलना थी।
देव सृष्टि की सुख विभावरी, ताराओं की कलना थी॥

देवता सोचते थे कि सृष्टि के नियामक तो वही हैं, इनका यही दम्भ तथा उन्मत्त विचार ही उस सृष्टि के विनाश का कारण बना—

स्वयं देव थे हम सब तो फिर क्यों न विशृंखल होती सृष्टि।
अरे अचानक हुई इसी से कड़ी आपदाओं की वृष्टि॥
गया, सभी कुछ गया, मधुर तम सुर बालाओं का शृंगार,
उषा ज्योत्स्ना सा यौवन-स्मित मधुप सदृश निश्चित विहार॥

पहलवी ग्रन्थों तथा पारसी के धार्मिक ग्रन्थ वेंदीदार में जलप्लावन का वर्णन हुआ है। सुमेरियन ग्रंथों में भी इसका वर्णन हुआ है। यूनान के अतिरिक्त बेबीलोनिया के साहित्य में भी जलप्लावन संबंधित अनेक कथायें मिलती हैं। वहां एक महाकाव्य की कथा के अनुसार जिसूथ्रूस को भीषण बाढ़ का पता लगा, उसने एक नाव बनवा ली। जलप्लावन के उतर जाने पर भूमि निकल आई। तब उसने देवताओं को बलि देकर बेबीलोनिया नगर का पुनः निर्माण करवाया।

इस प्रकार जलप्लावन की कथा संसार के प्रायः सभी साहित्यों में मिल जाती है। मूलकथा प्रायः एक ही है। अधिकांश कथाओं में जलप्लावन का तत्कालीन जनता का दुष्कर्मों, पापाचारों एवं अनैतिक आचरणों में लीन होकर ईश्वर में अविश्वास करना बतलाया गया है। जलप्लावन से नायक नौका के द्वारा ही बचा है तथा उसके साथ ही अन्य प्राणी तथा कुछ अन्य पदार्थ भी बचे है। कामायनी में प्रसाद जी ने भी विश्वविश्रुत कथा को आधार बनाकर मनु के साथ जल, अग्नि, धान्य, पशु, श्रद्धा, इड़ा, सारस्वत नगर तथा उसके निवासी, आकुलि-किलात आदि का जलप्लावन से शेष रहने का वर्णन किया है। जलप्लावन की कथा में सर्वत्र किसी देवता या परमेश्वर में रुष्ट हो जाने का वर्णन हुआ है। कामायनी में भी बतलाया गया कि जब विराट शक्ति ही रुष्ट हो गई तो जलप्लावन होना अवश्यम्भावी था। इस जलप्लावन से जो भी बचा वह या तो ईश्वर के द्वारा या उसकी ही किसी शक्ति विशेष के द्वारा जीवित रहा। अतः कामायनीकार ने भी इस बात की उद्घोषणा की—

महा मत्स्य का एक चपेटा, दीन पोत का मरण रहा।
किन्तु उसी ने ला टकराया, इस उत्तर गिरि के शिर से।
देव सृष्टि का ध्वंस अचानक श्वास लगा लेने फिर से।

कामायनी में वर्णित मनु तथा जलप्लावन की कथा का आधार भारतीय ग्रंथ ही हैं। इस कथा को तर्कसंगत बनाने के लिये प्रसाद जी ने अन्य कथाओं का भी सहारा लिया है। प्रसादजी ने कामायनी के आमुख में स्वयं ही कहा है।

"जलप्लावन भारतीय इतिहास की एक ऐसी प्राचीन घटना है, जिसने मनु को देवों से विलक्षण, मानवों की एक भिन्न संस्कृति प्रतिष्ठित करने का अवसर दिया। वह इतिहास ही है। मनवे वै प्रातः इत्यादि से इस घटना का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण के आठवें अध्याय में मिलता है। देवगण के उच्छृंखल स्वभाव, निबोध आत्मतुष्टि में अन्तिम अध्याय लगा और मानवीय भाव अर्थात् श्रद्धा और मनन का समन्वय होकर प्राणी को एक नये युग की सूचना मिली। मन्वन्तर के प्रवर्तक मनु हुए।"

अतः भारतीय जलप्लावन की कथा ऐतिहासिक एवं पौराणिक रूप में ही लिखी गई है जो भारत में होने वाली घटना का ही सत्य रूप है, क्योंकि हिमालय पर्वत का सर्वेक्षण करने वालों का विचार है कि इसके नीचे प्राचीन नगरों के अवशेष हैं जो यहाँ पर किसी समय में जलप्लावन की घटना का होना सिद्ध करते हैं।

(२) **मनु-श्रद्धा का मिलन तथा उनका गृहस्थ जीवन**—कामायनी के चरित्र नायक वैवस्वत मनु हैं। वैवस्वत मनु के बारे में ऋग्वेद तथा मत्स्यपुराण, वायु पुराण तथा मार्कंडेय पुराण आदि में लिखा गया है। वे आधुनिक मानव सृष्टि के प्रवर्तक हैं तथा ऐतिहासिक पुरुष हैं। उन्हें ऐतिसासिक पुरुष मानकर मानव-सृष्टि का आदि प्रवर्तक सिद्ध किया गया है। प्रायः विद्वानों का मत है कि आदि मानव ने सर्वप्रथम अपने रहने का स्थान गुहा को ही बनाया था और वहीं रहते हुए उसने जानवरों का आखेट तथा उनको पालन प्रारम्भ किया। कहा जाता है कि कुरनूल की गुफाओं में आदि-मानव के निवास के चिह्न आज भी मिलते हैं। मनु ने भी अपने रहने के लिए एक गुफा को ही आधार बनाया था :—

थी अनन्त की गोद सदृश जो, विस्तृत गुहा वहाँ रमणीय।
उसमें मनु ने स्थान बनाया, सुन्दर स्वच्छ और वरणीय ।।

ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण, ऐतरेय तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण आदि में इस बात का उल्लेख है कि प्रजापति ने सृष्टि के विकास की इच्छा की तो सबसे पहले उसने तप किया और तप करने के उपरान्त ही सृष्टि का विकास किया। कामायनी में भी मनु ने ऐसा ही किया—

पहला संचित अग्नि जल रहा, पास मलिन द्युति रवि कर से।
शक्ति और जागरण चिह्न-सा, लगा धधकने अब फिर से ।।

इसके उपरान्त मनु सागर के तीर पर अग्निहोत्र के उपरान्त शालियों का चयन कर पाक यज्ञ करते हैं। ऋग्वेद में मनु को प्रथम अग्निहोत्रकर्त्ता कहा गया है। ओघ के अनन्तर मनु द्वारा अग्निहोत्र-प्रज्वलन का शतपथ में भी वर्णन किया गया है। इसके उपरान्त मनु के मन में भार्या की इच्छा उत्पन्न होती है—

कब तक और अकेले? कह दो हे मेरे जीवन बोलो।
किसे सुनाऊँ कथा? कहो मत, अपनी निधि न व्यर्थ खोलो ।।

ऋग्वेद के अनुसार मनु जड़-चेतन सृष्टि के नियन्ता हैं उन्होंने विश्वदेव के प्रति जिज्ञासा प्रकट की—

विश्वदेव सविता या पूषा सोम मरुत चंचल पवमान।
वरुण आदि घूम रहे हैं किसके शासन में अम्लान ।।

शतपथ के अनुसार पाकयज्ञ में उद्भूत इड़ा को सृष्टि के विकास का कारण कहा गया है जबकि कामायनी में मनु के पाकयज्ञ के अवशिष्ट-अन्न को देखकर श्रद्धा अनुमान करती है कि यहाँ कोई प्राणी और बचा हुआ है और वह यह सोचकर ढूंढ़ती ढूँढ़ती उस गुहा के निकट पहुँच जाती है जहाँ मनु रहा करते थे। उन्हें वह कर्म करने की प्रेरणा देती है और सृष्टि के विकास में सहायक होती हैं। यहीं से उनके गृहस्थ-जीवन का सूत्रपात होता है।

श्रद्धा कामायनी की एक विशिष्ट पात्र है। कामायनी के आमुख में श्रद्धा को कामगोत्र की बालिका बतलाया गया है। "कामगोत्रजा श्रद्धानामर्षिका" कहकर बतलाया है श्रद्धा नाम के साथ ही उसे कामायनी भी कहा जाता है। शतपथ ब्राह्मण में उन्हें श्रद्धादेव कहा गया है "श्रद्धादेवो वै मनुः" कहा गया है। भागवत पुराण में श्रद्धा को मनु की पत्नी माना गया है। विष्णु पुराण में

तथा मार्कंडेय पुराण में भी मनु का और श्रद्धा का यही संबंध माना गया है। संभवत: इन्हीं आधारों पर कामायनीकार ने भी श्रद्धा को मनु की पत्नी माना है और उसी से मानव सृष्टि का विकास माना है।

श्रद्धा के साथ प्रणय बंधन में बँध जाने के उपरान्त कामायनी में मनु का—दो अन्य मानवों आकुलि एवं किलात—दो असुर—पुरोहितों से साक्षात्कार होता है। वे भी जलप्लावन हो जाने के उपरान्त इधर-उधर भटक रहे थे। जब उन्होंने श्रद्धा के पालित पशु को देखा तो वे उसे मारकर खाने की चेष्टा करने लगे। वे मनु के समीप आकर मैत्रावरुण यज्ञ करने की सलाह देते हैं। मनु भी अपने प्राचीन संस्कारों के कारण इन असुर पुरोहितों की प्रेरणा से पशु-बलि द्वारा यज्ञ करने के लिए उद्यत हो जाते हैं। ये दोनों व्यक्ति भी ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। ऋग्वेद के दशममंडल में इनकी कथा आई है। शतपथ ब्राह्मण में भी इन दोनों असुर पुरोहितों का संबंध श्रद्धादेव मनु से बतलाया गया है। वहाँ पर ये मनु को मैत्रावरुण यज्ञ करने की प्रेरणा देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मैत्रावरुण यज्ञ की कथा का आधार शतपथ ब्राह्मण की तथा जब ये दोनों असुर पुरोहित कालान्तर में सारस्वत नगर की जनता का नेतृत्व संभालते हैं तो ऋग्वेद की कथा का उपयोग किया गया है। शतपथ में सुरा तथा सोमपान का वर्णन हुआ है तथा ऋग्वेद में सोमपान करने वाला वैभवसम्पन्न हो जाता है, ऐसा माना जाता है। कामायनी में भी उपर्युक्त ग्रंथों के आधार पर ही सोमपान तथा पुरोडाश-भक्षण का वर्णन किया है।

उपर्युक्त विवेचन का निष्कर्ष यह है कि कामायनी के कथानक का आधार ऐतिहासिक एवं पौराणिक ही है लेकिन श्रद्धा का रूठ जाना, गर्भवती होना तथा उसके द्वारा सुन्दर गृहस्थ के निर्माण का वर्णन कवि की सुन्दर कल्पना का फल है।

(३) **मनु-इड़ा मिलन तथा सारस्वत नगर की दुर्घटना**—श्रद्धा के सुन्दर गेह से निकलकर मनु सारस्वत नगर की ओर हिमालय पर्वत की ऊँची चोटियों से उतर आते हैं। यहाँ आकर उनकी भेंट सारस्वत नगर की रानी इड़ा से होता है। उसका सारस्वत नगर भौतिक उपद्रवों के कारण नष्ट हो चुका था, वह उसको पुन: बसाना चाहती है, इसके लिए उसे एक योग्य पुरुष की आवश्यकता थी। मनु को पाकर वह उस नगर का शासक नियुक्त करती है। मनु अपनी योग्यता से उस नगर की आशातीत उन्नति करते हैं और

कालान्तर में अपनी अतृप्त वासना की तृप्ति के हेतु जब इड़ा को पकड़ते हैं तो नगर में पुनः भयंकर जन-क्रांति हो जाती है, जिसमें मनु घायल होकर मूर्च्छित हो जाते हैं।

कामायनी की इस कथा का ऐतिहासिक आधार खोजने पर पता चलता है कि सरस्वती नदी के निकट का प्रदेश सारस्वत है। ऋग्वेद में सरस्वती नदी का वर्णन मिलता है। वहाँ वृत्रासुर का वध भी हुआ था। कुछ विद्वानों की राय है कि यह नदी पंजाब में बहकर राजस्थान के समुद्र में गिरती थी। इसके विपरीत प्रसाद जी का विचार है जो कोशोत्सव स्मारक संग्रह में मिलते हैं कि देवताओं की यहाँ गाथा से संबंधित यह सरस्वती नदी पंजाब की सरस्वती से भिन्न पश्चिमी अफ़गानिस्तान के पास गांधार प्रदेश में बहती थी। यहीं पर प्राचीन सप्त सिन्धु प्रदेश का जिसका वर्णन अवेस्ता में भी मिलता है और यहीं देवों की वह आवास भूमि थी, जिसके चारों ओर समुद्र था तथा जो उत्तर-पश्चिम में गांधार प्रान्त के द्वारा पश्चिमी एशिया माइनर से मिली हुई थी। अपनी इस खोज के आधार पर प्रसाद जी ने कंधार के समीपवर्ती स्थान को सारस्वत प्रदेश माना है। और इसी कारण उसे उन्नत शैल शृंगों से घिरा हुआ बतलाया है।

पुराणों में भी सरस्वती नदी तथा इड़ावृत्त का उल्लेख मिलता है। जिसके बीच में मेरु पर्वत माना जाता था। आधुनिक स्थिति के अनुसार भी मेरु पर्वत भारत के उत्तर में हिन्दुकुश पर्वत के आस-पास माना जाता है और उससे उतर कर गांधार प्रदेश है। इसी आधार पर सारस्वत प्रदेश तथा इड़ावृत्त वर्ष एक ही नाम है।

ऋग्वेद में इड़ा का उल्लेख प्रजापति मनु की पथप्रदर्शिका, मनुष्यों पर शासन करने वाली के रूप में हुआ है। इसी रूप में कामायनीकार ने भी उसके साथ संबंध निर्वाह की चर्चा की है।

कामायनी में मनु और इड़ा के जिस अनैतिक आचरण का वर्णन किया गया है, उसका उल्लेख वेदों में नहीं मिलता। ऐतरेय ब्राह्मण में एक कथा मिलती है। यहाँ लिखा है कि एक बार प्रजापति ने अपनी दुहिता के साथ अनैतिक आचरण किया। प्रजापति के इस आचरण को देखकर देवता लोग चिल्ला उठे तथा प्रजापति को दंड देने के लिए एक रौद्र शरीर 'भूतवन' का निर्माण किया, जिसका नाम पशु की बलि माँगने के कारण पशुपति पड़ा।

उसने प्रजापति के पाप का प्रक्षालन करवाने के लिए ही उसका शरीर बेध डाला। शतपथ तथा मत्स्य पुराण में भी यही कथा मिलती है। शिवमहिम्न स्तोत्र में भी इस कथा के संकेत मिलते हैं। वहाँ शिव काममोहित प्रजापति पर वाण चलाते हैं। कामायनी में इन दोनों कथाओं के आधार पर मनु के अनैतिक आचरण के कारण देवशक्ति के उद्‌बुद्ध होने, जनक्रांति तथा शिव के तृतीय नेत्र के खुलने तथा उनके द्वारा वाण मारे जाने का उल्लेख किया है। ऐतरेय ब्राह्मण की कथा में मनु ने भूतवन के स्थान पर आकुलि किलात के दारा ही प्रजा का नेतृत्व रिखाया है। इस कथा के द्वारा प्रसादजी ने आधुनिक संसार में होने वाले वर्ग संघर्ष की ओर भी संकेत किया है।

श्रद्धा तथा मनु की कैलाश यात्रा तथा तत्वदर्शन—कामायनी की कथा के इस भाग में प्रसाद जी ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर कथा को एक अप्रत्याशित मोड़ दिया है। जिसके कारण ऐतिहासिकता के स्थान पर दार्शनिकता प्रधान हो गई। इस कथा भाग में तीन बातें दिखाई पड़ती हैं-तांडव नृत्य करते हुए शिव का दर्शन, मनु को त्रिपुर की वास्तविकता का ज्ञान कराना तथा कैलाश शिखर पर पहुँचकर समरसता को अपनाते हुए अखंड आनन्द का अनुभव करना।

शिव के तांडव नृत्य का वर्णन पुराण ग्रंथों में उपलब्ध होता है। लिंगपुराण के अनुसार शिव ने पार्वती को प्रसन्न करने के लिए तांडव नृत्य किया था। शिव ताण्डव स्तोत्र में इसका विस्तृत रूप में वर्णन किया गया है। शिवमहिम्न स्तोत्र देवीनाम विलास आदि ग्रंथों में उक्त नृत्य का वर्णन मिलता है। प्रसाद जी ने अपने काव्य में ताण्डव नृत्य का दर्शन अन्तर्जगत में ही होने का संकेत किया है क्योंकि मनु के लोचन निर्निमेष हो जाते हैं तथा वे स्वयं ही सत्ताहीन होकर शून्य का अनुभव करते हैं—

अन्तर्निनाद ध्वनि से पूरित, थी शून्य-भेदिनी सत्ता चित;
नटराज स्वयं थे नृत्य निरत, था अन्तरिक्ष प्रहसित मुखरित;
स्वर लय होकर दे रहे ताल, थे लुप्त हो रहे दिशा काल।
लीला का स्पन्दित आह्लाद, वह प्रभा पुंज चितिमय प्रसाद।
आनन्दपूर्ण ताण्डव सुन्दर, झरते थे उज्ज्वल श्रम सीकर।
बनते तारा हिमकर दिनकर, उड़ रहे धूलि-कण से भूधर।
संहार सृजन से युगल पाद, गतिशील अनाहत हुआ नाद।

इस लास नृत्य के द्वारा ही सारे कैलाश पर्वत पर मधुर वातावरण की सृष्टि होती है।

कैलाश की ओर जाते समय मनु को मार्ग में त्रिपुर के दर्शन होते हैं इच्छा, ज्ञान, क्रिया तथा स्वप्न, स्वाय, जागरण आदि त्रितय अवयवों को त्रिपुर कहा जाता है। ऋग्वेद में अग्नि के तीन रूपों को त्रिताप कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में एक कथा मिलती है जिसमें लिखा है कि देवताओं से पराजित होकर असुरों ने प्रजापति की तपस्या करके तीन पुरों का निर्माण किया। जिससे पृथ्वी में लोहे का अन्तरिक्ष में चाँदी का तथा द्युलोक में सुवर्ण का पुर बनाया था। देवों ने पुरों का नाश करने के लिए उपसद नामक अग्नि की उपासना की। महाभारत, शिवपुराण, लिंगपुराण, श्रीमद् भागवत पुराण, मत्स्यपुराण आदि में त्रिपुरों का विध्वंस शिव के द्वारा करवाया गया है। शैवागमों के अनुसार इच्छा शक्ति सृष्टि की कामना उत्पन्न कर विभिन्न कर्मों में लीन होने की प्रेरणा देती है। ज्ञानशक्ति शुद्धाशुद्धा मार्ग का ज्ञान कराती है और क्रियाशक्ति विभिन्न शक्तियों का पारस्परिक संघटन कराती है। त्रिपुरा रहस्य में श्रद्धा को ही त्रिपुरादेवी कहा गया है। उसी को अपनी अनन्त शक्ति के द्वारा त्रिपुरों या त्रिकोणों को एक करने वाली बतलाया है। उक्त ग्रंथों के आधार पर ही प्रसाद जी ने कामायनी के त्रिपुर या त्रिकोण का वर्णन किया है, जो स्पष्टतया संसार के जीवन का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है और जिसके द्वारा प्रसाद जी ने आधुनिक विडम्बनापूर्ण मानव-जीवन को आनन्दमग्न बनाने का सुझाव रखा है।

स्वप्न, स्वाप जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे,
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।

अन्त में मनु कैलाश पर पहुँचकर अखंड आनन्द का अनुभव करते हैं। मत्स्य पुराण, वायुपुराण मार्कंडेय पुराण आदि पुराण ग्रंथों में कैलाश (गिरि) का उल्लेख किया गया है। प्रसादजी ने इसी आधार पर मनु को शिव के चरणों में अखंड आनन्द की प्राप्ति का वर्णन किया है। प्रत्यभिज्ञादर्शन में वास्तविकता का ज्ञान होने पर चिदानन्द प्राप्ति का वर्णन उपलब्ध होता है। मनु श्रद्धा की सहायता से कैलाश शिखर पर पहुंच कर वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

जहाँ कोई भी पराया नहीं होता और सर्वत्र अखंड आनंद व्याप्त है—

समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था।
चेतनता एक विलसती आनन्द अखंड घना था ॥

कामायनी अनुशीलन में रामलाल सिंह ने निष्कर्ष निकाला है कि 'कामायनी के उत्तर भाग की प्रायः समस्त घटनाएँ (स्वप्न देखकर श्रद्धा का रण क्षेत्र में मुमुर्ष मनु के पास जाना, मनु का ग्लानिवश भाग जाना, मानव-इड़ा का मिलन, पुनः मनु की खोज में श्रद्धा का निकल जाना, मनु की पुनर्प्राप्ति, श्रद्धा और मनु का कैलाश पर जाकर निवास करना तथा अन्त में इड़ा और मानव का कैलाश आश्रम पर जाना) कवि-कल्पना प्रसूत हैं। समस्त घटनाएँ ऐतिहासिक वातावरण के अनुरूप तथा मानव प्रकृति के अनुकूल हैं। उनकी सृष्टि काव्य-साध्य तक पहुँचने के लिए एवं घटनाओं में संबन्ध निर्वाह तथा ऐक्य स्थापित करने के लिए हुई हैं। कल्पित घटनाओं में ऐतिहासिक वातावरण की रक्षा तथा अक्रम एवं असंबद्ध रूप में विकीर्ण घटनाओं में क्रम ऐक्य देखकर यह कहना पड़ता है कि प्रसाद को सच्ची ऐतिहासिक कल्पना प्राप्त थी।

प्रसाद जी ने कथा वस्तु की क्रमबद्धता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए कामायनी में कितनी ही मौलिक एवं नवीन उद्भावनाएँ की हैं जो डॉ० द्वारिका प्रसाद के अनुसार निम्नलिखित हैं—

१. प्रसाद जी ने देवताओं के निर्बाध विलास के कारण ही जलप्लावन द्वारा देव-सृष्टि का विनाश बतलाया है,जो महाकाव्य को एक नैतिक रूप प्रदान करने करने के लिए गई है।

२. प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन करके मनु के हृदय में जीवन-संगिनी के प्रति भावों को उद्दीप्त किया गया है। प्रसाद जी की यह कल्पना उनके प्रगाढ़ प्रकृति प्रेम की द्योतक है, साथ ही इस कल्पना द्वारा शृंगार के उद्दीपनों को भी प्रस्तुत किया गया है।

३. निराश मनु को कर्मण्य बनाने के लिए श्रद्धा के एक ओजस्वी भाषण एवं मानवता के सदेश की उद्भावना की गई है इसके कारण मनु निवृत्ति मार्ग की अपेक्षा प्रवृत्ति मार्ग की ओर जाकर लोक कल्याण के प्रति उन्मुख होते हैं।

४. श्रद्धा के प्रणय-सूत्र में बँधने से पूर्व काम-संदेश की उद्भावना की गई है। इसका प्रथम कारण है कि प्रकृति के मूल में काम विशुद्ध रूप में व्याप्त है। द्वितीय पिता ही अपनी कन्या को योग्य वर के हाथों में सौंपता है। तृतीय

सृष्टि कार्य में काम का महत्व स्थापित करना तथा दाम्पत्य प्रेम में परस्पर अनुकूलता सिद्ध करना।

५. श्रद्धा के हृदय में लज्जा का उदय के उल्लेख बड़ी स्वाभाविकता से किया गया है। अबाधित विलास से बचाने के लिए तथा संयम का पाठ पढ़ाने के लिए इसकी कल्पना की गई है।

६. श्रद्धा का अहिंसा प्रेम, वात्सल्य भाव, गृहनिर्माण तथा ईर्ष्यावश मनु का श्रद्धा से दूर भाग जाना कवि की मौलिक कल्पना है।

७. मनु के शासन में जनक्रांति का उल्लेख कल्पना प्रसूत है। यन्त्रवाद एवं भौतिक उन्नति की विफलता का चित्रांकन करने के उद्देश्य से ही ऐसा किया गया है।

८. श्रद्धा के स्वप्न की घटना, उसका अपने पुत्र के साथ सारस्वत नगर में आना और वहाँ आकर इड़ा के साथ वार्तालाप करने आदि का वर्णन भी पूर्णतया काल्पनिक है। यहाँ पर भारतीय परम्परा की दृष्टि से पातिव्रत धर्म एवं नारी की सहज उदारता का चित्र अंकित करने के लिए ऐसी कल्पना की गई है।

९. इड़ा तथा मनु-पुत्र मानव का मिलन पूर्णतया काल्पनिक है। इस कल्पना के द्वारा एक ओर तो प्रसाद जी ने रूपक का निर्वाह किया, क्योंकि बुद्धि और हृदय का सामंजस्य इन दोनों के मिलन द्वारा दिखाया है। दूसरे शासन में केवल कठोर राजनीति ही नहीं, उदात्त भावनाओं से सम्पन्न हृदय की भी आवश्यकता होती है।

१०. मनु का त्रिपुर-दर्शन तथा कैलाश पर भगवान शिव के नृत्य में लीन होने की भावना को भी प्रसाद जी ने अपनी कल्पना के योग से ही काव्य में प्रस्तुत किया है। इसके द्वारा जहाँ शिव के ताण्डव नृत्य का वर्णन कर डाला, वहाँ संसार का वास्तविक चित्र भी प्रस्तुत कर डाला।

११. इड़ा, मानव तथा समस्त सारस्वत नगरवासियों की कैलाश यात्रा का वर्णन भी पूर्णतया कल्पित है। इस कल्पना का कारण प्रसाद जी की सांस्कृतिक समन्वय तथा समरसता के सिद्धान्त को प्रतिष्ठित किया है।

२. कामायनी का अंगी रस

प्रत्येक महाकाव्य में प्रायः सभी रसों का समावेश होता है, क्योंकि उसमें जीवन का वैविध्य एवं सर्वांग-चित्रण होता है। कुछ विद्वानों का मत है कि रस स्वयं चमत्कार स्वरूप है, अतः ऐसी दशा में वह दूसरे किसी रस का अंग हो ही नहीं सकता। ये आचार्य अनेक रस सम्पन्न महाकाव्य तारतम्य का निशेध नहीं करते। इसी तारतम्य की स्वीकृति से प्रकारान्तर में अंगांगी भाव की स्वीकृति अनिवार्य हो जाती है। भरत ने नाट्य शास्त्र में लिखा है।

बहूनां समवेतानां रूपं यस्य भवेद्बहु।
स मन्तव्यो रसः स्थायी शेषाः संचारिणो मताः॥

अर्थात् महाकाव्य में एकत्र अनेक रसों से जो बहु अर्थात् अधिक या प्रधान रूप से विद्यमान रहता है, वह रस स्थायी या अंगी और शेष रस संचारी या अंगभूत होते हैं।

अंगी रस में मुख्य पात्र—पुरुष या नारी, जो कथा का नयन करें—उसकी मूलवृत्ति रहती है। अर्थात् कहने का तात्पर्य यह कि कथा का भावन उसके मुख्य पात्र करते हैं उनके कार्य-कलापों के आधार पर ही कथा में रस का संचार होता है अतः जो प्रमुख घटनाएँ घटित होती हैं उनका भावन जब पाठक करता है तो वह एक निश्चित रसका आस्वादन करता है, यही अंगीरस है।

अंगी रस का मूल उद्देश्य फलागम का आस्वादन रूप भी है। अर्थात् संपूर्ण महाकाव्य का भावन करने के उपरान्त जिस स्थायी मनःस्थिति का निर्माण होता है, वही काव्यास्वाद की दृष्टि से प्रमुख है।

महाकाव्य होने के कारण कामायनी में जीवन की विविध दशाओं का वर्णन और उसके परिणामस्वरूप नाना रसों की अभिव्यंजना हुई है।

शृंगार-रस—शृंगार रस को रसराज माना गया है। इसके दो भेद संयोग शृंगार तथा वियोग इसके दो भेद हैं। इसके अतिरिक्त इसमें अनेक संचारी भाव भी आते हैं। संयोग शृंगार—

मनु निरखने लगे ज्यों ज्यो यामिनी का रूप।
वह अनन्त प्रगाढ़ छाया फैलती अपरूप॥
बरसता था मदिर कण सा स्वच्छ सतत अनन्त।
मिलन का संगीत होने लगा था श्रीमंत॥
छूटती चिनगारियाँ उत्तेजना उद्भ्रांत,।
धधकती ज्वाला मधुर, था वक्ष विकल अशांत।

वात चक्र समान कुछ था बाँधता आवेश,
धैर्य्य का कुछ भी न मनु के हृदय में था लेश ।।

यहां पर श्रद्धा आलम्बन विभाव है। ज्योत्स्नापूर्ण रात्रि तथा श्रद्धा का सौन्दर्य उद्दीपन है। चिनगारियाँ छूटना, हृदय में मधुर ज्वाला धधकना, मनु का हताश, विकल तथा अधीर होना अनुभाव है। आवेग, चचलता, उग्रता आदि संचारी भाव हैं और इन सबसे पुष्ट रतिस्थायी भाव है।

वियोग या विप्रलम्भ शृंगार के चार भेद होते हैं:—पूर्वराग, मान, प्रवास और करुणा। दशरूपककार ने वियोग के मान और प्रवास दो ही भेद किये है कामायनी में भी पूर्वराग तथा करुण श्रृंगार के प्रसंगों की उपेक्षा की गई है और केवल मान प्रवास रूप का ही वर्णन किया गया है। मान विप्रलंभ का वर्णन कर्म सर्ग में हुआ, जब श्रद्धा अपनी गुहा में लौट आती है और मन ही मन बिलखाती हुई सी विरक्ति का बोझ ढोती है। मनु ने कामायनी के वृषभ को मार कर यज्ञ किया जिसके कारण वह रूठ जाती है और मनु उसे वहाँ मनाने के लिए वहाँ पहुंचते हैं, जहाँ वह स्नेहजन्य अमर्ष से भरी हुई मृग-चर्म पर पड़ी हुई है। उसके हृदय-गगन में मधुर विरक्ति भरी आकुलता थी, जिससे उसके असहाय नयन कभी खुलते थे और कभी बन्द हो जाते और स्नेह का पात्र कुटिल कटुता में सामने ही खड़ा रहता है—

मधुर विरक्ति भरी आकुलता,
घिरती हृदय-गगन में,
अन्तर्दाह स्नेह का तब भी
होता था उस मन में।

यहाँ पर मनु आलम्बन विभाव हैं, पशु-वध उद्दीपन विभाव है। दुखी लौट आना, मन में बिलखना, आकुल होना, मन में स्नेह का अन्तर्दाह होना अनुभाव हैं। अमर्ष आवेग तथा विषाद आदि संचारी भाव हैं और इन सब से पुष्ट रति स्थायीभाव है क्योंकि यह प्रणयमान है।

प्रवास विप्रलंभ का वर्णन कामायनी के स्वप्न सर्ग में हुआ है। वन-बालाओं के निकुंज वेणु के मधुस्वर से संचित हैं, आगन्तुक अपने-अपने घर में पुकार सुनकर लौटकर आ जाते हैं किन्तु वह परदेशी अभी तक नहीं आया है, युग प्रतीक्षा में समाप्त हो जाता है और रजनी की भीगी पलकों से तुहिन बिन्दु बरसने लगते हैं।

वन बालाओं के निकुंज सब भरे वेणु के मधु-स्वर से,
लौट चुके थे आने वाले सुन पुकार अपने घर से;
किन्तु न आया वह परदेशी युग छिप गया प्रतीक्षा में;
रजनी की भींगी पलकों से तुहिन बिंदु कण-कण बरसे।

यहाँ पर मनु आलम्बन विभाव है। वन-बालाओं के निकुंजों में वेणु स्वर का गूँजना तथा अन्य सभी का लौट आना उद्दीपन विभाव है। श्रद्धा का मनु की प्रतीक्षा करना, उनके लौट आने के बारे में सोचना आदि अनुभाव है और स्मृति, दैन्य, चिन्ता, विषाद, वितर्क आदि संचारी भाव है। इन सभी बातों से पुष्ट रति स्थायीभाव है।

वीर रस—संघर्ष सर्ग में वीर-रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। मनु से असुर पुरोहितों का जब उत्पात होता है तो मनु आकुलि-किलात को कायर कहते हुए उनको ललकारते हैं—

कायर तुम दोनों ने ही उत्पात मचाया,
अरे समझकर जिनको अपना था अपनाया,
लो फिर आओ देखो कैसे होती है बलि,
रण यह यज्ञ पुरोहित ओ किलात औ आकुलि।

यहाँ पर किलात और आकुलि आलम्बन विभाव हैं। उनका उत्पात मचाना उद्दीपन विभाव है। मनु का ललकारना, युद्ध करना आदि अनुभाव हैं। गर्व, आवेग आदि संचारी भाव हैं और इन सबसे पुष्ट स्थायीभाव उत्साह है। इसके कारण यहाँ वीर रस की सुन्दर अभिव्यजना हुई है।

रौद्र रस—संघर्ष सर्ग के ही अन्तर्गत रौद्र रस की भी अभिव्यंजना हुई है मनु का दैवी शक्तियों एवं प्रजाजनों के साथ युद्ध होता है। अन्धड़ बढ़ रहा था' प्रजा दल झुँझला रहा था और रण वर्षा में विद्युत सदृश चमक रहा था। किन्तु क्रूर मनु उनका वारण करते हुए निरन्तर आगे बढ़ते ही जा रहे थे—

अन्धड़ का बढ़ रहा प्रजा-दल सा झुँझलाता,
रण वर्षा में शस्त्रें का बिजली चमकता,
किन्तु क्रूर मनु वारण करते उन वाणों को,
बढ़े कुचलते हुए खड्ग से जन प्राणों को।

यहाँ पर प्रजा आलम्बन विभाव, प्रजादल का झुँझलाना तथा शास्त्रों से

प्रहार उद्दीपन विभाव, मनु का खड्ग से प्रहार करना, युद्ध में वाण वर्षा करते हुए आगे बढ़ना आदि अनुभाव हैं तथा आवेग, उग्रता आदि संचारी भाव हैं इनसे पुष्ट हुआ क्रोध स्थायी भाव है।

भयानक रस—भयानक रस का वर्णन सम्पूर्ण कामायनी में प्रायः तीन स्थानों पर आया है। कामायनी के प्रलय वर्णन में, युद्ध वर्णन में तथा रहस्य सर्ग में इस रस का वर्णन हुआ है। मनु के अनैतिक आचरण को देखकर प्राकृतिक शक्तियाँ अचानक क्षुब्ध हो उठीं—

> **प्रकृति त्रस्त थी भूतनाथ ने नृत्य विकम्पित पद अपना,**
> **उधर उठाया, भूत सृष्टि सब होने जाती थी सपना।**
> **आश्रय पाने को सब व्याकुल स्वयं मनु संदिग्ध,**
> **फिर कुछ होगा यही समझकर वसुधा का थर थर कंपना।**

यहाँ पर भूतनाथ आलम्बन विभाव हैं। प्रकृति का त्रास करना, प्रजा का व्याकुल होना, पृथ्वी का थर-थर काँपना आदि उद्दीपन विभाव हैं। मनु का संदिग्ध होना तथा फिर कुछ होना आदि अनुभव हैं तथा शंका, त्रास, चिन्ता आदि संचारी भाव हैं। इससे पुष्ट भय स्थायीभाव भयानक रस के रूप में अभिव्यंजित हुआ है।

करुण रस—करुण रस का वर्णन चिन्ता सर्ग में ही हुआ है। मनु देव संस्कृति के विध्वंस पर चिन्ताशील एवं शोकाकुल दृष्टिगोचर होते हैं। प्रकृति दुर्जेय ही रही। हम सब मद में भूले हुए थे, इसी कारण पराजित हो गये और उनका सारा वैभव नष्ट हो गया—

> **प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित हम सब थे भूले मद में,**
> **भोले थे, हाँ तिरते केवल सब विलासिता के नद में।**
>
> **वे सब डूबे, डूबा उनका विभव, बन गया पारावार,**
> **उमड़ रहा देव-सुखों पर दुःख जलधि का नाद अपार।**

यहाँ पर देव आलम्बन विभाव हैं। उनका वैभव, विलासिता तथा प्रकृति को जीतना आदि उद्दीपन विभाव हैं। मनु का आहें भरना, चिंता करना आदि अनुभाव हैं। चिंता, ग्लानि, स्मृति आदि संचारी भाव हैं। इनसे पुष्ट हुआ शोक स्थायीभाव है।

अद्‌भुत रस—अद्‌भुत रस का वर्णन दर्शन सर्ग में हुआ है। मनु तपस्या में निरत है और ऐसी अवस्था में ही मनु भूतनाथ के अलौकिक तांडव नृत्य

का ही दर्शन करते हैं।

देखा मनु ने नर्तित नरेश, हत चेत, प्रकार उठे विशेष,
यह क्या श्रद्धे ! बस तू ले चल, उन चरणों तक, दे निज सम्बल,

यहाँ पर नर्तित नरेश ग्रालम्बन विभाव, उसका तांडव नृत्य उद्दीपन विभाव, मनु का साश्चर्य होना, हत चेत होकर पुकार उठना तथा उन चरणों तक ले चलने की इच्छा प्रकट करना ग्रादि ग्रनुभाव हैं तथा ग्रौत्सुक्य संचारी भाव हैं इन सभी से पुष्ट ग्राश्चर्य स्थायीभाव है।

वीभत्स रस—वीभत्स रस की व्यंजना कर्म सर्ग में हुई है। मनु द्वारा किया गया पशु-यज्ञ समाप्त हो चुका था। यज्ञ की ज्वाला धधक रही थी। दृश्य बड़ा दारुण था। रुधिर के छींटे ग्रौर ग्रस्थि खंड की माला इधर-उधर पड़ी हुई थी। पशु की कातर वाणी वहाँ पर गूंज रही थी। जिसके कारण वहाँ पर एक ग्रौर ही प्रकार के वातावरण का निर्माण हो रहा था—

यज्ञ समाप्त हो चुका तो भी धधक रही थी ज्वाला।
दारुण दृश्य ! रुधिर के छींटे ! ग्रस्थि खंड की माला !
वेदी की निर्मम प्रसन्नता, पशु की कातर वाणी;
मिलकर वातावरण बना था कोई कुत्सित प्राणी।

यहाँ पर पशु यज्ञ ग्रालम्बन विभाव, रुधिर के छींटे, ग्रस्थि खंड की माला इत्यादि उद्दीपन विभाव तथा पशु की कातर वाणी, वेदी की निर्ममता ग्रादि संचारी भाव तथा निर्वेद, ग्लानि, वैवर्ण्य ग्रादि संचारी भाव ग्रादि से पुष्ट जुगुप्सा स्थायी भाव है।

वात्सल्य रस—वात्सल्य रस की व्यंजना श्रद्धा-कुमार के प्रसंग में मिलती है। श्रद्धा विरह-व्यथिता है किंतु जैसे ही वह ग्रपने पुत्र मानव की किलकारी सुनती है तो हृदयस्थ समस्त उद्वेगजनित भावों को वह भूल जाती है, बालक की सूनी किलकारी से सारी कुटिया गूँज उठती है, माँ द्विगुणित उत्कंठा के साथ उठकर दौड़ती है ग्रौर धूल-धूसरित बालक की बाँहें पकड़ उससे लिपट जाती है।

माँ—फिर एक किलक दूरागत गूँज उठी कुटिया सूनी,
मां उठ दौड़ी भरे हृदय में लेकर उत्कंठा दूनी;
लट री खुली ग्रलक रज धूसर बाहें ग्राकर लिपट गई,
निशा तापसी की जलने की धधक उठी बुझती धूनी।

यहाँ पर कुमार आलम्बन विभाव है। उसकी किलकारी, लुटरी अलक तथा धूल-धूसरित बाँहें आदि उद्दीपन विभाव हैं। माँ का उठकर पुत्र को गोदी लेने के लिए दौड़ना आदि अनुभाघ हैं तथा हर्ष, आवेग आदि संचारी भाव हैं। इन सबसे पुष्ट वात्सल्यपूर्ण स्नेह की यहाँ वात्सल्य रस के रूप में अभिव्यक्ति हुई है।

शान्त रस—शान्त रस की अभिव्यक्ति कामायनी के अन्तिम चार सर्गों—निर्वेद, दर्शन, रहस्य, आनन्द में हुई है। निर्वेद सर्ग में मनु संसार से विरक्त हो जाते हैं। दर्शन सर्ग में मनु को नटराज शिव के दर्शन होते हैं। रहस्य सर्ग में मनु को त्रिपुर का क्रमशः ज्ञान कराया जाता है जिसके द्वारा संसार की वास्तविकता का पता चलता है तथा आनन्द सर्ग में तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।संसार के समरसता के सिद्धान्त को समझ जाते हैं। निर्वेद सर्ग में बैठे हुए मनु सोचते हैं कि क्या जीवन सुख है? नहीं यह तो एक विकट पहेली है। अतः हे मनु इस इन्द्रजाल से भाग। पता नहीं कितनी व्यथा को सहन करना होगा।

सोच रहे थे, जीवन सुख है? ना यह विकट पहेली है,
भाग अरे मनु! इन्द्रजाल से, कितनी व्यथा न झेली है?

यहाँ पर संसार आलम्बन विभाव है। जीवन का विकट पहेली बन जाना, सुख का न होना उद्दीपन विभाव है। मनु का भागने का विचार करना, शांति की खोज के लिए उत्सुक होना आदि अनुभाव हैं तथा ग्लानि, दैन्य, निर्वेद आदि संचारी भाव हैं। इनसे पुष्ट हुआ शम स्थायी भाव शान्त रस है।

कामायनी में हास्य रस का विवेचन नहीं हुआ है, उनका संभवतः कारण प्रसाद की गम्भीरता तथा चिन्तनशील स्वभाव का होना है। इसके साथ ही एक बात और भी है कि आदिमानव मनु की कथा एक गम्भीर वातावरण में चलती है, जिसके कारण इस रस को स्थान देना उचित न था, शेष सभी रसों का पूर्ण परिपाक हुआ है।

महाकाव्य होने के कारण कामायनी में जीवन के विविध पक्षों का सुन्दर विवेचन हुआ है, जिसके कारण इसमें नाना रसों की अभिव्यंजना हुई है। बहुव्याप्ति लक्षण के आधार पर कामायनी में केवल शृंगार और शान्त रस की ही व्यंजना हुई है। कामायनी के पूर्वार्द्ध में शृंगार तथा अन्त में शान्त रस की अभिव्यंजना है। अतः फलागम में एक प्रकार से केवल शान्त रस ही रह

जाता है जिसको अंगी रस माना जा सकता है।

काव्यशास्त्र में शान्त रस का विवेचन दो रूप में किया गया है प्रथम है निर्वेदमूलक शान्त तथा द्वितीय है शममूलक शान्त। निर्वेदमूलक शान्त से अभिप्राय उस स्थिति से जब कि संसार के प्रति अनास्था और दुख की भावनाएँ उठती हैं जैसे कि चिन्ता तथा निर्वेद सर्ग में अभिव्यक्ति की गई है।

शान्त रस का दूसरा रूप है शममूलक शान्त रस । इस सममूलक शान्त का लक्षण निम्न प्रकार से किया गया है—

न यत्र दुखं न सुखं न चिन्ता, न द्वेष रागो न च काचिदिच्छा।
रसः स शान्तः कथितो मुनीन्द्रैः सर्वेषु भावेषु शमः प्रधानः॥

अर्थात् जिसमें न दुःख हो, न कोई चिन्ता हो, न राग द्वेष हो और न कोई इच्छा ही शेष हो उसे मुनि शान्त रस कहते हैं।

कामायनी में यह शममूलक शान्त रस की स्थिति स्वप्न सर्ग के अन्त में स्पष्ट रूप से झलकती है जबकि—

स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो,
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे।
दिव्य अनाहत पर निनाद में,
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।

आनन्द सर्ग में आनन्द तत्त्व की पूर्ण प्रतिष्ठा की गई है। जिसका संबंध शैव दर्शन से स्पष्ट रूप से है। शैव दर्शन के आचार्य अभिनव गुप्त के अनुसार, "अपने-अपने निमित्त कारणों को प्राप्त कर शान्त से ही अन्य भाव आविर्भूत होते हैं और फिर निमित्तों के नष्ट हो जाने पर शान्त में ही विलीन हो जाते हैं।" शान्त रस की इस परिभाषा के अनुसार कामायनी में भी अनेक रसों की संयोजना की गई है लेकिन उन सबमें शान्त रस ही प्रमुख है और सभी रस इस मुख्य या अंगी रस के विकार मात्र हैं। शृंगार शान्त परस्पर दोनों विरोधी रस नहीं रह जाते बल्कि ये दो कोटियों के रूप में परिणत हो जाते हैं। स्वयं प्रसाद जी की भी ऐसी ही मान्यता थी—

"शैवागम के आनन्द-सम्प्रदाय के अनुयायी रसवादी रस की दोनों सीमाओं शृंगार और शान्त को स्पर्श करते थे।"

प्रसाद जी की इस मान्यता के अनुसार भी यह निश्चित हो जाता है कि शृंगार और शान्त वस्तुतः सामरस्य रूप आनन्द की ही दो कोटियाँ हैं। श्रद्धा

की मूलवृत्ति सामरस्य की है, मनु फलागम के रूप में इसी का भोग करते हैं तथा पाठक भी इस तत्त्व का सारभूत तत्त्व के रूप में ग्रहण करता है। कामायनी की अन्तिम पंक्तियाँ हैं—

समरस थे जड़ था चेतन सुन्दर साकार बना था।
चेतनता एक विलसती आनन्द अखण्ड घना था।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कामायनी का अंगी रस आनन्द रस या काव्यशास्त्र की भाषा में शान्त रस है। यह कामायनी के वस्तु-विधान, रूप विधान, प्रतिपाद्य तथा प्रसाद जी के काव्य दर्शन के सर्वथा अनुकूल है।

---

३. कामायनी की दार्शनिक पृष्ठभूमि

दर्शन का अर्थ है देखना। किन्तु दर्शन तथा सामान्य देखने में बहुत अन्तर है। किसी वस्तु का सूक्ष्म निरीक्षण ही दर्शन कहलाता है। ब्रह्म क्या है, आत्मा क्या है, जगत क्या है, माया क्या है आदि प्रश्नों का समाधान करने के हेतु ही दर्शनों की रचना की गई है।

प्रसाद जी आनन्दवादी कवि थे। आत्मा को उन्होंने आनन्द स्वरूप माना है। इसी आत्मस्वरूप का स्पष्ट ज्ञान कराने के लिए वेदान्त एवं शैव दर्शन के सारभूत तत्त्वों की अभिव्यक्ति कामायनी में की है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन कामायनी का प्राणतत्त्व है। कहने का तात्पर्य यह है कि कामायनी में अनेक दार्शनिक मान्यताओं की अभिव्यक्ति मिलती है लेकिन इसका प्रधान स्वर प्रत्यभिज्ञा दर्शन ही है। इस सम्बन्ध में रामकृष्ण दास जी के शब्द इस बात की पुष्टि करते हैं—"प्रसाद जी के परिवार की मुख्य दार्शनिक विचारधारा प्रत्यभिज्ञा दर्शन की परम्परा में ही थी, क्योंकि ये लोग शैव दर्शनों में से काश्मीर के प्रत्यभिज्ञा दर्शन को ही अत्यन्त पुष्ट और प्रबल मानते थे।

आत्मा—प्रत्यभिज्ञा दर्शन में आत्मा को महाचिति का स्वरूप माना गया है, जो सदैव लीलामय आनन्द करती रहती है—

कर रही लीलामय आनन्द, महाचिति सजग हुई सी व्यक्त।
विश्व का उन्मीलन अभिराम, इसी में सब रहते अनुरक्त॥

वही इस विश्व-प्रपंच का मूल है और स्वेच्छा से ही जगत का निर्माण भी करती है।

काम मंगल से मंडित श्रेय, सर्ग इच्छा का है परिणाम।
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल, बनाते हो असफल भव धाम।।

यही आत्मा इच्छा, ज्ञान, क्रिया रूपिणी भी है—

इस त्रिकोण के मध्य बिंदु तुम, शक्ति विपुल क्षमता वाले ये;
एक एक को स्थिर हो देखो इच्छा ज्ञान क्रिया वाले ये।

इसी को कवि ने चिति तथा चेतनता के नाम से भी अभिहित किया है

चिति का विराट वपु मंगल,
यह सत्य, सतत, चिर सुन्दर।

× × ×

चेतनता एक विलखली,
आनन्द अखंड घना था।

यह ब्रह्म शंकर के वेदान्त से सर्वथा भिन्न हैं। यह शिव तो स्वयं ही तरंगायित है और अपनी चिरमिलित प्रकृति से पुलकित है। कामायनी में मनु और श्रद्धा का उन्नयन आत्मा का दोनों अविच्छिन्न रूप शिव और शक्ति के रूपों में व्यक्त किया गया है। दोनों को आनन्द सागर एवं आनन्द तरंगावली से उपमित किया गया है—

चिरमिलित प्रकृति से पुलकित वह चेतन पुरुष पुरातन,
निजशक्ति तरंगायित था, आनन्द अंबु-निधि शोभन।

कामायनी में मनु शिव-रूप हो जाते हैं और श्रद्धा शक्ति रूप। इसमें शिव-शक्ति की प्रकल्पना शैव दर्शन की भाँति आनन्द सागर और उसकी तरंगावली के रूप में की गई है।

जीव—कामायनी में जीव या मनुष्य के प्रतीक मनु है। मनु काव्य के आरम्भ में चिन्ताग्रस्त हैं। प्रत्यभिज्ञा दर्शन में जीव को त्रिमल और षट्कंचुकों से आवृत्त आत्मा कहा गया है। इसलिए प्रसाद जी ने भी कामायनी के पूर्वार्द्ध में मनु को त्रिमल—आणव, मलाधिष्ठायक तथा माया—तथा षट्कंचुकों सेआवृत दिखाया गया है। इसी कारण इनके जीवन में अनित्यता, अकर्मण्यता परिस्थिति परवशता, परिमित भोग-भावना, अपने-पराए की भेद बुद्धि, अपनी कर्तृत्व शक्ति का मिथ्याभिमान आदि दोष पाये जाते हैं। उपयुक्त चरित्र-दोष शैव दर्शन की शब्दावली में काल, कला, नियति, राग और विद्या आदि कंचुकों की प्रकल्पना से प्रभावित हैं।

मनु आत्मस्वरूप की विस्मृति के कारण इधर-उधर भटकते हैं। उनकी यह स्थिति आणव है जिसका कामायनी में निर्वेद सर्ग तक विधिवत वर्णन किया है। निर्वेद से रहस्य तक उनकी स्थिति शाक्त रही है जिसमें भेदाभेद बुद्धि की प्रधानता रही है। मनु के शिव रूप होकर अखंड आनन्दमय हो जाना ही शांभव स्थिति है जिसमें केवल अभेद बुद्धि प्रधान है। श्रद्धा अपनी स्मिति द्वारा इच्छा क्रिया और ज्ञान को परस्पर मिला देती है—

स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो इच्छा ज्ञान मिल लय थे !
दिव्य अनाहत पर निनाद में, श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे ॥

इसके कारण अपने और पराये के भाव का सर्वथा तिरोभाव हो गया—

मनु ने कुछ कुछ मुसक्या कर, कैलाश और दिखलाया।
बोले देखो कि यहाँ पर कोई भी नहीं पराया ॥
हम अन्य न और कुटुम्बी हम केवल एक हमीं हैं।
तुम सब मेरे अवयव हो जिसमें कुछ नहीं कमी है !

जगत—कामायनी में प्रत्यभिज्ञा दर्शन की भाँति सृष्टि तत्व को चिति की 'इच्छा का परिणाम' कहा है—

काम मंगल से मंडित श्रेय
सर्ग, इच्छा का है परिणाम।

सृष्टि का उद्भव मूल शक्ति के द्वारा ही होता है। इसे ही प्रसाद जी ने प्रेमकला की ही संज्ञा दी है। यह प्रेमकला कामकाल की ही पर्याय है—

यह लीला जिसकी विकस चली,
वह मूल शक्ति थी प्रेम कला।

यह सारा जगत उस महाचिति को लीलामय आनन्द की ही अभिव्यक्ति है। इसी कारण सब लोग इस जगत में अनुरक्त होते जाते हैं—

कर रही लीलामय आनन्द, महाचिति सजग हुई सी व्यक्त।
विश्व का उन्मीलन अभिराम, इसी में सब होते अनुरक्त ॥

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में इस सृष्टि के निर्माण का मूल कारण माया है और यह माया उस परमात्मा या परम शिव की एक शक्ति विशेष है। इसे प्रसाद जी ने कामायनी में भावचक्र की संचालिका तथा सृष्टि का निर्माण करने वाली माना है—

घूम रही है यहाँ चतुर्दिक् चल चित्रों सी संसृति छाया।
जिस आलोक बिंदु को घेरे वह बैठी मुस्कयाती माया।।
भावचक्र यह चला रही है इच्छा की रथनाभि घूमती।
नव रस भरीं अराएँ अविरल चक्रवाल को चकित चूमती।।
यहाँ मनोमय विश्व कर रहा रागारुण चेतन उपासना।
माया राज्य! यही परिपाटी पास बिछाकर जीव फाँसना।।

जगत विषयक प्रसाद जी की मान्यता शैव सिद्धान्त पर आधारित है और वेदान्त के अद्वैतवाद से सर्वथा भिन्न है। जगत का ईश्वर के साथ अभेद या आभास सम्बन्ध है। इस जगत के विकास में ३६ तत्वों की कल्पना की गई है इनमें से प्रथम पाँच—शिव, शक्ति, सदा शिव, ईश्वर, शुद्ध विद्या—परमेश्वर की ही शक्ति के विकसित रूप हैं। माया, काल, नियति, कला, विद्या, राग पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्राएँ अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और पाँच स्थूल भूत अर्थात् प्रकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। कामायनी में इनका काव्यात्मक रूप में वर्णन हुआ है। आनन्द सर्ग में प्रथम पाँच तत्त्वों के दर्शन होते हैं, भावलोक के वर्णन में पंचज्ञानेन्द्रियों, और तन्मात्राओं का तथा कर्म लोक के वर्णन में पंचकर्मेन्द्रियों का तथा आशा सर्ग में पंचभूतों का वर्णन हुआ है।

नियतिवाद—प्रत्यभिज्ञा दर्शन के नियतिवाद के दर्शन कामायनी में स्थान-स्थान पर होते हैं। वैसे तो नियति का वर्णन तथा उसका प्रभाव प्रसाद जी के नाटकों के पात्रों पर भी देखा जा सकता है जिससे नियतिवाद में उनके विश्वास की पुष्टि होती है। कामायनी तो वैसे भी काव्य ग्रन्थ है। इसमें उन्होंने इस नियति को भाषायोग वशिष्ठ की भाँति नियामिका शक्ति के रूप में ग्रहण किया है—

नियति चलाती कर्म चक्र यह तृष्णा जनित ममत्व वासना।
पाणि-पादमय पंच-भूत की यहां हो रही है उपासना।।

इस नियति के कारण ही देवसृष्टि का ध्वंस तथा मनु के द्वारा सृष्टि का निर्माण तथा विकास हुआ है अतः यह नियति यह उद्भवस्थिति संहारकारिणी है। प्रलय के उपरान्त मनु ने नियति के एकांत शासन को मनु की विवशता के रूप में स्वीकार किया है—

उस एकान्त नियति शासन में चले विवश धीरे धीरे।
एक शांत स्पन्दन लहरों का होता ज्यों सागर तीरे।।

नियति द्वारा प्रलय हो जाने के बाद मनु का विलासी, अभिमानी और उच्छृंखल रूप स्पष्ट होता है। वे कामवासना को तृप्त करने के लिए श्रद्धा और इड़ा के पास जाते हैं और स्वयं को ही सारस्वत प्रदेश के सर्व प्रकार की प्रवृत्तियों का कर्त्ता समझते हैं—

तुम्हें तृप्ति कर सुख के साधन सकल बनाये,
मैंने ही श्रम-भाग किया फिर वर्ग बनाये।

मनु यह सोचते हैं जो नियमों का नियामक है उसे नियमों के पालन करने की क्या आवश्यकता—

नियम इन्होंने परखा फिर सुख साधन जाना।
वशी नियामक रहे न मैंने ऐसा जाना।।

वे अपने को चिर स्वतन्त्र समझने लगते हैं। नियामक होने के कारण ही वह इड़ा पर भी अपना अधिकार समझते हैं और जैसे ही वह उसको अपने आलिंगन पाश में लेना चाहते हैं कि उसी समय नियति नटी का कार्य आरम्भ हो जाता है—

ताण्डव में थी तीव्र प्रगति परमाणु विकल थे,
नियति विकर्षणमयी त्रास से सब व्याकुल थे।

नियति का कार्य व्यक्ति और समाज में सामंजस्य उत्पन्न करना है। मनु श्रद्धा के पास से अतृप्त होकर भागते हैं, क्योंकि उनको अपनी प्रीति का कोई साझीदार नहीं चाहिए था। उनके मन में अनेक संघर्ष उठते हैं और वे कुछ अजीब-अजीब सा चतुर्दिक वातावरण में महसूस करते हैं—

नल नील लता की डालों में उलझा, अपने सुख से हताश।
कलियाँ जिनको मैं समझ रहा वे काँटे बिखरे आस-पास।।
कितना बीहड़ पथ चला और पड़ रहा कहीं थक कर नितांत।
उत्मुक्त शिखर हँसते मुझ पर रोता मैं निर्वासित अशांत।।
इस नियति-नटी के अति भीषण-अभिनय की छाया नाच रही।
खोखली शून्यता में प्रतिपद असफलता अधिक कुलाँच रही।।

यह नियति आत्मा पर नियन्त्रण करने वाली है। जब यह जीव शिवतत्व

की ओर उन्मुख होने लगती है तो नियति के शासन के कठोर बंधनों से क्रमशः दूर हो जाती है और उसे फिर नियति बन्धन के खेल पुनः नहीं देखने पड़ते—

निराधार है, किन्तु ठहरना हम दोनो को आज यहीं है।
नियति खेल देखूँ न, सुनो अब इसका अन्य उपाय नहीं है।

प्रसाद जी का नियति वर्णन आदर्शवादी है तथा यही सृष्टि का उद्भव संहार करने वाली के साथ नियंत्रण करने वाली है।

स्वातन्त्र्यवाद—प्रत्यभिज्ञादर्शन में चित् को परम स्वतन्त्र माना गया है। यह चित् शक्ति ही स्वेच्छा से विश्व का निर्माण, स्थिति, संहार, तिरोधान अनुग्रह आदि का कार्य करती है। इस प्रकार से यह चिति ही स्वयं की स्वतंत्र इच्छा शक्ति से विश्व के विकास आदि कार्यों के होने के कारण स्वातंत्र्यवाद कहलाता है। कामायनी में भी यही भावना व्यक्त हुई है—

कर रही लीलामय आनन्द
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी में सब होते अनुरक्त ॥

समरसता—प्रत्यभिज्ञादर्शन में समरसता का सिद्धांत भी एक विशिष्ट स्थान रखता है। जब आतमा परमात्म-भाव को प्राप्त होकर पूर्णतः एक शिव-रूप हो जाती है तब उसे सामरस्य कहते हैं। उस समय योगी यह समझने लगता है कि न मैं हूँ और न कोई अन्य, न ध्येय ही यहाँ विद्यमान है। उसका मन आनन्द पद में लीन होकर समरसता को प्राप्त हो जाता है। अभिनव गुप्ताचार्य का मत है—

'आनन्दशक्ति विश्रान्ते योगी समरसो भवेत्'

वैसे तो इस समरसता के सिद्धांत को सर्वत्र वेदान्त आदि में स्थान मिला है किन्तु जीवात्मा के अखंड आनन्द-प्राप्ति की बात कहीं अन्यत्र नहीं प्राप्त होती। कामायनी में प्रत्येक प्राणी को ही समरसता का अधिकारी घोषित किया गया है।

नित्य समरसता का अधिकार,
उमड़ता कारण जलधि समान।

इस स्थिति पर पहुँचने के उपरान्त न सुख रहता है और न दुख, न ग्राह्य

रहता है और न ग्राहक और न मूढ़ भाव ही रहता है अपितु यहाँ तो परमार्थ तत्व ही शेष रहता है। इस स्थिति में पहुँचने पर जीवात्मा तीन मलों एवं षट्कंचुकों से मुक्त हो जाता है। प्रसादजी ने समरसता की स्थापना पर बल दिया है और इस दार्शनिक सिद्धांत को व्यावहारिक जीवन के अनुरूप व्यक्त किया है। कामायनी में समरसता के तीन रूप में दर्शन होते हैं—१. समाज की समरसता २. व्यक्ति की समरसता ३. प्रकृति और पुरुष की समरसता।

समाज की समरसता के अभाव के कारण ही सारस्वत नगर में पुनः विध्वंस हुआ।

वह विज्ञानमयी अभिलाषा, पंख लगाकर उड़ने की,
जीवन की असीम आशाएँ कभी न नीचे मुड़ने की।
अधिकारों की सृष्टि और उनकी वह मोहमयी माया,
वर्गों की खाई बन फैली कभी नहीं जो जुड़ने की।।

२. **व्यक्ति की समरसता**—इसके दर्शन श्रद्धा के व्यक्तित्व में होते हैं—

हृदय की अनुकृति वाह्य उदार एक लंबी काया उन्मुक्त।
मधु पवन क्रीड़ति ज्यों शिशु साल सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।।

३. **प्रकृति और पुरुष की समरता**—इसके दर्शन आनन्द सर्ग में होते हैं—

तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है, नारी की।
समरसता का है संबंध बनी अधिकार और अधिकारी की।।

श्रद्धा के साथ जब मनु कैलाश की यात्रा पर जाते हैं तो वहाँ पर जाकर उनको शिवत्व के साकार दर्शन हो गये। उनके हृदय में शिव के प्रति अनुराग जाग गया और शिव के साक्षात् दर्शन के लिए लालयित हो गये। उन्होंने श्रद्धा से कहा कि बस 'तू मुझे शीघ्र ही उन चरणों तक ले चल।'

देखा मनु ने नर्तित नरेश, हत-चेत पुकार उठे विशेष।
यह क्या ! श्रद्धे ! बस तू ले चल, उन चरणों तक, दे निज संबल।
सब पाप पुण्य जिसमें जल-जल पावन बन जाते हैं निर्मल !
मिटते असत्य से ज्ञान लेश, समरस अखंड आनन्द वेश !

अन्त में मनु श्रद्धा की सहायता से लीलामय प्रभु के लीलामय धाम में पहुँच जाते हैं जहाँ पहुँचकर सुख और दुःख की सभी भावनाएँ तिरोहित हो

जाती हैं। न वहाँ कोई संघर्ष होता है और न वहाँ पर कोई कलह। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि वहाँ का अलौकिक दृश्य है—

समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था।
चेतनसा एक विलसती आनन्द अखंड घना था।

आनन्दवाद—शैवों के इस आनन्दवाद के दर्शन उपनिषदों में होते हैं। शैव-दर्शन में शिव एवं शक्ति तथा उसके समस्त अवयवों को पूर्णतया आनन्द-स्वरूप माना है। कामायनी में भी शिवत्व को प्राप्त हुए मनु की स्थिति का चित्रण करते हुए—"निज शक्ति तरंगायित था आनन्द अम्बुनिधि शोभन" कहकर इस आनन्द सागर की ओर ही संकेत किया गया है।

प्रसाद जी ने जीवात्मा के लिए, जो कि आनन्द पथ पर अग्रसर है, संकेत किया है कि प्रत्येक प्राणी को ही उस आनन्द तत्व तक पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए प्रत्येक जीवात्मा को प्रकृति के अनुरूप सदैव कर्म-शील जीवन को अपनाना होगा। यदि जीवात्मा उचित कर्मों में सदा लीन रहेगा तो वह विजयी और शक्तिशाली होता हुआ मंगलमय वृद्धि एवं सुख समृद्धि को प्राप्त कर सकता है। यह भी आनन्द की एक स्थिति है। श्रद्धा के प्रयत्न द्वारा मनु आनन्द प्राप्त करते हैं। आनन्द भूमि पर पहुँचने के उपरान्त इच्छा ज्ञान और क्रिया का समन्वय हो जाता है यदि यह समन्वय नहीं हो पाता तो जीवात्मा को जीवन की विभिन्न विडम्बना में फँसना पड़ता है। आनन्द प्राप्ति के लिए हृदय और बुद्धि में भी ऐक्य होना आवश्यक है। क्योंकि इसके बिना वैयक्तिक जीवन आनन्दमय नहीं हो सकता। बुद्धिवाद के कारण ही मानव विभाजन प्रणाली को अपनाने लगता है, जिससे आत्मीयता नष्ट हो जाती है। परन्तु जब हृदय और बुद्धि का समन्वय हो जाता है तो अखंड आनन्द का अजस्र प्रवाह होने लगता है।

कामायनी में प्रसाद जी ने जीवात्मा की उस आनन्द भूमि का भी उल्लेख किया है, जहाँ पहुँचकर जीव आत्म साक्षात्कर कर लेता है और तब जीव, परम तत्व, जड़ और चेतन में कोई अन्तर नहीं रह जाता और सभी समरस प्रतीत होने लगते हैं—

समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था।
चेतनता एक बिलसती आनन्द अखंड घना था।।

अन्य दर्शनों का प्रभाव

दुःखवाद—बौद्ध दर्शन में दुखवाद का प्रचार किया गया है। वहाँ संसार को दुखमय बतलाया गया है। कामायनी में यत्र-तत्र इस विचारधारा के दर्शन होते हैं। श्रद्धा से मिलने के पूर्व मनु का जीवन बड़ा दुखी था। मनु से वह कहती है—

तपस्वी क्यों इतने हो क्लांत वेदना का यह कैसा वेग।
आह ! तुम कितने अधिक हताश बताओ यह कैसा उद्वेग।।

लेकिन यह दुख चिरस्थायी नहीं है। बल्कि—

विषमता की पीड़ा से व्यस्त,
हो रहा स्पंदित विश्व महान।
यही दुख सुख विकास का सत्य,
यही भूमा का मधुमय दान।।

क्षणिकवाद—यह भी बौद्ध दर्शन का एक अंग है। इसमें भी संसार के साथ-साथ आत्मा को भी क्षणिक एवं परिवर्तनशील बतलाया गया है। कामायनी में भी क्षणिकवाद के दर्शन होते हैं। चिन्ता सर्ग में चिन्तनशील मनु को सर्वत्र प्रकृति की विनाश लीला के दर्शन होते हैं। उन्हें जीवन की अमरता एक मिथ्या तत्व प्रतीत होता है। इस संसार में अमरता के स्थान पर मौनता, विध्वंस, विनाश, अंधकार, अभाव शून्यता के ही दर्शन होते हैं यदि उन्हें सत्य लगता है। इस संसार का सबसे बड़ा सत्य मृत्यु है। इसकी अंक भी हिमानी की भाँति शीतल है और यह सृष्टि के कण-कण में छिपी हुई है।

मृत्यु अरी चिर-निद्रे ! तेरा अंक हिमानी-सा शीतल।
तू अनन्त में लहर बनाती काल जलधि की-सी हलचल।।

इस जीवन की तुलना मेघमाला में निहित सौदामिनी से भी की गई है और यह बतलाया गया है कि जीवन मृत्यु का एक क्षुद्र अंश है और वह बिजली के समान क्षण भर इस संसार में चमककर फिर उसी मृत्यु की शीतल गोद में विलीन हो जाता है—

जीवन तेरा क्षुद्र अंश है व्यक्त नील घनमाला में।
सौदामिनी सन्धि सा सुन्दर क्षण भर रहा उजाला में।।

करुणा—यह भी बौद्ध दर्शन के व्यापक तत्त्वों में से एक है। इसका प्रसाद जी की विचारधारा में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। महायान सम्प्रदाय के अनुसार जिसमें प्रज्ञा के साथ महाकरुण का भाव रहता है; वह बुद्ध बन जाता है। इस तत्व के प्राप्त होते ही स्व की परिधि का इतना विस्तार हो जाता है कि सभी उसके अपने ही बन जाते हैं। प्रसाद जी ने श्रद्धा के रूप में करुणा का चित्रण करते हुए उसे अत्यन्त उदार रूप में व्यक्त किया है। वह मनु से कहती है—

दया, माया, ममता लो आज मधुरिमा लो, अगाध विश्वास।
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ तुम्हारे लिए खुला है पास॥
बनो संसृति के मूल रहस्य तुम्हीं से फैलेगी वह बेल।

आगे चलकर यह श्रद्धा मनु को पशुत्व के जाल से मुक्त करके एक सच्चा मानव बनाती है और अव्यवस्थित जगत की सुन्दर व्यवस्था करती है और अपने त्याग, तपस्या एवं बलिदान भावना के द्वारा जगत का कल्याण करती है।

परिमाणुवाद—कामायनी में न्याय-वैशेषिक के परिमाणुवाद की ओर भी संकेत किया गया है। प्रसाद जी ने लिखा है कि वह मूल शक्ति अपने आलस्य का परित्याग करके सृष्टि का सृजन करने को जैसे ही उद्यत हुई वैसे ही अणु परमाणु सब दौड़ पड़े और विद्युत कण पारस्परिक आकर्षण के कारण लीन हो गये—

वह मूल शक्ति उठ खड़ी हुई अपने आलस का त्याग किए।
परमाणु बाल सब दौड़ पड़े जिसका सुन्दर अनुराग लिये॥

प्रसाद जी ने इसी मूल शक्ति को चिति कहा है जो अपनी इच्छा से जाग्रत होकर सृजन का कार्य करती है। इसकी इच्छा से ही सृजन का कार्य होता है। इसके साथ ही अणु-परमाणु के मिलने एवं उनसे संश्लिष्ट स्वरूप द्वारा सृष्टि के बनने का भी उल्लेख किया गया है—

वह आकर्षण वह मिलन हुआ प्रारम्भ माधुरी छाया में।
जिसको कहते सब सृष्टि बनी मतवाली अपनी माया में॥

भौतिकवाद—कामायनी में भौतिकवादी विचारधारा के भी दर्शन होते हैं। इस दर्शन का मूल आधार यह है कि संसार में जो कुछ भी दिखाई पड़ता है एवं अनुभव होता है, वह सब भौतिक पदार्थ एवं गति द्वारा ही उत्पन्न हुआ

है। विश्व के निर्माण में द्रव्य का हाथ है और इसी से समस्त भौतिक पदार्थ मानव शरीर, मन आदि का निर्माण हुआ है । इस दर्शन का मुख्य लक्ष्य यह है कि इस संसार का जो विकसित रूप आज हमें देखने को मिलता है, वह भौतिकवाद का ही परिणाम है। भौतिक पदार्थों के अतिरिक्त वे किसी अन्य आध्यात्मिक सत्ता का होना स्वीकार नहीं करते । इस भौतिकवाद के प्रबल प्रवर्तक एवं समर्थक कार्ल-मार्क्स हैं, इनका यह सिद्धान्त हीगेल के सिद्धान्त के आधार पर ही है। भारतीय दर्शन के अनुसार यह सिद्धान्त चार्वाक के सिद्धांत के निकट है।

कामायनी में इस भौतिकवादी दर्शन को मानने वालों के रूप में देवसृष्टि को चित्रित किया गया है ! देवगण अपने से अधिक किसी भी आध्यात्मिक सत्ता का स्वीकार नहीं करते तथा वे अपने ही सुखों में अहर्निश लिप्त रहते थे। उनका विश्व भर पर अधिकार था। उनके पास अपार बल, वैभव था तथा वे आनन्द युक्त जीवन के भोक्ता थे ; इसी कारण उन्होंने विराट् शक्ति की अवहेलना की, इसीलिए यह जलप्लावन की ऐतिहासिक घटना घटी और स्थिति में एकदम पर पट-परिवर्तन हो गया—

बिछुड़े तेरे सब, आलिगन
पुलक स्पर्श का पता नहीं।
मधुमय चुम्बन कातरतायें
आज न मुख को सता रहीं ।।

भौतिकवादी विचारधारा के अनुसार ही मनु ने सारस्वत नगर को भी बसाया था। वहाँ श्रम विभाजन कर उन्होंने नगर की पर्याप्त उन्नति की थी। इससे वहाँ वर्ग-संघर्ष, क्रांति एवं विप्लव उत्पन्न हो जाते हैं।

कामायनी में इस भौतिकवाद का वर्णन किया गया है लेकिन प्रसाद जी को केवल यही श्लाघ्य नहीं था। इसका तो वे केवल संकेत-भर करना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि इस भौतिकवादी शक्ति पर विजय आध्यात्मिक शक्ति की ही हो, इसीलिए उन्होंने कथा को आगे बढ़ा कर शैव दर्शन के आनन्द को स्थापित किया है। इसी कारण इड़ा, मनु आदि सभी पात्रों को जो भौतिकवाद में विश्वास रखते थे उनको अन्त में समरसता का उपदेश देते हुए उनके जीवन की परिणति ही इसमें दिखाई देती गई है, जिसके कारण कामायनी में अन्त में प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार ही आनन्दवाद की स्थापना हो पाई है।

इसके अतिरिक्त कामायनी में आधुनिक विज्ञान सम्बन्धी अनेक सिद्धान्तों की भी स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। इसका कारण यही है कि व्यक्ति समाज और साहित्य का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। विज्ञान के कारण आज नई संस्कृति, नये विचार तथा जीवन यापन के नये-नये सिद्धान्तों एवं आविष्कारों का प्रादुर्भाव हुआ है। जिसके कारण वह द्रुत गति से प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन करता जा रहा है।

प्रकाश का सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के अनुसार प्रकाश भी कम्पनशील एवं तरंगयुक्त होता है। ये प्रकाश के कण जब अन्य कणों के सम्पर्क में आते हैं तो इनमें कम्पन हो जाता है—

व्यक्त नील में चल प्रकाश का,
कंपन सुख बन बजता था।

वायुमंडल का सिद्धान्त—वैज्ञानिकों का मत है कि ज्यों-ज्यों वायुमंडल में मनुष्य ऊपर ही ऊपर बढ़ता जाता है त्यों-त्यों आक्सीजन कम होता जाता है। छः मील से ऊपर चले जाने पर वहाँ केवल ठंडक होती है तथा जीवन के चिह्न नहीं मिलते। कामायनी में भी धरातल से छः मील की ऊँचाई पर व्याप्त वायुमण्डल का वर्णन मिलता है, जबकि वायु मेघ सब समाप्त हो जाते हैं—मनु ऊपर से देखते हैं कि—

नीचे जलधर दौड़ रहे थे
सुन्दर सुरधनु माला पहने।
कुंजर सदृश इठलाते
चमकाते चपला के गहने॥

ऊपर पहुँच जाने पर केवल शीत पवन ही शेष रह जाता है और साँस भी अवरुद्ध होने लगती है—

लौट चलो, इस वात-चक्र से
मैं दुर्बल अब लड़ न सकूँगा।
श्वास रुद्ध करने वाले इस
शीत पवन से अब लड़ न सकूँगा।

पैतृक योग्यता का सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के अनुसार बच्चे में माता-पिता के गुण होते हैं। कामायनी में भी श्रद्धा एवं मनु के पुत्र मानव में माता-पिता के गुणों का होना बतलाया गया है—

यह तर्कमयी तू श्रद्धामय,
तू मननशील कर कर्म अभय।

कामायनी का मुख्य दर्शन प्रत्यभिज्ञादर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना है लेकिन इसके साथ ही अनेक अन्य दर्शनों जैसे बौद्ध दर्शन तथा न्याय वैशेषिक दर्शन का प्रभाव भी इसकी विचार धारा में परिलक्षित होता है। कथावस्तु को हृदयग्राही बनाने के लिए आज कथा में केवल आध्यात्मिक तत्व ही अपने आप में पर्याप्त नहीं हैं अतः इसके साथ-साथ अनेक वैज्ञानिक सिद्धांतों को भी स्थान दिया गया है। इन सिद्धांतों पर विचार कर इनके दोषों पर पर्याप्त प्रकाश भी डाला है तथा गुणों का ग्रहण करते हुए प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार आनन्दवाद की स्थापना की गई है जो कि मानव समाज एवं मानवता वाद के विकास के लिए श्लाघ्य है। अस्तु, संक्षेप में कहा जा सकता है कि अन्य सभी दर्शन एवं विचारधाराएँ एक मूल आनन्दवादी विचारधारा के ही अंग हैं और अन्त में इसी में उनका पर्यवसान भी हो जाता है।

व्याख्या-भाग

चिन्ता

कथासार—कामायनी की कथा का प्रारम्भ जल-प्रवाह की समाप्ति और मनु के मन में उत्पन्न चिन्ताओं से होता है। मनु हिमालय पर्वत की सबसे ऊँची चोटी पर बैठे हुए जल-प्रवाह को देख रहे हैं। उनकी नौका पास ही एक वट वृक्ष से बँधी हुई है जिसे एक महामत्स्य के चपेटे ने वहाँ पहुँचा दिया था। मनु के मन में जल-प्लावन में नष्ट हुई देव-जाति का विलासपूर्ण एवं वैभवपूर्ण चित्र बार-बार उभर आता है। वे सोचते हैं कि देव-जाति कितने अपार बल, वैभव और आनन्द से भरी हुई थी। उसकी कीर्ति चारों ओर फैली हुई थी, किन्तु उसकी विलासता और अहंकार ने उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। देवता सुर-बालाओं के साथ अहर्निश नृत्य, गान, सुरापान और भोग-विलास की क्रीड़ाओं में निमग्न रहते थे, जिसका परिणाम यह हुआ कि उनके सारे वैभव समाप्त हो गए, उनकी भोग-लीलाएँ सागर की लहरों में डूब कर रह गईं और देवताओं को कोई पानी देने वाला भी नहीं बचा। देव-विनाश का दूसरा कारण मनु उनके पशु-यज्ञों को मानते हैं। देवता पशु-यज्ञों में निस्संकोच भाव से निरीह पशुओं का बलिदान करने लगे, जिसके कारण प्राकृतिक शक्तियाँ कुपित हो गईं, क्षितिज के चारों ओर विनाशकारी बादल उठने लगे, बिजलियाँ गिरने लगीं और इतनी घोर वर्षा हुई कि समस्त पृथ्वी जल में डूब गई।

मनु देवताओं के मिथ्या अहंकार, दम्भ और अतिशय विलास-भावना को बार-बार सोचते हैं और अपने मन में दुखी होते हैं। इसी बीच जल-प्रवाह धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है और प्रलय की घोर रात्रि के स्थान पर प्रभात की सुनहली छटा दिखाई देने लगती है।

हिमगिरि······प्रवाह !

शब्दार्थ—हिमगिरि=हिमालय पर्वत। उत्तुंग शिखर=ऊँची चोटी। भीगे नयनों से=आँसू भरी हुई आँखों से, विषाद से भरकर।

अर्थ—हिमालय पर्वत की ऊँची चोटी पर स्थित एक शिला की शीतल छाया में बैठकर एक पुरुष (मनु) विषाद से भरकर सम्पूर्ण देव-सृष्टि को नष्ट करने वाले प्रलय के प्रवाह को देख रहा था।

विशेष—१. कई आलोचकों का कामायनी की कथावस्तु पर यह आक्षेप है कि इसमें मंगलाचरण नहीं है। इस आक्षेप का उत्तर यह है कि 'हिमगिरि' देवतावाची शब्द है और प्रारंभ में इस शब्द के प्रयोग से ही मंगलाचरण की पूर्ति हो जाती है। महाकवि कालिदास ने भी अपने प्रख्यात महाकाव्य 'कुमार-सम्भव' का प्रारंभ हिमालय-वर्णन से ही किया है—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधि वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदंड ॥'

२. अनेक भारतीय तथा अभारतीय साहित्यों में इस प्रलय का वर्णन मिलता है, किन्तु उस समय मनु ने किस स्थान पर बैठकर अपनी प्राण-रक्षा की, इसके विषय में मतभेद है। शतपथब्राह्मण में इस चोटी का नाम 'मनोरव-सर्पण' महाभारत में 'नौबन्धन', भविष्यपुराण में 'शिषिणा' और कुरान में 'जूड़ी' बताया गया है।

३. प्रसाद जी ने मनु का नाम नहीं लिया, 'एक पुरुष' कहा है। इससे मनु का एकाकी—पूर्णतः एकाकी—और अपरिचित होना ध्वनित होता है।

४. 'भीगे नयनों से' में पर्यायोक्ति अलंकार और लक्षणलक्षणा शब्द-शक्ति है।

नीचे जल······चेतन !

शब्दार्थ—हिम=बर्फ। तरल=बहने वाला। सघन=ठोस। जड़=निर्जीव। चेतन=सजीव। एक तत्त्व=मूल पदार्थ, जल या ब्रह्म।

अर्थ—मनु के नीचे जल बह रहा था और ऊपर बर्फ जमी हुई थी। जल बह रहा था, गतिशील था और बर्फ ठोस थी, स्थिर थी। अपनी इन दो विभिन्न स्थितियों के कारण ये दोनों भिन्न-भिन्न पदार्थ दृष्टिगोचर हो रहे थे, परन्तु वस्तुतः वे एक ही तत्व—जल—के विभिन्न रूप थे, जिस प्रकार जड़ और चेतन पदार्थ एक ही मूल पदार्थ ब्रह्म या चिति के रूप हैं।

विशेष—१. इन पंक्तियों में कवि पर पड़ा हुआ प्रत्यभिज्ञादर्शन का प्रभाव स्पष्ट मुखरित है। प्रत्यभिज्ञादर्शन में कहा गया है—

'तत्र आभासरूपा एव जड़चेतनपदार्थाः ।'

अर्थात् संसार के समस्त जड़ और चेतन पदार्थ उसी एक परम ब्रह्म के आभासरूप है। प्रसाद जी ने 'जनमेजय का नागयज्ञ' नाटक में इसी सिद्धान्त को इन शब्दों में व्यक्त किया है—

'जिन पदार्थों की शक्ति अप्रकाशित रहती है, उन्हें लोग जड़ कहते हैं, किन्तु देखो, जिन्हें हम जड़ कहते हैं, वे जब किसी विशेष मात्रा में मिलते हैं, तब उनमें एक शक्ति उत्पन्न होती है, स्पन्दन होता है, जिसे जड़ता नहीं कह सकते। वास्तव में सर्वत्र शुद्ध चेतन है, जड़ता कहाँ ? यह तो एक भ्रमात्मक कल्पना है। यदि तुम कहो कि इसका तो नाश होता है और चेतन की सदैव स्फूर्ति रहती है, तो यह भी भ्रम है। सत्ता कभी लुप्त भले ही हो जाये, किन्तु उसका नाश नहीं होता।......उस चेतन के अस्तित्व की सत्ता कहीं नहीं जाती, और न उसका चेतनमय स्वभाव उससे भिन्न होता है। वही एक अद्वैत है। यह पूर्ण सत्य है कि जड़ के रूप में चेतन प्रकाशित होता है।'

२. हिम और जल के माध्यम से कबीरदास ने भी अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया है—

'पानी ही तें हिम भया, सो भी गया बिलाय।'

३. 'नीचे जल था, ऊपर हिम था, एक तरल था एक सघन' में यथासंख्य अलंकार है।

3 **दूर दूर......पवमान।**

शब्दार्थ—विस्तृत=विस्तार से फैला हुआ। स्तब्ध=सुनसान। शिलाचरण=पर्वत का निचला भाग। पवमान=पवन।

अर्थ—दूर-दूर तक तथा विस्तार से फैला हुआ बर्फ मनु के हृदय के समान ही सुनसान था; अर्थात् जैसा सूना वह हिमाच्छादित वातावरण था, उसी प्रकार चिन्ता से ग्रस्त सूना मनु का हृदय था। नीरवता के समान सुनसान पर्वत के निचले भाग से टकरा कर पवन चल रहा था।

विशेष—१. वैज्ञानिकों के कथनानुसार, पर्वत के निचले भाग में ही वायु चलती है, इस दृष्टि से इन पंक्तियों में वैज्ञानिकता का निर्वाह हुआ है।

१. प्रकृति का मानवीकरण है।

३. 'दूर-दूर तक विस्तृत था हिम स्तब्ध उसी के हृदय समान' में प्रतीप

(प्रथम) और 'नीरवता-सी शिलाचरण' में धर्मलुप्तोपमा अलंकार है।

४. 'हृदय-समान' और 'नीरवता-सी' में सूक्ष्म उपमानों का प्रयोग है।

तरुण तपस्वी.........अवसान।

शब्दार्थ—तरुण=युवा; यहाँ अपरिपक्व या अप्रौढ़ से तात्पर्य है। सुर-श्मशान=देवताओं का श्मशान (हिमालय पर्वत को देवताओं का निवास-स्थान माना जाता है। अब सभी देवता नष्ट हो गये हैं, अतः उनका निवास-स्थान श्मशान बनकर ही रह गया है।) प्रलय-सिन्धु=प्रलय के पानी से बना हुआ सागर। सकरुण=करुणा से युक्त। अवसान=अंत।

अर्थ—जिस प्रकार लोग अपनी अभिलाषाओं को पूर्ण करने के लिए श्मशान में जाकर एकान्त में साधना करते हैं, उसी प्रकार मनु एक अप्रौढ़ तपस्वी की भाँति देवताओं के श्मशान में बैठे तपस्या करते हुए से प्रतीत होते थे। उनके नीचे प्रलय-जल से बने हुए सागर की लहरों का अन्त हो रहा था, लहरें बन-बनकर नष्ट हो रही थीं जिन्हें देखकर मनु का हृदय करुणा से भर-भर आ रहा था।

विशेष—१. 'तरुण तपस्वी-सा' में 'तरुण' विशेषण साभिप्राय है। इससे कवि यह बताना चाहता है कि मनु अभी उस अप्रौढ़ तपस्वी के समान हैं जिसका मन विलास और वैराग्य के बीच झूल रहा है। अतः यहाँ परिकर अलंकार है। इसी प्रकार 'सकरुण अवसान' में 'सकरुण' भी साभिप्राय विशेषण है। लहरों को मिटते देखकर मनु के मन में देव-ध्वंस की स्मृति जग रही थी, इसीलिए लहरों के नाश को देखकर उनका मन करुणा से भर-भर आता था। यहाँ भी परिकर अलंकार है।

२. 'तरुण तपस्वी-सा' में पूर्णोपमा और 'तरुण तपस्वी-सा वह बैठा, साधन करता सुर-श्मशान' में हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

३. पाश्चात्य काव्यशास्त्र में 'काव्य-सत्य' (Poetic truth) का विस्तार से विवेचन हुआ है। यवनाचार्य अरस्तू का मन्तव्य है कि परम्परागत धारणा या विश्वास का उल्लेख भी काव्य-सत्य के अन्तर्गत आता है। प्रसाद जी ने 'साधन करता सुर-श्मशान' में इसी काव्य-सत्य को व्यक्त किया है।

उसी तपस्वी.....अड़े।

शब्दार्थ—देवदारु=हिमालय पर्वत पर उत्पन्न होने वाले लम्बे वृक्ष। दो-

चार=बहुत थोड़े-से। हिम-धवल=बर्फ से सफेद।

अर्थ—उस तपस्वी मनु की भाँति हिमालय पर्वत पर कुछ थोड़े से देवदारु के वृक्ष खड़े थे, जो बर्फ के कारण सफेद हो गये थे और पत्थर के समान ठिठुर कर भी दृढ़ बनकर जीवित थे।

विशेष—१. देवदारु के वृक्षों की तुलना मनु से करके कवि ने उसके शरीर की ऊँचाई और दृढ़ता का सांकेतिक परिचय दिया है।

२. 'उसी तपस्वी-से लम्बे' में पूर्णोपमा और 'उसी तपस्वी से लम्बे थे देवदारु दो-चार खड़े' में प्रतीप अलंकार है।

३. इस तुलना से यह अर्थ भी ध्वनित होता है कि जिस प्रकार हिमपात तथा सर्दी की ठिठुरन सहकर भी देवदारु के वे वृक्ष जीवित थे, इसी प्रकार प्रलय के अनेक कष्टदायक आघात सहकर भी मनु जीवित थे। इससे मनु की दृढ़ता, साहस आदि गुण ध्वनित होते है।

अवयव ······संचार।

शब्दार्थ—अवयव=शरीर के अंग। मांस-पेशियां=मांस-पिण्ड। ऊर्जस्थित=उमड़ा हुआ। स्फीत=मोटी, दृढ़। संचार=गमन।

अर्थ—मनु के शरीर का प्रत्येक अंग दृढ़ माँस-पिण्डों से बना हुआ था जिसमें अपार तेज उमड़ा हुआ था। उनकी शिराएँ (नाड़ियाँ) दृढ़ थीं, जिनमें स्वस्थ रक्त का गमन हो रहा था।

विशेष—१. मनु के शरीर की दृढ़ता और तेज का यह वर्णन भारतीय साहित्य की परम्परा के अनुकूल है।

२. 'अवयव की दृढ़ माँस-पेशियाँ' से शरीर की दृढ़ता, 'ऊर्जस्वित था वीर्य्य अपार' से मन का संयम और ब्रह्मचर्य-व्रत तथा 'स्फीत शिरायें स्वस्थ रक्त का होता था जिनमें संचार' से शरीर की नीरोगता की ओर संकेत है।

चिन्ता-कातर········स्रोत।

शब्दार्थ—चिन्ता-कातर=चिन्ता से व्याकुल। बदन=मुख। पौरुष=ओज। ओत-प्रोत=पूर्णरूप से भरा हुआ। यौवन का=युवावस्था का। मधुमय=मधुर। स्रोत=प्रवाह।

अर्थ—मनु का मुख चिन्ता के कारण व्याकुल हो रहा था; अर्थात् चिन्ता की रेखाएँ उस पर स्पष्ट दिखाई दे रही थीं, फिर भी वह ओज से पूर्ण रूप

से भरा हुआ था। वे युवक थे और युवावस्था में पनपने वाली सभी प्रकार की मधुर भावनाओं का उनके हृदय में प्रवाह प्रवाहित था, किन्तु एकांकी और चिन्ताग्रस्त होने के कारण मनु का ध्यान उन भावनाओं की ओर नहीं जा रहा था।

विशेष—विरोधी परिस्थितियों में भी चरित्र का सफल चित्रण इन पंक्तियों में हुआ है। यद्यपि चिन्ता के कारण मनु के मुख-मंडल पर विषाद है, तथापि उनका पौरुष उसमें भी नहीं छिप सका है। डा० गुलाबराय के शब्दों में—

'मनु जिस रूप में हिमगिरि पर दिखाई देते हैं, वह चिन्ताकुल होने पर भी पूर्णतया स्वस्थ और पौरुषमय है। मनु का जैसा स्वस्थ पुरुष-सौन्दर्य प्रसाद जी ने अंकित किया है, वैसा अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलता है।'

बँधी········मही।

शब्दार्थ—महा-बट=विशाल बरगद का पेड़। जल-प्लावन=जल का प्रवाह। मही=पृथ्वी।

अर्थ—जो नौका विशाल बरगद के पेड़ से बाँध रक्खी थी, अब वह सूखी पृथ्वी पर पड़ी हुई थी; क्योंकि जल-प्रवाह अब कम होने लगा था और पृथ्वी दिखाई देने लगी थी।

विशेष १. मनु ने वट-वृक्ष से अपनी नौका को बाँधकर अपने प्राण बचाये, इस घटना का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में भी मिलता है—

'अमीपरं व त्वा वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व···।'

२. पुराणों के अनुसार, प्रलयकाल में भी इस वटवृक्ष का नाश नहीं हुआ था। भारतीय संस्कृति में यही विश्वास प्रचलित है। इसी विश्वास की अभिव्यक्ति गोस्वामी तुलसीदास के इन शब्दों में हुई है—

'बटु बिस्वास अचल निज धरमा।'

निकल रही········पहचानी-सी।

शब्दार्थ—मर्मवेदना=हृदय की गहरी पीड़ा। करुणा विकल कहानी=वह कहानी जो करुणा के कारण पीड़ा से भरी हुई हो।

अर्थ—मनु के हृदय की गहरी पीड़ा उस कहानी की तरह से बाहर निकल रही थी, जो करुणा की पीड़ा से भरी हुई हो। उस कहानी को केवल प्रकृति ही हँसती हुई चिर-परिचित की भाँति सुन रही थी।

विशेष—१. यहाँ पर कवि ने प्रकृति के माध्यम से इस गूढ़ व्यंग्य की व्यंजना की है कि देव जाति का विनाश अवश्यम्भावी था। उसके लिए प्रायश्चित्त करना मूर्खता है। इसीलिए प्रकृति मनु की कहानी को 'हँसती-सी' सुन रही थी।

२. 'कहानी-सी' में उपमा अलंकार, 'वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही हँसती-सी पहचानी-सी' में सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार, और 'करुणा विकल कहानी' में विशेषण-विपर्यय है।

ओ चिन्ता········मतवाली।

शब्दार्थ—व्याली=सर्पिणी। स्फोट=फूटना। कम्प=काँपना, हलचल।

अर्थ—मनु चिन्ता को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे चिन्ता! आज तुम मेरे मन में पहली बार उत्पन्न हुई हो। जिससे मुझे यह अनुभव हुआ है कि तुम विश्वरूपी वन की सर्पिणी हो। और ज्वालामुखी पर्वत के फूटने के समय उसकी प्रथम होने वाली मतवाली कम्पन हो।

विशेष—१. 'अरी विश्व वन की व्याली' में प्रयोजनवती सारोपा गौणी लक्षणा और परंपरित रूपक अलंकार है।

२. चिन्ता अमूर्त भाव है जिसको कवि ने बहुत ही प्रभावशाली शब्दों में व्यक्त किया। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने इस छन्द की व्याख्या निम्नलिखित शब्दों में की है—

'कवि ने चिन्ता की कटुता और घातक प्रभाव का चित्रण करने के लिये व्याली का उपमान प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार वन में व्याली की स्थिति उसके सौन्दर्य को विषाक्त और विभीषिका पूर्ण बना देती है उसी प्रकार चिन्ता की उपस्थिति से मन एक अव्यक्त और अवांछनीय विभीषिका से आच्छन्न हो जाता है। कवि ने दूसरा उपमान ज्वालामुखी स्फोट के भीषम प्रथम कम्प सी मतवाली, द्वारा प्रस्तुत किया है। ज्वालामुखी पर्वत का प्रथम भीषम स्फोट जिस प्रकार अपने आसपास के समस्त पदार्थों को प्रभावित करता है और उसके साथ दूर-दूर तक सब कुछ नष्ट-प्राय हो जाता है, उसी प्रकार चिन्ता के आगमन के साथ मन के अन्य समस्त क्रिया-व्यापार समाप्त हो जाते हैं और शेष रहता है मात्र चिन्ता का घातक प्रभाव।

हे अभाव···········चल रेखा।

शब्दार्थ—चपल बालिके=चंचल पुत्री । खल=बक्र, दुखदायी । हरी-भरी सी=थोड़ी सी आशा से पूर्ण । जल माया=मृगमरीचिका । चल रेखा=चंचल लहर ।

अर्थ—चिन्ता-ग्रस्त मनु चिन्ता को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे चिन्ता ! तू अभाव की चंचल बालिका है । (चिन्ता का जन्म अभाव से होता है इसीलिए कवि ने उसे अभाव की बालिका कहा है ।) तू मस्तक पर अंकित वक्र रेखा है । (मस्तक पर उभरी हुई वक्र रेखाओं का जन्म चिन्ता के कारण ही होता है । इसीलिए इन्हें चिन्ता का रूप कहा जाता है) तू उस प्रयास के समान है जिसमें थोड़ी-बहुत आशा भी झलकती है । परन्तु यह आशा निराधार होती है । इसीलिए तू मृगमरीचिका की चंचल लहर के समान है ।

विशेष—'हे अभाव की चपल बालिके' में प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षणलक्षणा और मानवीकरण अलंकार है ।

२. 'हरी-भरी-सी दौड़ धूप' में प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना उपादान लक्षणा और उपमा तथा छेकानुप्रास अलंकार है ।

३. 'जलमाया की चल रेखा' में निरंग रूपक अलंकार है ।

इस ग्रह कक्षा......बहरी ।

शब्दार्थ—ग्रहकक्षा=ग्रहों के घूमने का मार्ग । गरल=विष । जरा=बुढ़ापा । अमर=देवता ।

अर्थ—चिन्ता को सम्बोधित करते हुए मनु कहते हैं कि हे चिन्ता ! तुम समस्त ग्रहों के घूमने के मार्ग में हलचल मचा देने वाली हो, अर्थात् तुम समस्त ब्रह्माण्ड को अस्त-व्यस्त कर देने वाली हो । तुम घुले हुए विष की छोटी सी लहर हो, अर्थात् जिस प्रकार विष की लहर तमाम शरीर में फैल कर उसको विषाक्त कर देती है उसी प्रकार तुम भी मन में आकर उसे अत्यंत व्यथित कर देती हो । तुम देवताओं के जीवन को भी बुढ़ापा प्रदान करने वाली हो और तुम बहरी की भाँति किसी की कुछ भी नहीं सुनती ।

विशेष—१. निरंग रूपक तथा उल्लेख अलंकार ।

२. 'जरा अमर जीवन की' में विरोधाभास अलंकार ।

अरी व्याधि........सुन्दर पाप ।

शब्दार्थ—व्याधि=शारीरिक पीड़ा । सूत्रधारिणी=जन्म देने वाली ।

आधि = मनसिक पीड़ा । मधुमय = मधुर । धूमकेतु सी = पुच्छल तारे के समान । पुण्य सृष्टि = मंगलमय संसार ।

अर्थ—चिन्ता को सम्बोधित करते हुए मनु कहते हैं कि हे चिन्ता ! तुम शारीरिक पीड़ाओं को उत्पन्न करने वाली हो । तुम मानसिक रोगों को जन्म देने वाली हो । तुम मधुर अभिशाप के समान हो । तुम हृदय-रूपी आकाश में पुच्छल तारे की भाँति हलचल मचा देने वाली हो और इस मंगलमय संसार में सुन्दर पाप के समान हो ।

विशेष—१. कवि ने चिन्ता के लिए विरोधी विशेषणों का प्रयोग करके भावों को अधिक प्रभाव शाली बना दिया है ।

२. 'हृदय गगन' में रूपक अलंकार और 'धूमकेतु-सी' में उपमा अलंकार है ।

३. चिन्ता से मनुष्य को क्लेश तो होता है किन्तु वह इस क्लेश से छुटकारा पाने के लिए प्रयत्न भी करता है । इसीलिए चिन्ता को 'मधुमय अभिशाप कहा गया है ।

४. ज्योतिषियों का मत है कि आकाश में धूमकेतु के उत्पन्त होने पर संसार में भीषण संकट आते हैं । चिन्ता के उत्पन्त होने पर भी मन को तथा शरीर को अनेक प्रकार की यातनाएं भोगती पड़ती हैं । इसीलिए चिन्ता को 'हृदय-गगन में धूमकेतु-सी' कहा गया है ।

मनन करावेगी······है नींव ।

शब्दार्थ—मनन = चिन्ता । निश्चिन्त = चिन्ता रहित । निश्चिन्त जाति का जीव = देव जाति में उत्पन्न मनुष्य । अमर = देवता ।

अर्थ—चिन्ता को सम्बोधित करते हुए मनु कहते हैं कि हे चिन्ता ! मैं उस देव जाति का प्राणी हूँ जो चिन्ता रहित रहा करती है किन्तु तू न जाने मुझसे कितनी चिन्ता करायेगी । मैं अमर हूँ इसलिए मैं तुझसें मर तो नहीं सकता फिर भी तू बहुत गहरी नींव मेरे मन में डाल रही है, अर्थात् मुझे बहुत पीड़ा दे रही है ।

विशेष—१. इन पंक्तियों में मनु का आत्म-विश्वास मुखरित है ।

२. 'अमर मरेगा क्या' में विरोधाभास और काकुवक्रोक्ति अलंकार है ।

आह ! घिरेगी······निगूढ़ घन सी ।

शब्दार्थ—करका घन सी । ओलों की वर्षा करने वाले बादलों के समान

अन्तरतम=हृदय। निगूढ़=छिपा हुआ।

अर्थ—चिन्ता को सम्बोधित करते हुए मनु कहते हैं कि हे चिन्ता! अब तू सभी व्यक्तियों के हृदयरूपी लहराते खेतों पर ओलों की वर्षा करने वाले बादलों के समान घिरा करेगी अर्थात् जिस प्रकार बादल ओले वर्षा कर लहलहाती खेती को नष्ट भ्रष्ट कर देते है, उसी प्रकार तू भी सुख में तल्लीन लोगों के सुखों को नष्ट करेगी। तू सबके हृदय में छिपे हुए धन की भाँति छिपी रहेगी, अर्थात् इस सृष्टि में कोई भी व्यक्ति चिन्ता रहित नहीं रहेगा। सभी के मन में चिन्ता छिपी रहेगी।

विशेष—'हृदय लहलहे खेत' में रूपक अलंकार और 'करका धन-सी' तथा 'धन-सी' में उपमा अलंकार है।

बुद्धि मनीसा·········तेरा काम।

शब्दार्थ—बुद्धि=तत्कालिक ज्ञानमयी शक्ति। मनीषा=प्रतिभा। मति=आगामी विषयों पर मनन करने वाली शक्ति।

अर्थ—चिन्ता को सम्बोधित करते हुए मनु करते हैं कि हे चिन्ता! तेरे बुद्धि (तत्कालिक ज्ञानमयी शक्ति) मनीषा, मति, आशा और चिन्ता आदि अनेक नाम हैं। तू पाप है, अतः यहाँ से चली जा, क्योंकि यहाँ पर तेरा कोई भी काम नहीं।

विशेष—इस छन्द में प्रयुक्त चिन्ता के विभिन्न नामों में से प्राय सभी ऐतरेय उपनिषद में प्राप्त हो जाते है :

"यदेतद्धृदयं मनस्चैतत्। संज्ञानमज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिर्धृतिर्मतिः मनीषा जूतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतरसुः कामोवश इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानास्य नामधेयानि भवन्ति।"

विस्मृति आ·········भर दे।

शब्दार्थ—विस्मृति=भूल। अवसाद=शिथिलता। नीरवता=सूनापन चेतन=चेतन शक्ति, ज्ञान। जड़ता=बेहोशी। शून्य=सूना हृदय।

अर्थ—चिन्ता से व्याकुल होकर मनु कहते हैं कि हे विस्मृति! तुम मेरे पास आओ ताकि मैं देव जाति के नाश की घटनाओं को भूल कर चिन्ता मुक्त हो जाऊँ। हे शिथिलता तुम मुझे आकर घेर लो ताकि मैं कुछ सोच ही न सकूँ। हे नीरवता! तुम मुझे अपनी ही भाँति शून्य बना दो। हे चेतनता!

तू मेरे शरीर से निकल जा और बेहोशी से मेरे सूने हृदय को भर दे ताकि मैं ज्ञान-शून्य होकर कुछ भी सोचने या करने में असमर्थ हो जाऊँ।

विशेष—१. इन पंक्तियों में कामायनी की कथावस्तु का 'बीज' विद्यमान है, क्योंकि यहाँ पर मनु बुद्धि या चिन्ता आदि को दूर भगाकर, विस्मृति एवं जड़ता का आह्वान करते हुए अपने हृदय में शून्यता भरना चाहते हैं, जिससे उनके हृदय की समस्त हलचल शान्त हो जाय और उन्हें चिरशान्ति या आनन्द प्राप्त हो सके। कामायनी का मुख्य कार्य भी आनन्द की प्राप्ति करना है। अतः इन पंक्तियों में मनु इसी आनन्द के लिए बैचैन दिखाई देते हैं और इसी कारण यहाँ 'बीज' नामक अर्थ प्रकृति है।

२. इस छन्द में शोक स्थायीभाव तथा करुण रस व्यंग्य है।

३. 'चेतना चल जा जड़ता' में छेकानुप्रास अलंकार है।

चिन्ता ......दुख की।

शब्दार्थ—अतीत की = भूतकाल की। अनन्त = यहाँ हृदय से तात्पर्य है।

अर्थ—चिन्ताग्रस्त मनु कहते हैं कि मैं जितनी अधिक चिन्ता देवताओं के उस सुख की करता हूँ जो भूतकाल में उनको प्राप्त था, उतनी ही दुख की रेखायें मेरे हृदय में बनती जाती हैं, अर्थात् उतना ही अधिक मेरा दुख बढ़ता जाता है।

विशेष—अनन्त शब्द का प्रयोग लाक्षणिक है। अतः यहाँ लक्षणलक्षणा शब्दशक्ति तथा परिकरांकुर अलंकार है।

आह सर्ग ......मीन हुए।

शब्दार्थ—सर्ग = सृष्टि। अग्रदूत = पहले उत्पन्न होने वाले। भक्षक = नाश करने वाला। मीन = मछली।

अर्थ—देव-सृष्टि के विध्वंश की याद करके दुःखी हुए मनु कहते हैं कि हे सृष्टि के आदि में सबसे पहले उत्पन्न होने वाले देवताओ! तुम अपना अस्तित्व बनाये रखने में सफल न हो सके और प्रकृति के प्रलय-प्रवाह में डूब कर विलीन हो गये, नष्ट हो एये। जिस प्रकार समुद्र की बड़ी मछली छोटी मछली को खा लेती है और बड़ी मछली को भक्षक तथा छोटी को उसका रक्षक माना जा सकता है, उसी प्रकार तुम सभी ने परस्पर असुर आदि का नाश करने एवं दूसरे की रक्षा की तथा विलासिता में अन्धे बनकर एक दूसरे के नाश का

कारण बने । अतः तुम्हें रक्षक कहा जाये, या भक्षक कहा जाये, यह तो समझ में नहीं आता, पर इतना निश्चित है कि तुम सब मीन-मत्स्य-न्याय से नष्ट अवश्य हो गये ।

विशेष—१. 'मीन-मत्स्य-न्याय' का अर्थ यह है कि जिस प्रकार बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, उसी प्रकार बड़ी शक्ति छोटी शक्ति को नष्ट कर देती है ।

२. यहाँ 'अग्रदूत' विशेषण का साभिप्राय प्रयोग है, अतः परिकर अलंकार है ।

३. 'भक्षक या रक्षक' में छेकानुप्रास है ।

अरी आँधियो !.........प्रत्यावर्तन ।

शब्दार्थ—दिवा-रात्रि=दिन-रात । नर्तन=नाच, चमक । वासना की उपासना=भोग-विलास में लीन रहना । प्रत्यावर्त्तन=बार-बार लौट कर आना ।

अर्थ—देव-ध्वंस पर प्रायश्चित्त करते हुए मनु कहते हैं कि हे आँधियो ! और दिन-रात चमकने वाली बिजलियो ! यद्यपि तुम बार-बार लौटकर भोग-विलास में लीन देवताओं को उनके नाश की सूचना देती रहीं, परन्तु उन्होंने तुम्हारे संकेतों को नहीं समझा और अपनी अवांछित भोग-लिप्सा में ही डूबे रहे ।

विशेष—'वासना की उपासना' में छेकानुप्रास अलंकार है ।

मणि-दीपों......हविष्य ।

शब्दार्थ—मणि-दीप=मणियों से बने हुए दीपक । देव-दम्भ=देवताओं का घमण्ड । महा मेघ=महायज्ञ । हविष्य=यज्ञ में आहुति के रूप में डाली गई सामग्री ।

अर्थ—देवताओं के महलों पर मणि के दीप जला करते थे जो उनके अतुल वैभव के प्रतीक थे, किन्तु उनका भविष्य अत्यन्त अन्धकारमय और निराशा से भरा हुआ था, इस सत्य की ओर देवताओं का ध्यान कभी भी नहीं गया । इसका परिणाम यह हुआ कि देवताओं के घमण्ड रूपी महायज्ञ में उनका समस्त अतुल वैभव ही स्वाहा हो गया ।

विशेष—'मणि-दीपों के अन्धकारमय' में विरोधाभास और 'देव-दम्भ के महा मेघ' में रूपक अलंकार है ।

अरे अमरता......विषाद ।

शब्दार्थ—अमरता=अनश्वरता । चमकीले पुतले=वैभव-सम्पन्न देवता । विषाद=दुःख ।

अर्थ—देवताओं के घमण्ड के प्रति अपना आक्रोश प्रकट करते हुए मनु कहते हैं कि अरे अमरता का घमण्ड करने वाले और नश्वर वैभव से सम्पन्न देवताओ ! तुम जो अपनी जयकार किया करते थे आज वे जय के नारे तो समाप्त हो गये हैं और जल-लहरियों के गर्जन में मानो तुम्हारे वे ही नारे भयंकर दुःख के रूप में प्रतिध्वनि होकर प्रकट हो रहे हैं ।

विशेष—'काँप रहे हैं आज प्रतिध्वनि बनकर मानो दीन विषाद' में वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है ।

प्रकृति······नद में ।

शब्दार्थ—दुर्जेय=जिसे जीता न जा सका । पराजित=हारे हुए । मद=घमंड । भोले=मूर्ख । नद=नदी ।

अर्थ—मनु देवताओं की भोग-लिप्सा की भर्त्सना करते हुए कहते हैं कि हम सब (देवता) प्रकृति को पराजित करना चाहते थे, भोग-लिप्सा में डूबकर भी अमर रहना चाहते थे, किन्तु प्रकृति को तो न जीता जा सका, पर हम सब हार गये, क्योंकि हम घमंड में अपने कर्त्तव्यों को भूले हुए थे । हम एक मूर्ख थे, इसलिए निर्द्वन्द्व होकर विलासिता की नदी में तैरते रहते थे ।

विशेष—'विलासिता के नद' में रूपक अलंकार है ।

वे सब ······नाद अपार ।

शब्दार्थ—विभव=ऐश्वर्य । पारावार=सागर । जलधि=समुद्र । नाद=गर्जन ।

अर्थ—प्रलय-प्रवाह मानों देवताओं के वैभव का ही रूप है, इस बात की कल्पना करते हुए मनु कहते हैं कि सारे देवता नष्ट हो गये, उनका समूचा ऐश्वर्य नष्ट हो गया, मानो वही इस सीमाहीन सागर के रूप में, जल-प्रवाह के रूप में दिखाई दे रहा है । आज उसी दुःख-रूपी सागर का घोर गर्जन देवताओं के सुखों पर उमड़ता हुआ दिखाई दे रहा है ।

विशेष—'बन गया पारावार' में परिकरांकुर और 'दुःख जलधि' में रूपक अलंकार है ।

वह उन्मत्त······कलना थी ।

शब्दार्थ—उन्मत्त विलास=सीमाहीन भोग-विलास। छलना=धोखा। सुखविभावरी=सुख की रात। कलना=चमक।

अर्थ—देव-विध्वंस पर प्रायश्चित्त करते हुए मनु कहते हैं कि देवताओं के उस सीमा-हीन भोग-विलास का क्या हुआ? वह क्या केवल एक स्वप्न था या केवल धोखा था? भाव यह है कि देवगणों का सीमा-हीन भोग-विलास इतना क्षणभंगुर और सारहीन था कि वह स्वप्न की भाँति नष्ट हो गया, या धोखे की भाँति अपने ही नाश का कारण सिद्ध हुआ। वह भोग-विलास देव-सृष्टि के सुख का रूप धारण करके इसी प्रकार थोड़ी देर के लिए चमक कर रह गया जिस प्रकार रात में तारात्रों की चमक होती है।

विशेष—'स्वप्न रहा या छलना थी' में सन्देह और 'सुख-विभावरी' में रूपक अलंकार है।

चलते थे······सुख-विश्वास।

शब्दार्थ—सुरभित अंचल=सुगंधित वस्त्र। मधुमय=मधुर। निश्वास=आनन्द भरे सांस। मुखरित होता=ध्वनित होता था, प्रकट होता था।

अर्थ—देव-विध्वंस पर प्रायश्चित्त करते हुए और उनके भोग-विलासों का स्मरण करते हुए मनु कहते हैं कि देवता अपने वस्त्रों में सुगंधित पदार्थ लगाये रहते थे जिनके कारण उनके वस्त्रों से और अंगों से ही सुगंधि नहीं निकलती थी, वरन् उनके मधुर और आनन्द से भरे हुये सांस भी सुगंधियुक्त होते थे। वे रात-दिन आनन्द से कोलाहल किया करते ये जिनसे देव-जाति का सुख-विश्वास ध्वनित होता रहता था, अर्थात् वे बहुत सुखी हैं, इस बात का पता लगता रहता था।

विशेष—'चलते थे सुरभित अंचल से' में प्रयोजनवती लक्षणा शब्दशक्ति है।

सुख······जितना।

शब्दार्थ—केन्द्रीभूत=इकट्ठा। छायापथ=आकाशगंगा। तुषार=बर्फ, कुहासा। सघन=गहरा।

अर्थ—देव-जाति का विध्वंस और उनके सुख का स्मरण करते हुए तथा प्रायश्चित्त करते हुए मनु कहते हैं कि देवताओं ने जिस सुख को इकट्ठा किया था, वह केवल इतनी देर ठहर सका, जितनी देर आकाशगंगा में नवीन कुहासे का हवा से गहरा मिलन होता है। कहने का भाव यह है कि वह सुख बहुत

ही अस्थायी और क्षणभंगुर सिद्ध हुआ।

विशेष—१. दृष्टान्त अलंकार।

२. प्रयोजनवती साध्यवसाना गौणी लक्षणा।

सब कुछ······सुख-संचार।

शब्दार्थ—स्वायत्त=अधिकार में। उद्वेलित=उछलती हुई। समृद्धि=वैभव, ऐश्वर्य। संचार=गमन।

अर्थ—देव-विध्वंस पर प्रायश्चित्त करते हुए मनु कहते हैं कि देवताओं ने विश्व में प्राप्त होने वाले अपार बल, वैभव और आनन्द आदि सभी अपने अधिकार में कर लिए थे, इसीलिए उनके वैभव का सुख उछलती हुई लहरों के समान गमन करता रहता था; अर्थात् जिस प्रकार लहरें आनन्द से उछलती हैं, उसी प्रकार देव-जाति अपने सुख में डूबकर स्वयं को भूल गई थी।

विशेष—तुल्ययोगिता और उपमा अलंकार।

कीर्ति······आनन्द विभोर।

शब्दार्थ—कीर्त्ति=यश। दीप्ति=कान्ति। नचती थी=सर्वत्र फैली हुई थी। अरुण किरण-सी=सूर्य के समान। सप्त सिन्धु=प्रदेश-विशेष। द्रुमदल=वृक्षों का समूह। आनन्द-विभोर=आनन्द में लीन।

अर्थ—विध्वंस देव जाति के वैभव की स्मृति करते हुए मनु कहते हैं कि देवताओं का यश, कान्ति और शोभा प्रातःकालीन सूर्य की किरणों की भांति चारों ओर फैली हुई थी। यहाँ तक कि सप्तसिन्धु के तरल कणों में और वृक्षों के झुंड में आनन्द में लीन होकर देवता घूमा करते थे।

विशेष—'कीर्त्ति दीप्ति शोभा थी नचती' में दीपक और 'किरण-सी' में उपमा अलंकार है।

शक्ति रही······आक्रान्त।

शब्दार्थ—पदतल में=पैरों के नीचे। विनम्र=झुकी हुई। विश्रान्त=थकी हुई। धरनी=पृथ्वी। आक्रान्त=दबकर।

अर्थ—देवताओं की ध्वंस शक्ति का स्मरण करते हुए मनु कहते हैं कि उनमें बहुत बड़ी शक्ति थी। प्रकृति भी उनके पैरों के नीचे झुकी हुई और थकी हुई रहती थी। यही नहीं पृथ्वी प्रतिदिन उनके चरणों से दबकर कांपती रहती थी।

स्वयं देव थे······की वृष्टि ।

शब्दार्थ—विश्रृंखल=अस्त-व्यस्त । आपदाओं=मुसीबतों । वृष्टि=वर्षा, अचानक आ जाना ।

अर्थ—देव-ध्वंस पर प्रायश्चित्त करते हुए मनु कहते हैं कि हम सब स्वयं को देवता मान बैठे थे । वस्तुतः हम देव नहीं थे । इसीलिए सृष्टि अस्त-व्यस्त हो गई और इसी कारण अचानक ही मुसीबतों की वर्षा हुई ।

विशेष—'स्वयं देव थे हम सब तो फिर क्यों न विश्रृंखल होती सृष्टि' में काकुवक्रोक्ति अलंकार है ।

गया सभी······विहार ।

शब्दार्थ—सुरबालाओं का=देव कन्याओं का । ज्योत्स्ना-सा=चाँदनी की भाँति । यौवन स्मित=युवावस्था की हँसी की भाँति मादक । मधुप सदृश=भौंरे के समान ।

अर्थ—देवताओं के विगत वैभव पर प्रायश्चित्त करते हुए मनु कहते हैं कि प्रलय प्रवाह में सभी कुछ नष्ट हो गया । मधुरता से भरी हुई देव कन्याओं का श्रृंगार, ऊषा के समान लाल, चाँदनी के समान उज्ज्वल, और यौवन के समान उनकी हँसी तथा भौंरे के समान निश्चित विहार आदि सभी हो गए ।

विशेष—'गया सभी कुछ गया' में पुनरुक्ति, 'ज्योत्स्ना सा' और 'मधुप सदृश' में उपमा अलंकार ।

भरी वासना-सरिता······कराह ।

शब्दार्थ—वासना-सरिता=भोगविलास की नदी । मदमत्त=मादक । प्रलय जलधि=प्रलय का समुद्र । संगम=मिलना ।

अर्थ—जिस प्रकार बाढ़ आ जाने पर कोई नदी अपने प्रबलवेग से समुद्र में जा मिलती है उसी प्रकार देवों की वासना का अनन्त मादक प्रवाह प्रलय के समुद्र में मिला, अर्थात् अपनी वासना के कारण देवता नष्ट हो गए । देवताओं की इस दुःखद स्थिति को देखकर मनु का हृदय अत्यन्त दुखित हो उठा ।

विशेष—सांगरूपक अलंकार ।

चिर किशोर वय······वसंत ?

शब्दार्थ—चिर किशोर वय=सदैव किशोर अवस्था । दिगन्त=दिशाएँ ।

सुरभित=सुगन्धित। तिरोहित=छिपना। अतन्त वसंत=सदैव रहने वाला यौवन।

अर्थ—देवताओं के विलासी जीवन का स्मरण करते हुए मनु कहते हैं कि अपने को सदैव युवा समझने वाले और नित्य विलास में डूबे रहने वाले तथा अपनी सुगन्धि से दिशाओं को सुगन्धित करने वाले देवताओं के उस माधुर्य पूर्ण अनन्त यौवन का लोप कहाँ हो गया।

विशेष—१. 'मद से पूर्ण अनंत वसन्त' में प्रयोजनवती साध्यवसाना गौणी लक्षणा शब्द शक्ति है।

२. 'अनन्त वसंत' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

कुसमित······बीन।

शब्दार्थ—कुसमित=भाँति-भाँति के खिले हुए फूलों से युक्त। पुलकित=रोमांचित। प्रेमालंगन=प्रेमियों का परस्पर प्रेमपूर्वक आलिंगन करना। विलीन=लुप्त। मूर्छित तानें=संगीत की तानें। बीन=बीणा।

अर्थ—देव सृष्टि के विध्वंस की स्मृति करते हुए मनु कहते हैं कि देवजाति के प्रेमियों का परस्पर प्रेम से आलिगन करना जिसे वे नाना प्रकार के फूलों से सुसज्जित कुंजों में पुलकित होकर किया करते थे, लुप्त हो गया है। साथ ही संगीत की वे तानें भी मौन हो गई हैं, जो उन कुंजों में सुनाई पड़ा करतो थीं। और अब वीणा की ध्वनि भी सुनाई नहीं पड़ती।

अब न कपोलों········अब माप।

शब्दार्थ—भुजमूल=बगल। शिथिल बसन=अंगों से खिसके हुए कपड़े।

अर्थ—देव-सृष्टि की विगत विलासता की स्मृति को याद करते हुए मनु कहते हैं कि देव और देवांगनाओं के मुखों की सुगन्धित भाप जो परस्पर चुम्बन करते समय एक दूसरे के कपोलों पर छाया की भांति पड़ा करती थी, आज वह न जाने कहाँ लुप्त हो गई है, और परस्पर आलिंगन करते समय इन प्रेमियों के अंगों से ढीले होकर जो वस्त्र खिसक-खिसक कर उनकी बगलों के इधर उधर आ पड़ते थे, आज वे भी कहीं दिखाई नहीं देते।

विशेष—'छाया-सी' में उपमा अलंकार है।

कंकन क्वणित······अभिसार।

शब्दार्थ—क्वणित=बजना। नूपुर=घुंघरू। रणित=बजना। मुख-

रित=शब्द करना। कलश=कोमल ध्वनि। अभिसार=मिलन।

अर्थ—देवजाति के विगत वैभव का स्मरण करते हुए मनु कहते हैं कि नृत्य करते समय देवांगनाओं के कंकण क्वन-क्वन करके बजा करते थे। और नूपुर रण-रण की ध्वनि करके बजते थे। उनकी छाती पर हार हिला करते थे। मधुर ध्वनि शब्दायमान होती थी और उनके गीतों में स्वर तथा लय का मिलन होता था।

विशेष—यहाँ पर 'क्वणित' और 'रणित' शब्दों द्वारा कंकण और नूपुरों की यथार्थ ध्वनि को प्रस्तुत करने के कारण नाद सौन्दर्य है। अतः यहाँ पर ध्वन्यर्थ व्यंजना अलंकार है।

सौरभ से·····समीर।

शब्दार्थ—सौरभ=सुगंधि। दिगंत=चारों दिशाएँ। आलोक-अधीर=प्रकाश से परिपूर्ण। अचेतन=सारहीन। समीर=हवा।

अर्थ—देव-जाति के विगत भोग-विलासों का स्मरण करते हुए मनु कहते हैं कि देवता सुगंधित पदार्थों का इतना अधिक प्रयोग करते थे कि उनकी सुगंधि से चारों दिशाएँ सुगन्धित रहती थीं। सारा अन्तरिक्ष प्रकाश से परिपूर्ण रहता था। उन सभी देवताओं में भोग-विलासों की सारहीन लिप्सा थी, किन्तु इसकी गति इतनी तीव्र थी कि हवा भी पीछे रह जाती थी।

विशेष—'सब में एक अचेतन गति थी जिससे पिछड़ा रहे समीर' में व्यतिरेक अलंकार है।

वह अनंग·····आवर्त्तन।

शब्दार्थ—अनंग-पीड़ा-अनुभव-सा=कामदेव के द्वारा दिये गये दुःख के अनुभव के समान। अंग-भंगियाँ=अंगों की चेष्टाएँ। नर्त्तन=नाच, प्रकट करना। मधुकर=भौंरा। मरंद-उत्सव-सा=मकरंद के उत्सव के समान। आवर्त्तन=घूमना।

अर्थ—देवताओं के विगत वैभव का स्मरण करते हुए मनु कहते हैं कि देवता और देवांगनाओं में काम-भावना की इतनी अधिकता थी कि जब वे अपने अंगों की चेष्टाओं को प्रकट करते थे तो वे कामदेव के द्वारा दी गई पीड़ा के अनुभव के समान प्रतीत होते थे। देवता अपनी प्रेमिकाओं के साथ इस

प्रकार प्रेम-लीला किया करते थे जिस प्रकार भौंरे फूलों का मकरंद पीकर और मस्त होकर झूमते हुए मकरंदोत्सव मनाते हैं।

विशेष—'वह अनंग-पीड़ा-अनुभव-सा' और 'मधुकर के मरंद-उत्सव-सा' में उपमा अलंकार है।

सुरा सुरभिमय······पराग।

शब्दार्थ—सुरा=शराब। सुरभिमय=सुगंधि से युक्त। वदन=मुख। अरुण=लाल। अनुराग=प्रेम। कल=सुन्दर। बिछलता=फिसलता। पीर=पीला।

अर्थ—देवताओं के नष्ट हुए वैभव का स्मरण करते हुए मनु कहते हैं कि देव और देवांगनाएँ इतनी अधिक शराब पीती थीं कि उनके मुख से शराब की गंध आती रहती थी और शराब से नशे के कारण उनके मुख लाल बने रहते थे। उनकी आँखें आलस्य से युक्त प्रेम से सदैव भरी रहती थीं। उनके कपोल इतने चिकने और सुन्दर थे कि उन पर कल्पवृक्ष का पीला पराग भी फिसलता था।

विशेष—'कल कपोल था जहाँ बिछलता कल्पवृक्ष का पीत पराग' में व्यतिरेक अलंकार है।

विकल वासना······गये।

शब्दार्थ—विकल-वासना=व्याकुल बना देने वाली विलास भावना। मुरझाई=शक्ति हीन हो गई। ज्वाला=आग।

अर्थ—देव जाति के विगत वैभव का स्मरण करते हुए मनु कहते हैं कि देव और देवांगनाएँ सभी व्याकुल बना देने वाली वासना के प्रतिनिधि थे। जो शक्तिहीन होकर नष्ट हो गए। कैसा आश्चर्य है कि पहले तो वे अपनी ही काम-वासना की आग में जलते रहे और फिर पानी में गल कर नष्ट हो गए।

अरी उपेक्षा······प्यास!

शब्दार्थ—उपेक्षाभरी अमरता=तिरस्कार से भरी हुई अमरता की भावना। अतृप्ति=असन्तुष्टि। निर्बाध विलास=निरन्तर स्वच्छन्द भोग-विलास में लिप्त रहना। द्विधारहित=निश्चित।

अर्थ—देवताओं की नष्ट सृष्टि का स्मरण करते हुए मनु कहते हैं कि हे

तिरस्कार से भरी हुई अमरता की भावना ! तेरे कारण ही देवता अपनी भोगलिप्सा में निरन्तर लीन रहकर नष्ट हुए अतः तू तिरस्कार के योग्य है। तेरे कारण ही उन्हें कभी सन्तुष्टि नहीं मिली और वे निरन्तर स्वच्छन्द रूप से विलासों में डूबे रहे । अतः तू उनकी अतृप्ति और निर्बाध विलास बनी। तेरे कारण ही देव और देवांगनाएँ चिन्ता रहित होकर परस्पर वासनायुक्त दृष्टि से टकटकी लगाकर देखा करते थे । किन्तु फिर भी उनकी वासना की भूख से दर्शन की प्यास कभी नहीं मिटी ।

बिछुड़े तेरे……सता रही ।

शब्दार्थ—पुलक स्पर्श=पुलकित कर देने वाला स्पर्श । कातरताएँ= व्याकुलताएँ ।

अर्थ—देवजाति के विगत भोग-विलासों को सम्बोधित करते हुए मनु कहते हैं कि हे भोग-विलास ! तेरे कारण जो देव और देवांगनाएँ परस्पर आलिंगन में बँधे रहते थे, वे सब बिछुड़ गए हैं । प्रेमावेश में आकर पुलकित कर देने वाले स्पर्शों का भी अब कोई पता नहीं । उनके वे मदमय चुम्बन जो उनमें व्याकुलताएँ उत्पन्न करते थे, अब मुख को नहीं सताते, अर्थात् वे भी नष्ट हो गए हैं ।

रत्नसौध………अधीर ।

शब्दार्थ—रत्नसौध=रत्नों से जड़े हुए महल । वातायन=खिड़की। मधुमदिर समीर=शराब की भाँति उन्मत्त बना देने वाली हवा । तिमिंगल= समुद्र में रहने वाली बड़ी-बड़ी मछलियाँ ।

अर्थ—देवजाति के नष्ट हुए महलों पर प्रायश्चित्त करते हुए मनु कहते हैं कि रत्नों से बने हुए महलों की वे खिड़कियाँ भी नष्ट हो गईं, जिनमें से शराब की भाँति उन्मत्त बना देने वाली हवा निकला करती थी । अब उनमें से अधीर होकर बडी-बड़ी मछलियों के समूह टकराकर निकल रहे होंगे ।

देवकामिनी……वृष्टि ।

शब्दार्थ—देवकामिनी=देवता की स्त्री । नीलनलिन=नीले कमल। प्रलयकारिणी=सर्वनाश करने वाली ।

अर्थ—नष्ट हुई देव स्त्रियों का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि उन देव स्त्रियों के नयन इतने सुन्दर थे कि वह जिधर भी देखती थीं उधर ही नीले

कमलों की वृष्टि हो जाती थी, अर्थात् उनके नेत्र कमलों से भी सुन्दर थे। किन्तु अब वहाँ सर्वनाश कर देने वाली भीषण वर्षा हो रही है।

विशेष—१. नेत्रों से कमल उत्पन्न होने के वर्णन हिन्दी के अन्य प्राचीन कवियों के काव्यों में भी मिलते हैं। जैसे, जायसी द्वारा पद्मावती के नेत्रों की प्रशंसा करते हुए 'पद्मावत' में लिखा है—

"नयन जो देखा कमल भा, निरमल नीर सरीर।"

इसी तरह गोस्वामी जी ने सीता के नेत्रों की प्रशंसा करते हुए 'रामचरितमानस' में लिखा है—

"जहँ विलोक मृगसायक नैनी। जनु तहँ बरसि-कमल सित श्रेनी।"

२. आँखों से कमल की उत्पत्ति दिखाकर आँखों की अपेक्षा कमलों को तुच्छ दिखलाया गया है। अतः यहाँ व्यतिरेक अलंकार है।

वे अम्लान………सुर बालायें।

शब्दार्थ—अम्लान कुसुम सुरभित=खिले हुए फूलों से सुगन्धित। मणिरचित=मणियों से बनी हुई। शृंखला=बेड़ियां।

अर्थ—देवजाति के विध्वंश पर प्रायश्चित्त करते हुए मनु कहते हैं कि वे मालाएँ जो खिले हुए फूलों से सुगन्धित थीं, मणियों से बनी हुई थीं और मन को मोहने वाली थी, अब विलासिनी सुरबालाओं की बेड़ियाँ बन गई हैं, जिनमें वे जकड़ी हुई हैं।

विशेष—पंचम विभावना अलंकार।

देवयजन………माला।

शब्दार्थ—देवयजन=देवताओं के यज्ञ। जलनिधि=सागर। लहरियों की=लहरों की।

अर्थ—देवताओं के यज्ञ में दिए गए पशुओं की बलि से पूर्णाहुति में जो आग निकला करती थी, वह आज सागर में लहरों की माला बनी हुई भयंकर रूप से चमक रही है।

विशेष—रूपक अलंकर।

उनको देख………हलाहल नीर।

शब्दार्थ—अधीर=दुखी। व्यस्त=तितर-बितर होकर। प्रलेय=प्रलय का। हलाहल नीर=विष भरा हुआ जल-प्रवाह।

अर्थ—यज्ञ में दिये गये पशुओं की बलि को देखकर न जाने कौन सी शक्ति अन्तरिक्ष में बैठकर दुखी होकर रोयी। जिसके बहते हुए तितर-बितर आँसुओं से यह प्रलय का विषभरा जल-प्रवाह बन गया। कहने का भाव यह है कि देवताओं के नाश का एक कारण उनके द्वारा दिये गये पशुओं के बलिदान भी थे।

विशेष—हेतूत्प्रेक्षा अलंकार।

हाहाकार·····क्रूर।

शब्दार्थ—क्रन्दनमय=विलाप से भरा हुआ। कुलिश=वज्र। दिगंत=चारों दिशाएँ। बधिर=बहरी। क्रूर=भयानक।

अर्थ प्रलयकाल का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि प्रलय काल आने पर चारों ओर विलाप से युक्त हाहाकार मच गया। कठिन वज्र चूर्ण-चूर्ण होने लगे। उस समय बार-बार इतना भीषण शब्द होता था, जिससे चारों दिशाएँ भी बहरी हो गई थीं।

दिग्दाहों से·····झटके।

शब्दार्थ—दिग्दाहों=दिशाओं का जलना। जलधर=बादल। भीम प्रकंपन=भयानक रूप से काँपना। झंझा=तेज आँधी।

अर्थ—प्रलयकाल का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि उस समय चारों ओर प्रकाश में इतने अधिक बादल छा गये थे कि ऐसा प्रतीत होता था मानो चारों दिशाएँ जल रही हैं और उनके जलने से यह धुएँ का समूह इकट्ठा हो गया है। उस समय बादलों से घिरा हुआ आकाश भयानक रूप से काँप रहा था और तेज आँधी बहुत झटकों के साथ चल रही थी।

विशेष—१. सन्देह अलंकार।

२. 'भीम प्रकंपन' में प्रकरणसंभवा अभिधामूला व्यंजना है।

अन्धकार में·····पीन हुई।

शब्दार्थ—मित्र=सूर्य। वरुण=जल का देवता। पीन=मोटी।

अर्थ—प्रलयकाल का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि उस प्रलयकालीन अंधकार में धुँधले सूर्य की ज्योति भी धुँधली पड़कर प्रकाशहीन हो गई थी। जल के देवता वरुण निरन्तर प्रलय प्रवाह को तीव्र कर रहे थे। जिसके कारण गहन अंधकार के परत पर परत जमने से अंधकार और भी गहरा हो गया था।

विशेष—'मलिनमित्र' में प्रकरण संभवा अभिधामूला व्यंजना है ।

पंचभूत········खोया प्रात ।

शब्दार्थ—पंचभूत=पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि नामक पंचतत्त्व । भैरव=भयानक । मिश्रण=मिल जाना । शंपाओं के=बिजलियों के । शकल-निपात=टुकड़ों का गिरना । उल्का=मशाल । अमर शक्तियाँ=प्राकृतिक शक्तियाँ ।

अर्थ—प्रलयकाल का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि उस समय पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि ये पाँचों तत्व भयानक रूप के एक साथ मिल रहे थे । बिजलियों के टुकड़े आकाश से नीचे गिर रहे थे । ऐसा प्रतीत होता था मानो प्राकृतिक शक्तियाँ मशाल लेकर खोये हुए प्रात को ढूँढ़ रही हों ।

विशेष—'खोज रही जो खोया प्रात' में वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है ।

बार-बार········अशेष ।

शब्दार्थ—व्योम=आकाश । अशेष=सम्पूर्ण ।

अर्थ—प्रलयकाल के भीतर गर्जन से बार-बार धरती को काँपती हुई देख कर मानो नीलाकाश उसके आलिंगन के लिए सम्पूर्ण रूप से पृथ्वी पर उतर आया हो । कहने का भाव यह है कि उस समय इतनी भीषण वर्षा हो रही थी कि आकाश और पृथ्वी के बीच का व्यवधान ही मिट गया था ।

विशेष—हेतूत्प्रेक्षा अलंकार ।

उधर गरजती········व्यालों सी ।

शब्दार्थ—सिन्धु लहरियाँ=सागर की लहरें । कुटिल काल=विकराल मृत्यु । व्यालों सी=साँप की तरह ।

जर्थ—प्रलयकालीन भयानकता का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि प्रलयकाल में सागर की लहरें इस प्रकार गरज रही थीं मानो भयानक मृत्यु अपना जाल फैलाए हुए हो अथवा सर्प-पंक्तियाँ फन को फैलाकर विष-भरा फेन उगलती हुई आ रही हों ।

विशेष—१. उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार ।

२. कामायनी की इन पंक्तियों में गरजती हुई लहरों का जैसा वर्णन किया गया है, वैसा ही वर्णन महाभारत के 'वन पर्व' में भी मिलता है ।

नृत्यमानभिवोर्मिभि गर्जमानभिवाम्भसा ।
क्षोभ्यमाणमहावातैः सा नौस्त स्मिन्महोदधो ।।

धँसती धरा······ह्रास ।

शब्दार्थ—धरा=पृथ्वी । निश्वास=यहाँ लक्षणा से निश्वास का अर्थ है बाहर निकलती हुई आग की लपटें । संकुचित=सिमटे हुए । अवयव=भाग । ह्रास=नाश ।

अर्थ—प्रलयकाल का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि पृथ्वी धँसती हुई चली आ रही थी । भयानक आग इस प्रकार धधक रही थी जैसे ज्वालामुखी के मुँह से बार-बार तीव्र लपटें निकल रही हों और पृथ्वी के भाग क्रम से संकुचित होकर नष्ट हो रहे थे ।

विशेष—ध्वन्यर्थ व्यंजना अलंकार ।

सबल तरंगाघातों······विकलित सी ।

शब्दार्थ—सबल तरंगाघातों से=लहरों के शक्तिशाली थपेड़ों से । बिचलित सी=धैर्यहीन होकर सी । महाकच्छप सी=बड़े कछुए की भांति । ऊमचूम थी=कभी डूबती थी और कभी उतराती थी ।

अर्थ—प्रलयकालीन भयानकता का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि उस समय क्रोधित सागर की शक्तिशाली लहरों के थपेड़े खाकर तथा विचलित होकर पृथ्वी इस प्रकार कभी डूबती और कभी उतर आती थी जैसे कोई कछुआ अपने अंगों को समेट कर समुद्र में डुबकियाँ ले रहा हो ।

विशेष—उपमा अलंकार ।

बढ़ने लगा······प्रतिघात ।

शब्दार्थ—विलास वेग सा=विलास के वेग के समान । भैरव=भयानक । जल संघात=जलराशि । तिमिर=अन्धकार । प्रतिघात=झोंके पर झोंका लगना ।

अर्थ—प्रलयकालीन भयानकता का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि उस समय जलराशि इतनी अधिक भयानकता और तीव्रता से बढ़ रही थी जैसे किसी विलासी व्यक्ति का विलास-वेग बढ़ता है । उस समय तरल हुआ अंधकार वायु के झोंके पर झोंके लगने से ऐसा मिल रहा था जैसे दोनों परस्पर आलिगन कर रहे हों ।

बेला क्षण······हीन हुआ ।

शब्दार्थ—बेला=प्रलयकाल का अन्तिम समय। उदधि=सागर। अखिल धरा को=सारी पृथ्वी को।

अर्थ—प्रलयकाल का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि प्रलय-प्रवाह के समाप्त होने का समय क्षण-क्षण निकट आता जाता जा रहा था अतः क्षितिज पहले तो क्षीण हुआ और फिर लुप्त हो गया। उसी समय समस्त पृथ्वी को डुबाकर सागर ने अपनी मर्यादा भंग कर दी।

करका क्रन्दन······कब का ।

शब्दार्थ—करका=ओले। ताण्डवमयनृत्य=विनाशकारी कार्य।

अर्थ—प्रलयकाल का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि उस समय ओले गड़गड़ा कर गिर रहे थे जो सभी को कुचल रहे थे। प्रकृति का यह विनाशकारी कार्य देर तक चलता रहा।

एक नाव थी······बारम्बार ।

शब्दार्थ—डांड=नाव खेने का बल्ला। पतवार=नाव के पीछे की ओर लकड़ी का वह तिकोना भाग जो आधा जल में और आधा बाहर रहता है और जिससे नौका इधर-उधर मोड़ी जा सकती है। तरल=चंचल।

अर्थ—प्रलयकालीन दृश्य का स्मरण करते हुए मनु कहते हैं कि मेरे पास एक नाव थी। पर उस बाढ़ में न डांड उसे आगे खिसका सकते थे और न पतवार किसी दशा में मोड़ सकती थी। वह नौका उन चंचल लहरों में पागलों के समान कभी उठती, कभी अपने आप ही आगे की ओर बढ़ जाती थी।

विशेष—'बहती पगली बारम्बार' में प्रयोजनवती सारोपा गौणी लक्षणा।

लगते प्रबल······बनी वही ।

शब्दार्थ—थपेड़े=लहरों के धक्के। कातरता=व्याकुलता। नियति=भाग्य।

अर्थ—मनु कहते हैं कि प्रलयकालीन जल-प्रवाह में नाव पर लहरों के प्रबल धक्के लगते थे। न तो कहीं तट दिखाई देता था और न कहीं उसका कुछ पता ही था। मेरी उस व्याकुलता भरी निराशा को देखकर भाग्य ही मेरा पथ-प्रदर्शक बना।

विशेष—'कातरता से भरी निराशा देख नियतिपथ बनी वही' में हेतु अलंकार।

लहरें······रचती।

शब्दार्थ—व्योम = आकाश। चपलाएँ = बिजलियाँ। गरल जलद = विष के समान विनाशकारी वर्षा करने वाले बादल। खड़ी झड़ी = मूसलाधार वर्षा। संसृति = संसार।

अर्थ—प्रलयकालीन प्रवाह का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि उस समय सागर की लहरें इतनी ऊँची उठ रही थीं जैसे वे आकाश को चूम रही हों। असंख्य बिजलियाँ चमक रही थीं और विष के समान वर्षा करने वाले बादलों की मूसलाधार वर्षा अपनी बूँदों से एक नया ही संसार रच रही थीं।

विशेष—'लहरें व्योम चूमती उठतीं' में रूढ़ि लक्षणा, सम्बन्धातिशयोक्ति और मानवीकरण अलंकार है।

चपलाएँ······रोती थीं।

शब्दार्थ—चपलाएँ = बिजलियाँ। जलधि-विश्व में = सागर-जगत् में। चमत्कृत होना = आश्चर्यचकित होना। विराट बाड़व-ज्वालाएँ = भयंकर समुद्राग्नियाँ।

अर्थ—प्रलयकालीन भयंकरता का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि उस समय चारों ओर जल ही जल था। अतः उस सागर-जग्त् में बिजलियाँ स्वयं आश्चर्यचकित होकर चमक रही थीं जो ऐसी प्रतीत होती थीं मानो भीष्म समुद्राग्नियां खंड-खंड होकर रो रही हों।

विशेष—वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार।

जलनिधि·····सुख पाते।

शब्दार्थ—जलनिधि = सागर। तलवासी = निचले भाग में रहने वाले। विलोड़ित = नष्ट-भ्रष्ट।

अर्थ—प्रलयकालीन जलप्रवाह का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि समुद्र के निचले भाग में रहने वाले प्राणियों के घर नष्ट-भ्रष्ट हो गए। अतः वे बार-बार निकल कर व्याकुल होकर ऊपर तैर रहे थे। जब उनका घर ही नष्ट हो गया तो फिर उन्हें सुख किस प्रकार मिलता, क्योंकि कोई भी व्यक्ति घर-विहीन होकर सुख नहीं प्राप्त कर सकता।

विशेष—'हुआ बिलोडिता गृह तब प्राणी कौन ! कहाँ ? कब ? सुख पाते' में अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

घनीभूत……क्रुद्ध।

शब्दार्थ—घनीभूत=सघन, ठोस। रुद्ध=रुकना। चेतना=ज्ञान, होश, प्राण। बिलखाती=बेचैन, व्यथित, रोती। दृष्टि विफल होती=कुछ दिखाई न पड़ना। क्रुद्ध=क्षुब्ध, क्रोधित।

अर्थ—प्रलयकालीन वातावरण का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि प्रलय में सर्वत्र जल बढ़ जाने के कारण वायु सघन हो गयी थी, जिसके कारण श्वास लेना भी कठिन हो गया था। अर्थात् दम घुटने लगा था। इसी श्वास की कठिनाई के कारण प्राण बेचैन हो रहे थे और क्षुभित होने के कारण आँखों को भी कुछ नहीं दिखाई देता था।

उस विराट……से जगते।

शब्दार्थ—विराट आलोड़न=विशाल समुद्र मंथन। बुद-बुद=बुलबुले। प्रखर=सशक्त। प्रलय-पावस=भयंकर विनाशकारिणी वर्षा। ज्योतिरिंगणों=जुगुनुओं।

अर्थ—प्रलयकालीन भयंकरता का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि प्रलयकालीन भयंकर लहरों के थपेड़ों से उत्पन्न होने वाले समुद्र-गंथन में ग्रह, नक्षत्र तारे आदि सब पानी के बुलबुलों के समान प्रतीत हो रहे थे। इसके अतिरिक्त ये सभी ग्रह-नक्षत्र और तारे आदि उस भयंकर प्रलयकालीन वर्षा में जुगुनुओं की भाँति जगमगा रहे थे।

प्रहर दिवस……पा सकता।

शब्दार्थ—प्रहर=तीन घण्टे का समय। सूचक=बतलाने वाले। उपकरण=साधन।

अर्थ—मनु प्रलयकालीन समय का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उस समय यह बता सकना कठिन था कि कितने प्रहर अथवा दिन बीत चुके थे, क्योंकि चन्द्र-सूर्य आदि नक्षत्रों की सहायता से ही तो प्रहर और दिवसों का संकेत मिलता है, और उन उपकरणों का चिह्न उस समय कोई दिखाई नहीं देता था।

काला शासन……मरण रहा।

शब्दार्थ—काला=बुरा। शासन-चक्र=राज्य-प्रणाली। महामत्स्य=

बड़ी मछली । चपेटा=धक्का । दीनपोत=बेचारी नाव ।

अर्थ—प्रलयकालीन वातावरण का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि मृत्यु का वह विनाशकारी कार्य कब तक चलता रहा यह मुझे स्मरण नहीं । मुझे तो केवल इतना याद है कि एक वहुत बड़ी मछली ने ही मेरी इधर-उधर भटकने वाली नाव को बड़े जोर से धक्का लगाया था; जिससे उस समय यही भय था कि यह मेरी दुर्बल नाव टूट कर चकनाचूर हो जाएगी ।

विशेष—'दीन पोत मरण' में नाव पर चेतना का आरोप किया है अत: यहाँ पर मानवीकरण अलंकार है ।

किन्तु उसी·····फिर से ।

शब्दार्थ—उत्तरगिरि=हिमालय पर्वत । शिर=चोरी देवसृष्टि का ध्वंस=देव जाति का विनाश । श्वास लेने लगा=फिर से जीवित हो उठा ।

अर्थ—मनु कहते हैं कि यह मेरा सौभाग्य ही था कि मेरी नाव धक्के से टूटी नहीं बल्कि वह हिमालय के शिखर से जा टकराई और इस प्रकार देव जाति का विनाश होते-होते बचा । इस हिमालय की चोटी पर आ जाने के कारण मुझे ऐसा लगा कि वह नष्टप्राय देवजाति फिर से प्राणवान हो उठी है ।

विशेष—'देवसृष्टि का ध्वंस अचानक श्वास लगा लेने फिर से' में प्रयोजनवती शुद्धा लक्षण लक्षणा है तथा इसमें विरोधाभास अलंकार है ।

आज अमरता······विष्कंभ !

शब्दार्थ—अमरता=देवजाति । भीषण=भयानक । जर्जर=बलहीन, थोथा, हीन । दम्भ=अहंकार । सर्ग=सृष्टि । विष्कंभ=नाटक का वह दृश्य जिसमें बीती हुई और कुछ आगामी घटनाओं की सूचना किसी साधारण पात्र द्वारा दी जाती है ।

अर्थ—मनु अपनी देवजाति के अहं पर क्षोभ प्रकट करते हुए कहते हैं कि मैं देवताओं के चूर्ण कर दिए गए भीषण अभिमान की निशानी हूँ जिसके कारण सारी देवजाति नष्ट हो गई । आज मैं उस व्यक्ति के समान संसार में सबसे पहले उत्पन्न होने वाली देवजाति के विनाश की सूचना दे रहा हूँ जिस प्रकार नाटक के पहले अंक में ही कोई ही अतीत की घटनाओं को दुहराता है ।

विशेष—१. 'भीषण जर्जर दम्भ' में रूपक अलंकार है ।

२. 'सर्ग' में श्लेष अलंकार है।

३. 'अधम-पात्रमय-सा विष्कंभ' में उपमा अलंकार है।

ओ जीवन······अवसाद।

शब्दार्थ—मरु-मरीचिका = मृगतृष्णा। अलस विषाद = आलस्यपूर्ण शोक। पुरातन = प्राचीन। अमृत = अमर। अगतिमय = बुरी दशा वाला। मोह मुग्ध = मोहपूर्ण। जर्जर = चूर्ण, निर्बल। अवसाद = निराशा।

अर्थ—मनु जीवन को मिथ्या और मृत्यु की सत्यता प्रकट करते हुए कहते हैं कि हे अमरता की प्राचीन भावना! तेरे कारण ही देवों का जीवन मृगतृष्णा के समान हो गया था, जिससे वे तृषित होकर उसमें उसी प्रकार अधिकाधिक प्रवृत्त होते थे जैसे कोई प्यासा हिरन मरुस्थल में रेत को पानी समझ कर पागल होकर दौड़ता ही चला जाता है। और तू ही असली कारण है जिसने उनमें आलस्य और उत्साहहीनता को भर दिया था, और उनकी कायरता को प्रकट किया था। तेरे ही कारण उनकी प्रगति रुक गई। जिससे वे अगतिमय का शिकार होकर दुर्बल और शिथिल हो गये थे तथा नित्य अवनति की ओर बढ़ रहे थे।

विशेष—१. 'पुरातन अमृत', 'मरु-मरीचिका', 'अलस-विषाद' और 'जर्जर-अवसाद' में रूपक अलंकार है।

२. 'अमृत के अगतिमय' में विरोधाभास अलंकार है।

३. परिकर अलंकार है।

मोह नाश······अब ठाँव?

शब्दार्थ—मौन = चुप हो जाना। विध्वंस = विनाश। अभाव = कमी। अमरते = अमरता की भावना। ठाँव = स्थान।

अर्थ—मनु देवताओं की अमरता की भावना को तुच्छ मानते हुए कहते हैं कि हे अमरता की भावना! तेरे कारण ही देव जाति ने वैभव को स्थायी समझा और उसी में उन्मत्त हो उठे और स्वयं को हमेशा आलोकपूर्ण, अभावहीन और सर्व-सम्पन्न समझने लगे। परन्तु आज मैंने इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया है कि तेरे द्वारा उत्पन्न कोलाहल सत्य नहीं वरन् मौन सत्य है। नाश सत्य है। महानाश सत्य है। उनका वह आलोक सत्य नहीं था, अन्धकार सत्य है। उनकी अभावहीनता सत्य नहीं वरन् यह अभाव सत्य है, जो आज

शून्य बनकर सर्वत्र दिखाई दे रहा है। इसलिए अरी अमरते ! तेरे लिए यहाँ अब कोई स्थान नहीं है।

मृत्यु ·····की सी हलचल।

शब्दार्थ—चिरनिद्रा=सदैव को सुलाने वाली। अंक=गोद। हिमानी=बर्फ का ढेर। अनंत=व्यापक, अखिल ब्रह्मांड। लहरी बनाती=क्रमश: विनाश कार्य करती रहती है। काल-जलधि=मृत्युरूपी समुद्र।

अर्थ—जीवन से निराश होकर मनु मृत्यु की ओर आकर्षित होते हुए मृत्यु को सम्बोधित करके कहते हैं कि—अरी मृत्यु ! तू हमेशा के लिए सुलाने वाली है। तेरी गोद बर्फ के समान शीतल है अर्थात् वहाँ चिर-शान्ति प्राप्ति होती है। तू अनन्त काल में विनाश करती हुई सागर की लहरों की भाँति हल-चल पैदा करती रहती है।

विशेष—'चिर-निद्रा में' रूपक, 'हिमानी-सा शीतल' में पूर्णोपमा है, अनन्त में श्लेष और 'काल-जलधि' में रूपक अलंकार है।

महानृत्य·····अभिशाप।

शब्दार्थ—महानृत्य=विनाशकारी तांडव नृत्य। विषम=कठोर। सम=संगीत में वह स्थान जहाँ लय की समाप्ति और ताल का आरम्भ होता है। अखिल=सारी। स्पंदन=गतिशीलता। माप=सीमा। विभूति=ऐश्वर्य, धूल या राख। अभिशाप=शाप।

अर्थ—मनु मृत्यु को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे मृत्यु ! तू संसार में होने वाले विनाशकारी तांडव नृत्य का वह भयंकर पद-चाप है जहाँ पहुँचते ही जीवन की सम्पूर्ण लय समाप्त हो जाती है और फिर जीवन के एक नए ताल का आरम्भ होता है। मृत्यु ! तू जगत् की समस्त चेतना का अन्त करने वाली है क्योंकि तू जगत् की समस्त गतिविधियों की सीमा है। तेरे द्वारा नष्ट-भ्रष्ट पदार्थों की धूलि ही पुन: नव-निर्माण का कारण बनती है, परन्तु वह अभिशाप हेतु ही विकसित होती है क्योंकि तू उन्हें फिर नष्ट-भ्रष्ट कर देगी।

अन्धकार के·····नित्य।

शब्दार्थ—अट्टहास=जोर की हँसी, परन्तु यहाँ पर अन्धकार का घनीभूत होकर सर्वत्र छा जाना होगा। मुखरित=ध्वनित। सतत=निरन्तर। चिरंतन=सनातन। नित्य=सदैव रहने वाला।

अर्थ—मनु मृत्यु को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि—हे मृत्यु ! तू अन्धकार में होने वाले उस अट्टहास के समान है जो निरन्तर गूँज रहा है, चिरस्थायी है तथा मिथ्या आभास से रहित होने के कारण सत्य है। इसके साथ यह भी सत्य है कि तू सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है अथवा छिपकर बैठी हुई है। बस यही तेरे जीवन का (स्वरूप का) चिरस्थायी रहस्य है।

जीवन तेरा ···· उजाला में।

शब्दार्थ—क्षुद्र=तुच्छ। अंश=भाग। व्यक्त=प्रकट। नील घनमाला=नीले बादलों की घटाएँ। सौदामिनी=बिजली। संधि=दरार।

अर्थ—मनु मृत्यु को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे मृत्यु ! संसार का सम्पूर्ण जीवन तेरा एक लघु अंश है। वह तो नीली मेघमालाओं में व्यक्त होने वाले बिजली के संघर्षमय संधिकालीन चंचल प्रकाश की भाँति क्षण-भर अस्तित्व में रहता है।

पवन पी······के पास।

शब्दार्थ—पवन पी रहा=वायु में शब्द विलीन हो रहे थे। निर्जनता की उखड़ी सांस=नीरवता समाप्त हो रही थी। दीन प्रतिध्वनि=विवशता से भरी हुई आवाज।

अर्थ—कवि कहता है कि मनु के मुख से निकले हुए शब्द पवन में समा रहे थे जिनके परिणामस्वरूप अब वहां पर नीरवता समाप्त होती जा रही थी। और मनु के शब्दों की वह ध्वनि हिमालय की बर्फीली चोटियों से टकरा कर खिन्नता एवं विवशता से भरी हुई प्रतिध्वनि के रूप में सुनाई पड़ रही थी।

धू धू······मृत्यु।

शब्दार्थ—धू धू करता=धू धू की विनाशकारी ध्वनि करता हुआ। अनस्तित्व=सब कुछ मिट जाना। तांडव नृत्य=विनाशकारी कार्य। आकर्षण=पास खींचने की शक्ति। विद्युत्कण=अणु परमाणु आदि। भारवाही=बोझा ढोने वाले। भृत्य=नौकर।

अर्थ—कवि कहता है कि अभी तक विध्वंस का वह विनाशकारी कार्य समाप्त नहीं हुआ था। धू धू की भयंकर ध्वनियों से युक्त विनाश का तांडव नृत्य हो रहा था और बिजली के आकर्षण विहीन क्षण भारवाही नौकर के समान स्वयं अपना बोझा ढोते फिर रहे थे।

मृत्यु सदृश ·····थी वृष्टि ।

शब्दार्थ—शीतल=हृदयहीन (अवसाद)। आलिंगन पाती थी=अनुभव होता था। परम व्योम=महाकाश। भौतिक=स्थूल। कुहासा=कुहरा।

अर्थ—कवि कहता है कि मनु की दृष्टि जिधर जाती थी उधर ही हृदय-हीन मृत्यु जैसी निराशा उनका आलिंगन करती थी। परन्तु अब वातावरण में परिवर्तन होने लगा था। इस विस्तृत एवं व्यापक आकाश से पृथ्वी पर जल के स्थूल कणों की भांति कुहरे की वर्षा होने लगी थी।

विशेष—१. उपमा अलंकार है।

२. 'आलिंगन पाती थी दृष्टि' में प्रयोजनवती शुद्धा लक्षण लक्षणा शब्द-शक्ति है।

बाष्प बना······होता प्रात ।

शब्दार्थ—बाष्प=भाप। जलसंघात=जलराशि। सौरचक्र=सूर्यमंडल। आवर्त्तन=घुमाव। प्रात=समाप्ति; प्रभात। प्रलयनिशा=सृष्टि का विनाश करने वाला घना अन्धकार।

अर्थ—मनु कहते हैं कि अब ऊपर से गिरती उन कुहरों की तहों को देख कर यह संदेह होता था कि यह भयोत्पादक परिमाण जल कहीं भाप बनकर ऊपर उड़ने लगा है। मंगल, चन्द्र, सूर्य आदि उपग्रह अपनी पूर्व गति के अनु-सार आकाश में चक्कर लगाने लगे थे। इस प्रकार उस प्रलय रूपी रात्रि का अन्त और प्रभात का उदय हो रहा था।

विशेष—'प्रलय निशा का होता प्रात' में प्रयोजनवती शुद्धा उपादान लक्षणा है।

आशा

कथासार—प्रलय का प्रवाह समाप्त हो जाने पर नवीन प्रभात का उदय हुआ। ऊषा ने अपनी राग-रंजित किरणों से सर्वत्र आलोक बिखरा दिया। मनु ने इस नवीन प्रभात को देखा। उनका हृदय कौतूहल और आशा से भर गया। वे सोचने लगे वह विराट शक्ति कितनी बलवती है जो अपने तनिक से क्रोध में सृष्टि को छिन्न-भिन्न कर देती है। जिसके शासन में विश्वदेव, सविता, पूषा, सोम, पवन आदि निरन्तर अबाध गति से घूमते रहते हैं, नक्षत्र निकलते और छिपते रहते हैं, तृन और पौधे रस ग्रहण करते हैं और सृष्टि के सभी पदार्थ, जड़ या चेतन, उसकी सत्ता विनत होकर स्वीकार करते हैं। किन्तु इस विराट् शक्ति का स्वरूप क्या है, यह कुछ तमझ नहीं आता।

नवीन आशा से परिपूर्ण होकर मनु तपश्चर्या में लग गए। वे पाक यज्ञ करने के लिए सूखी लकड़ियां तथा धान बीन लाते थे और उसी से देवयज्ञ करते थे। यज्ञ से बचे हुए अन्न को वे अपनी गुफा से कुछ दूर रख आते थे। उनका विश्वास था कि सम्भवत: अन्य कोई प्राणी भी जीवित रह गया हो तो वह उस अन्न से अपनी क्षुधा बुझा सकेगा। इसी प्रकार मनु अपना जीवन यापन करने लगे।

एक रात सोते हुए मनु की अचानक आंखें खुल गई। वे अपनी गुफा से बाहर आए। प्रकृति के अटूट सौन्दर्य को देखकर उन्हें अपना एकाकीपन कांटे की तरह चुभने लगा। उन्होंने सोचा काश ! उन्हें कोई जीवन-साथी मिल जाए।

उषा सुनहले······अन्तर्निहित हुई।

शब्दार्थ—सुनहले तीर=सुनहरे रंग के तीरों के समान किरणें। जय-लक्ष्मी सी=विजयश्री के समान। कालरात्रि=प्रलयकालीन घोर रात्रि। अन्त-र्निहित हुई=छिप गई।

अर्थ—प्रलय प्रवाह समाप्त हो जाने पर सुनहली ऊषा इस प्रकार प्रकट

हुई जैसे विजयश्री अपने सुनहले तीरों की वर्षा करती हुई उदित हो गई हो। दूसरी ओर पराजित प्रलयकालीन घोर रात्रि भी पराजित शत्रु की भांति जल में छिप गई।

विशेष—१. 'उषा सुनहले तीर बरसती' में प्रयोजनवती साध्यवसाना गौणी लक्षणा है।

२. 'जयलक्ष्मी-सी' में उपमा अलंकार है।

वह विवर्ण·····सिर से।

शब्दार्थ—विवर्ण = शोभाहीन। त्रस्त = भयभीत। शरद् विकास = शरद् ऋतु का आगमन। नए सिर से = प्रारम्भिक रूप से।

अर्थ—ऊषा का आविर्भाव होते ही भयभीत प्रकृति का शोभाहीन मुख आज फिर से हँसने लगा, अर्थात् प्रकृति फिर से मनोरम और शोभा-सम्पन्न बनने लगी। वर्षा काल समाप्त हो गया और प्रकृति में शरद् ऋतु का आगमन अपने प्रारम्भिक रूप से प्रारम्भ हुआ।

विशेष—'वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का' में प्रयोजनवती शुद्धासाध्यवसाना लक्षण लक्षणा है।

नव कोमल····· पिंग पराग।

शब्दार्थ—आलोक = प्रकाश। हिम संसृति पर = बर्फीले प्रदेश पर। अनुराग = प्रेम। सित् = सफेद। सरोज = कमल। क्रीड़ा करता = आनन्द से झूमता। मधुमय = मकरन्द से भरा हुआ। पिंग = पीला।

अर्थ—ऊषा के प्रकट होने पर बर्फीले प्रदेश पर अनुराग से बिखरा हुआ नवीन और कोमल प्रकाश ऐसा मालूम पड़ता था जैसे मकरन्द से भरा हुआ पीला पराग सफेद कमल पर बिखर जाता है।

धीरे धीरे······जल से।

शब्दार्थ—हिम आच्छादन = बर्फ की तह। धरातल = पृथ्वीतल। वनस्पति = पेड़-पौदे। अलसाई = आलस में पड़ी हुई।

अर्थ—आलोक फैल जाने के कारण धीरे-धीरे पृथ्वी तल से बर्फ की तहें पिघल कर दूर होने लगीं। जिससे बर्फ से ढका हुआ पृथ्वी तल निकल आया था और पेड़-पौधे भी जो बर्फ से ढक जाने के कारण अलसाये से पड़े हुए थे, अब बर्फ पिघल जाने के कारण ऐसे लग रहे थे मानो वह सोकर उठे हों

और आलस्यपूर्ण होने के कारण शीतल जल से अपना मुँह धो रहे हों।

विशेष—१. यहाँ मानवीकरण अलंकार है।

नेत्र निमीलन·····जाती सोने।

शब्दार्थ—नेत्र निमीलन= आँखों का झपकना। प्रबुद्ध=सचेत। लहरियों की अंगड़ाई=लहरों का ऊँचा उठना।

अर्थ—आँखों को झपकती हुई प्रकृति मानो सचेत होने लगी; अर्थात् जगने लगी और सागर की लहरें अंगड़ाई लेती हुई मानो सोने की तैयारी कर रही थीं। कहने का भाव यह है कि प्रकृति में फिर से प्राकृतिक पदार्थ दिखाई देने लगे और सागर की लहरें धीरे-धीरे विलीन होने लगीं।

विशेष—१. 'नेत्र निमीलन करती मानो प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने' में उत्प्रेक्षा और 'जलधि-लहरियों की अँगड़ाई बार-बार जाती सोने' में विशेषण-विपर्यय अलंकार है।

२. 'बार-बार जाती सोने में' में जहत्स्वार्था लक्षण लक्षणा शब्दशक्ति है।

सिंधु-सेज······ऐंठी-सी।

शब्दार्थ—सिन्धु-सेज पर=सागर रूपी शैया पर। धरा-वधू=पृथ्वी रूपी दुलहिन। संकुचित=सिकुड़ी हुई।

अर्थ—प्रलय प्रवाह के पश्चात् पृथ्वी का रूप किस प्रकार का बना, इसका वर्णन करते हुए प्रसाद जी कहते हैं कि सागर-रूपी शैया पर पृथ्वी-रूपी दुलहिन इस प्रकार सिकुड़ी हुई प्रतीत होती थी जैसे प्रलय-रूपी रात में किये गये दुर्व्यवहारों की स्मृति करके वह मान करके अकड़ी हुई हो। भाव यह है कि प्रलय के भयावह जल-प्रवाह से निकलकर पृथ्वी संकुचित होकर सागर के ऊपर तैरती-सी दिखाई देती थी।

विशेष—रूपक तथा समासोक्ति अलंकार।

देखा मनु······श्रांत।

शब्दार्थ—अति रंजित=अत्यन्त सुन्दर। विजन=निर्जन। हिम-शीतल जड़ता-सा= शीतल बर्फ के समान स्तब्ध। श्रांत=थक कर।

अर्थ—मनु से निर्जन विश्व का वह नवीन एकांत देखा जो भयावह होते हुए भी अत्यन्त सुन्दर था। उस समय समूचे वातावरण का वह भयानक एकाकीपन ऐसा प्रतीत होता था जैसे विश्व का कोलाहल थक कर शीतल बर्फ के समान

स्तब्ध होकर सो गया हो।

विशेष—'जैसे कोलाहल सोया हो' में हेतूत्प्रेक्षा और 'हिम-शीतल जड़ता-सा' में उपमा अलंकार है। प्रयोजनवती गौणी लक्षण लक्षणा शब्द-शक्ति है।

इन्द्रनील मणि······खटका।

शब्दार्थ—इन्द्रनीलमणि=नीले रंग का एक प्रसिद्ध रत्न, किंतु यहाँ आकाश से तात्पर्य है। महाचश्क=बड़ा प्याला। सोम रहित=सोम रस रहित, अथवा चन्द्रमारहित।

अर्थ—प्रलय के बीत जाने पर प्रभातवेला में चन्द्रमा रहित आकाश ऐसा दिखाई देता था जैसे सोमरस पीने के बाद इन्द्रनीलमणि से बने हुए प्याले को उल्टा लटका दिया गया हो। अब हवा बहुत धीरे-धीरे चल रही थी। मानो प्रलय का सारा खतरा बीत गया हो।

विशेष—'इन्द्रनीलमणि यहां चषक था सोमरहित उल्टा लटका' में रूपकातिशयोक्ति और 'आज पवन मृदु साँस ले रहा जैसे बीत गया खटका' में हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

वह विराट······था राज।

शब्दार्थ—विराट्=महान, सर्वत्र व्यापक शक्ति। हेम=सुनहरी रंग। कुतूहल=विस्मय। राज=विस्तार।

अर्थ—प्रलय की भयंकर रात्रि समाप्त होने पर प्रभातकालीन ऊषा की सुनहली आभा को देखने से ऐसा ज्ञात होता था मानो आज वह विराट् शक्ति सृष्टि के चित्र में नया रंग भरने के लिए प्राची दिशा में सुनहरी रंग घोल रही हो। इसको देखकर अचानक मनु के मन में प्रश्न उठा—कि वह विराट् शक्ति कौन है ? और उनकी विस्मयता बढ़ती ही गई।

विशेष—पहली दो पंक्तियों में फलोत्प्रेक्षा अलंकार है।

विश्वदेव·····अम्लान।

शब्दार्थ—विश्वदेव=विश्वा के दस पुत्र : वसु-सत्य, ऋतु, दक्ष, काल, काम, धृति कुरु, पुरुरवा और माद्रव। सविता=सूर्य। पूषा=पशुओं का पोषक देव। सोम=चन्द्रमा। मारुत=वायु। चंचल पवमान=आँधी। वरुण=जल के देवता। अम्लान=प्रसन्न होकर।

अर्थ—मनु आश्चर्यचकित होकर उस विराट् शक्ति के बारे में सोचते

हुए कहते हैं कि वह कौनसी ऐसी शक्ति है जिसका आज्ञा पालन करते हुए विश्वदेव, सविता, सोम, पूषण, चंचल वायु, वरुण आदि सभी देवता नित्य प्रति घूमा करते हैं।

विशेष—इसमें प्रथम तुल्ययोगिता अलंकार है।

किसका था……निबल रहे।

शब्दार्थ—भ्रूभंग=क्रोध प्रकट करना। प्रकृति के शक्ति चिह्न=प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक।

अर्थ—मनु विस्मित से होकर उस विराट् शक्ति के बारे में सोचते हुए ही कहते हैं कि वह कौन सी शक्ति है जिसके जरा से क्रोधित होने पर समस्त ब्रह्माण्ड में हलचल उत्पन्न हो गई थी और जिसके कारण ये सब विश्वदेव आदि भी मारे-मारे इधर-उधर घूम रहे थे। और मारुत, ऊषा, पवमान आदि जिनको प्राकृतिक शक्ति का प्रतीक माना जाता है, ये भी उस महान् शक्ति के सामने कितने निर्बल और शक्तिहीन सिद्ध हुए।

विशेष—१. अन्तिम दो पंक्तियों में विरोधाभास अलंकार है।

२. 'भ्रूभंग प्रलय सा' में उपमा अलंकार है।

विकल हुआ……निरुपाय।

शब्दार्थ—सकल भूत चेतन समुदाय=संसार के सभी चेतन प्राणी। विवश =लाचार। निरुपाय=जिसके पास कोई उपाय न हो।

अर्थ—मनु प्रलयकालीन वातावरण का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उस प्रलय में पृथ्वी के सभी चेतन प्राणी व्याकुल होकर कांप रहे थे। उस समय उनकी बहुत बुरी दशा थी। वह विवश तथा निरुपाय थे। अर्थात् उनके पास उस महान शक्ति से बचने का कोई उपाय नहीं था।

देव न……जुत ले।

शब्दार्थ—गर्व=अहंकार। तुरंग=घोड़ा। पुतले=वस्तु।

अर्थ—मनु प्रलयकाल में देवजाति का विनाश देख कर और विश्वदेव आदि प्राकृतिक शक्ति के प्रतीक देवों को शक्तिहीन देखकर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि न तो वास्तव में हम ही अपने को देवता अर्थात् अनश्वर समझने वाले देवता ही थे और न यह विश्वदेव आदि ही देवता हैं। वास्तव में ये सभी परिवर्तन के पुतले हैं। यह विराट शक्ति जैसा चाहे इनको बदल सकती है; हां

इतना अवश्य है कि जिस तरह रथ में जुता हुआ घोड़ा अहंकार के वश में आकर यह सोचने लगता है कि रथ मेरे ही बलबूते से चल रहा है, सारथी का इसमें कुछ भी हाथ नहीं है, उसी प्रकार भले ही संसार में आकर कोई व्यक्ति अपने आपको अजर, अमर अथवा शक्ति-सम्पन्न मान ले, परन्तु सत्य को कोई झुठला सकता कि सबका नियन्त्रण करने वाली एक महान शक्ति है।

विशेष—अन्तिम दो पंक्तियों में रूपक और उपमा का संकर है।

महानील······संधान ?

शब्दार्थ—व्योम=आकाश। अन्तरिक्ष=शून्य, पृथ्वी और आकाशके मध्य का भाग। ज्योतिर्मान=प्रकाश से युक्त। ग्रह=चन्द्र, मंगल आदि। नक्षत्र=छोटे तारे। विद्युतकरण=अणु, परमाणु आदि। संधान=खोज, तलाश।

अर्थ—विराट् शक्ति की खोज में प्रवृत्त मनु के मन में अनेक प्रश्न उठते हैं। वह आकाश में चमकते हुए चांद तारों को देखकर कहते हैं कि वह कौन-सी ऐसी शक्ति है, जिसकी खोज करने के लिए ऊपर महाकाश में सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह तथा अन्य असंख्य तारे तथा अणु-परमाणु आदि प्रकाश-युक्त होकर घूमते रहते हैं।

छिप जाते······सिंचे हुए।

शब्दार्थ—तृण=घास। वीरुध=लताएँ। तृण वीरुध=लता-पत्ता, पेड़-पौधे आदि।

अर्थ—मनु कहते हैं कि न जाने वह कौन-सीऐसी शक्ति है जिसके आकर्षण के कारण यह नक्षत्र आदि यथासमय छिप जाते हैं और फिर निकल आते हैं। वह कौन है, जिसके रस से सिंच कर यह लताएँ, घास के तिनके आदि लह-लहा रही हैं।

सिर नीचा······अस्तित्व कहां ?

शब्दार्थ—सत्ता=शासन शक्ति। मौन हो=चुपचाप। प्रवचन=व्याख्यान करना, गुणगान करना। अस्तित्व=विद्यमानता।

अर्थ—विराट् शक्ति की खोज में प्रवृत्त मनु प्रकृति के कार्य-व्यापार को देखकर विस्मित होते हैं और कहते हैं कि वह कौन-सी ऐसी शक्ति है जिसकी सत्ता को इस सृष्टि के समस्त जड़ और चेतन सिर झुका कर स्वीकार करते हैं। वह शक्ति कहाँ पर रहती है, जिसका गुणगान यह लताएँ, वृक्ष आदि संसार

के सभी पदार्थ मौन रह कर करते हैं।

विशेष—'मौन हो प्रवचन करते' में विरोधाभास अलंकार है।

हे अनन्त······सह सकता।

शब्दार्थ—अनन्त रमणीय=अपार सौंदर्यशाली। विचार भार नहीं सह सकता=इस पर विचार नहीं किया जा सकता।

अर्थ—मनु कौतूहल तथा श्रद्धा-भरे शब्दों से महान शक्ति को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे सौंदर्यशाली विराट् शक्ति! तुम कौन हो यह कहने में तो मैं सर्वदा अपने को असमर्थ पाता हूँ। तुम्हारा रूप कैसा है, और तुम क्या हो? आदि प्रश्नों का उत्तर मेरी विचार-शक्ति से परे है।

हे विराट्······सागर भान।

शब्दार्थ—भान=प्रतीत।

अर्थ—मनु विराट् शक्ति की सत्ता को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि हे संसार पर शासन करने वाली विराट् शक्ति! तुम कुछ अवश्य हो, अर्थात् तुम्हारा भी अस्तित्व है ऐसा तो मुझे भी आभास होता है। क्योंकि समुद्र भी अपनी धैर्य से भरी हुई मन्द एवं गम्भीर ध्वनि में तुम्हारे अस्तित्व की सूचना देता हुआ तुम्हारा गुणगान कर रहा है।

विशेष—यहाँ पर परिकर अलंकार है।

यह क्या······प्राण-समीर।

शब्दार्थ - मधुर स्वप्न सी=आनन्ददायक स्वप्न के समान। झिलमिल=रह रह कर प्रकट होना। सदय=कोमल। व्यक्त=प्रकट। प्राण-समीर=जीवनदायिनी वायु।

अर्थ—विश्व की नियामक उस विराट् शक्ति के अस्तित्व का ज्ञान होने के पश्चात् मनु जीवन के प्रति आशान्वित हो जाते हैं और कहते हैं कि यह मधुर स्वप्न के समान रह-रह कर उठने मिटने वाली नवीन भावना कौन सी है जो मेरे इस कोमल हृदय में अधीरतापूर्वक प्रकट हो रही है और जिस जीवन की मैं अभी तक उपेक्षा कर रहा था उसी जीवन में आशा प्राणवायु सी बनकर व्याकुलता के समान प्रकट होती जा रही है।

विशेष—मालोपमा अलंकार है।

यह कितनी······मधुमय तान ।

शब्दार्थ—स्पृहणीय=रमणीय, वंदनीय । मधुरजागरण=सुख पूर्ण रातों का आनन्ददायक जागना । छविमान=शोभायमान । स्मित=मुस्कराहट । मधुमय तान=मीठी तान ।

अर्थ—मनु अपने जीवन के प्रति आशान्वित होते हुए कहते हैं कि नव जाग्रति की प्रतीक यह आशा मेरे जीवन में ऐसी शोभायमान हो रही है जैसे सुखपूर्ण रातों के आनन्ददायक जागरण । यह मेरे हृदय में इस तरह उठ रही है जैसे ओठों पर मन्द-मन्द मुस्कान की लहरें उठा करती हैं । आशा इसी तरह मेरे हृदय में नाच रही है जिस प्रकार संगीत की कोई मीठी तान बार-बार कानों में आकर गूँजती है ।

विशेष—मालोपमा अलंकार है ।

जीवन ! ······शुभ उत्साह ।

शब्दार्थ—खेल रहा=प्रकट हो रहा है । शीतलदाह=शान्तिपूर्ण ईर्ष्या या दूसरों को मालूम न पड़ने वाली हृदय की जलन । नत होता=समर्पित हो रहा है ।

अर्थ—जीवन के प्रति आशा प्रकट करते हुए मनु कहते हैं कि अरे ! यह संसार में जीवित रहने की एक पुकार सी सुनाई पड़ती है । पृथ्वी के सभी चेतन प्राणी नवजीवन प्राप्त करने के लिये उत्सुकता से आगे बढ़ रहे हैं । और अपनी-अपनी उन्नति के लिए मधुर जलन सबके हृदयों को बेचैन कर रही है । नवजीवन के नूतन प्रभात का शुभ उत्साह न जाने किसके चरणों में नत हो रहा है । अर्थात् न जाने सभी चेतन पदार्थ किस शक्ति से उत्साह ग्रहण करते हुए उसके चरणों में नतमस्तक हो रहे हैं ।

विशेष—१. 'जीवन ! जीवन !' में वीप्सा अलंकार है और 'शीतलदाह' में विरोधाभास अलंकार है ।

२. 'शुभ उत्साह का चरणों में नत होना' में विशेषण विपर्यय अलंकार है ।

३. 'खेल रहा है शीतलदाह में प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा है ।

मैं हूँ······गानों में ।

शब्दार्थ—शाश्वत=अमर । नभ के गानों में=आकाश में गूंजने वाले शब्दों

में, सृष्टि के इतिहास में।

अर्थ—मनु अपने जीवन के प्रति आशावान हो गये हैं और कहते हैं कि इस संसार में मेरी भी कुछ सत्ता है, यह पुकार वरदान के समान मेरे कानों में क्यों गूँज रही है। मैं भी यही इच्छा करने लगा हूँ कि मेरा भी यश इस सृष्टि के इतिहास में अमर बन कर रहे।

विशेष—'वरदान सदृश' में उपमा अलंकार है।

यह संकेत······विलासमयी।

शब्दार्थ—सत्ता=अस्तित्व। सरल विकासमयी=सरलता के साथ प्रफुल्लित होने वाली। जीवन की लालसा=जीने की इच्छा। प्रखर=तीव्र। विलासमयी=आनन्द से परिपूर्ण।

अर्थ—मनु के मन में जीवन के प्रति आशा उत्पन्न हो गई है; उसी पर आश्चर्य प्रकट करते हुए मनु कहते हैं कि—यह आशा मुझे सृष्टि में सरलता से प्रफुल्लित होने वाले पदार्थों की ओर संकेत करती हुई कहती है कि मेरे जीवन में सरलता से विकास हो सकता है। पहले मैं जिस जीवन को उपेक्षामय समझे हुए था आज उसी जीवन को सुखमय और आनन्द से परिपूर्ण करने के लिये मेरे मन में लालसा उत्पन्न हो रही है।

तो फिर······मरना होगा।

शब्दार्थ—देव=विराट् शक्ति। अमर वेदना=जीवन में लगातार रहने वाली चिन्ता या व्यथा।

अर्थ—मनु अपने में उत्पन्न आशा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि इसका मतलब है मैं और जीऊँ—जीकर मुझे क्या करना होगा? क्योंकि यह सृष्टि तो नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी है। इस उजड़े हुए संसार में रहकर तो मेरा जीवन चिन्ताओं से भरा रहेगा। इसलिए हे देव बताओ! कि मुझे इस संसार में अमर वेदना लेकर ही मरना पड़ेगा; अर्थात् सभी यातनाएँ झेलनी पड़ेंगी।

विशेष—'अमर वेदना को लेकर मरने' में विरोधाभास अलंकार है।

एक यवनिका······भी वैसी।

शब्दार्थ—यवनिका=पर्दा। पट=पर्दा। आवरण मुक्त=ढकी हुई वस्तु का खुलना।

अर्थ—प्रलय के हट जाने के पश्चात् प्रकृति के वातावरण का वर्णन करते

हुए मनु कहते हैं कि जिस प्रकार माया का पर्दा पड़े रहने के कारण हमें संसार का वास्तविक रूप नहीं दिखाई देता उसी प्रकार प्रकृति भी प्रलय रूपी पर्दे से ढकी हुई थी। अब प्रलय समाप्त हो जाने के कारण (प्रलय रूपी पर्दा हट जाने के कारण) उसका वास्तविक रूप प्रकट होने लगा है। पेड़-पौधे वैसे ही हरे-भरे दिखाई देने लगे हैं।

विशेष—माया-पट में रूपक अलंकार है।

स्वर्ण शालियों······गैल रही।

शब्दार्थ—स्वर्ण शालियों की कलमें=धान के छोटे-छोटे सुनहरी पौधे। शरद् इन्दिरा=शरद्श्री। गैल=मार्ग।

अर्थ—मनु प्रलय के समाप्त हो जाने पर प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सुनहरे धानों की कलमें दूर-दूर तक फैल रही थीं। उनको देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो शरद् ऋतु रूपी लक्ष्मी के यन्दिर तक जाने के लिए यह कोई मार्ग बना हुआ हो।

विशेष—वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

विश्व कल्पना······रत्न-निधान।

शब्दार्थ—विश्व कल्पना=संसार निर्माण करने के लिए सृष्टा के मन में उठने वाली महान एवं उदात्त कल्पनाएँ। निदान=कारण। अचला=पृथ्वी। अवलम्बन=सहारा देने वाला। निधान=खजाना।

अर्थ—मनु हिमालय के अपार सौन्दर्य को देखकर कहते हैं कि विश्व का निर्माण करने वाले सृष्टा के मन में उठने वाले उच्च विचारों के समान यह हिमालय सबको सुख, शीतलता और सन्तोष प्रदान करता है। केवल इतना ही नहीं यह डूबती हुई पृथ्वी का सहारा भी है। जल-प्लावन में जब सारी सृष्टि डूब गई थी तो केवल यही एक ऐसा सहारा बचा था, जिसको पकड़ कर पृथ्वी बची रही।

विशेष—'विश्व कल्पना सा ऊँचा वह' में पूर्णोपमा है।

अचल हिमालय······हुआ अधीर।

शब्दार्थ—अचल=सुदृढ़, शांत। शोभनतम=सुन्दरतम। लताकलित=बेलों से ढका हुआ। शुचि=पवित्र। सानु शरीर=शृंग रूपी शरीर अथवा चोटियों वाला शरीर। पुलकित=रोमांचयुक्त।

अर्थ—हिमालय का हरी-भरी लताओं से ढका हुआ पवित्र एवं सुदृढ़ शृंगों वाला सुन्दर शरीर ऐसे लग रहा था जैसे मानो वह सुख की निद्रा में सो रहा हो और कोई मधुर स्वप्न देखने के कारण अधीर होकर उसका शरीर रोमांचित हो उठा है।

विशेष—'सानु शरीर' में रूपक अलंकार है और समस्त पद में मानवीकरण अलंकार है।

उमड़ रही······जीवन अनुभूति।

शब्दार्थ—चरणों में=तलहटी में। नीरवता की विमल विभूति=शान्ति का पवित्र वैभव। जीवन=जल, जिन्दगी। अनुभूति=ज्ञान।

अर्थ—हिमालय का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि उस हिमालय के चरणों में सर्वत्र अत्यधिक पवित्र शान्ति का ही वातावरण था। परन्तु वहाँ पर पवित्र झरनों की कल-कल ध्वनि करके बहने वाली धाराएँ जीवन-अनुभूति को बिखेर रही थीं।

विशेष—'जीवन' में श्लेष अलंकार है।

उस असीम······कल गान।

शब्दार्थ—असीम=सीमा रहित। नील अंचल=नीलाकाश। मृदु=कोमल। कलगान=मधुर ध्वनि।

अर्थ—हिमालय पर्वत पर बहती हुई झरनों की धाराएँ ऐसे मालूम पड़ती थीं मानो उस अनन्त आकाश में किसी की मधुर मुस्कान को देखकर हिमालय मन्द-मन्द मुस्करा रहा हो।

विशेष—वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

शिला सन्धियों······प्रचार।

शब्दार्थ—शिला सन्धियों=पर्वतों की चट्टानों के बीच में हो जाने वाली दरारों के मध्य में। दुर्भेद्य=जो कठिनाई से भेदा जा सके। अचल=अटल। दृढ़ता=सुस्थिरता, मजबूती। चारण=वीर एवं पराक्रमी राजाओं का गुणगान गाने वाले कवि।

अर्थ—मनु हिमालय का वर्णन करते हुए कहते हैं कि शिला सन्धियों के बीच में से होकर बहने वाला पवन साँय-साँय की ध्वनि करता हुआ चल रहा था। वह ऐसे प्रतीत होता था मानो वह वीर राजाओं का गुणगान करने वाले

चारणों की भाँति हिमालय की अडिग शक्ति और दुर्भेद्यता का प्रचार कर रहा था।

विशेष—'चारण-सदृश' में उपमा अलंकार है।

सन्ध्या घनमाला······तुषार किरीट।

शब्दार्थ—संध्या घनमाला=संध्या के समय आकाश में छाए हुए रंग बिरंगे बादलों का समूह। छींट=ऐसा वस्त्र जिस पर रंग-बिरंगे बिन्दु होते हैं। (Printed cloth)। गगनचुम्बी=आकाश को छूने वाली। शैल-श्रेणियाँ =हिमालय के शिखर। तुषार=बर्फ। किरीट=मुकुट।

अर्थ—संध्याकाल के समय में हिमालय के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि हिमालय की गगनचुम्बी चोटियों के ऊपर छाए हुए रंग-बिरंगे बादल ऐसे लगते थे मानो वह चोटियाँ छींट का वस्त्र ओढ़कर और बर्फ का मुकुट पहने हुए रानी के समान बैठी हुई हों।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलंकार है।

विश्व मौन······मौन सभा।

शब्दार्थ—मौन=शान्त। गौरव=गरिमा, ऐश्वर्य। महत्त्व=बड़प्पन, विशिष्टताएँ। विभा=कांति। अनन्त प्रांगण=विस्तृत आकाश। मौन सभा=नीरवता के साथ सम्मेलन करना।

अर्थ—हिमालय की पर्वत श्रेणियों को देखकर ऐसे प्रतीत होता था मानो विश्व को गौरव तथा महत्व की प्रतिनिधि विभूतियाँ हिमालय के असीम प्रांगण में अपना मौन सम्मेलन कर रही हों।

विशेष—'प्रतिनिधियों सी' में उपमा अलंकार है और मौन सभा की उन्नत कल्पना' में वस्तूत्प्रेक्षा तथा विरोधाभास अलंकार हैं।

वह अनन्त······भ्रांत रही।

शब्दार्थ—अनन्त नीलिमा=असीम नीलापन। व्योम=आकाश। भ्रांत= भटकती।

अर्थ—यहाँ पर कवि आकाश का वर्णन करता हुआ कहता है कि आकाश की वह अन्तहीन नीलिमा जिसमें सम्पूर्ण जड़ता के समान शान्ति छाई हुई है वह बहुत दूर और बहुत ऊँची होकर भी अपने अभावों के कारण ही भ्रांत हो रही है।

उसे दिखाती······सुढर उठान।

शब्दार्थ—जगती=पृथ्वीतल। अजान=अनभिज्ञ, अपरिचित। तुङ्ग तरङ्ग=ऊँची ऊँची लहरें। सुढर उठान=सुन्दर ढंग से ऊपर उठती हुई चोटियाँ।

अर्थ—यहाँ पर कवि आकाश और पृथ्वी की तुलना करता हुआ कहता है कि आकाश अधिक ऊँचा और असीम होने पर भी अभावों से भरा हुआ है। हिमालय पर्वत की यह ऊँची-ऊँची चोटियां संसार के सुख और आनन्द का प्रतीक बन कर मानो आकाश को बता देना चाहती हैं कि संसार में, अर्थात् पृथ्वी तल पर कितना सुख, कितनी हँसी, कितना उल्लास भरा हुआ है।

विशेष—'तुङ्ग तुरङ्ग' में वस्तूप्रेक्षा अलंकार है।

थी अनन्त······वरणीय।

शब्दार्थ—अनन्त=विस्तृत। सदृश=समान। गुहा=गुफा। रमणीय=सुन्दर। वरणीय=ग्रहण करने योग्य।

अर्थ—वहां पर सर्वशक्तिमान सत्ता की गोद के समान एक बहुत बड़ी दूर तक फैली हुई गुफा थी, मनु ने उसको ही अपना सुन्दर, स्वच्छ और सुरुचिपूर्ण निवासस्थान बनाया।

विशेष—'थी अनन्त की गोद सदृश जो विस्तृत गुहा वहाँ रमणीय' में उपमा अलंकार है।

पहला संचित······फिर से।

शब्दार्थ—संचित=एकत्रित। द्युति=आभा। रविकर=सूर्य की किरणें। चिह्न=प्रतीक। धधकना=प्रज्वलित होना।

अर्थ—पूर्व संचित की हुई अग्नि की आभा जो मलिन पड़ी हुई थी अब सूर्य की किरणों से वह और भी प्रज्वलित हो उठी। यह धधकती हुई अग्नि नव-जागरण का प्रतीक लग रही थी।

विशेष—'शक्ति और जागरण के चिह्न सा' में पूर्णोपमा अलंकार है।

जलने लगा······होकर धीर।

शब्दार्थ—अग्नि होत्र=हवन, यज्ञ। तीर=किनारे। होकर धीर=धैर्य-पूर्वक। समर्पण करना=लगा देना।

अर्थ—उस पूर्व संचित की हुई अग्नि के द्वारा मनु नित्यप्रति सागर के

किनारे वैदिक मंत्रों का उच्चारण करते हुए यत्न करने लगे। इस प्रकार अत्यन्त धैर्य के साथ मनु ने अपने जीवन को तपस्या में लगा दिया।

सजग हुई······शीतल छाया।

शब्दार्थ—सजग=जाग्रत, सचेत हो जाना। सुर संस्कृति=देव जाति की संस्कृति। देव-यजन=भिन्न-भिन्न देवताओं के निमित्त किए गए वैदिक यज्ञ। वर माया=श्रेष्ठ जादू। कर्ममयी=कर्मकांड से परिपूर्ण। शीतल छाया= आनन्दमय प्रभाव।

अर्थ—प्रलय के उपरान्त मनु द्वारा किए गए यज्ञों के कारण देव जाति का अस्तित्व फिर से दिखाई देने लगा। अलग-अलग देवताओं के निमित्त किए गए यज्ञों का प्रभाव मनु के हृदय पर सुन्दर जादू के समान पड़ने लगा।

उठे स्वस्थ······मनोहर शान्त।

शब्दार्थ—स्वस्थ=नवीन आशा से भरकर। अरुणोदय=प्रातःकालीन सूर्य। कान्त=सुन्दर। लुब्ध=लालसा से भरकर। प्रकृति विभूति==प्रकृति का सौन्दर्य।

अर्थ—मनु नवीन आशा लेकर इस प्रकार उठे जिस प्रकार क्षितिज के बीच में प्रातःकालीन सुन्दर सूर्य उग कर अपने पथ पर अग्रसर होता है। वे लालसा भरी हुई आँखों से प्रकृति के मनोहर और शान्त सौन्दर्य को देखने लगे।

विशेष—'उठे स्वस्थ मनु ज्यों उठता है क्षितिज बीच अरुणोदय कांत' में उदाहरण अलंकार है।

पाक यज्ञ······बुनने।

शब्दार्थ—शालियाँ=धान। वह्नि=आग। ज्वाला=लपटें। धूम पट= धूआँ रूपी वस्त्र; यहाँ धूप समूह से तात्पर्य है।

अर्थ—पाक यज्ञ का विधान निश्चित करके मनु उसके लिए धानों को इकट्ठा करने लगे और उन्होंने पाक यज्ञ करना शुरू कर दिया, जिसकी आग की लपटें धूएँ का समूह छोड़ने लगीं।

शुष्क डालियों······समृद्ध।

शब्दार्थ—शुष्क डालियों से=सूखी हुई डालों से। अग्नि अर्चियाँ=आग की लपटें। समिद्ध=प्रज्वलित। नव धूप गन्ध=नवीन धूएँ की सुगन्धि।

अर्थ—मनु ने वृक्षों की सूखी डालियों की समिधा बनाकर यज्ञ करना शुरू

कर दिया जिससे अग्नि की लपटें प्रज्वलित हो उठीं। उसमें दी गई आहुति के कारण नवीन धूएँ की सुगन्धि से आकाश और बन भर गया।

और सोच······रचे हुए।

शब्दार्थ—जीवन लीला रचे हुए=जीवित।

अर्थ=और मनु ने अपने मन में यह सोचा कि जिस प्रकार मैं जीवित हूँ उसी प्रकार और भी कोई प्राणी यदि जीवित हो तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

अग्निहोत्र······पाते थे।

शब्दार्थ—अग्निहोत्र=यज्ञ। अवशिष्ट=बचा हुआ।

अर्थ—इसीलिए मनु यज्ञ के आहुति से बचे हुए अन्न को कहीं दूर पर रख आते थे। उन्हें यह सोचकर अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता था कि इस अन्न से किसी अपरिचित प्राणी की तृप्ति होगी।

दुख था······रहते थे।

शब्दार्थ—दुख का गहन पाठ पढ़कर=अनेक प्रकार के कष्टों को भोग कर। नीरवता=निर्जनता। मग्न=डूबे हुए।

अर्थ—प्रलय काल के समय मनु ने अनेक प्रकार के कष्टों को सहा था, इसीलिए वे सहानुभूति का महत्व समझने लगे थे। वे उस निर्जन और सूने प्रदेश में अकेले ही अपने विचारों में डूबे रहते थे।

मनन······वास रहा।

शब्दार्थ—मनन=सोचना। ज्वलित=जलती हुई।

अर्थ—मनु वहां एकान्त में जलती हुई अग्नि के पास बैठकर खूब सोचते विचारते थे। उन्हें इस प्रकार बैठे देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो उस सूने और निर्जन प्रदेश में स्वयं तपस्या रूप धारण करके बैठी हो।

विशेष—'एक सजीव तपस्या जैसे पतझड़ में कर वास रहा' में वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

फिर भी······दिन दीन।

शब्दार्थ—धड़कन=बेचैनी। अस्थिर जीवन=कष्टों से विचलित जीवन। दीन=अभावों से भरा हुआ।

अर्थ—यद्यपि मनु अकेले ही अपने विचारों में डूबे रहते थे तथापि कभी-

कभी उनके हृदय में कोई नवीन चिन्ता उत्पन्न होकर बेचैनी पैदा कर देती थी। इसी प्रकार उनका कष्टों और अभावों से भरा हुआ जीवन प्रतिदिन बीतने लगा।

विशेष—'दिन दिन दीने' में वृत्यनुप्रास अलंकार है।

प्रश्न उपस्थित······छाया में।

शब्दार्थ—अन्धकार की माया=अपने जीवन के अतिरिक्त अन्यों के प्रति अपरिचित। विराट की छाया=विराट शक्ति के आधार पर।

अर्थ—मनु अपने जीवन के अतिरिक्त अन्य सभी बातों से अपरिचित थे। अतः उनके एकाकी जीवन में नित्य नवीन प्रश्न उपस्थित होते थे जो विराट शक्ति के आधार पर अर्थात् भगवान की सत्ता पर विचार करने के कारण पल-पल में अपना रंग बदलते रहते थे।

अर्थ प्रस्फुटित······ व्यस्त।

शब्दार्थ—अर्ध प्रस्फुटित=धुंधले। सकर्मक=अपने कार्य में लगी हुई। व्यस्त=लीन।

अर्थ—मनु के मन में अनेक प्रकार के प्रश्न उत्पन्न होते थे और वे उनके धुंधले से ही उत्तर सोच पाते थे। मनु की इस स्थिति की ओर ध्यान न देकर प्रकृति अपने ही कार्यों में लगी रही। प्रकृति की कर्मशीलता को देखकर मनु के मन में भी अपने जीवन को बनाए रखने के लिए आशा उत्पन्न हुई।

तप में······घिरने।

शब्दार्थ—तप में निरत हुए=तप में पूरी तरह से लग गए। नियमित=नियमों के अनुसार। विश्व रंग में=संसार रूपी रंगमंच पर। घन=गहरे।

अर्थ—मनु पूर्ण रूप से तप में लग गए और नियम अनुसार अपने कर्मों को करने लगे। इस प्रकार विश्व रूपी रंगमंच पर कर्म समूह अपना गहरा सूत्र बनाकर घिरने लगे, अर्थात् प्रकृति पर कर्मों का फिर से प्रारम्भ हो गया।

उस एकान्त······सागर-तीरे।

शब्दार्थ—नियति-शासन में=विश्व को संचालन करने वाली शक्ति के शासन में। स्पन्दन=टकराना। सागर-तीरे=सागर के किनारे से।

अर्थ—इस प्रकार मनु अपने कार्यों को करते हुए आगे बढ़ रहे थे, किन्तु उस विश्व का संचालन करने वाली शक्ति के वशीभूत होकर वे धीरे-धीरे ही

आगे बढ़ रहे थे। उनका यह आगे बढ़ना इस प्रकार था जैसे शान्त लहरें सागर के किनारे से टकराती है।

विशेष—१. उदाहरण अलंकार।

२. इन पंक्तियों पर गीता का प्रभाव स्पष्ट है—

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यतेह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैगुणैः

विजन जगत······अपना।

शब्दार्थ—विजन जगत=निर्जन स्थान। तन्द्रा में=अर्ध चेतनावस्था में। ग्रहपथ=नक्षत्रों का मार्ग। आलोकवृत्त=प्रकाश-मण्डल।

अर्थ—मनु उस सूने प्रदेश में अर्धचेतन अवस्था में अनेक प्रकार की बातें सोचा करते थे जो सूने सपनों के समान थीं। इस प्रकार मनु अत्यन्त शिथिलता एवं उत्साह-हीनता से भरा हुआ जीवन व्यतीत कर रहे थे; किन्तु काल अपने गतिशील नक्षत्रों के मार्ग के प्रकाशमण्डल से अपना जाल बुनता चला जा रहा था, अर्थात् मनु के दिन अनजाने ही बीत रहे थे।

विशेष—'ग्रहपथ के आलोक वृत्त से काल जाल तनता अपना' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

प्रहर दिवस······नवीन।

शब्दार्थ—सन्देशविहीन=बिना कुछ कहे सुने। विरागपूर्ण संसृति=पलायनवादियों का संसार। निष्फल=व्यर्थ। नवीन आरम्भ=नए नए क्रम।

अर्थ—प्रहर दिन और रात्रियाँ आती और चली जाती थीं, परन्तु उनके पास मनु को देने के लिए कोई सन्देश नहीं था, अर्थात् मनु को उनसे कोई प्रेरणा प्राप्त नहीं होती थी। मनु का मन उसी भाँति वैराग्यपूर्ण और निष्फल था जिस प्रकार पलायनवादी व्यक्तियों के संसार में नवीन कार्य का आरम्भ करना।

विशेष—'प्रहर, दिवस रजनी आती थी' में प्रथम तुल्ययोगिता अलंकार है।

धवल मनोहर······उद्गीथ।

शब्दार्थ—धवल=सफेद। चंद्रबिंब=चाँदनी। अंकित=युक्त। निशीथ=आधी रात परन्तु यहाँ केवल रात से तात्पर्य है। उद्गीत=साम-गान। पुल-

कित=प्रसन्न ।

अर्थ—स्वच्छ सुन्दर रातें रम्य उजली चांदनी से युक्त रहती थीं । और उस समय सन-सन करता हुआ बहने वाला पवन ऐसा जान पड़ता था मानो वह पुलकित होकर पवित्र साम-गान कर रहा हो ।

विशेष—मानवीकरण अलंकार ।

नीचे दूर·········निधि गम्भीर ।

शब्दार्थ—विस्तृत=फैला हुआ । उर्मिल=लहराता । व्यस्त=लीन । व्यथित=क्षुब्ध । अधीर=चंचल । अन्तरिक्ष=शून्य । चन्द्रिका निधि= चांदनी का सागर ।

अर्थ—नीचे दूर-दूर तक लहराता हुआ क्षुब्ध चंचल समुद्र फैला हुआ था और उधर आकाश में उसी की भांति ज्योत्स्ना (चाँदनी) का विकल तथा गम्भीर सागर लहरा रहा था ।

खुली उसी······भीगी पाखें ।

शब्दार्थ—रमणीय=सुन्दर । अलस आंखें= अलसाई हुई आँखें । मधु= रस । पाखें=पंखुड़ियां ।

अर्थ—निर्मल चन्द्र ज्योत्स्ना से परिपूर्ण अर्धरात्रि के उस मनोरम वातावरण में अचानक आलस्य और शिथिलता से भरे हुए मनु की आंखें खुल गईं और वे प्रकृति की उस मनोहर छटा को सतृष्ण नेत्रों से देखने लगे । उस समय अपूर्व आनन्द और उत्साह से भरी हुई उनकी आँखें ऐसी मालूम पड़ती थी जैसे हृदय रूपी पुष्प की मकरन्द से भीगी हुई पंखुड़ियाँ अचानक खिल उठी हों ।

विशेष—'हृदय कुसुम की खिली अचानक मधु से भीगीं वे पाँखें, में प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा है ।

व्यक्त नील······उलझता था ।

शब्दार्थ—व्यक्त=प्रकट । नील=विस्तृत नीला आकाश । चल प्रकाश= चन्द्रमा की किरणों का चंचल आलोक । कम्पन=सिहरन । सुख बन बजता= सुखमय । अतीन्द्रिय=अलौकिक । स्वप्न लोक=कल्पना लोक । मधुर आनन्द दायक । रहस्य उलझता था=उलझन डालने वाला रहस्य उपस्थित होता था ।

अर्थ—दूर-दूर तक फैले हुए नीले आकाश से आने वाली चन्द्रमा की चंचल किरणों के आलोक से मनु सुन्दर संगीत का अनुभव करते थे । रात्रि के उस

अत्यन्त मधुर एवं मनोरम वातावरण को देखने से ऐसा मालूम पड़ता था मानो भौतिक जगत से दूर कल्पना के अलौकिक जगत का रहस्य सभी पदार्थों को उलझन में डालता हुआ सर्वत्र छाया हुआ है।

विशेष—'व्यक्त नील में चल प्रकाश का कंपन सुख बन बजता था' में हेतु अलंकार है।

नव हो······करके अनुमान।

शब्दार्थ—अनादि = हृदय में हमेशा रहने वाली। वासना = कामेच्छा। मधुर = अनुकूल, तृप्ति दायिनी। प्राकृतिक = स्वाभाविक। द्वन्द्व = दो। सुखद = सुखदायी।

अर्थ—रात्रि के मनमोहक वातावरण को देखकर मनु के मन में कामेच्छा उसी प्रकार जग उठी जिस प्रकार शरीर के अनुकूल भूख स्वाभाविक ही लग उठती है। इस वासना के जगने के कारण मनु एकांकी जीवन की अपेक्षा युग्म जीवन को महत्त्व देने लगे और अनुमान करने लगे कि यदि इस मनोरम वातावरण में मेरी जीवन संगिनी भी मेरे साथ होती तो कितना अच्छा होता। वह इस तरह कामना करते जिस प्रकार कोई भुक्त भोगी व्यक्ति अपनी प्रिया के लिए कामना करता है।

दिवा रात्रि······उस पार।

शब्दार्थ—दिवा = दिन। मित्र = सूर्य। बाला = पत्नी, स्त्री। अक्षय = शाश्वत्, अविनाशी। शृंगार = सौन्दर्य। मित्रवाला = दिवा। वरुण बाला = रात्रि। जीवन का उर्मिल सागर = अनन्त अभिलाषाओं से भरा हुआ जीवन रूपी सागर।

अर्थ—अब मनु रात्रि में वरुण बालिका चन्द्र का तथा दिन को सूर्य की बालिका ऊषा का शृंगार नित्यप्रति देखने लगे। मनु अभी तक अकेले थे इस लिए उन्हें अपनी मिलन भावना अनन्त अभिलाषाओं से भरे हुए जीवन रूपी समुद्र के उस पार हँसती हुई-सी ज्ञात होने लगी। वह सोचते थे कि वह जब समुद्र की लहरों के समान जब जीवन की उलझन को पार लेंगे तब उनका मिलन अवश्य होगा।

विशेष—'दिवा-रात्रि या मित्र-वरुण की बाला का 'अक्षय शृंगार' में प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा है।

तप से······सूना राज ।

शब्दार्थ—संचित—एकत्रित शारीरिक शक्ति । तृषित=अत्यन्त उत्सुक । अट्टहास कर उठा=अत्यधिक हँसी उड़ाने लगा । रिक्त=अभाव । अधीरतम सूना राज—बेचैन बनाने वाले भविष्य के अन्धकार ।

अर्थ—मनु ने यद्यपि तपस्या द्वारा संयम को खूब बढ़ा लिया था परन्तु फिर भी वासना की भावना ने उत्पन्न ह कर उनके समय को डांवाडोल कर दिया और वह अपनी प्रियतमा से मिलने के लिए बेचैन हो उठा । उसका भविष्य भी घोर अंधकार और निराशा से भरा हुआ था क्योंकि उसको भविष्य में भी मिलने की कोई आशा नहीं थी । अतः मनु के सूने हृदय का वह अधीर-तम, सूने हृदय का सूना साम्राज्य आज मानों सहसा अट्टहास कर उठा हो ।

धीर-समीर······अधीर ।

शब्दार्थ—धीर-समीर=मन्द पवन । परस=स्पर्श । पुलकित=रोमांचित । श्रान्त=थका हुआ । अलक=बाल । मधु गंध=मदिरा के समान उन्मत्त बना देने वाली गंध ।

अर्थ—मनन्द गति से चलले वाले पवन के स्पर्श से मनु का शिथिल शरीर रोमांचित हो उठा और वह अधिक बेचैन हो गए । उनके हृदय में जीवन की अनेक उलझनों से भरी हुई आशा को बेचैन बना देने वाली लहरें उसी प्रकार उठने लगी जिस तरह किसी नायिका के सुवासित बालों को सुलझाते समय उन्मत्त बना देने वाली तीव्र सुगंधि की लहरें उठती हैं ।

विशेष—'आशा की उलझी अलकों से उठी लहर मधुगंध समीर' में प्रयोजनवती साध्यवसाना गौणी लक्षणा है ।

मनु का······देता घोट ।

शब्दार्थ—संवेदन=अभाव की अनुभूति । जीवन जगती=समस्त चेतन प्राणी कटुता=कठोरता । घोट देता=कुचल देता ।

अर्थ—मनु का मन अपनी प्रियतमा के अभाव की चोट खाकर बेचैन हो उठा । वह सोचने लगे कि मेरे दुःखों को बटाने वाला भी कोई होता । इसी अभाव की अनुभूति बड़ी और निर्दयी होती है; यही भावना संसार में प्राणियों की उमंगों और उत्साहों को तहस नहस कर देती है तथा उनके जीवन को पूर्णतया अव्यवस्थित कर देती है ।

'आह ! कल्पना......जगता सोता ।

शब्दार्थ—कल्पना का जगत=विचारों का अलौकिक जगत । मधुर= आनन्दमय । दल=समूह । पुलकित=आनंदित ।

अर्थ—मनु अपने एकांकी जीवन से तंग आकर कहते हैं किय—दि इस जीवन में कल्पना से काम चल जाता तो यह कल्पना का अलोकिक संसार कितना सुन्दर होता । क्योंकि इसमें हमें सुख एवं आनन्द के स्वप्न चलते रहते कभी अभावों के कारण दुःख की अनुभूति न होती । जबकि भौतिक जीवन में अभावों के कारण मानव हमेशा दुखी रहता है ।

विशेष—१. 'आह ! कल्पना का सुन्दर यह जगत मधुर कितना होता' में सम्भावना अलंकार है ।

२. 'सुख स्वप्नों का दल छाया में पुलकित हो जगता सोता' में प्रयोजनवती गौणी लक्षणा है ।

संवेदन का......कहाँ बकता ।

शब्दार्थ—संघर्ष=द्वन्द्व । गाथा=कहानी । बकता=व्यर्थ सुनता ।

अर्थ—यदि संवेदन की भावना मनुष्य के जीवन को कटु न बना देती तो फिर इस संसार में अभावों से उत्पन्न होने वाली दुखों की अनुभूति और हृदय के द्वन्द्व के लिए भी कोई स्थान न रहता । और नही यहाँ पर कोई अपने अभाव की और असफलताओं की व्यर्थ कहानियाँ सुनाता फिरता ।

कब तक......खोलो ।

शब्दार्थ—निधि=हृदय का भेद ।

अर्थ—मनु अपने जीवन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे मेरे जीवन ! तुम मुझे यह बता दो कि मुझे और कितने दिन ऐसे ही अकेला रहना पड़ेगा । तुम्हीं बताओ कि मैं अपने सुख की कहानियां किसे सुनाऊँ । अब तो मुझे यह दुःख भरी गाथाएँ कहनी ही नहीं चाहिए क्योंकि यदि कोई सुनने वाला ही नहीं फिर तो कहना ही व्यर्थ है ।

विशेष—१. आक्षेप अलंकार है ।

२. 'अपनी निधि न व्यर्थ खोलो' में प्रयोजनवती साध्यवसाना गौणी लक्षणा है ।

तम के......रस सार ।

शब्दार्थ—तम=अन्धकार। सुन्दरतम रहस्य=अत्यन्त सुन्दर आश्चर्य। कांति किरण रंजित=शोभा की किरणों से युक्त। व्ययित=ताप दग्ध। सात्विक=सतोगुण; निर्विकार।

अर्थ—मनु अपने एकांकी जीवन से तंग आ गए हैं। वे बेचैन होकर रात्रि को एक तारे का सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे शोभा की किरणों से युक्त तारे। तुम इस अन्धकारपूर्ण रात्रि के सब से सुन्दर आश्चर्य हो। क्योंकि यह सभी के लिए आश्चर्य की बात है कि तुम्हारा यह उजला प्रकाश कहाँ से आता है ? और तुम क्या हो ? इतना ही नहीं तुम संसार में सुख शांति देने वाले हो। तुम नवीन रस से पूर्ण ऐसी बूँद के समान हो जो इस पृथ्वी पर पीड़ित प्राणियों की वेदना को हर लेती है।

विशेष—यहाँ पर द्वितीय उल्लेख अलंकार है।

आतप तापित······मधुमय संदेश।

शब्दार्थ—आतप-तापित=धूप से सताए हुए। छाया के देश=छाया के स्थान, आश्रयदाता। अनन्त=असीम। मधुमय संदेश=शान्तिप्रद संदेश।

अर्थ—मनु तारा मंडल को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तारामण्डल ! जिस प्रकार धूप से सताए हुए प्राणियों के लिए छायावाला स्थान ही सुखद होता है। उसी प्रकार दैहिक और भौतिक दुःखों से पीड़ित मनुष्य के लिए तुम शाति प्रदान करते हो। तुम संख्या असंख्य हो परन्तु कितना मधुर संदेश देते हो। क्योंकि तुम्हारे आने पर मनुष्यों को शान्ति मिलती है।

विशेष—'अनंत की गणना' में निरंग रूपक अलंकार है।

आह शून्यते······मधुर हुई ?

शब्दार्थ—शून्यता=नीरवता। इन्द्रजाल जननी=जादू टोनों को जन्म देने वाली। मधुर=शान्तिदायक।

अर्थ—मनु रात्रि के अन्धकार में फैली हुई शून्यता को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे नीरवता तू आज इतनी चुप क्यों हो गई है। अर्थात् मेरे प्रश्नों का उत्तर न देकर चुम रहने का कौशल क्यों कर रही है। फिर रात्रि को कहते हैं कि हे रात्रि ! तू जादू टोनों से भरी होने पर भी तू मुझे इतनी मधुर क्यों लग रही है।

जब कामना······अरी प्रतीप ?

शब्दार्थ—कामना = इच्छा, परन्तु यहाँ कवि का तात्पर्य संध्या से है। तट = किनारा। तारा-दीप = तारा रूपी दीपक। सुनहरी साड़ी = सुनहरी आभा। हँसती = चाँदनी छिटकती। प्रतीप = विपरीत आचरण।

अर्थ—मनु रात्रि को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि—हे रात्रि तू बहुत दुष्टा है, विपरीत आचरण करने वाली है। तू मुझे यह बता कि जब संध्या रूपी स्त्री सुनहरी साड़ी पहन कर तारारूपी दीपक लेकर अपने अभीष्ट की पूर्ति के लिए समुद्र के तट पर आई थी तब तू ने अपनी कालिमा से उसकी सुनहरी साड़ी को क्यों फाड़ा। अब उसको नष्ट करके तू चाँदनी के रूप में क्यों हँस रही है ?"

विशेष—(१) 'तारा-दीप' में रूपक अलंकार है।

(२) 'फाड़ सुनहरी साड़ी उसकी तू हँसती क्यों अरी प्रतीप' में रूपकातिशयोक्ति है।

इस अनन्त काले······मृदु हास।

शब्दार्थ—काले शासन = अत्याचार। उच्छृंखल = निरंकुशता से भरा हुआ। मृदुहास = कोमल हँसी।

अर्थ—मनु रात्रि के दुष्कर्मों से परिचित हैं इसलिए उसको सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे रात्रि ! जब सन्ध्या इस शून्य प्रदेश में फैले हुए नियति के कठोर एवं अनाचार पूर्ण शासन में प्राप्त होने वाली कथाओं और वेदना का इतिहास अपनी अन्धकार रूपी स्याही को ओस-रूपी आँसुओं में घोलकर उच्छृंखलता पूर्ण लिख रही थी तब तू अचानक प्रकट होकर उसके पृष्ठों को नष्ट भ्रष्ट कर उस पर चाँदनी के रूप में क्यों हँस रही थी ?

विश्व कमल······टोने से।

शब्दार्थ—विश्व-कमल = संसार रूपी कमल। मृदुल = कोमल। मधुकरी = भ्रमरी। टोना = जादू।

अर्थ—अब मनु रात्रि के जादू टोनों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—"हे रात्रि ! तू यह बता कि तेरे पास कौन सा ऐसा यंत्र है जिसके कारण तू संसार को स्पर्श करके इसे मूर्च्छित बनाकर इस प्रकार चली जाती है जिस प्रकार कोई भ्रमरी किसी कमल के पास आकर उसे चूमती हुई अपनी गुन-गुनाहट के माध्यम से कुछ जादू करके उसे मूछित सा करके उड़ जाती है।

बिशेष—'विश्व-कमल की मधुकरी' में परम्परित रूपक अलंकार है।

किस दिगंत······किसके पास ?

शब्दार्थ—दिगंत रेखा=दिशा का कोना। संचित=एकत्र। सिसकी=सिसकने की आवाज। समीर=वायु। मिस=बहाना।

अर्थ—मनु रात्रि को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि—"हे रात्रि ! तुमने दिशा के किस कोने में इतनी आह भरी सिसकियाँ एकत्र कर रखी थीं, तुम तीव्र वेग से किस से मिलने जा रही हो, जो वायु के बहाने हाँफ रही हो। बताओ तो सही किस प्रेमी से मिलने के लिए भागी जा रही हो।"

बिशेष—'यों समीर मिस हाँफ रही सी चली जा रही किसके साथ' में कैतवापन्हुति अलंकार है।

विकल ·····फिर अंधेर।

शब्दार्थ—विकल=जोर से। खिलखिलाती=हँसती। तुहिण कणों=ओस बिन्दु। फेनिल लहरों=चाँदनी के समय समुद्र में उठने वाली ऊँची-ऊँची लहरें जिन पर झाग छाए रहते हैं। फिर से अंधेर मचना=पुनः प्रलय काल की सी हलचल होता।

अर्थ—मनु रात्रि को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि—हे रात्रि ! तू चाँदनी के माध्यम से इतनी जोर से खिलखिला कर मत हँस। इतनी हँसी तू यूँ ही मत बिखेर। क्योंकि तेरी इस हँसी के कारण ओस की बूँदों में तथा समुद्र की फेनिल लहरों में फिर से प्रलयकालीन समय के समान हलचल मच जाएगी।

घूँघट उठा······में लाती ?

शब्दार्थ—घूंघट=चाँदनी का अवगुण्ठन। ठिकते=चलते चलते रुक जाना और फिर चलना। विजन=निर्जन। स्मृति पथ में लाते=स्मरण करती।

अर्थ—मनु रात्रि को सम्बोधित करते हुए कहत हैं कि—हे रात्रि ! वह कौन है जिसे देख इस चांदनी के घूँघट को उठाती हुई तू मुस्कराकर रुक रुक कर चलती है ? तुझे ठिठकते देख ऐसा प्रतीत होता है मानो तुम इस सूने आकाश में घूमती हुई भूली बात को फिर से स्मरण करने के समान अपने किसी विस्मृत प्रेमी को याद करने का प्रयत्न कर रही हो। वह स्पष्टता से याद

आता नहीं इसलिए रुक रुक कर चल रही हो।"

रजत कुसुम......जावेगी भूल।

शब्दार्थ—रजत कुसुम=चाँदी का फूल, चन्द्रमा। धूल=पुष्प धूल, पराग, परन्तु यहाँ कवि का तात्पर्य चाँदनी से है। बावली=वैभव में उन्मत्त रात्रि।

अर्थ—मनु रात्रि को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि—अरी बावली रात्रि! तू चन्द्रमा रूपी चाँदी के फूल की नवीन पुष्प रज जैसी चाँदनी की इतनी धूलि न उड़ा, नहीं तो औरों की क्या बात, तू स्वयं ही इसमें खो जाएगी। अर्थात् चंद्रमा की मादक चाँदनी में तू स्वयं ही सुध बुध भूल जावेगी।'

विशेष—रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

पगली......चंचल।

शब्दार्थ—अंचल=वस्त्र का छोर, परन्तु यहाँ कवि का तात्पर्य आकाश से है। मणि राजी=मणियों का समूह, तारागण। बेसुध=बेखबर।

अर्थ—मनु रात्रि को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि—हे यौवन से मदमत्त रात्रि! तेरा यह आकाश रूपी नीला वस्त्र कैसे, (तेरा अंचल) कैसे छूट पड़ा है। तुझे इसका तनिक भी ध्यान नहीं कि तेरे अंचल से तारा रूपी मूल्यवान मणियाँ लुटती जा रही हैं। अरी पगली तू इसको शीघ्र ही सँभाल ले।"

विशेष—प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना लक्षणा है।

फटा हुआ......भोली भाली।

शब्दार्थ—नीलवसन=नीला वस्त्र, आकाश। अकिंचन=दरिद्र। भोली-भाली=प्राकृतिक सौन्दर्य।

अर्थ—मनु रजनी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि—हे यौवन में उन्मत्त रजनी? तेरा नीला आकाश रूपी वस्त्र क्या स्थान-स्थान से फटा हुआ है? क्योंकि तारों के रूप में छिद्र इसके प्रमाण हैं कि उन छिद्रों से तुम्हारे शरीर की छवि अनायास ही प्रकट हो रही है। देख तेरे इस भोले-भाले सौंदर्य का यह दरिद्र संसार मधुपान कर रहा है। तू शीघ्र ही अपने वस्त्र को ठीक करले।

विशेष (१)—'नील वसन' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

(२) मानवीकरण अलंकार है।

ऐसे अतुल······के दाग ?

शब्दार्थ—अतुल अनंत विभव=चाँदनी के रूप में फैला हुआ अपार वैभव। विराग=उदासीनता। जीवन की छाती के दाग=प्रेम सम्बन्धी पुरानी बातें।

अर्थ—अब रात समाप्त होने वाली है इसलिए चाँदनी फीकी पड़ गई है। मनु रात्रि को सम्बोधित करते हुए पूछते हैं कि—हे रात्रि ! तेरे पास तो चाँदनी के रूप में असीम सौंदर्य और अद्वितीय वैभव है। फिर भी तू उदासीन सी क्यों हो गई है। तेरे मुख पर पहले जसी कान्ति नहीं है। तू एकदम विरक्त क्यों हो गई है। क्या तू भूली हुई सी अथवा खोई हुई होकर अपने जीवन की पुरानी प्रेम सम्बन्धी बातों को याद कर रही है, जिससे तेरी कान्ति फीकी पड़ गई है।

मैं भी······सोता था।

शब्दार्थ—भ्रान्ति=भ्रम। सुख सोता=सुख में लीन रहता था।

अर्थ—मनु रजनी को सम्बोधित करके कहते हैं कि—अरी रात्रि ! जिस प्रकार तू अपनी पुरानी प्रेम सम्बन्धी बातें भूल गई है उसी तरह मैं अपनी सभी पुरानी बातों को भूल गया हूँ। मुझे स्मरण नहीं कि जिस भावना में डूबकर मेरा मन सुख की नींद में मग्न था, वह प्रेम भावना थी; मधुर पीड़ा की स्थिति थी, मेरा भ्रम मात्र था या कोई ऐसी वृत्ति थी; जिसे मैं नाम नहीं दे पा रहा।'

मिले कहीं······भूला देना।

शब्दार्थ—लुटा देना=गँवा देना।

अर्थ—मनु रजनी को सम्बन्वित करते हुए कहते हैं कि—हे रात्रि ! यदि तुम्हें अपने अभीष्ट की खोज करते कहीं मेरा सुख पड़ा मिल जाए तो उसे अपनी सौंदर्य राशि की तरह मत गँवा देना, बल्कि कृपापूर्वक उसे मेरे पास ले आना। देख मैं तुझे उस कृपा के प्रतिकार स्वरूप तेरा भाग अवश्य दूँगा तू उसे भुला मत देना।

श्रद्धा

कथासर—मनु को यह पता नहीं था कि उनके अतिरिक्त भी अन्य कोई प्राणी जीवित है, किन्तु एक दिन श्रद्धा हिमालय पर घूमती हुई मनु की गुफा के पास आ निकली और मनु से पूछ बैठी कि आप कौन हैं ? यहाँ पर अकेले क्यों बैठे हैं ? और इतने दुःखी क्यों है ? श्रद्धा की उस मधुर और सहानुभूति-पूर्ण वाणी को सुनकर मनु को एक प्रकार से नव-जीवन-सा मिला, उन्होंने श्रद्धा की ओर देखा और उसके अनिंद्य सौंदर्य को देख कर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने श्रद्धा को बताया कि वह बहुत ही दुखी और निराश प्राणी है, क्योंकि उनका सर्वस्व स्वाहा हो चुका है।

मनु का परिचय प्राप्त कर लेने पर श्रद्धा ने भी अपना परिचय देते हुए बताया कि उसे ललित कलाओं से बड़ा प्रेम है और वह गन्धर्वों के देश में ललित कलाएँ सीखा करती थी। एक दिन अचानक जल प्रवाह आया, देखते देखते गन्धर्वों का देश नष्ट हो गया तभी से वह अकेली असहाय और निरुपाय होकर हिमालय पर अकेली घूमती फिरा करती है। यज्ञ से बचे हुए अवशिष्ट अन्न को देख कर ही उसे यह प्रतीत हुआ कि उसके अतिरिक्त अन्य कोई प्राणी भी जीवित है जो निकट ही रहता है। इसी आशा पर वह मनू को ढूँढ़ सकी थी। अपना परिचय देने के बाद श्रद्धा ने मनु को सान्त्वना देते हुए कहा कि तुम्हें दुःखी देखकर मुझे बहुत दुःख और आश्चर्य होता है। तुम्हें दुःखी नहीं होना चाहिए क्योंकि सुख-दुःख संसार के अनिवार्य धर्म हैं। साथ ही तुम्हें यह भी जान लेना चाहिए कि तुम जिस बात से झिझक रहे हो वही तुम्हारे लिए मंगलदायक है, क्योंकि सारी सृष्टि उसी से उत्पन्न हुई है। अतः तुम्हें न तो काम की उपेक्षा करनी चाहिए और न दुःख से ही डरना चाहिए। ये दुःख सुख तो दिन और रात की तरह आते जाते रहते हैं। श्रद्धा के इन वचनों को सुनकर जब मनु को कुछ भी धैर्य नहीं हुआ तो श्रद्धा ने उसे कर्म की महत्ता

बताते हुए कहा कि जीवन में इस प्रकार निराश होना ठीक नहीं, मनुष्य को सदैव कर्म रत कर अपना जीवन उन्नत बनाना चाहिए। यदि तुम्हें कर्म करने में कुछ झिझक है तो आज से मैं तुम्हारे साथ रहूँगी और तुम्हारी सहायता करूँगी। इस प्रकार श्रद्धा ने मनु को उत्साहित करके कर्मशील बना दिया।

कौन तुम······अभिषेक।

शब्दार्थ—संसृति जल निधि तीर=संसार रूपी सागर के किनारे पर। तरंग=लहरें। प्रभा=कांति। अभिषेक=आलोकित करना।

अर्थ—चिताग्रस्त मनु को निर्जन प्रदेश में एकांकी बैठे हुए देखकर श्रद्धा सहसा उनके पास आती है और उनसे पूछती है कि तुम कौन हो? जिस प्रकार समुद्र की लहरें मणियों को किनारे पर फेंक देती हैं उसी प्रकार तुम भी संसार-सागर के दौरान इस निर्जन प्रदेश में फेंके हुए रत्न के समान, और जिस प्रकार वह मणि समुद्र के निर्जन किनारे को आलोकित कर देती है उसी प्रकार इस निर्जन प्रदेश की शून्यता को कान्ति की धारा से आलोकित करने वाले तुम कौन हो?

विशेष—परंपरित रूपक और लक्षणा शब्द शक्ति है।

मधुर······आलस।

शब्दार्थ—मधुर विश्रान्त=मधुरता से भरी हुई थकावट। करुणामय=करुणा से भरा हुआ।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि तुम बहुत थके हुए और आलस से भरे हुए बैठे हो तुम मुझे इस मधुरता से भरी हुई थकावट और शून्यता से भरे हुए जगत के एक सुलझे हुए रहस्य जान पड़ते हो, अर्थात् यद्यपि मैं तुमसे अपरिचित हूँ तथापि तुम्हारे मुख मण्डल पर उभरती हुई रेखाओं से तुम्हारे भावों को अच्छी प्रकार जान रही हूँ। तुम करुणा से भरे हुए एक सुन्दर मौन के रूप में दिखाई देते हो जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि तुम चंचल मन के आलस का धारण किए हुए हो।

विशेष—निरंगरूपक, गम्योत्प्रेक्षा, विशेषण विपर्यय और विरोधाभास अलंकार है।

सुना यह······छंद।

शब्दार्थ—मधु गुंजार=मनोहर स्वर। मधुकरी=भ्रमरी। प्रथम कवि—महर्षि बाल्मीकि।

अर्थ—मनु ने जब श्रद्धा का मनोहर स्वर सुना तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कोई भ्रमरी आनन्दपूर्वक मधुर ध्वनि कर रही हो और मनु उसे कमल के समान नीचा मुख किए हुए इस प्रकार सुन रहे थे जैसे वह आदि कवि बाल्मीकि का प्रथम छन्द सुन रहे हों।

विशेष—१. उपमा अलंकार है।

२. आदि कवि बाल्मीकि के मुख से निकला हुआ आदि छन्द यह है—

मा निषाद ! प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्॥

एक झिटका······फिर मौन।

शब्दार्थ—झिटका सा लगा=बिजली सी दौड़ गई। लुटे से=आश्चर्य चकित होकर।

अर्थ—श्रद्धा की मधुर वाणी को सुनकर मनु के हृदय में जागरण की एक बिजली सी दौड़ गई और वे सहर्ष तथा आश्चर्यचकित होकर यह देखने लगे कि इस मधुर संगीत का गायन कौन है? अर्थात् यह कौन बोल रहा है। उस समय उनका कौतूहल चुप न रह सका, अर्थात् उस मधुर भाषीप्र ाणी को देखने और जानने का कौतूहल मनु के मन में जग गया।

विशेष—'कुतूहल रह न सका फिर मौन' में विशेषण विपर्यय अलंकार है।

और देखा······लिपट घनश्याम।

शब्दार्थ—नयन का=नेत्रों के लिए। इन्द्रजाल=जादू। अभिराम=मनोहर। चन्द्रिका=चाँदनी।

अर्थ—कौतूहल से भर कर जब मनु ने श्रद्धा के सौन्दर्य को देखा तो वह दृश्य उनके नेत्रों के लिए मनोहर जादू के समान था श्रद्धा उन्हें ऐसी प्रतीत हुई जैसे फूलों से लदी हुई कोई लता हो, अथवा बादल चाँदनी से लिपटा हुआ हो।

विशेष—निरंग रूपक, रूपकातिशयोक्ति और उपमा अलंकार है।

हृदय की······संयुक्त।

शब्दार्थ—अनुकृति=प्रतिमूर्ति, नकल। उन्मुक्त=खुला हुआ। मधु

पवन = वसंत ऋतु में चलने वाली मादक वायु। क्रीड़ित = खिलता हुआ। शिशुशाल = शाल का छोटा वृक्ष। सौरभ = सुगंधि।

अर्थ—मनु ने जब श्रद्धा की मधुर वाणी को सुना और उसके अपरिचित सौन्दर्य को देखा तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उसका लम्बा शरीर भी उसकी हृदय की अनुकृति ही हो; अर्थात् जिस प्रकार श्रद्धा का हृदय उदारता आदि भावों से भरा हुआ था और व्यापक था उसी प्रकार उसका शरीर भी स्वच्छन्द और लम्बा था। श्रद्धा का झूमता हुआ शरीर ऐसा प्रतीत होता था जैसे सुगंधि से भरा हुआ शाल का छोटा वृक्ष मादक पवन के साथ क्रीड़ाएँ करता हुआ सुशोभित हो रहा हो।

विशेष—(१) 'हृयय की अनुकृति बाह्य उदार एक लम्बी काया उन्मुक्त' में कवि ने श्रद्धा के आन्तरिक और बाह्य गुणों का संकेत दिया है, अर्थात् श्रद्धा में हृदय के सभी उदात्त गुण उदारता, विशालता, गम्भीरता, मधुरिमा, ममता आदि भरे हुए हों। इसीलिए वह हृदय पक्ष का प्रतीक मानी गई है। ऋग्वेद में भी श्रद्धा का हृदय से सम्बन्ध जोड़ा गया है—

"श्रद्धां हृदय्य याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु।"

(२) 'मधु पव क्रीड़ित ज्यों शिशुसाल' में उपमा अलंकार है।

मसृण······नम।

शब्दार्थ—मसृण = कोमल, चिकने। गांधार = गंधार देश। मेष = भेड़। चर्म = चमड़ा। कान्त = देदीप्यमान। वपु = शरीर। वर्म = कवच।

अर्थ—श्रद्धा का देदीप्यमान शरीर गंधार देश के नीले रोम वाले भेड़ों की चिकनी खालों से ढका हुआ था। खाल के आवरण से ढका हुआ शरीर ऐसे लगता था मानो वह खाल श्रद्धा ने अपने सौन्दर्य पूर्ण अंगों की रक्षा के लिए कवच के रूप में धारण की हो।

वशेष—गम्योत्प्रेक्षा अलंकार है।

नील परिधान······गुलाबी रंग।

शब्दार्थ—नील परिधान = नीले रंग की वेषभूषा। सुकुमार = अत्यन्त कोमल। मृदुल = सुन्दर।

अर्थ—श्रद्धा के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वह नीले रंग की वेशभूषा धारण किए हुए थी। जिसमें से उसका अत्यन्त कोमल और

मनोहर अधखुला शरीर झलक रहा था। वह ऐसा प्रतीत होता था जैसे नीले बादलों के वन में गुलाबी रंग का बिजली का सुन्दर फूल खिला हो।

विशेष—'खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ वन बीच गुलाबी रंग' में वस्तूत्प्रेक्षा और मेघ बन में रूपक अलंकार है।

आह ! वह······छविधाम।

शब्दार्थ—व्योम=आकाश। घनश्याम=नीले बादल। अरुण=लाल। रवि मंडल=सूर्य मंडल। छविधाम=सौन्दर्य का भंडार।

अर्थ—श्रद्धा के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि श्रद्धा का मुख लालिमा से परिपूर्ण था जो ऐसा प्रतीत होता था मानो जब पश्चिम के आकाश में नीले नीले बादल घिर आए हों तो उनको भेदकर सौन्दर्य का भंडार लाल सूर्य मंडल दिखाई देने लगे।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलंकार।

या कि······अश्रांत।

शब्दार्थ—इन्द्रनील-लघु शृंग=नीलम के पहाड़ की छोटी चोटी। कात= सुन्दर। अचेत=शान्त। माधवी रजनी=वसंत की रात। अश्रांत=लगातार।

अर्थ—कवि श्रद्धा के मुख के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कहता है कि वह नवयौवन की लालिमा से युक्त मुख ऐसे दिखाई दे रहा था मानो बसंत की रात में नीलम के पहाड़ की चोटी को फोड़ कर कोई ज्वालामुखी बिना विस्फोट किए लगातार धधक रहा हो।..

विशेष—'वस्तूत्प्रेक्षा और 'या कि' के कारण सन्देह अलंकार है।

घिर रहे······के पास।

शब्दार्थ—अस अवलंवित=कन्धे पर पड़े हुए। नील=नीले। घन-शावक =छोटे-छोटे बादल। सुधा=अमृत। बिधु=चन्द्रमा।

अर्थ—कवि श्रद्धा के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कहता है कि उस लालिमायुक्त मुख के पास ही कोमल और घुँघराले बाल फैले हुए थे। वह ऐसे लगते थे मानो नीले बादलों के छोटे-छोटे टुकड़े अमृत भरने के लिए चन्द्रमा के निकट आए हों।

विशेष—पूर्णोपमा अलंकार।

और उस······अभिराम।

शब्दार्थ—रक्त=लाल। किसलय=नवीन एवं कोमल पत्ती। अरुण=सूर्य। अम्लान=उज्ज्वल। अभिराम=सुन्दर।

अर्थ—श्रद्धा की मुस्कराहट की शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि उसके मुख पर एक स्वाभाविक मुस्कान थी। जो ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो प्रातःकालीन उगते हुए सूर्य की कोई उज्ज्वल किरण 'लाल नवीन कोमल पत्तियों पर विश्राम करती हुई अँगड़ाई लेकर सुशोभित हो रही हो।

विशेष—वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार।

नित्य यौवन······में स्फूर्ति।

शब्दार्थ—नित्य-यौवन=सदैव रहने वाला यौवन। छवि=शोभा। दीप्ति=सुशोभित। करुण कामना मूर्ति=करुणा से भरी हुई कामना की मूर्ति। जड़=चेतना हीन। स्फूर्ति=चेतना।

अर्थ—श्रद्धा के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि उसका यौवन सदैव रहने वाला था और उस चिरयौवन की शोभा से वह सुशोभित हो रही थी। वह भोली थी, अतः ऐसा प्रतीत होता था कि वह संसार की करुणा से भरी हुई कामना की मूर्त्ति है। श्रद्धा के सौन्दर्य को देखकर प्रत्येक के हृदय में उसे स्पर्श करने का आकर्षण पूर्ण रूप से प्रकट हो जाता था। क्योंकि उसके सौन्दर्य में चेतना-हीनों को भी चेतन बना देने की शक्ति थी।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलंकार।

उषा की······बजी गोद।

शब्दार्थ—लेखा=किरण। कांति=सुन्दर। माधुरी=माधुर्य। भर-मोद=आनन्द से भरी हुई। सलजा=सजीली। भोर=प्रातःकाल। द्युति=चमक।

अर्थ—श्रद्धा के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि श्रद्धा के मुख पर बिखरी हुई मुस्कान ऐसी प्रतीत होती थी मानो प्रातःकालीन तारों की प्रकाशपूर्ण गोद में मधुरता में डूबी हुई आनन्द और उल्लास से भरी हुई मस्ती और लज्जा को लेकर उषा की सबसे पहली किरण चमक रही है।

विशेष—वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार।

कुसुम कानन······का आधार।

शब्दार्थ—कानन-अंचल=वन प्रदेश। मन्द-पवन-प्रेरित=मंद मन्द वायु

के द्वारा लाई गई। सौरभ=सुगन्धि। परमाणु-पराग रचित=फूलों के सुगन्धित पराग के परमाणुओं से रची गई। ले मधु का आधार=पुष्प रस को आधार बनाकर।

अर्थ—श्रद्धा के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि श्रद्धा के शरीर से एक प्रकार की नारी सुलभ स्वाभाविक सुगन्ध आ रही थी। जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो वह फूलों से भरे हुए वन प्रदेश में से बसन्त की मन्द-मन्द पवन के द्वारा बहाकर लाई हुई सुगन्धि की साकार प्रतिमा हो और पुष्प रस को आधार मानकर पराग के परमाणुओं से उसके शरीर का निर्माण किया गया हो।

विशेष—वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार।

और पड़ती······अबाध।

शब्दार्थ—शुभ्र=उज्ज्वल। नवल=नवीन। मधुराका=बसन्त कालीन पूर्णिमा की रात्रि। मद-विह्वल प्रतिबिम्ब=मस्ती से चंचल मूर्त्ति। मधुरिमा=माधुर्य। अबाध=निर्विघ्न रूप से।

अर्थ—श्रद्धा के सौंदर्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि श्रद्धा के शरीर से जो सुगन्धि निकल रही थी उस पर जो चंचलता और मस्ती से भरी हुई मुस्कराहट थी उससे ऐसा प्रतीत होता था मानो उस पर वसन्त ऋतु की पूर्णिमा की रात्रि की नवीन चाँदनी पड़ रही हो। और स्वयं मधुरिमा ही निर्विघ्न रूप से उसके ओठों पर मद से आकुल होकर प्रतिबिंबित हो गई हो।

विशेष—वस्तूत्प्रेक्षा और उपमा अलंकार।

कहा मनु······असहाय।

शब्दार्थ—नभ-धरणी=आकाश और पृथ्वी। निरुपाय=अनाथ। उल्का=टूटा हुआ तारा। भ्रांत=भटकता हुआ। शून्य=आकाश, निर्जन प्रदेश।

अर्थ—श्रद्धा की बातें सुनकर मनु ने कहा कि आकाश और धरती के बीच मेरा जीवन अनाथ होकर एक प्रकार की पहेली सा बन गया है। मैं इस शून्य प्रदेश में असहाय होकर इसी प्रकार इधर उधर भटकता फिरता हूँ जिस प्रकार आकाश से तारा टूटकर भटकता हुआ इधर उधर फिरा करता है।

बिशेष—पूर्णोपमा और श्लेष अलंकार।

शैल निर्झर······पाषंड।

शब्दार्थ—शैल = पर्वत । हतभाग्य = अभागा । हिमखंड = बर्फ का टुकड़ा । अंक = गोद । पाषंड = पाखंडी ।

अर्थ—अपनी दयनीय दशा का वर्णन करते हुए मनु श्रद्धा से कहते हैं कि मैं उस भाग्यहीन पर्वत के समान हूँ जिससे कोई झरने की धारा नहीं फूटी और मैं उस बर्फ के टुकड़े के समान हूँ जो कभी नहीं पिघला और समुद्र की गोद में जाकर नहीं मिटा, अर्थात् जो पिघल कर दूसरों को सुख देने वाली नदी नहीं बना । मैं ऐसा ही पाखण्डी हूँ जो स्वयं को तथा दूसरों को छल कर अपने जीवन व्यर्थ ही नष्ट कर रहा हूँ ।

विशेष—मालोपमा अलंकार ।

पहेली-सा ······ अनजान ।

शब्दार्थ—व्यस्त = उलझा हुआ । अभिमान = अहंकार । विस्मृति = भूल । अनजान = अनभिज्ञ ।

अर्थ—मनु अपनी दयनीय अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मेरा यह एकाकी जीवन पहेली की भाँति ही नाना प्रकार की उलझनों से उलझा हुआ है । मैं बड़े अहंकार के साथ इन उलझनों को सुलझाने का प्रयत्न करता हूँ परन्तु मैं सुलझा नहीं पाता इसीलिए मेरे सामने इन्हें भुला देने के सिवा और कोई मार्ग नहीं है । यही कारण है कि अब मैं एक अनभिज्ञ व्यक्ति की भाँति इधर उधर घूम रहा हूँ अर्थात् भटक रहा हूँ ।

विशेष—पूर्णोपमा अलंकार ।

भूलता ही ······ यह संगीत ।

शब्दार्थ—सजल = कोमल । कलित = सुन्दर । तिमिर गर्भ = गहन अन्धकार में । दीन = दुःखी ।

अर्थ—मनु श्रद्धा से अपनी दयनीय स्थिति की वर्णन करते हुए कहते हैं कि मैं दिन रात अपने उस सुन्दर अतीत को भूलता जा रहा हूँ जो कोमल अभिलाषाओं से भरा हुआ था क्योंकि अब मुझे वैसा उल्लास और आनन्द मिलना दुर्लभ है इसीलिए मेरे इस दुःखी जीवन का यह संगीत निरन्तर गहन अन्धकार की ओर बढ़ रहा है अर्थात् मैं दिन प्रतिदिन निराश और दुखी होता जा रहा हूँ ।

विशेष—'सजल अभिलाषा' में विशेषण विपर्यय और 'दीन जीवन का

यह संगीत' में रूपक अलंकार है।

क्या कहूँ······सा राज।

शब्दार्थ—उदभ्रान्त = भटकता हुआ। विवर = गुफा।

अर्थ—अपनी असहाय अवस्था का श्रद्धा से वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि मैं तुम्हें अपने दुखी जीवन के विषय में क्या बताऊँ, मैं तो इस नीले गगन की गुफा में, अर्थात् नील गगन के नीचे इस प्रकार भटक रहा हूँ जैसे कोई वायु की लहर इधर-उधर भटकती फिर रही हो। मेरा जीवन शून्यता के उजड़े हुए राज्य के समान है।

विशेष—उपमा अलंकार है।

एक विस्मृति······विलम्ब।

शब्दार्थ—स्तूप = शिखर। अचेत = जड़। संकलित = समूह।

अर्थ—मनु श्रद्धा से अपने दीन-जीवन की कथा कहते हुए बताते हैं कि मेरा यह अभावों से भरा हुआ जीवन जड़ शिखर की विस्मृति के समान है। इसे मैं प्रकाश का धुँधला-सा प्रतिबिम्ब मानता हूँ, क्योंकि इसमें न कोई आशा है और न कोई उत्साह है। वास्तविकता तो यह है कि अभावों से भरा हुआ मेरा यह जीवन जड़ता की उस राशि के समान है जिसमें सफलता का संग्रह नहीं हो सकता, अर्थात् जीवन में कभी सफलता नहीं मिल सकती।

विशेष—मालोपमा अलंकार।

कौन हो······बयार।

शब्दार्थ—वसन्त के दूत = वसन्तागमन की सूचना देने वाली तथा मधुर गीत गाकर नवीन आशा और उत्साह को उत्पन्न करने वाली कोकिल। विरस पतझड़ = नीरसता से भरा हुआ पतझड़, निराश जीवन। घन तिमिर = गहन अन्धकार, घोर निराशा। चपला = बिजली, आशा। तपन = गर्मी, वेदना। बयार = हवा, बाजी।

अर्थ—मनु श्रद्धा से उसका परिचय पूछते हुए कहते हैं कि तुमने मेरे निराश जीवन में उसी प्रकार नवीन नशा और उत्साह के आने की सूचना दी है जिस प्रकार पतझड़ में कोकिल वसन्तागमन की सूचना देती है; तुमने मेरे घोर निराशा से भरे हुए जीवन में उसी प्रकार आशा की ज्योति उत्पन्न कर दी है, जिस प्रकार गम्भीर अंधकार में बिजली की चमक पथभ्रष्ट को उसका

मार्ग दिखाकर उसे अग्रसर होने की आशा देती है; तुमने मेरी वेदना को अपनी मधुर वाणी से उसी प्रकार कम कर दिया है, जिस प्रकार मंद-मंद चलने वाली हवा गर्मी के दंश को नष्ट कर देती है। मेरे जीवन पर इस प्रकार के प्रभाव डालने वाले के प्रति सुकुमार! तुम कौन हो?

विशेष—रूपकातिशयोक्ति और परम्परित रूपक अलंकार।

नखत की आशा······हलचल शांत।

शब्दार्थ—नखत = नक्षत्र, तारागण। कान्त = रमणीय। लहरी = लहर। दिव्य = महान्। मानस—हृदय, मानसरोवर।

अर्थ—मनु श्रद्धा से उसका परिचय पूछते हुए कहते हैं कि तुम मेरे लिए तारागण की किरण के नशा के समान हो; अर्थात् तुम्हारी मधुर एवं सहानुभूतिपूर्ण वाणी को सुनकर मेरे मन में उसी प्रकार की आशा उत्पन्न हो गई है, जिस प्रकार की आशा कोई व्यथित व्यक्ति तारों की किरणों से लेकर अपनी समस्त व्यथापूर्ण रात्रि को व्यतीत कर देता है। तुम्हारी कोमल, सुन्दर और महान् आशा से भरी हुई वाणी मेरे हृदय की व्यथा और निराशा से उत्पन्न हुई हलचल को उसी प्रकार शांत कर रही है, जिस प्रकार किसी सहृदय कवि की उज्ज्वल एवं रमणीक कल्पना की एक लघु लहर पाठकों के हृदय रूपी मानसरोवर में उठी हुई हलचलों को शांत करके उन्हें आनन्द-विभोर कर देती है।

विशेष—'नखत की आशा किरण समान' में उपमा और 'कर रही मानस हलचल शांत' में श्लेष अलंकार है।

लगा कहने······मधुमय सन्देश।

शब्दार्थ—आगन्तुक व्यक्ति = नवागत व्यक्ति अर्थात् श्रद्धा। उत्कंठा = उत्सुकता। सविशेष = तीव्र। सानंद = आनंदपूर्वक। सुमन = फूल। मधुमय = मधुरता से भरा हुआ।

अर्थ—जब मनु ने श्रद्धा का परिचय प्राप्त करने के लिए विशेष उत्कंठा दिखाई तो श्रद्धा उनकी तीव्र उत्सुकता को मिटाती हुई उसी प्रकार अपना परिचय देने लगी मानो कोई कोकिल आनन्दपूर्वक किसी फूल को मधुरता से भरा हुआ (वसन्तागमन की सूचना का) सन्देश दे रही हो।

विशेष—वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार।

भरा था······प्यारी सन्तान ।

शब्दार्थ—ललित कला=वास्तुकला, मूर्तिकला चित्रकला, संगीतकला और साहित्य कला इन पांचों को ललित कला कहते हैं। गन्धर्व=एक गति-विशेष ।

अर्थ—मनु को अपना परिचय देती हुई श्रद्धा कहती है कि ललित कलाओं का ज्ञान प्राप्त करने का मेरे मन में नवीन उत्साह भरा हुआ था, इसीलिए मैं गन्धर्वों के देश में रहकर अपनी इस इच्छा को पूरी कर रही थी। मैं अपने पिता की प्रिय सन्तान हूँ।

विशेष—'पिता की हूँ प्यारी सन्तान' कहकर श्रद्धा मनु को प्रारम्भ में ही यह संकेत दे देना चाहती है कि वह अपने माँ-बाप से उपेक्षित नहीं है, वरन् किसी विषय परिस्थिति के कारण ही उसके पास आ गई है।

घूमने का······सुन्दर सत्य ।

शब्दार्थ—मुक्त व्योमतल=खुले आकाश के नीचे । कुतूहल=जिज्ञासा । सत्ता का=सृष्टि का ।

अर्थ—मनु को अपना परिचय देती हुई श्रद्धा कहती है कि गन्धर्वों के देश में रहते हुए खुले आकाश के नीचे नित्य धूमने का मेरा अभ्यास बढ़ गया था। मेरे भ्रमण का प्रयोजन यह था कि मेरे मन में एक जिज्ञासा थी और मेरा कला-ज्ञान की प्राप्ति में व्यस्त जीवन इस सृष्टि के सुन्दर सत्य को जान लेना चाहता था।

विशेष—'कुतूहल खोज रहा था व्यस्त हृदय सत्ता का सुन्दर सत्य' में विशेषण-विपर्यय और मानवीकरण अलंकार है।

दृष्टि जब······पीर ?

शब्दार्थ—अधीर=उत्सुक होकर ।

अर्थ—हिमालय पर्वत पर घूमते हुए जब मेरी दृष्टि हिमालय की विशालता और ऊँचाई की ओर जाती तो मेरा मन अत्यन्त उत्सुक होकर यह प्रश्न करने लगता था कि यह क्या भयभीत होकर पृथ्वी के सिकुड़ने से ही इन पर्वतों का जन्म हुआ है ? यदि ये पर्वत पृथ्वी के सिकुड़न के ही रूप हैं तो पृथ्वी को सिकुड़न क्यों हुई ? पृथ्वी के हृदय में ऐसी कौन-सी वेदना भरी हुई थी जिसने सिकुड़न कर इस विशाल पर्वत का रूप धारण कर लिया है ?

विशेष—मानवीकरण और समासोक्ति अलंकार।

मधुरिमा······में अनजान !

शब्दार्थ—मधुरिमा=सौन्दर्य। सोमा सन्देश=छिपा हुआ सन्देश। चेतना=उत्सुकता।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि जब मैं हिमालय पर्वत के सौन्दर्य को देखती थी तो मुझे उसमें मौन रूप में छिपा हुआ एक महान सन्देश सुनाई देता था, जो सजग होकर मुझे बार-बार आगे बढ़ने के लिए संकेत करता था। उसका संकेत पाकर मेरी उत्सुकता और भी अधिक बढ़ गई, पर मैं उसके विषय में कुछ जान न सकी, वह मेरे लिए अनजान ही बना रहा।

विशेष—'एक सोमा सन्देश महान्' में विरोधाभास अलंकार है।

बढ़ा मन······सम्भार।

शब्दार्थ—शैल मालाओं का=पर्वत की चोटियों का। शृंगार=सौन्दर्य। सम्भार=शोभा।

अर्थ—श्रद्धा मनु को अपना परिचय देती हुई तथा हिमालय के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि हिमालय पर्वत का सौन्दर्य देखकर मेरे मन में उसे और अधिक देखने की लालसा जगी, फलतः मेरे पैर आगे बढ़े। हिमालय की उस अनुपम शोभा को देखकर मेरी आँख की भूख मिट गई, अर्थात् उस शोभा को देखकर मुझे अत्यधिक तृप्ति मिली।

विशेष—'आँख की भूख मिटी' में प्रयोजनवती लक्षणा शब्द शक्ति है।

एक दिन······विश्रब्ध।

शब्दार्थ—नग तल=हिमालय पर्वत की तलहटी। क्षुब्ध=अपने पूरे वेग से उमड़कर। विश्रब्ध=निर्भीक।

अर्थ--श्रद्धा मनु से अपना परिचय देती हुई कह रही है कि एक दिन सहसा अपार सागर अपने पूरे वेग से हिमालय की तलहटी से टकराने लगा; अर्थात् प्रलय हो गई। तभी से मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर अकेली ही आज तक निर्भीक होकर इस वन-प्रदेश में घूम रही हूँ।

यहाँ देखा······अनुमान।

शब्दार्थ—भूत-हित-रत=प्राणियों के कल्याण में लगे हुए। सजीव=जीवित।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि इस वन-प्रदेश में एकाकी घूमते-घूमते यहाँ पर पड़ा हुआ बलि का कुछ अन्न देखा और यह जानने की इच्छा हुई कि प्राणियों के कल्याण में लगे हुए किस व्यक्ति का यह दान है। साथ ही यह अनुमान भी लगा लिया कि यहाँ अभी तक कोई जीवित प्राणी रहता है।

तपस्वी क्यों······उद्वेग।

शब्दार्थ—क्लान्त=दुःखी। हताश=निराश। उद्वेग=घबराहट।

अर्थ—अपना परिचय देने के उपरान्त श्रद्धा मनु से उसके दुःख का कारण पूछती है कि हे तपस्वी! तुम इतने दुःखी क्यों हो? तुम्हारी वेदना की यह तीव्रता क्यों है? अरे, तुम इतने निराश क्यों हो? बताओ तो सही, तुम्हारी घबराहट का कारण क्या है?

हृदय में······सुन्दर वेश।

शब्दार्थ—अधीर=धैर्यहीन। निश्शेष=शेष, बाकी।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि हे धैर्यहीन तपस्वी! क्या तुम्हारे हृदय में जीवित रहने की इच्छा शेष नहीं है। अर्थात् क्या तुम जीवित रहना नहीं चाहते? कहीं ऐसा तो नहीं है कि तुम्हारे मन में जो त्याग की भावना है, वही सुन्दर वेश धारण करके तुम्हें ठग रही हो; अर्थात् तुम्हारे मन में निराशा और वैराग्य के भावों को उत्पन्न कर रही हो?

दुख के डर······अनजान।

शब्दार्थ—जटिलताओं का=मुसीबतों का। काम=जीवन की इच्छा।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि कहीं तुम अभी तक न आई हुई जीवन की मुसीबतों का अनुमान करके उनके द्वारा दिये जाने वाले दुःख से तो नहीं डर रहे हो; और इसी कारण भविष्य के प्रति कुछ भी सोच-विचार न करके जीवन की इच्छा से झिझक रहे हो?

कर रही······अनुरक्त।

शब्दार्थ—लीलामय=क्रीड़ापूर्ण; नाना प्रकार के सृष्टि, स्थिति, संहार, अनुग्रह, तिरोधान आदि कार्यों में लीन होकर। महामिति=विराट् चेतना-शक्ति। उन्मीलन=विकास। अभिराम=सुन्दर। अनुरक्त=मोहित।

अर्थ—श्रद्धा मनु को महामिति का स्वरूप बताती हुई कहती है कि एक लीलामय चेतना जिसे महामिति कहा जाता है, इस संसार में सृष्टि, स्थित,

संहार अनुग्रह, तिरोधान आदि कार्यों में लीन होकर आनन्द कर रही है और अपने इन्हीं रूपों में सजग-सी होकर अपने को प्रकट करती रहती है। इस विराट् चेतना-शक्ति से ही विश्व का सुन्दर विकास होता है और इसी कारण प्रत्येक प्राणी इस विश्व में मोहित रहता है, संसार के पदार्थों से बँधा रहता है।

भाव यह है कि इस संसार में जो कुछ होता है, यह सब महामिति की इच्छा से ही होता है, अतः यहाँ पर किसी भी कार्य के लिए पछतावा या शोक करना व्यर्थ है।

विशेष—इन पंक्तियों में प्रत्यभिज्ञा दर्शन की छाप स्पष्ट है। यथा—

१. 'चितिः स्वतन्त्रता विश्वसिद्ध हेतु'; अर्थात् वह महामिति परम स्वतन्त्र है और इस विश्व के उन्मेष का कारण है।

२. 'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति' अर्थात् अपनी इच्छा से ही महामिति अपने अन्तर्गत ही इन विश्व का उदय करती है।

३. बललाभे विश्वमात्मसात्करोति' अर्थात् अन्त में अपने उन्मग्न स्वरूप का आश्रय लेकर अपने अन्तर्गत ही पृथ्वी से लेकर सदाशिव-पर्यन्त सम्पूर्ण विश्व को वह आत्मसात् कर लेती है।

काम मंगल·········भवधाम।

शब्दार्थ—काम मंगल=काम का कल्याणकारी रूप। मंडित=सुशोभित। श्रेय=कल्याणकारी। सर्ग=विश्व। इच्छा=कामना। भवधाम=संसार।

अर्थ—श्रद्धा मनु को समझाती हुई कहती है कि यह संसार काम के मंगलकारी स्वरूप से ही सुशोभित है। इसीलिए यह मंगलकारी है, श्रेयस्कर है। संसार की उत्पत्ति भी काम की इच्छा का ही परिणाम है। तुम काम को तिरस्कर करके और उसके रहस्य को भूल कर इस संसार को व्यर्थ में ही निष्फल बना रहे हो।

दुःख की······सुखगात।

शब्दार्थ—नवल प्रभात=नवीन प्रातःकाल। झीना=बारीक।

अर्थ—श्रद्धा मनु को दुःख-सुख का रहस्य बताती हुई कहती है कि जिस प्रकार रात्रि का अन्तिम प्रहर बीत जाने पर नवीन प्रभात का विकास होता है, उसी प्रकार दुःख की अन्तिम घड़ियाँ बीतने पर सुख की प्राप्ति होती है और जिस प्रकार रात में आकाश के बारीक नीले पर्दे में प्रभात अपना शरीर

छिपाए रहता है उसी प्रकार सुख भी दुःख के पर्दे में छिपा रहता है। कहने का भाव यह है कि सुख और दुःख दोनों ही संसार के अपरिहार्य धर्म हैं।

विशेष—दुःख सुख का यह विवेचन भारतीय साहित्य में भी मिलता है। महाकवि भास ने अपने प्रख्यात नाटक स्वप्नवासवदत्तम् में लिखा है—

चक्र इव परिवर्तन्ते दुःखानि सुखानि च ।

अर्थात् पहिए के समान दुःख और सुख सदैव परिवर्तित होते रहते हैं।

महाकवि कालिदास ने भी लिखा है—

कास्यात्यन्तं सुखमुपगतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥

अर्थात् किसी को केवल सुख अथवा एक मात्र दुःख नहीं मिलता ; अपितु दुःख और सुख रथ के पहिए की परिधि की भाँति ऊपर कभी नीचे रहते हैं ।

II यहाँ पर परंपरित रूपक और रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

जिसे तुम······जाओ भूल ।

शब्दार्थ—अभिशाप=अमंगल । ज्वालाओं=आपदाओं । मूल=उद्गम ईश=परमात्मा । रहस्य=गुप्त ।

अर्थ—श्रद्धा मनु को समझाती हुई कहती है कि तुम जिस दुःख को अपने लिए अमंगल और अनिष्टकारी समझ रहे हो तथा जिसे तुम संसार की समस्त आपदाओं का मूल समझ बैठे हो वास्तव में वह दुःख ही भगवान का गुप्त वरदान है। तुम्हें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि दुःख के पश्चात् ही सुख आनन्दकारी मालूम पड़ता है।

विषमता······दान ।

शब्दार्थ—विषमता=समता का अभाव । व्यस्त=दुःखी । स्पंदित=गतिशील । भूमा=विराट् शक्ति । मधुमयदान=रमणीय बरदान ।

अर्थ=दुःख के स्वरूप का रहस्य बतलाने के उपरान्त श्रद्धा मनु को सुख दुःख की विषमता से भरे हुए संसार के स्वरूप का बोध कराती हुई कहती है कि इस संसार में सुख और दुःख अर्थात् विषमता की स्थिति सदैव बनी रहती है जिसकी पीड़ा से दुःखी होकर यह महान विश्व गतिशील बना हुआ है यही सुख-दुःख के विकास का सत्य है और यही विराट शक्ति का रमणीय वरदान है।

विशेष—डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने विषमता और भूमा शब्दों की व्याख्याएँ इस प्रकार की हैं—

(१) **विषमता**—प्रसाद जी ने इन शब्द का प्रयोग समरसता के विरुद्ध किया है। समरसता जीवन की वह साम्यावस्था है, जिसमें सुख-दुःख सब लीन हो जाते हैं, पाप और पुण्य घुल मिल जाते हैं तथा एकमात्र आनन्द रूप परमार्थ तत्व ही शेष रह जाता है। अतः विषमता जीवन की वह स्थिति हुई जिसमें सुख और दुःख का भेद बना रहता है, पाप-पुण्य पृथक-पृथक रहते हैं, जो भेदपूर्ण सृष्टि का स्वरूप कहलाती है तथा जिसमें सुख, दुःख, ग्राह्य, ग्राहक मूढ़, भाव आदि विद्यमान रहते हैं, किन्तु इसके विरुद्ध समरसता परमार्थ सत्ता की स्थिति है, जहाँ उक्त सभी बातें नहीं रहती। जैसा कि 'स्पन्द शास्त्र' में लिखा भी है :—

"न दुखं न सुखं यत्र न ग्राहको न च।
न यास्ति मूढ़भावोऽपि तदस्ति परमार्थतः॥

(२) **भूमा**—यह शब्द महानता का द्योतक है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है "अतिशयेन बहु इति भूमा" अर्थात भूमा शब्द अतिशयता, बहुलता या बहुत्व का द्योतक है। बहु शब्द को भू आदेश करके इमनिच् प्रत्यय लगाने पर यह भूमा शब्द बनता है। छांदोग्य उपनिषद में नारद तथा सनत्कुमार के प्रसंग में इस 'भूमा' शब्द का विवेचन मिलता है। वहाँ पर बतलाया गया है कि 'यो वे भूमा तत्सुखम' "नाल्पे सुखमस्ति भूमा वै सुखम्" अर्थात् जो भूमा है वही सुख है; अल्प में सुख नहीं है अपितु भूमा ही सुख है। इतना ही नहीं आगे भी लिखा है, "जो भूमा है वही अमृत है और जो अल्प है वह मर्त्य है" इससे यह सिद्ध होता है कि भूमा अल्प के विरुद्ध बहुत्व, विराट सत्ता द्वारा हुआ है और यह सृष्टि उसी समय उत्पन्न हुई, जब वह विराट् सत्ता अपनी साम्यावस्था को छोड़कर विषमावस्था को प्राप्त हुई। किन्तु यह कार्य उसकी इच्छा से हुआ। जैसा कि प्रत्यभिज्ञाशास्त्र में लिखा है कि वह "स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।" अतः इस विषमता को उस विराट् सत्ता ने इस लिए अंगीकार किया कि वह एक से अनेक होना चाहती थी। जैसा कि उपनिषदों में लिखा है—"एकोऽहं बहुस्याम"। अथवा यों कह सकते हैं कि इस अनन्त वैभव-सम्पन्न विश्व का निर्माण करने के लिए ही 'भूमा' ने

इस 'विषमता' को धारण किया था। इसी प्रकार प्रसाद जी ने इस विषमता को भूमा का मधुमय दान कहा है।

५ नित्य समरसता······द्युतिमान।

शब्दार्थ—समरसता=सामरस्य, आनन्द की स्थिति। जलधि समान=समुद्र के समान।

अर्थ—श्रद्धा मनु को संसार में दुःख का कारण बताती हुई कहती है कि यद्यपि समरसता जो सुख और आनन्द की जननी है क्या सब प्राणियों को अधिकार है। परन्तु वे इस अधिकार का उचित प्रयोग न करके तुच्छ सुखों के मोह में विषमता उत्पन्न कर लेते हैं जो समुद्र के समान कारण बनकर उमड़ने लगती है। जिस प्रकार समुद्र के उमड़ने से उसके हृदय में छिपे हुए चमकीले मोतियों के समूह लहरों के थपेड़े खाकर उसके हृदय से निकल कर दूर किनारे पर जा पड़ते हैं इसी प्रकार विषमता के द्वारा उत्पन्न व्यथा के कारण व्यक्ति के हृदय में छिपे हुए सुख बिखर जाते हैं। Upto This

विशेष—१. 'जलधि समान' में उपमा और 'सुख भक्तिगण' में रूपक अलंकार हैं।

२. प्रसाद जी ने यहाँ समरसता शब्द का प्रयोग प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर किया है। इस शब्द की विवेचना करते हुए डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है—

'स्वच्छन्द तंत्र में लिखा है कि जिस तरह एक नदी समुद्र में मिलकर एकरूपता को प्राप्त होती है और समुद्र तथा उस नदी में कोई भेद नहीं रहता, उसी तरह जब आत्मा परमात्मा-भाव को प्राप्त होकर पूर्णतः शिव रूप हो जाती है, उसे 'समरसता' कहते हैं। नेत्र तंत्र में लिखा है कि जब योगी को यह प्रतीति होने लगती है कि न तो मैं हूँ और न कोई मुझ से अन्य है; न कोई ध्याता है और न कोई ध्येय है अपितु सर्वत्र एक शिवरूप ही विद्यमान है; तब उसका आनन्द पदर सलीन हो जाता है, योगी की इसी स्थिति को 'समरसता' कहते हैं। माहेश्वराचार्य अभिनव गुप्त ने लिखा है कि "आनंद शक्ति विजान्ते योगी समरसो भवेत्" अर्थात् आनन्दशक्ति में विश्रान्ति पाने या अखंड आनंद की प्राप्ति को समरसता कहने हैं। 'बोध सार' में श्री नरहरि स्वामी ने भी लिखा है—

'जाते समरसानंदे द्वैतमप्यमृतोपमम् ।
मित्रयोरिव दाम्पत्यो जीवात्मपरमात्मनोः ।'

अर्थात् जिस प्रकार परस्पर अत्यन्त प्रेम करने वाली दम्पति का द्वैत भाव दोनों के समरस हो जाने पर अत्यन्त आनन्ददायक हो जाता है, उसी तरह जीवात्मा तथा परमात्मा के समरस हो जाने पर जीवात्मा को जो आनन्द निर्बाध रूप से प्राप्त होता है, उसमें यह कल्पित द्वैत या भेद-भावना भी ब्रह्मानन्द के तुल्य हो जाती है । अतः जीवात्मा तथा परमात्मा के समरस हो जाने पर जो अखण्ड आनन्द की अवस्था प्राप्त होती है, उसी अवस्था को 'समरसता' कहते हैं ।

यहाँ पर कवि ने 'समरसता के अधिकार' को कारण तथा विषमता को कार्य कहा है और बतलाया है कि जिस तरह कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है, उसी तरह इस विश्व में प्रायः समरसता के अधिकार रूप कारण से विषमता रूप कार्य की उत्पत्ति होती है, जिसमें व्यथा के कारण ऐसी लहरें उठती रहती हैं और प्राणी के सारे सुख छिन्न-भिन्न हो जाते हैं । इसका कारण यह है कि प्राणी समरसता के अधिकारी होकर भी उसे प्राप्त नहीं करता, अपने अधिकार का दुरुपयोग करते हैं और मनु की तरह निराश एवं हताश होकर तुच्छ सुखों की लालसा में पड़े रहते हैं, जिससे समरसता की बजाय उन्हें विषमता ही प्राप्त होती है । यह विषमता ही विश्व का स्वरूप है और जो इस स्वरूप को भली प्रकार समझ लेता है; वही समरसता को प्राप्त कर सकता है । अतः विश्व में व्याप्त विषमता का चित्र अंकित करके यहाँ कवि ने उससे आगे बढ़कर समरसता या अखंड आनन्द को प्राप्त करने की प्रेरणा दी है ।

यहाँ पर कवि ने 'समरसता के अधिकार' को कारण कहकर उसकी उपमा समुद्र से दी है और जिस तरह समुद्र में लहरें उठती हैं तथा उन लहरों में मणियाँ इधर-उधर बिखरी रहती हैं उसी तरह समरसता का अधिकार प्राप्त होने वाले प्राणी के जीवन में व्यथाएँ आती हैं और उन व्यथाओं की हलचल में फँसे रहने के कारण उसके सारे सुख इधर-उधर बिखरे पड़े रहते हैं । अतः यहाँ पर समुद्र कारण है और लहरों का उठना तथा मणियों का बिखरना कार्य है । इसी तरह 'समरसता का अधिकार' कारण है और व्यथा का उठना तथा सुखों का बिखरना उसके कार्य हैं । विषमता में भी दुःख और सुख की यही स्थिति

रहती है। अतः समरसत्ता के अधिकार रूप कारण से विषमता रूप कार्य की उत्पत्ति का ही उल्लेख यहां कवि ने किया है।

लगे कहने······सविलास।

शब्दार्थ—विषाद=खिन्नता। मधुर मारुत से=आनन्ददायक पवन के समान। उच्छ्वास=प्रेरणा देने वाले विचार। उत्साह तरंग=उत्साह की लहरें। मानस=हृदय, मानसरोवर। सविलास=क्रीड़ा के साथ, उमंग के साथ।

अर्थ—श्रद्धा के दार्शनिक और प्रेरणाप्रद विचारों को सुनकर मनु खिन्न होकर कहने लगे कि यद्यपि तुम्हारे ये विचार मेरे मन में आनन्द के साथ उसी प्रकार से उत्साह की लहरों को उत्पन्न करते हैं जिस प्रकार हवा में मन्द झोंके सरोवर में क्रीड़ा करते हुए निर्बाध गति से लहरें उठाया करते हैं।

विशेष—'मारुत से' में उपमा 'उत्साह तरंग' में रूपक और 'मानस' में श्लेष अलंकार है।

किंतु जीवन······कल्पित गेह।

शब्दार्थ—निरुपाय=असहाय। कल्पित-गेह=कल्पना का घर।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि यद्यपि तुम्हारे दार्शनिक और प्रेरणाप्रद विचारों ने मेरे मन में एक प्रकार का उत्साह उत्पन्न किया है तथापि मैं यह मानता हूँ कि यह जीवन अत्यन्त असहाय है। यह मैंने अपने जीवन में देख भी लिया है। अतः इस विषय पर सन्देह करने का अवकाश नहीं है। यह जीवन अन्ततोगत्वा निराशा में ही परिणत होता है। अतः इसे सफलता का कल्पित घर ही समझना चाहिए, अर्थात् यहाँ पर सफलता कभी नहीं मिला करती। उसकी प्राप्ति तो कल्पना-मात्र है।

कहा······वीर।

शब्दार्थ—आगन्तुक=श्रद्धा। सस्नेह=प्रेमपूर्वक। अधीर=दुखी।

अर्थ—मनु के निराशा भरे शब्दों को सुनकर श्रद्धा ने प्रेमपूर्वक कहा कि अरे तुम इतने दुखी क्यों हो रहे हो। तुम जीवन के उस दाव को हार बैठे हो जिसको वीर लोग मृत्यु का वरण करके भी प्राप्त करते हैं।

तप नहीं······आह्लाद।

शब्दार्थ—करुण=करुणा से भरा हुआ। अवसाद=दुःख। तरल आकांक्षा=उन्नति की अभिलाषा। आह्लाद=प्रसन्नता।

अर्थ—श्रद्धा मनु को प्रवृत्ति मार्ग की ओर अग्रसर करने का प्रयास करती हुई कहती है कि तुम केवल तप को ही सर्वस्व समझ बैठे हो किन्तु यह जीवन का सत्य नहीं है। भ्रान्त धारणा के कारण तुम्हारे मन में करुणा और क्षण-भंगुर दुःख घर कर गया है। तथा आशाओं का वह हर्ष जो उन्नति की अभिलाषाओं से भरा हुआ होता है सो गया है। भाव यह है कि जीवन का वास्तविक सत्य न समझ सकने के कारण मनु दुःख और निराशा से व्यथित हैं।

प्रकृति······धूल।

शब्दार्थ—वासी = मुरझाए हुए।

अर्थ—श्रद्धा मनु को समझाती हुई कहती है कि जिस प्रकार प्रकृति अपने यौवन का शृंगार मुरझाए हुए फूलों से नहीं किया करती और उन्हें नष्ट करके उस धूल में फेंक देती है जो उनके लिए लालायित रहती है। उसी प्रकार प्रकृति उस मनुष्य को भी प्रश्रय नहीं देती जिसके मन में नवीन आशाओं का संचार नहीं होता और जो सदैव निराशा के दुःख में डूबा रहता है। भाव यह है कि जीवित रहने के लिए नवीन आशाओं का मन में संचार करना अनिवार्य है।

पुरातनता······टेक।

शब्दार्थ—पुरातनता = रूढ़िवादिता। निर्मूल = कैंचुली। टेक = आश्रय।

अर्थ—श्रद्धा मनु को समझाती हुई कहती है कि यह प्रकृति एक पल के लिए भी रूढ़िवादिता की कैंचुली को सहन कहीं करती इसलिए यह परिवर्तन के आश्रय में नित्य नवीनता का आनंद प्राप्त करती रहती है। कहने का भाव यह है कि वही व्यक्ति इस संसार में आनन्द प्राप्त कर सकता है जो रूढ़िवादिता को छोड़कर नवीनता को ग्रहण करे।

युगों की······अधीर।

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—श्रद्धा मनु को प्राचीनता का रहस्य बताती हुई कहती है कि प्रत्येक युग में अपनी-अपनी रूढ़ियाँ होती हैं। किन्तु प्रकृति उन रूढ़ियों की कठोर चट्टानों पर अपने पद चिन्ह छोड़ती हुई आगे बढ़ जाती है। देव, गन्धर्व, असुर आदि सभी लोग प्रकृति के इस विकास का अनुसरण करते हुए चलते हैं।

एक तुम······आनंद।

शब्दार्थ—विस्तृत=विशाल। भूखण्ड=भूमंडल। अमन्द=अत्यधिक। जड़=पृथ्वी। चेतन आनन्द=चेतन प्राणी के समान आनन्द प्राप्त करना।

व्याख्या—श्रद्धा मनु को वैभव-सम्पन्न होने के लिए प्रोत्साहन देती हुई कहती है कि एक ओर तुम हो जो थके से बैठे हो दूसरी ओर यह विशाल भूमण्डल है जो स्थायी प्राकृतिक ऐश्वर्य से परिपूर्ण है, यहाँ पर संचित कर्मों का भोग हो रहा है तथा आगामी भोगों के लिए निरन्तर कर्म किए जा रहे हैं। इस जड़ प्रकृति में चेतन प्राणी के सुख का विधान इसी नियम के अनुसार होता है।

विशेष—'जड़ चेतन आनन्द' में विरोधाभास अलंकार है।

अकेले तुम······आत्म-विस्तार।

शब्दार्थ—यजन=यज्ञ, परन्तु यहाँ कवि तात्पर्य सृष्टि के निर्माण से है। आत्म विस्तार=अपना विकास।

अर्थ=श्रद्धा मनु से कहती है कि तुम अकेले ही सृष्टि निर्माण का यज्ञ कैसे पूरा कर सकते हो। क्योंकि कोई भी यज्ञ बिना सहधर्मिणी के पूरा नहीं हो सकता। मुझे ऐसा लगता है कि बहुत दिन अकेले रहने के कारण तुम आकर्षण विहीन हो गए हो, जो कि तुम अपना विकास नहीं कर सके।

दब रहे······बिना बिलम्ब।

शब्दार्थ—अवलम्ब=सहायक। सहचर=जीवन-संगी। उऋण होना=कर्त्तव्य पालन करना।

अर्थ—श्रद्धा मनु की सहचरी बनना चाहती है। यही प्रस्ताव मनु के सम्मुख प्रस्तुत करती हुई कहती है कि - तुम तो स्वयं ही अपने बोझ से दबे जा रहे हो, अर्थात् तुम्हारा जीवन ही तुम्हारे लिए भार स्वरूप बन गया है। इसलिए तुम सहारा क्यों नहीं खोजते। क्या मैं किसी प्रकार की भी व्यर्थ देर किए बिना तुम्हारी सहचरी बनकर कर्त्तव्य पालन नहीं कर सकती।

समर्पण······बिगत-विकार।

शब्दार्थ—समर्पण=अर्पण करना। लो=स्वीकार करो। सेवा का सार=सेवा का मूल तत्त्व। सजल संस्मृति=जलमय जगत। पतवार=नौका को पार लगाने का साधन। उत्सर्ग=न्यौछावर। पदतल में=चरणों में। विगत विकार=निर्विकार।

अर्थ—श्रद्धा मनु को आत्म-समर्पण करती हुई कहती है कि मैं तुम्हारी जीवनसंगिनी बनने के लिए आत्म-समर्पण करती हूँ, इसे तुम स्वीकार करो। यह मेरा सर्वस्व समर्पण सेवा का मूल तत्त्व है और यह मेरा समर्पण संसार-सागर में बहने वाली तुम्हारी जीवन नैया के लिए पतवार के समान सिद्ध होगा। आज से मैं अपना जीवन तुम्हारे चरणों में न्यौछावर करती हूँ। मेरे इस समर्पण में कोई स्वार्थ भावना नहीं छिपी हुई है बल्कि शुद्ध आत्म-समर्पण है।

विशेष – परंपरित रूपक अलंकार।

दया माया……है पास।

शब्दार्थ—माया = मोह। रत्ननिधि = रत्नों का भण्डार। स्वच्छ = निर्मल। तुम्हारे लिये खुला है = समर्पित है।

अर्थ—श्रद्धा आत्म समर्पण करती हुई कहती है कि मेरा हृदय स्वच्छ रत्नों का भण्डार है। उसमें दया, माया, ममता, माधुर्य, गम्भीर विश्वास आदि सभी भाव भरे हैं, जिन्हें तुम अपनी इच्छानुसार ले सकते हो। कहने का भाव यह है कि ऐसे रत्नों से भरा हुआ हृदय मैं तुम्हें सहर्ष समर्पित करती हूँ।

विशेष—'हृदय रत्न निधि' में रूपक अलंकार है।

वनों में संसृति……सुन्दर बेल।

शब्दार्थ – संसृति = सृष्टि। मूल रहस्य = मूल कारण। बेल = सृष्टि की लता। सौरभ = सुगन्धित। सुमन = फूल।

अर्थ—श्रद्धा मनु को नवीन सृष्टि के लिए प्रेरित करती हुई कहती है कि नवीन सृष्टि के तुम आदि पुरुष बनो। आगामी नवीन जाति के बेल तुम्हारे से ही फैल सकती है। लता पर फूले हुए फूलों की सुगंधि जिस प्रकार फैल जाती है उसी प्रकार तुम्हारी सुन्दर संतति के सुन्दर कार्यों से तुम्हारा यश फैले।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

और यह……जय-गान।

शब्दार्थ—विधाता = सृष्टि का रचयिता। मंगल = कल्याणकारी।

अर्थ – श्रद्धा मनु से कहती है कि और क्या तुमने भगवान के इस कल्याण-कारी वरदान की वाणी को नहीं सुन रहे कि शक्तिशाली बनकर विजय प्राप्त करो? उनके-विजय गान की यह ध्वनि संसार के कोने-कोने में गूंज रही है।

डरो मत······समृद्धि ।

शब्दार्थ—अमृत संतान=देवपुत्र । अग्रसर=आगे । मंगलमय=कल्याण वृद्धि=विकास । समृद्धि=वैभव ।

अर्थ—श्रद्धा मनु को नवीन सृष्टि की रचना के लिए प्रेरित करती हुई कहती है कि हे देव पुत्र ! तुम इस नवीन सृष्टि का विकास करने के लिए निडर होकर कर्म करो । आगे कल्याणकारी विकास ही विकास है । तुम्हारा भविष्य मंगलमय है और जीवन आकर्षण से भरा हुआ है । अतः संसार का समस्त वैभव स्वयं खिचकर तुम्हारे तक आ जाएगा ।

देव असफलताओं······चेतन राज ।

शब्दार्थ—ध्वंस=नाश । प्रचुर=अधिक । उपकरण=सामग्री । जुटाना=इकट्ठी करना । मनका चेतन राज=मन का भाव ।

अर्थ—श्रद्धा मनु को नवीन सृष्टि निर्माण के लिए प्रेरणा देती हुई कहती है कि जिस प्रकार टूटी-फूटी वस्तु को गला कर नवीन वस्तु का रूप दिया जाता है उसी प्रकार देवताओं को अपने जीवन में जिन कारणों से असफलता मिली और उनका नाश हुआ वह हमारे विचार के लिए बहुत सी सामग्री छोड़ गए हैं । उन्हीं असफलता के खंडहरों पर पुनः नवीन वैभव सम्पन्न सृष्टि का निर्माण करो, जो मन उस अवस्था में विलासिता से भरा हुआ था उसमें अब दया, सेवा, अहिंसा, परोपकार आदि उदात्त भावों से भर दो जिससे वह चेतना से युक्त होकर पूर्णावस्था को प्राप्त हो ।

विशेष—'देव असफलताओं का ध्वंस' में रूपक अलंकार है ।

चेतना का······हो नित्य ।

शब्दार्थ—अखिल=सभी । सत्य=प्रकृति । हृदय पटल=हृदय पर । दिव्य अक्षर=ज्ञान ।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि मैं चाहती हूँ कि सभी भाव अपने स्वाभाविक रूप में ही हृदय पर अंकित हों । इस प्रकार चेतना का एक सुन्दर इतिहास प्रस्तुत हो । अर्थात् हमेशा के लिए विद्यमान रहे ।

विशेष—१. 'विश्व के हृदय' में उपादान लक्षणा है ।
२. 'हृदय-पटल' में रूपक अलंकार है ।

विधाता की······हो चूर्ण ।

शब्दार्थ—कल्याणी=मंगलमय। भूतल=पृथ्वी। पटना=भरना।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि विधाता द्वारा रची हुई कल्याणमयी आगामी सृष्टि इस पृथ्वी पर पूर्ण सफलता प्राप्त करे। चाहे विघ्न स्वरूप समुद्र के पानी से ही सारी पृथ्वी भर जाए, चाहे सूर्य-चन्द्र तारे आदि अपने स्थान से विचलित हो जाएँ, और चाहे ज्वालामुखी पर्वत घटने लगें।

उन्हें चिनगारी······रहे न बन्द।

शब्दार्थ—सदृश=समान। सदर्प=गर्व सहित।

अर्थ—श्रद्धा नवीन सृष्टि की कामना करती हुई कहती है कि जिस प्रकार पैर आग की चिनगारी को कुचल देते हैं वैसे ही इन बाधाओं को कुचल कर मानव जाति अपना सिर गर्व से ऊँचा रखे और जहां पवन की गति है, पृथ्वी और जल है वहां वहाँ उसकी कीर्ति फैल जाए।

विशेष—'चिनगारी सदृश' में उपमा अलंकार और 'कुचलती रहे खड़ी सानंद' में मानवीकरण अलंकार है।

जलधि·····उपाय।

शब्दार्थ—उत्स=धार, स्रोत। कच्छप=कछुआ। उतरना=जल के ऊपर निकलना। अभ्युदय=उन्नति।

अर्थ—श्रद्धा नवीन सृष्टि की उन्नति की कामना करती हुई कहती है कि भले ही समुद्र की कितनी ही धाराएँ फूट निकले उनमें द्वीप कछुए के समान कभी डूबें और कभी बाहर निकल आवें, परन्तु मानव जाति का दृढ़ साहस किसी दृढ़ मूर्ति के समान कभी न टूटे। और अपनी भौतिक उन्नति का उपाय हमेशा करती रहे।

विशेष—'रूपक अलंकार।

विश्व की·····संचार।

शब्दार्थ—पराजय का बढ़ता व्यापार=हार पर हार। सविलास=प्रसन्नतापूर्वक। क्रीड़ामय=सुखदायिनी। संचार=उत्पादन।

अर्थ—श्रद्धा मानव सृष्टि की भलाई के लिए कामना करती हुई कहती है कि आगे चलकर विश्व अपनी दुर्बलताओं से हताश न हो, उन पर विजय प्राप्त करने का बल संचार करे। यदि कहीं किसी दुर्बलता के कारण इसे हार पर हार खानी भी पड़े तो उस पराजय के कारण यह मानव सृष्टि

दुःखी न हो। अपितु इसमें इतनी व्यापक शक्ति हो कि यह आनन्दपूर्वक हँसती रहे।

विशेष—'दुर्बलता बल बने' में विरोधाभास अलंकार है।

शक्ति के.........हो जाय।

शब्दार्थ—विद्युतकण=परमाणु। व्यस्त=बिखरे। विकल=अशांत। निरुपाय=असहाय। समन्वय=एकत्र। मानवता=मानव सृष्टि।

अर्थ—श्रद्धा कहती है कि जिस प्रकार विद्युतकण अलग-अलग रहने पर कुछ भी नहीं कर सकते परन्तु मिलकर लोकों की रचना करते हैं, इसी प्रकार मानव सृष्टि की शक्ति भी बिखरी पड़ी होने के कारण कुछ करने में असमर्थ है और निस्सहाय-सी लगती है। किन्तु यह मानव सृष्टि यदि समन्वय का रूप धारण कर ले तो मानव जाति जय को प्राप्त करे।

काम

कथासार—जब श्रद्धा मनु के सम्पर्क में आ गई और उसने अपना समर्पण कर दिया तो मनु के विचारों में एक प्रकार की उथल-पुथल होने लगी। उन्हें अनुभव हुआ जैसे उनके जीवन में यौवन ने चुपके-चुपके प्रवेश कर लिया है। वे सोचते हैं कि यौवन का आगमन कितना मधुर, मादक एवं आकर्षक होता है। वह जीवन के रूप को उसी प्रकार बदल देता है जिस प्रकार वसन्त के आने पर बन का रूप बदल जाता है। जीवन में एक प्रकार का नवजीवन भर जाता है, नवीन आशाओं का उदय हो जाता है और मन में निश्चिन्तता तथा स्वच्छन्दता की भावना जग जाती है। इसी प्रसंग में, मनु को देवताओं के भोग-विलासों की स्मृति हो आती है और उनका मन एक बार फिर, क्षण-भर के लिए ही सही, विरक्ति एवं निराशा से उद्वेलित हो जाता है।

अपनी गुफा में बैठे हुए मनु इन्हीं विचारों में तल्लीन थे। सहसा उनकी दृष्टि आकाश की ओर चली गई जो चमकते हुए तारों से भरा हुआ था। वे सोचने लगे कि इन तारों की दुनिया के पीछे अवश्य कोई ऐसी शक्ति निहित है जिसका जान लेना आसान नहीं है, और जो मानव-चिन्तन के लिए रहस्य बनी हुई है। साम्य रूप-सौन्दर्य के कारण उन्हें श्रद्धा याद आ जाती है। वे सोचने लगते हैं कि श्रद्धा पुनः उन्हें सृष्टि के प्रपंचों में फँसने के लिए प्रेरित कर रही है। चाहे मुझे कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े, परन्तु मैं श्रद्धा के द्वारा बताये गये प्रवृत्ति-मार्ग पर कभी भी नहीं चलूँगा।

यही सोचते-सोचते मनु को नींद आ जाती है। स्वप्न में काम उन्हें दर्शन देकर बताता है कि श्रद्धा उसकी और रति की पुत्री है। जबसे देवताओं का नाश हुआ है, काम को आश्रय नहीं मिला और वह भटकता हुआ फिर रहा है। अतः वह मनु को समझाता है कि वह श्रद्धा को ग्रहण करे और उसके साथ सुखपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए सृष्टि का पुनर्निर्माण करे। इसी समय मनु

के मन में एक शंका उत्पन्न हुई। उन्होंने काम से पूछा—'हे देव ! आलोक एवं सौन्दर्य की उस अक्षयनिधि के समीप पहुँचने के लिए कौन-सा मार्ग है ? और व्यक्ति उस मार्ग को किस प्रकार प्राप्त कर सकता है ? परन्तु मनु के इस प्रश्न का उत्तर देने वाला वहाँ कोई नहीं था, देखा सामने सूर्य की स्वर्ण-किरणें मनु के गुफा के द्वार पर छाई हुई सोमलता के बीच में से झाँक रही थीं।

मधुमय······पहरों में ?

शब्दार्थ—मधुमय बसन्त=मादक बसन्त ; युवावस्था। रजनी के निकले पहरों में=रात के अन्तिम समय में अर्थात् यौवन के प्रारम्भ में।

अर्थ—मनु अपने जीवन में आए हुए यौवन की तुलना बसन्त से करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार वन में चुपचाप बसन्त अन्तरिक्ष की लहरों में बढ़ कर—किसी अज्ञात स्थान से आकर—उसके रूप को बदल देता है, उसी प्रकार हे यौवन ! तुम भी चुपचाप किसी अज्ञात स्थान से आकर मेरे जीवन-वन में प्रवेश कर गये हो। तुम मेरे यौवनारंभ के काल में कब मेरे जीवन में प्रवेश कर गये हो, इसका मुझे तो पता नहीं, अतः तुम्हीं इस रहस्य को बताओ।

विशेष—रूपक और रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

क्या तुम्हें······खोली थी ?

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—मनु अपने यौवन को सम्बोधित करते हुए उससे पूछते हैं कि जब तुमने मेरे जीवन में प्रवेश किया तो तुम्हें इस प्रकार चुपके-चुपके आते देखकर क्या मतवाली कोयल बोली थी ? क्या उस समय नीरवता से अलसाई हुई कलियों ने अपनी आँखें खोली थीं ? मनु का कहने का भाव यह है कि जब वन में बसन्त आता है तो कोयल के गीत और कलियों का खिलना उसकी आगमन की सूचना देते हैं, किन्तु तुमने तो मेरे जीवन में इस प्रकार चुपके-चुपके प्रवेश किया कि मुझे कुछ पता ही न लग सका।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

जब लीला······सच कहना ?

शब्दार्थ—लीला=खेल। कोटक=कलियाँ। शिथिल मन्द-मन्द गति से बहने वाली या गिरने वाली। सुरभि=सुगंधि। विछलन=फिसलन, आकृष्ट करना।

अर्थ—अपने यौवन को सम्बोधित करते हुए मनु कहते हैं कि हे यौवन ! जिस प्रकार बसन्त कलियों के कोनों में छिपकर खेल खेलता है और उस समय मन्द पवन के चलने से कलियों का सुगन्धित मकरंद पृथ्वी पर गिरकर फिसलन पैदा कर देता है, क्या उसी प्रकार तुम भी प्रेम की उमंगों से आँख-मिचौनी का खेल नहीं सीख रहे थे और हृदय को आकृष्ट करने वाली भावनाओं को जन्म नहीं दे रहे थे ? तुम इस बात को सच-सच बताना। कहने का भाव यह है कि जिस समय पृथ्वी पर बसन्त ने अपनी सुषमा का प्रसार किया, उसी समय यौवन ने भी जीवन में प्रवेश करके प्रेमभरी मधुर भावनाओं को जगा दिया।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

जब लिखते……अम्बर में।

शब्दार्थ—सरस = आनन्द देने वाली। कलकंठ = मधुर ध्वनि। काकली = कोमल। दिगंत = दिशाओं के कोने। अम्बर = आकाश।

अर्थ—यौवन को सम्बोधित करते हुए मनु कहते हैं कि जिस प्रकार बसन्त फूलों को खिला कर उनकी खुली हुई पंखुड़ियों पर हँसी के समान शोभा की धवलता अंकित कर देती है, उसी प्रकार तुम भी फूलों के समान खिले हुए होठों पर सरस हँसी बिखेर रहे थे और झरनों की मधुर ध्वनि में अपनी मधुर ध्वनि मिला रहे थे, अर्थात् तुम्हारे जीवन में माधुर्य ओतप्रोत हो गया था जो वाणी से निरन्तर फूटकर बह रहा था।

जिस प्रकार बसन्त के आगमन पर बोलने वाली कोयल के स्वर में निश्चिन्तता और उल्लास भरा हुआ होता है, उसी प्रकार तुम्हारे आगमन पर जीवन में निश्चितता और उल्लास के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। और जिस प्रकार उस कोयल की ध्वनि दिशाओं के कोनों को प्रतिध्वनित करके आकाश में गूंजती रहती है, उसी प्रकार निश्चिन्तता एवं उल्लास से भरी हुई भावनाएँ हृदय से टकरा कर जीवन को गुंजाती रहती हैं।

विशेष—'निश्चिन्त आह' वह था कितना उल्लास काकली के स्वर में, ये रूपकातिशयोक्ति और 'जीवन दिगन्त के अम्बर में', में रूपक अलंकार है।

शिशु चित्रकार……भरते।

शब्दार्थ—शिशु चित्रकार = चित्र बनाने वाला बच्चा ; भोला यौवन।

अस्पष्ट=जो स्पष्ट न हो। ज्योतिमयी=प्रकाश से पूर्ण ; उज्ज्वल भविष्य से भरी हुई। जीवन की आँखों में=जीवन रूपी आँखों में।

अर्थ—मनु यौवन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार कोई चित्रकार बच्चा अपनी चंचलता के कारण चित्र में उल्टी-सीधी रेखाएँ खींच कर उनमें अनेक आशाओं को अंकित कर देता है और वह चित्र अस्पष्ट होते हुए भी प्रकाशपूर्ण होता है—शिशु चित्रकार की भावनाएँ उसमें निहित होती हैं—उसी प्रकार तुम भी अपनी चंचलता के कारण हृदय में अनेक प्रकार की आशाएँ उत्पन्न करते रहते हो। यद्यपि इन आशाओं का स्वरूप धुँधला होने के कारण किसी की समझ में नहीं आता, फिर भी तुम उनमें उज्ज्वल भविष्य की भावनाएँ भर देते हो।

विशेष—शिशु 'चित्रकार' में रूपकातिशयोक्ति और 'जीवन की आँखों में' रूपक अलंकार है।

लतिका-घूंघट······सारा।

शब्दार्थ—कुसुम-दुग्ध=पुष्प-रस। मधु-धारा=आनन्द देने वाली धारा। प्लावित करती=आनन्द से भरती। मन-अजिर=मन रूपी प्रांगण।

अर्थ—यौवन को सम्बोधित करते हुए मनु कहते हैं कि हे यौवन! जिस प्रकार बसन्त के आगमन पर कलियाँ लताओं में छिपकर भी अपनी चितवन से पुष्प रस को प्रवाहित करके वन के सारे आँगन को रस-मग्न कर देती हैं, जिसकी शोभा के सामने संसार का सारा वैभव तुच्छ प्रतीत होता है, उसी प्रकार तुम्हारे आगमन पर अंगनाएँ भी अपने घूँघट में से चितवन से दूध के समान निर्मल और आनन्द देने वाली धारा प्रवाहित करके युवकों के मन रूपी आँगन को आनन्द से भर देती हैं। उस आनन्द के सामने सारे संसार का वैभव तुच्छ होता है।

विशेष—सांगरूपक और उपमा अलंकार।

वे फूल······एकांत बना।

शब्दार्थ—वे फूल=फूल के समान कोमल देव-बालाएँ। सौरभ=सुगंधि। निश्वास छूना=रुक-रुक कर आने वाला सांस। एकांत बना=नष्ट हो गया।

अर्थ—मनु को यौवन का विश्लेषण करते-करते नष्ट हुए देव जगत् की याद आ जाती है। वे व्यथित होकर कहने लगते हैं कि वे फूल जैसी कोमल

देव-बालाएँ, उनकी सुगंधि से भरी हँसी, रुक-रुक कर आने वाले साँस, मधुर ध्वनि, मादक संगीत और जीवन का कोलाहल सभी-कुछ नष्ट हो गया।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

कहते-कहते······अभिलाषा भी।

शब्दार्थ—प्रगति अभिलाषा की=विचारों का ताँता।

अर्थ—देव-सृष्टि के विध्वंस की याद आते ही मनु का हृदय असीम विषाद से भर गया। वे निराशा भरे विश्वास छोड़ते हुए बहुत-कुछ सोचते रहे। इस प्रकार उनके विचारों में एक प्रकार का व्यवधान तो आ गया, पर फिर भी उनके विचारों का ताँता बना रहा।

ओ नील······जितना।

शब्दार्थ—नील आवरण=नीला आकाश। दुर्बोध=कठिनाई से समझ में आने वाला। अवगंठन=परदा, अन्धकारमय।

अर्थ—मनु नीले आकाश को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे नीले आकाश! तू इस संसार के लिए परदा तो है—रहस्य तो है, पर तू स्वयं इतना दुर्बोध नहीं है, जितना तेरा वह रूप है जो प्रकाश धारण करते हुए भी संसार के लिए अन्धकारमय बना हुआ है कहने का भाव यह है कि तेरा प्रत्यक्ष रूप तो समझ में आ जाता है, किन्तु तेरे मानस में चमकने वाले गुट, नक्षत्र आदि रहस्यमय ही बने हुए हैं।

विशेष—'ओ नील आवरण जगती के' में रूपकातिशयोक्ति और 'अवगुण्ठन होता आँखों का आलोक' में विरोधाभास अलंकार है।

चल चक्र······असफलता तेरी।

शब्दार्थ—चल चक्र वरुण का=नक्षत्र-मंडल। तारों के फूल=तारागण।

अर्थ—नक्षत्र-मंडल को सम्बोधित करते हुए मनु कहते हैं कि हे नक्षत्र-मंडल! तू प्रकाश से परिपूर्ण होकर आकाश में क्यों फेरी देता रहता है। संभवतः तू किसी की खोज कर रहा है जिसे ढूँढ़ने में तू अभी तक सफल नहीं हो पाया है, अतः बिखरे हुए तारागण के रूप में तेरी असफलता बिखरी हुई है।

विशेष—रूपक, मानवीकरण व्युत्पत्ति अलंकार।

नव नील······मकरंद हुई।

शब्दार्थ—नव नील कुँज=नवीन नीले आकाश के कारण कुंज के समान देने वाले तारे-समूह। धीम रहे=झूम रहे हैं, मस्ती में लहलहा रहे है। कुसुम=फूल तारे। कथा न बन्द हुई=वार्तालाप बन्द नहीं हुआ, ज्योति क्षीण नहीं हुई। आमोद=प्रसन्नता। हिम-कणिका=ओस की बूँद। मकरंद=पुष्प-रस।

अर्थ—आकाश के सौंदर्य को देख कर मनु कहते हैं कि आकाश में उगे हुए तारों के समूह उसकी नवीन नीलिमा के कारण कुंजों के समान दिखाई देते हैं। जो मस्ती से झूम रहे हैं, इन कुंजों के फूल के समान तारे अभी ज्योति-विहीन नहीं हुए हैं, अतः परस्पर वार्तालाप करते हुए-से दिखाई देते हैं। समस्त अन्तरिक्ष प्रसन्नता से भरा हुआ दिखाई दे रहा है। यहाँ पर ओस की बूंद ही पुष्प-रस बनी हुई है।

बिशेष—सांग रूपक अलंकार।

इस इन्दीवर······कारा।

शब्दार्थ—इन्द्रीवर=कमल, चन्द्रमा। मधु की धारा=मकरन्द की धारा, चाँदनी का प्रकाश। मधुकर=भौंरा। अनुरागमयी=प्रेम से भरी हुई। कारा=जेल, बन्दीगृह।

अर्थ—आकाश में चमकते हुए चन्द्रमा को देखकर मनु कहते हैं कि चंद्रमा आकाश-रूपी कुंज में फूल के समान चमक रहा है और जिस प्रकार फूल अपना मकरंद बराबर वातावरण को मादक और सुगंधिमय बना देता है। उसी प्रकार चंद्रमा ने अपनी चाँदनी का प्रकाश फैला कर समूची प्रकृति को मादक बना दिया है। जिस प्रकार कमल भौंरे के लिए प्रेम से भरी हुई तथा मन को मोहने वाली कारा बन जाता है, उसी प्रकार मन रूपी भौंरे के लिए यह वातावरण आकर्षक बन्दीगृह बना हुआ है।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति और सांगरूपक अलंकार।

अणुओं को······कितना।

शब्दार्थ—कृतिमय वेग=कार्य की गति। अविराम=निरन्तर।

अर्थ—मनु आकाश में निरन्तर घूमते हुए नक्षत्र-मंडल को देखकर कहते हैं कि इन अणुओं को कहीं भी विश्राम नहीं हैं। इनमें कार्य की गति बहुत अधिक भरी हुई है। निरन्तर गति से घूमने वाले ये नक्षत्र समूह ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे

ये कम्पन के साथ नाच रहे हों और इनमें अमित उल्लास एवं सजीवता भरी हुई हो।

विशेष—'अविराम नाचता कम्पन है, में विशेषण-विपर्यय अलंकार है।

उन नृत्य शिथिल····· छाया।

शब्दार्थ—नृत्य-शिथिल=नाच के कारण थके हुए। मोहमयी माया= मोहित करने वाला जादू। समीर=वायु। प्राणों की छाया=प्राणों को शांति प्रदान करने वाला।

अर्थ—आकाश में निरन्तर घूमते हुए नक्षत्र-मंडल को देखकर मनु कहते हैं कि जिस प्रकार नाच के कारण थके हुए किसी नर्तकी के सांस दर्शकों के लिए मोहित करने वाले जादू के समान होते हैं, उसी प्रकार आकाश में निरन्तर घूमने के कारण थककर साँस-सा छोड़ने वाले ये नक्षत्र बहुत ही आकर्षक प्रतीत होते हैं; और जिस प्रकार नर्तकी का रुक-रुक कर आने वाला साँस दर्शकों को आनंद प्रदान करने वाला होता है, उसी प्रकार इनसे छनकर आती हुई मन्द पवन मन को अत्यधिक शांति प्रदान करने वाली है।

विशेष—समासोक्ति और सांगरूपक अलंकार।

आकाश रन्ध्र······रोती है।

शब्दार्थ—आकाश-रन्ध्र=आकाश में चमकते हुए तारे जो छेद से दिखाई देते हैं। पूरित-से=भरे हुए-से। आलोक=प्रकाश करने वाले नक्षत्र आदि।

अर्थ—आकाश में टिमटिमाते हुए तारों को देखकर मनु कहते हैं कि ये तारे ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे आकाश के छेद हों और आकाश से भरे हुए हों। इन तारों के कारण पृथ्वी पर गहन नीरवता और निस्तब्धता छाई हुई है जिसने संसार को अत्यन्त गम्भीर बना दिया है। इस समय प्रकाश करने वाले ये नक्षत्र आदि तो सोये-से जान पड़ते हैं, किंतु मेरी आँखों में नींद नहीं है और थकावट के कारण ये रोती-सी प्रतीत हो रही हैं।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

सौंदर्यमयी·····जांच रही।

शब्दार्थ—सौंदर्यमयी चंचल कृतियाँ=सुन्दरता से भरे हुए चन्द्रमा तथा तारे आदि। जाँच रहीं=बाधा डाल रही हैं।

अर्थ—मनु आकाश के सौंदर्य को देखकर कहते हैं कि सुन्दरता से भरे

हुए चंद्रमा तथा तारे आदि एक प्रकार का रहस्य बनकर घूमते रहते हैं। मैं इनके रहस्य को जानने का बहुत प्रयास करता हूँ, परन्तु मेरी समझ में कुछ नहीं आता, क्योंकि ये अपने सौंदर्य में मेरी दृष्टि को उलझा कर आगे बढ़ने में बाधा डाल रही हैं।

मैं देख····· धन है।

शब्दार्थ—छाया=रहस्य से भरी हुई। धरा=छिपा हुआ।

अर्थ—मनु आकाश के सौंदर्य को देखकर कहते हैं कि मुझे जो कुछ भी दिखाई देता है, क्या वह रहस्य भरी हुई उलझन है, या सुन्दरता के इस पर्दे में कोई और धन छिपा हुआ है ?

विशेष—रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

मेरी अक्षयनिधि······मान तुम्हें।

शब्दार्थ—अक्षयनिधि=सदैव रहने वाला भण्डार। मान=आधार।

अर्थ—मनु आकाश के सौंदर्य को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि यद्यपि तुम मेरे सदैव रहने वाले भंडार हो, तथापि तुम्हारा वास्तविक रूप क्या है, क्या मैं इस रहस्य को जान सकूँगा। यदि मुझे तुम्हारे स्वरूप का परिचय मिल जाये तो मैं तुम्हें अपने प्राणों के धागों की उलझन को सुलझाने का आधार मान लूँगा; अर्थात् तुम्हीं मेरे मन के कौतूहल को शान्त करके मुझे शांति प्रदान कर सकते हो।

विशेष—'मेरी अक्षयनिधि' में रूपकातिशयोक्ति, 'उलझन प्राणों के धागों की' में रूपक और 'उलझन प्राणों के धागों की सुलझन का समझूँ। मान तुम्हें' में विरोधाभास अलंकार है।

माधवी निशा······धारा-सी।

शब्दार्थ—माधवी निशा=बसन्त ऋतु की सुहावनी रात। अलकों में=बालों में, काले-काले बादलों में। अन्तः सलिला=अन्दर ही अन्दर बहने वाली नदी।

अर्थ—आकाश-सौन्दर्य के रहस्य को सुलझाते-सुलझाते मनु को श्रद्धा की याद आ जाती है और वे कहने लगते हैं कि जिस प्रकार बसंत ऋतु की सुहावनी और मस्त रात में काले-काले बादलों में तारे छिपते रहते हैं, उसी प्रकार नील परिधान में लज्जा के कारण अपने आप को संकुचित करती हुई-सी तुम

कौन हो ? मरुस्थल में अन्दर ही अन्दर बहने वाली नदी की धारा के समान तुम कौन हो ?

विशेष—उपमा अलंकार ।

श्रुतिय में······**बोल रहा ।**

शब्दार्थ—श्रुतियों में=कानों में । नीरवता के परदे में=रहस्य भरी निर्जनता में ।

अर्थ—श्रद्धा की याद करते हुए मनु कहते हैं कि यद्यपि यहाँ पर मैं अकेला हूँ, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई अन्य प्राणी चुपके-चुपके अपनी मधुर वाणी से मेरे कानों में माधुर्य की धारा खोल रहा हो और इस रहस्य भरी निर्जनता में जैसे वह मुझ से कुछ कह रहा हो ।

विशेष—रूपकातिशयोशक्ति और पुनरुक्ति अलंकार ।

है स्पर्श······बुलाता है ।

शब्दार्थ—मलय के झिलमिल-सा=मलय पवन के मंद-मंद झोकों की तरह शीतलता प्रदान करने वाला । संज्ञा=चेतना ।

अर्थ—मनु कहते हैं कि मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे कोई मेरा स्पर्श कर रहा हो । यह स्पर्श मलय पवन के मंद-मंद झोकों की तरह शीतलता प्रदान करने वाला है जिससे मेरी चेतना और भी अधिक सोई जा रही है। इस अज्ञात स्पर्श से मैं रोमांचित हो रहा हूँ, जिससे मेरी आँखें अपने-आप बन्द होती जा रही हैं और यह स्पर्श मुझे तन्द्रा की स्थिति में डाल रहा है ।

ब्रीड़ा है······ मींच रही ।

शब्दार्थ—ब्रीड़ा=लज्जा । विभ्रम=प्रेम का व्यापार । मृदुल-कर=कोमल हाथ ।

अर्थ—मनु कहते हैं कि जैसे कोई लजीली नायिका अपनी सम्पूर्ण चंचलता से प्रेम के व्यापार का प्रदर्शन करती हुई अपने घूँघट में छिपा लेती है और फिर अपने कोमल हाथों से अपने प्रियतम की आँखें मींचने लगती है, उसी प्रकार यह आकाश का सौंदर्य स्वयं तो आकाश के नीले बादलों में छिपा हुआ है, किंतु मुझे तन्द्रिल करके मेरी आँखों को बंद कर रहा है ।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

उद्‌बुद्ध······काया में ।

शब्दार्थ—उद्‌बुद्ध = जाग्रत, प्रातःकालीन आकाश । उदित शुक्र = चमकता हुआ शुक्र तारा । किरणों की काया में = किरणों का रूप धारण करके ।

अर्थ—मनु कहते हैं कि जिस प्रकार उषा प्रातःकालीन क्षितिज के अन्दर फैली हुई काली घटा और चमकते हुए शुक्र तारे की छाया में अपनी अरुण किरणों का रूप धारण करके छिप कर सोती रहती है उसी प्रकार यह अक्षय निधि भी अत्यन्त रहस्यमयी बनकर आकाश के नक्षत्रों की छाया में अपनी सौंदर्य चेतना के रूप में छिपी हुई है ।

विशेष—पूर्णोपमा अलंकार ।

उठती हैं······बंसी ।

शब्दार्थ—छाजन सी = छप्पर के समान । निस्वन—ध्वनि । रंध्र = छेद ।

अर्थ—उस अक्षय निधि को वंशी की मधुर ध्वनि के समान मानते हुए मनु कहते हैं कि वह किरणों के ऊपर कोमल नवीन पत्तों के छप्पर के समान इस प्रकार छायी हुई है जैसे कहीं दूर पर बजने वाली मुरली के छिद्रों से मधुर ध्वनि निकल रही हो ।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलंकार ।

सब कहते······दर्शन की ।

शब्दार्थ—छवि = शोभा । आवरण = पर्दे ।

अर्थ—मनु कहते हैं कि इस आलोक की अक्षय निधि का दर्शन करने के लिए सभी लोग उत्सुक हैं और सभी पुकार पुकार के कहते हैं कि इस पर्दे को हटाओ, मैं इस छवि का दर्शन करूंगा । किंतु वास्तविकता तो यह है कि सभी लोग इस छवि का दर्शन करने के लिए इतनी भीड़ बना लेते हैं कि वे सभी एक दूसरे के लिए पर्दा बन जाते हैं ।

विशेष—कवि ने इन पंक्तियों में 'आवरण' द्वारा शिव दर्शन के षट्‌कंचुकों की ओर संकेत किया है ।

षट्‌कंचुक ये हैं—माया, कला, विद्या, राग, काल और नियति ।

चांदनी······गाता-सा ।

शब्दार्थ—अवगुण्ठन = पर्दा । सँवरता-सा = पड़ा हुआ-सा । कल्लोल = आनन्द । फेनिल = झागों से युक्त । उनिद्र = उमड़ता हुआ ।

अर्थ—मनु कहते हैं कि यदि इस अक्षय निधि पर पड़ा हुआ पर्दा उसी

प्रकार खुल जाए जिस प्रकार चन्द्रमा के ऊपर से चाँदनी का पर्दा हट जाए तो वह अनंत आलोकमयी अक्षय निधि प्रकाश की लहरों में मस्ती के साथ विचरती हुई प्रकाश के उस अनंत समुद्र के समान दिखाई दे, जिसमें झाग से भरे हुए शेषनाग के फनों के समान फेन युक्त ऊँची ऊँची लहरें उठ रही हों, जिसमें लहरों से बिखरने वाली मणियों के समान ग्रह नक्षत्र आदि इधर उधर फैल रहे हों और जिसकी उमड़ती हुई लहरें मस्ती के साथ झूमते हुए शेषनाग के हजारों फनों से निकलने वाली ध्वनि के समान गरज रही हो।

विशेष—इन पंक्तियों में शिव दर्शन का प्रभाव मुखरित है। शैवागमों में शिष्य को आनंद सागर के समान माना है। 'बोध सार' में लिखा है—

आनंद सागरः शम्भुस्तच्छक्तिर्द्रव उच्यते।
शीकरा इव सामुद्रा स्तदानंदकणः गणा :।।'

अर्थात् शिव आनंद सागर हैं, उनकी शक्ति उस सागर का जल है, और भूतगण उस सागर के जल की बूँदे हैं।

जो कुछ हो ···· संयम बन के।

शब्दार्थ—मधुर भार=सृष्टि रचने का उत्तरदायित्व।

अर्थ—मनु कहते हैं चाहे जो कुछ भी हो मैं नवीन सृष्टि प्रवर्त्तक बनने के इस मधुर भार को नहीं सम्हालूँगा चाहे कितनी ही बाधा इस ओर संयम बन कर मेरे मार्ग में आ जाएँ।

नक्षत्रों······क्या है।

शब्दार्थ—संकल्प=दृढ़ निश्चय। सन्देहों की जाली=सन्देहों के कारण उत्पन्न उलझनें।

अर्थ—मनु नक्षत्रों को संकेत करते हुए कहते हैं कि हे नक्षत्रो! तुम यह नहीं जानते हो कि उषा की लाली का रहस्य क्या है? क्योंकि उषा के आगमन से पूर्व ही तुम छिप जाते हो। तुम्हारे हृदय में उषा के सौंदर्य के प्रति अवश्य ही सन्देह होगा। इस कथन के माध्यम से मनु अपनी इन्द्रियों को सम्बोधित करते हुए कहना चाहते हैं कि जिस प्रकार नक्षत्र उषा के सौन्दर्य से अपरिचित रहते हैं उसी प्रकार तुम भी नवीन सृष्टि के महत्व की उपेक्षा कर रही हो।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति।

कौशल……क्या ।

शब्दार्थ—कौशल=निर्माण की चतुरता । सुषमा=शोभा । दुर्भेद्य=अप्राप्य । चेतना=ज्ञान ।

अर्थ—मनु श्रद्धा के अलौकिक सौंदर्य और अपनी इन्द्रियों के संकल्प पर विचार करते हुए कहते हैं कि श्रद्धा के रूप में ब्रह्मा ने जिस निर्माण की चतुरता और कोमलता का परिचय दिया है क्या वह सौंदर्य मेरे लिए अप्राप्य ही बना रहेगा । और मेरी इन्द्रियों का विरक्ति ज्ञान क्या स्वयं मेरे लिए हार बन जाएगा ।

पीता हूँ……गुँजार भरा ।

शब्दार्थ—मधु लहर=मधुर भावनाएँ ।

अर्थ—मनु श्रद्धा के प्रति अपनी आसक्ति प्रकट करते हुए कहते हैं कि मैं स्पर्श, रूप, रस और गंध से भरे हुए श्रद्धा के सौंदर्य का पान कर रहा हूँ । क्या निस्संदेह श्रद्धा के प्रति मेरी मधुर भावनाएँ अनुराग से गूँज उठी हैं ?

तारा बन……अवसाद भरे ।

शब्दार्थ—उन्माद=पागलपन । मादकता माती=मदिरा के समान उन्मत्त बना देने वाली । अवसाद=उदासी ।

अर्थ—मनु कहते हैं कि यद्यपि मैं पूर्ण रूप से श्रद्धा के प्रति आसक्त हूं तथापि न जाने क्यों मेरे इन सपनों का पागलपन प्रातःकालीन तारों की भाँति बिखर रहा है । अब तो मुझे मदिरा के समान उन्मत्त बना देने वाली नींद में उदासी लेकर ही सोना होगा ।

चेतना……पहरों में ।

शब्दार्थ—रजनी के पिछले पहरों में=रात की अंतिम वेला में ।

अर्थ—कवि मनु की निद्रा में निमग्न होने की स्थिति का वर्णन करता हुआ कहता है कि सर्वत्र घना अंधकार छाया हुआ था अर्थात् अंधकार रूपी सागर अपनी लहरों को उछाल रहा था । जिस प्रकार सागर में गिरने से मनुष्य की चेतना शिथिल हो जाती है, उसी प्रकार अंधकार के सागर में भी मनु निद्रा में निमग्न होने लगे और उनका शरीर चेतना शून्य होने लगा । इस प्रकार रात की अंतिम वेला में मनु निद्रा देवी की गोद में डूबने लगे ।

उस दूर……क्रीड़ागार हुआ ।

शब्दार्थ—दूर क्षितिज में=स्वप्न लोक में। स्मृतियों=यादों। संचित छाया से=धुँधली छाया। अपनी माया=अपनी करामात।

अर्थ—मनु जब गहरी नींद में डूब गये तो उन्होंने स्वप्नों के संसार में प्रवेश किया। उनके मन में छिपी हुई पुरानी धुँधली स्मृतियाँ एक एक करके उन्हें याद आने लगीं। स्वप्न में ही उन्होंने नवीन सृष्टि की कल्पना की। इस मन को, जो कि स्वभाव से ही चंचल है, नींद में भी विश्राम नहीं करता। जागते और सोते यह सदैव इधर उधर दौड़ा करता है।

जागरण लोक······क्रीड़ागार हुआ।

शब्दार्थ—जागरण लोक=बाहरी संसार। स्वप्न=कल्पना। सुख=मधुर। संचार=जगाना। कौतुक=विस्मय। क्रीड़ागार=खेलने का स्थान।

अर्थ—गहरी नींद में डूबने के पश्चात् मनु को बाहरी जगत का कुछ भी ज्ञान नहीं रहा। उनका मन स्वप्न लोक में विचरने लगा। स्वप्न की मधुर कल्पनाओं का संसार उनके लिए आश्चर्य एवं कौतूहल सा होकर भी उनके चंचल मन के लिए क्रीड़ाएँ करने का स्थान बन गया।

था व्यक्ति······ध्वनि गहरी।

शब्दार्थ—कानों के कान खोलकर=स्पष्ट शब्दों में।

अर्थ—जब मनुष्य आलस्य में कुछ सोचता है तो उसकी चेतना दुहरी होकर जाग्रत रहती है। इसी प्रकार जब मनु आलस्य में पड़े हुए सोच रहे थे तो उन्होंने स्पष्ट वाणी में किसी को बोलते हुए सुना।

प्यासा हूँ······चैन हुआ।

शब्दार्थ—प्यासा=अतृप्त। ओघ=वासना की बाढ़। तृष्णा=कामना। चैन=शांति।

अर्थ—काम मनु को अपना संदेश देता हुआ कहता है कि मैं अब भी प्यासा हूँ। यद्यपि देव सृष्टि में वासना की बाढ़ आई जो प्रलय के कारण बह गई परन्तु मेरी तृप्ति फिर भी नहीं हुई। मेरी लालसा कभी भी बहुत तीव्र है।

विशेष—१. 'प्यासा हूँ मैं अब भी प्यासा' में वीप्सा अलंकार है।
२. रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

देवों की······सबको घेरे।

शब्दार्थ—सृष्टि=जाति। विलीन=नष्ट। अनुशीलन=सतत अभ्यास, अनुकूल आचरण। अनुदिन=प्रतिदिन। अतिचार=मर्यादा उल्लंघन। उन्मत्त मतवाला।

अर्थ—काम मनु को कहता है कि देव जाति सदैव मेरा चिंतन करने से ही नष्ट हो गई। मैं स्वयं मतवाला होकर देवों के हृदय में वासना जगाता हुआ रात दिन घेरे रखता था और मेरी यह अनुचित कार्यवाही अन्त तक बन्द न हुई।

मेरी उपासना······वितान तना।

शब्दार्थ—विधान=नियम। विलास वितान तना=विलास का चंदोवा तान दिया।

अर्थ—काम मनु को कहता है कि सारी देव जाति मेरी ही उपासना करती थी। मेरी प्रेरणा का अर्थात् प्रत्येक संकेत का वह कानून की भाँति पालन करते थे और मेरा जो विस्तृत मोह था वही उन देवताओं के लिए विलास वैभव के चँदोवे के समान फँसा हुआ था।

विशेष—'विलास-वितान' में रूपक अलंकार।

मैं काम······जीवन था।

शब्दार्थ—सहचर=साथी। कृतिमय=कर्ममय।

अर्थ—काम मनु से कहता है कि मैं कामदेव ही देवों के हृदय में सदैव रहता था और उनका संगी था। मैं स्वयं हँसता रहता था और मधुर विलास भावनाओं को जगाकर उन्हें हँसाया करता था। सत्य तो यही है कि मैं ही उनके जीवन को गतिशील बनाता था।

जो आकर्षण······चाह रही।

शब्दार्थ—रति=कामदेव की पत्नी। अव्यक्त=अविकसित। उन्मीलन=विकास। अन्तर=हृदय। चाह=कामना।

अर्थ—काम मनु से कहता है कि देवांगनाओं के मुख पर झलकने वाली आकर्षण शक्ति और मधुर मुस्कान को प्रेरणा देने वाली मेरी पत्नी रति ही थी, जो कि अनादि वासना है। सूक्ष्म से स्थूल सृष्टि की रचना करते समय ब्रह्मा के मन में रति ही विद्यमान थी उसी के कारण सारी सृष्टि विकसित हुई।

हम दोनों······नर्त्तन-सा ।

शब्दार्थ—दोनों=रति और काम । आवर्त्तन=चक्कर । संसृति=संसार । आकार=आकृति । नर्त्तन=नृत्य ।

अर्थ—काम मनु से कहते हैं कि सृष्टि के आरम्भ में हम दोनों का अस्तित्व विशेष आवेश पूर्ण न था । वरन् एक चक्रालोड़न के समान था । जिससे इस सृष्टि का जन्म हुआ और नाना प्रकार के पदार्थ जन्म लेकर नाचते से दिखाई दिये ।

विशेष=उपमा अलंकार ।

उस प्रकृति······ढाल सका ।

शब्दार्थ—प्रकृतिलता=प्रकृति रूपी बेल । पुष्पवती=फूलों से लदी हुई । माधव=वसंत । मधु हास=मधुर हँसी, मधुर विकास । दो रूप=दो अणु ।

अर्थ—काम मनु को सृष्टि के विकास के बारे में बताते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार बसंत ऋतु में लताओं में फूल खिल उठते हैं उसी प्रकार जब प्रकृति रूपी वेल का विकास हुआ तो इसने दो अणुओं को जन्म दिया जो काम और रति के नाम से प्रसिद्ध हुए ।

विशेष—सांगरूपक अलंकार ।

वह मूल ·····अनुराग लिए ।

शब्दार्थ—मूल शक्ति=अनादि शक्ति । आलस का त्याग किये=अपनी पूर्ण साम्यावस्था को छोड़कर । परमाणु बाल=छोटे छोटे अणु परमाणु । दौड़ पड़े=चक्कर काटने लगे । अनुराग=प्रेरणा ।

अर्थ—सृष्टि के विकास के बारे में बताते हुए कामदेव मनु से कहते हैं कि वह अनादि शक्ति अपनी पूर्व साम्यावस्था या जड़ता को छोड़कर सृष्टि निर्माण के लिए उद्यत हो गई । इस प्रेरणा के साथ ही समस्त परमाणु बाल इस तरह फैल गए जिस प्रकार माता से प्रेरणा पाकर आँगन में बच्चे दौड़ने लगते हैं ।

कुंकुम का चूर्ण······झलकते से ।

शब्दार्थ—कुंकुम=केसर या रोली । अंतरिक्ष=शून्य । मधु उत्सव=होली का उत्सव । विद्युतकण=अणु परमाणु । ललकते=तीव्र आकांक्षा प्रकट करते । झलकते=चमकते ।

अर्थ—काम मनु से कहते हैं कि अंतरिक्ष में उड़ते हुए विद्युत कण जब

आपस में टकराते थे तो प्रकाश उत्पन्न होता था। उन्हें देखने से ऐसा लगता था मानो होली के उत्सव पर लोग केसर और रोली का चूर्ण लगाकर गले मिल रहे हों।

विशेष—उपमा अलंकार सांग रूपक अलंकार है।

वह आकर्षण······माया में।

शब्दार्थ—आकर्षण=खिचाव। माधुरी छाया में=माधुर्य से भरी हुई मूल शक्ति की छत्रच्छाया में। माया=मोहिनी शक्ति।

अर्थ—काम मनु से कहते हैं कि उस मूल शक्ति की छत्रच्छाया में ही अणु परमाणुओं का आपस में मिलन हुआ। इसी मिलन के कारण ही यह मोहिनी शक्ति के कारण मतवाली दिखाई देने वाली प्रकृति बनी।

प्रत्येक नाश······वृष्टि रही।

शब्दार्थ—नाश=नष्ट होना। विश्लेषण=कणों के रूप में इधर उधर बिखर जाना। संश्लिष्ट=कणों का एकत्र होना। मादक=मस्त कर देने वाली। ऋतुपति=बसंत। कुसुमोत्सव=फूलों का उत्सव। मरन्द=मकरन्द। वृष्टि=वर्षा।

अर्थ—काम मनु से कहते हैं कि सृष्टि के विकसित होने से पहले नष्ट हुए प्रत्येक पदार्थ के कण जो इधर उधर बिखरे हुए थे, वे सब दुबारा एकत्रित होने लगे और सृष्टि निर्माण का कार्य आरम्भ हो गया। तब उन एकत्रित कणों को देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो वसंत ऋतु के घर फूलों का उत्सव मनाया जा रहा हो तथा सर्वत्र मस्त कर देने वाली मकरन्द की वर्षा हो रही हो।

विशेष—वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार।

भुजलता······साथ हुए।

शब्दार्थ—भुजलता=लता के तुल्य भुजाएं। सरिता=नदी। शैल=पर्वत। सनाथ=सफल। जलनिधि का अंचल=वस्त्र के छोर के समान फैली हुई सागर की लहरें। व्यंजन=पंखा।

अर्थ—काम मनु से कहते हैं कि यहाँ पर सर्व प्रथम प्राकृतिक वस्तुओं के जोड़े बने। पहाड़ों पर बहने वाली नदियाँ ऐसे लगती थीं मानो उन्होंने अपनी लता रूपी पतली भुजाओं को पर्वत रूपी प्रियतम के गले में डाला हुआ हो और

समुद्र भी अपनी प्रियतमा तप्त पृथ्वी को प्रसन्न करने के लिये अपनी लहरों से पंखा कर रहा हो। इस प्रकार उनके जोड़े बने थे।

विशेष १.—'भुजलता' और 'चंचल व्यजन बना' में रूपक अलंकार है।

२. मानवीकरण अलंकार है।

कोरक अंकुर······फूल चले।

शब्दार्थ—कोरक=कली। झूलना=प्रसन्न होना। नवल सर्ग=नवीन सृष्टि।

अर्थ—काम मनु से कहते हैं कि अंकुर और कलि के रूप में हम दोनों काम और रति का जन्म हुआ। हम दोनों बहुत प्रसन्न थे जिस प्रकार मलय पवन चलने से कलियाँ विकसित होती हैं उसी प्रकार हम दोनों साथी भी इस नई सृष्टि के अन्तर्गत मस्ती से झूमते हुए विकसित होने लगे।

विशेष—'कोरक अंकुर सा' में उपमा और 'नवल सर्ग' में रूपक अलंकार है।

हम भूख······वय में।

शब्दार्थ—आकांक्षा तृप्ति=इच्छा और उसकी पूर्ति। समन्वय=दोनों का मिश्रित रूप। नित्य यौवन वय=सर्वदा पूर्ण विकसित।

अर्थ—काम अपने और रति के स्वरूप को समझाते हुए मनु से कहते हैं कि जब सृष्टि का विकास हुआ तो हम भूख और प्यास की भाँति चेतन प्राणियों के मन में जगने लगे। मैं आकांक्षा उत्पन्न करता और रति तृप्ति का काम करती थी इस प्रकार हम दोनों का समन्वय रूप सर्वत्र विद्यमान रहता। इस प्रकार देवताओं की उस सृष्टि में हम रति और काम के नाम से प्रसिद्ध हुए।

सुर बालाओं······मधुमय थी।

शब्दार्थ—सुर बालाओं=देव कन्याओं। तंत्री=वीणा। लय=स्वर में स्वर मिलाना। राग=प्रेम। मधुमय=माधुर्य से भरी हुई।

अर्थ—काम मनु से रति के कामों का वर्णन करता हुआ कहता है कि रति देवकन्याओं की सखी बनी हुई थी। वीणा की मधुर ध्वनि के समान उनकी हृदयवीणा के साथ सुर से सुर मिलाती थी अर्थात् हमेशा उनके अनुकूल आचरण करती थी। रति स्वयं प्रेम मार्ग से परिचित थी, इसलिए वह देव-

बालाओं की प्रेम सम्बन्धी उलझनों को सुलझाती थी। अतः वह माधुर्य और प्रेम से भरी हुई थी।

मैं तृष्णा······पर उनको।

शब्दार्थ—तृष्णा = कामना। विकसित = जाग्रत। आनन्द समन्वय होता = आनन्द की प्राप्ति होती

अर्थ—काम अपने और रति के कार्यों का वर्णन करता हुआ कहता है कि मैं तो देव पुरुषों और देव कन्याओं में आकांक्षा उत्पन्न करता था और रति उनकी इच्छाओं की पूर्त्ति का मार्ग बताती थी। इस प्रकार हम दोनों उनको आनन्द-मग्न करते हुए विलासिता के मार्ग पर बढ़ाते ले जा रहे थे।

वे अमर······प्रसंग हुआ।

शब्दार्थ—अमर = देव जाति। विनोद = मन बहलाने का साधन। अनंग = अंगहीन, (काम का एक नाम)। संचित = एकत्र। सरल = सुगम। प्रसंग = अवसर, मौका।

अर्थ—कामदेव मनु से कहते हैं कि अब न तो वह जाति ही रही है और न उनका भोग विलास हो रहा है। मेरा भी मनोरंजन समाप्त हो गया है। मेरे अन्तर्गत केवल चेतना शेष बची है, सभी प्रकार के साधनों से हीन होकर मैं अनंग कहलाता हुआ इधर-उधर भटकता फिर रहा हूँ। भाग्य से आज फिर इकट्ठे होने का सरल अवसर प्राप्त हुआ है।

विशेष—'अनंग' में श्लेष अलंकार है।

यह नीड़······बल है।

शब्दार्थ—नीड़ = घोंसला। मनोहर = सुन्दर। कृति = कार्य। रंगस्थल = रंगमंच।

अर्थ—काम मनु को सांसारिक कार्यों को करने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि यह संसार तो कर्म की रंगभूमि है। वह संसार एक सुन्दर घोंसले के समान है; जिसमें भाँति-भाँति के पक्षी रहते हैं और वह निरन्तर सुन्दर कार्यों में लगे रहते हैं। यह संसार रंगमंच के समान हैं। बारी-बारी से प्राणी यहाँ आकर अपना कार्य करते हैं। जिसमें जितनी शक्ति होती है, उतनी देर ही वह टिकता है।

विशेष—रूपक अलंकार।

वे कितने ऐसे······बुनते हैं।

शब्दार्थ—साधन=सहायक। आरंभ=प्रारम्भ। सूत्र=धागे।

अर्थ—काम मनु से कहते हैं कि संसार में कितने ऐसे लोग हैं जिनका जन्म दूसरों के लिए होता है। अर्थात् बहुत कम हैं। कुछ ही व्यक्ति दूसरों को कार्य पूर्ण करने में सहायता देते हैं और उनके साथ परिणाम तक वैसा ही संघर्ष बनाए रखते हैं।जिस प्रकार कपड़ा बुनते समय धागे का होता है।

विशेष—'सम्बन्ध सूत्र से बुनते हैं' में उपमा अलंकार है।

ऊषा की······मेघाडंबर में।

शब्दार्थ—सजल=सरल। गुलाली=लालिमा। वर्ण=रंग। मेघाडंबर =बादलों के समूह।

व्याख्या—काम मनु को कहते हैं कि प्रातःकाल उषा की सुन्दर लालिमा पूर्व दिशा में सर्वत्र दिखाई पड़ती है परन्तु कुछ ही समय पश्चात् वह समाप्त हो जाती है। क्या तुम बता सकते हो वह क्या है? संध्या समय जो रंग-बिरंगे बाद इधर उधर घूमते हैं वह किस बात का आभास देते हैं, बता सकते हो?

अंतर है······झरता है।

शब्दार्थ—साधक कर्म=सहायता करने वाला कार्य। माया का नीला आंचल=जादू टोंना से भरा हुआ नीला आकाश।

अर्थ—वास्तव में वह ऊषा कुछ नहीं है, केवल रात और दिन का अन्तर है, अर्थात् ऊषा का जन्म दिन और रात के बीच में होता है। ऊषा ही संसार के कार्यों को पूर्ण करने में सहयोग देती है। इसका विकास इसी प्रकार होता है जैसे आश्चर्य भरे हुए आकाश के अंचल में से कोई प्रकाश का बिन्दु भर गया हो।

विशेष—'आलोक बिन्दु सा भरता है' में उपमा अलंकार है।

आरम्भिक······कृति का।

शब्दार्थ—वात्या=आँधी का। उद्गम=मूल स्रोत। आरम्भिक वत्या उद्-गम=प्रथम देव सृष्टि में वासना की आँधी उत्पन्न करने वाला। प्रगति= उन्नति। मानव की शीतल छाया=मानव सृष्टि की शान्तिमयी शरण में जाकर। ऋण शोध=कर्जा चुकाना। निज कृति=अपना कार्य।

अर्थ—काम अपना उद्देश्य प्रकट करते हुए मनु से कहते हैं कि आदि

देव सृष्टि में मैंने वासना की आँधी उठायी थी और स्वयं ही अपने विनाश का कारण बना था। परन्तु अब मैं उन्नति करना चाहता हूँ तुम जिस नवीन सृष्टि का निर्माण करोगे में उसी मानव सृष्टि की शान्तिमयी छाया में रहकर अपने अपूर्ण कार्यों को पूरा करूँगा। अर्थात् संसार को उन्नति के मार्ग पर ले जाऊंगा अवनति की ओर नहीं।

विशेष—'वात्या उद्‌गम' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

दोनों का······ह्रास हुआ।

शब्दार्थ—दोनों=काम और रति। समुचित=उचित। प्रति वर्त्तन=आदान प्रदान। प्रेरणा=प्रेरक शक्ति। विप्लव नारा। ह्रास=पतन।

अर्थ—काम मनु को कहते हैं कि देव सृष्टि में हम दोनों ने जो वासना का अवास्तविक रूप अपना लिया था उसको हमने छोड़ दिया है। क्योंकि देव सृष्टि का नाश होने के कारण हमें भी अपनी त्रुटियों का ज्ञान हो गया है। अब हम जीवन में पवित्रता के साथ विकसित होते हुए वास्तविक रूप में लौट आए हैं। अतः अब हमारी प्रेरणा अधिक स्पष्ट हो गई।

यह लीला······वह अमला।

शब्दार्थ—लीला=सृष्टि। मूल शक्ति=आदि शक्ति। उसका=प्रेम का। वह अमला=श्रद्धा।

अर्थ—काम मनु से कहते हैं कि जिस मूल शक्ति की क्रीड़ाओं से इस सृष्टि का विकास हुआ उसका नाम प्रेम है। उसे महाचिति और काम कला भी कहते हैं। उसी प्रेम का उज्ज्वल संदेश सुनाने के लिए इस संसार में एक उज्ज्वल विभूति आई है। अर्थात् वही श्रद्धा है जो तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हुई थी।

हम दोनों······वह डाली।

शब्दार्थ—रंगों ने=रंग-बिरंगे फूलों ने।

अर्थ—काम कहते हैं कि तुम्हें आत्म-समर्पण करने वाली वह उज्ज्वल विभूति श्रद्धा हमारी संतान है। स्वभाव की भोली और सुन्दर है। वह इतनी सुन्दर और कोमल है कि उसे देखने से ऐसे लगता है मानों रंग-बिरंगे फूलों से लदी हुई कोई डाली हो।

विशेष—वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार।

जड़ चेतन······विचारों की ।

शब्दार्थ—गांठ=ग्रन्थि । चेतनता=चेतन प्राणी । सुधार=ठीक । सुलझन=सुलझाने वाली । उष्ण विचार=संताप देने वाले विचार ।

अर्थ—काम मनु से कहते हैं कि हमारी पुत्री श्रद्धा चेतन प्राणी का जड़ प्रकृति में अनुराग उत्पन्न करती है। भूलों को ठीक कर वह सारी समस्याओं को सुलझाती है। इतना ही नहीं जीवन में क्षोभ उत्पन्न करने वाले विचारों को वह शीतलता और शांति प्रदान करती है।

उसके पाने······हो रहती ।

शब्दार्थ—उसके=श्रद्धा के । वह ध्वनि=काम की । सहसा=अचानक ।

अर्थ—अन्त में काम ने मनु से कहा कि यदि तुम श्रद्धा को पाने की इच्छा करते हो तो पहले उसके योग्य बनो। इतना कहकर काम की ध्वनि अचानक इस प्रकार चुप हो गई जिस प्रकार मीठी तान में बजने वाली मुरली एकदम चुप हो जाती है।

विशेष—गुण साम्य के आधार पर उपमा अलंकार है।

मनु आँख······पाता है ?

शब्दार्थ—वहाँ=श्रद्धा के पास । ज्योतिमयी=दिव्य सौन्दर्य वाली ।

अर्थ—मनु अभी तक निद्रा अवस्था में ही काम की ध्वनि सुन रहे थे उन्होंने आँखें खोलकर (सचेत होकर) पूछा : हे देव ! उस दिव्य सौन्दर्य वाली श्रद्धा के पास पहुंचने के लिये कौन से रास्ते से होकर जाना होगा अर्थात् कौन सा उपाय करना होगा। उसको मनुष्य कैसे प्राप्त करता है।

पर कौन······रंग हुआ ।

शब्दार्थ—अनोखा स्वप्न=नवीन सृष्टि की रचना की प्रेरणा देने वाला अद्भुत सपना। भंग हुआ=टूट गया । प्राची=पूर्व दिश । रस रंग हुआ= सुन्दर छटा दिखाई दी ।

अर्थ—परन्तु वहाँ उत्तर देने वाला कोई नहीं था। मनु जो नवीन सृष्टि की रचना का अद्भुत स्वप्न देख रहे थे वह टूट गया। सवेरा हो गया था। इसी समय रम्य पूर्व दिशा में सूर्य उदित हुआ और सरस लालिमा छा गई।

इस लता······में बेल रही ।

शब्दार्थ—झिलमिल=झलक । हेमाल रश्मि=प्रभात कालीन सूर्य की

सुनहरी मात्रा वाली किरणें। सोम सुधा रस=अमृत के तुल्य मीठा और शक्तिदायक सोमरस।

अर्थ—मनु की गुफा के द्वार पर फैली हुई सोमलताओं के झुण्ड से झिलमिलाता हुआ सूर्य का सुनहरी प्रकाश आ रहा था। सूर्य की किरणें पत्तों से क्रीड़ा करती हुई जान पड़ती थीं। प्रभात की ऐसी सुन्दर बेला में मनु उठकर बाहर आए और सोमलता को पकड़ कर खड़े हो गए, जिनमें से देवताओं को अर्पण करने के लिए अमृत के समान सोमरस निकाला जाता था।

वासना

कथासार—आत्म-समर्पण करने के उपरांत श्रद्धा मनु के ही साथ रहने लगी। दोनों मिलकर जीवन की यथोचित सामग्री जुटाने में लग गये। उन्होंने अपने जीवन का निर्वाह सरलता से करने के लिए बहुत सारा धान्य अपनी गुफा में इकट्ठा कर लिया और उन्होंने पशु-पालन भी प्रारम्भ कर दिया। फिर भी मनु के जीवन की उद्विग्नता पूर्णतया समाप्त न हुई थी। वे एक दिन अपनी गुफा के सामने बैठे हुए अपने ही विचारों में लीन थे, काम का सन्देश उनके कानों में रह-रहकर गूंज रहा था। तभी उन्होंने देखा कि श्रद्धा अपने पशु को साथ लिए हुए चली आ रही है। जितना प्रेम श्रद्धा उस पशु के प्रति प्रदर्शित कर रही थी, उतना ही प्रेम वह पशु श्रद्धा के प्रति भी दिखा रहा था। दोनों के इस प्रकार प्रेम को देखकर मनु के मन में ईर्ष्या का भाव जग उठा। वे सोचने लगे कि यद्यपि ये दोनों मेरे ही अन्न से पलते हैं, तथापि मेरे प्रति इन दोनों ने इतना प्रेम कभी नहीं दिखाया। वास्तविकता तो यह है कि यह नवीन संसार बसाकर भी मैं अभी तक उतना ही उपेक्षित और व्यथित हूँ जितना प्रलय-प्रवाह के बाद एकाकी जीवन में था। इस विचार के आते ही उनका मन बेचैनी और उदासी की गम्भीरता में डूब गया।

जब पशु को लिए श्रद्धा उनके पास आई तो उन्होंने मनु को अत्यन्त बेचैन और उदास देखा। उसने मनु के शरीर को अपने कोमल हाथों से सहलाते हुए पूछा कि तुम इतने बेचैन और उदास क्यों? श्रद्धा का स्पर्श पाकर मनु की उदासी कुछ कम हुई। उन्होंने श्रद्धा से पूछा—रे अतिथि! तुम अब तक कहां थे? तुम्हारे हृदय में यह कैसा प्यार और दुलार भरा हुआ है कि सब प्राणी तुम्हारी ओर सहज रूप से खिंचे चले आते हैं? तुम्हारा सौन्दर्य और तुम्हारा आकर्षण सभी कुछ मेरे लिए अभी तक रहस्य बना हुआ है। अतः तुम अपना पूर्ण परिचय देते हुए मुझे बताओ कि तुम कौन

हो ? मनु की बातें सुनकर श्रद्धा ने हँसकर कहा कि मैं तो एक अतिथि हूँ। इसके अतिरिक्त मेरा न तो कोई परिचय है और न इससे अधिक तुम्हें जानने की आवश्यकता ही है। न जाने क्यों तुम मेरा इतना परिचय पा जाने के लिए आज इतने व्यग्र हो उठे हो। चलो, इन बातों को छोड़ो, और चलो बाहर घूम आयें, क्योंकि आज चाँदनी कितनी मनोरमता से इस पृथ्वी पर बिखरी हुई है।

श्रद्धा की बातें सुनकर मनु उठ खड़े हुए और श्रद्धा के साथ चल दिये। प्रकृति की मनोरम छटा को देखकर मनु के हृदय में वासना का संचार हो गया। उन्होंने श्रद्धा का हाथ पकड़ कर कहा—हे अतिथि! मैंने तुम्हें पहले भी कितनी ही बार देखा है, परन्तु तुम मुझे इतने सुन्दर और आकर्षक कभी दिखाई नही दिये। तुम्हें देखकर मेरा हृदय न जाने क्यों धड़क रहा है, धमनियों में तीव्र रक्त का संचार हो गया है और सारे शरीर में एक प्रकार की हलचल-सी मच गई है। श्रद्धा ने हँसकर उत्तर दिया कि इस कौमुदी-महोत्सव के समय अधीर और व्यथित होकर ऐसी बातें करना उचित नहीं है। चाँदनी की रमणीयता को देखो, जिससे धुलकर समस्त प्रकृति कितनी रमणीक बन गई है। श्रद्धा के उत्तर ने और वातावरण के सौन्दर्य ने मनु के हृदय और भी अधिक अशान्त बना दिया। वे आवेग से श्रद्धा का हाथ पकड़ कर बोले—इस समय मुझे अपनी उस जीवन-संगिनी की याद आ रही है जो तुम्हारी ही भाँति सौन्दर्यमयी थी, जिनका नाम श्रद्धा था और जो काम की पुत्री थी। तुम्हारी आकृति देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे हम दोनों पुनः मिलने के लिए उस भयंकर प्रलय से बच गये हैं। आज मैं तुम्हें अपना हृदय पूर्णरूप से समर्पित करता हूँ। मेरे इस समर्पण को सहर्ष स्वीकार करो। मनु की बातें सुनकर श्रद्धा की आँखें लज्जा के कारण नीचे झुक गईं। उसने सलज्ज होकर कहा—हे देव! क्या आज का यह समर्पण नारी-हृदय के लिए चिर-बंधन नहीं बन जायगा? मैं अत्यन्त दुर्बल हूँ। क्या मैं इस दान को ग्रहण करने में सफल हो सकूंगी, जिसका उपभोग करने को प्राण भी व्याकुल हो उठते हैं।

चल पड़े······उदार।

शब्दार्थ—हृदय दो=श्रद्धा और मनु। अश्रांत=बिना थके हुए। भ्रान्त

=भूलकर। विगत विकार=पवित्र।

अर्थ—श्रद्धा और मनु का मिलन उन दो पथिकों के समान था जो एक दूसरे को ढूंढ़ने के लिए घर से निकले हों और मार्ग में दोनों मिल गये हों, परन्तु दोनों एक दूसरे से अपरिचित होकर बिना थके हुए किन्तु भूलकर भटकते हुए-से चल रहे थे। श्रद्धा और मनु दोनों एक दूसरे के पूरक थे—यदि मनु घर का स्वामी था तो श्रद्धा पवित्र भावनाओं से युक्त थी। यदि मनु प्रश्न था तो श्रद्धा उस प्रश्न का उदार उत्तर थी।

विशेष - उपमा और परम्परित रूपक।

एक जीवन सिन्धु……घनश्याम।

शब्दार्थ—लोल=चंचल। नवल=नवीन। स्वर्ग=सुनहली। सजल उद्दाम=वर्षा के कारण अत्यन्त तरल और विशाल। श्री-कलित=शोभा-सम्पन्न। घनश्याम=नीला बादल।

अर्थ—श्रद्धा और मनु दोनों एक दूसरे के पूरक थे, इस बात को बताता हुआ कवि कहता है कि यदि मनु का जीवन सागर के समान था तो श्रद्धा का जीवन उस सागर में उठने वाली चोटी तथा चंचल लहर के समान था। मनु यदि नवीन प्रभात थे तो श्रद्धा उस प्रभात में उदित होने वाली अमूल सुनहली किरण थी। यदि मनु वर्षा के कारण अत्यन्त तरल और विशाल प्रकाश थे तो श्रद्धा सूर्य की किरणों से सुशोभित अत्यन्त कान्तिपूर्ण नीले बादल के समान थी।

विशेष—रूपक अलंकार।

नदी तट……फाँस।

शब्दार्थ—नव जलद=नवीन बादल। मधुरिमा=सौन्दर्य। अविरत=निरन्तर। युगल=श्रद्धा और मनु दोनों।

अर्थ—जिस प्रकार सायंकाल किसी नदी के किनारे क्षितिज में दो नवीन बादल बिजलियों के सौन्दर्य से खेलते हुए दोनों एक दूसरे को अपने-अपने जाल में फँसाने का प्रयत्न करते हैं, उसी प्रकार दो चैतन्य व्यक्ति श्रद्धा और मनु अपने-अपने जाल में एक दूसरे को फँसाने के लिए निरन्तर प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु अभी तक कोई एक दूसरे को न फाँस सका था।

विशेष—दृष्टान्त अलंकार।

था समर्पण······मेल।

शब्दार्थ—सुनिहित=निश्चत रूप से छिपा हुग्रा। ग्रटकाव=बाधा। विजन-पथ पर=एकान्त में। निमति=संसार की नियामिका शक्ति।

ग्रर्थ—यद्यपि मनु ग्रौर श्रद्धा दोनों एक दूसरे को ग्रपने हृदय सर्मपित कर चुके थे, किंतु उनके इस समर्पण में निश्चित रूप से एक दूसरे को प्राप्त कर लेने का भाव छिपा हुग्रा था। उनका समर्पण यद्यपि निरन्तर बढ़ता चला जा रहा था, तथापि उसमें निरन्तर बाधाएँ भी ग्राती जा रही थीं। उन दोनों के मधुर जीवन का यह खेल एकान्त में चल रहा था। सच यो यह है कि ग्रब संसार की नियामिका शक्ति उन दो ग्रपरिचितों को ग्रापस में मिला देना चाहती थी।

नित्य परिचित······गति रोक।

शब्दार्थ—गूढ़ ग्रन्तर=गम्भीर ग्रन्तर। ग्रालोक=प्रकाश। सघन=गहरा। ग्रन्त=छोर।

ग्रर्थ—यद्यपि श्रद्धा ग्रौर मनु दोनों एक दूसरे से परिचित हो गये थे, तब भी उन्हें जानने के लिए बहुत कुछ शेष रह गया था। उनके बीच ग्रब भी एक गहरा ग्रन्तर बना हुग्रा था जो उनके लिए विशेष रहस्य था। जिस प्रकार गहरे वन में चलने वाले यात्री को वन के एक छोर पर दूर कहीं प्रकाश दिखाई देता है ग्रौर वह जितना ही उसके निकट होता जाता है, उतना ही वह उसकी ग्राँखों को चकाचौंध करने वाला होता जाता है, उसी प्रकार श्रद्धा ग्रौर मनु जितने एक दूसरे के निकट ग्राते जाते थे, उतने ही वे एक दूसरे के लिए रहस्य बनते जा रहे ते।

विशेष—उदाहरण ग्रलंकार।

गिर रहा······ग्रब बंद।

शब्दार्थ—निस्तेज गोलक=तेजहीन सूर्य का गोला। जलधि=सागर। घन-पटल=बादलों का समूह। ग्रवसाद=शिथिलता। मधुकरी=भ्रमरी।

ग्रर्थ—सन्ध्या का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि सूर्य का तेजहीन गोला ग्रसहाय होकर पश्चिम दिशा रूपी सागर में डूब रहा था, बादलों के समूह में सूर्य की किरणों का समुदाय छिपता जा रहा था। कर्म की शिथिलता दिन से धोखा कर रही थी, ग्रर्थात् दिन भर कार्य में लगे हुए प्राणों ने ग्रपने-

अपने कार्य छोड़ दिये थे और भ्रमरी ने भी अब आनन्द देने वाला रस का संचय करना बन्द कर दिया था।

विशेष—'गिर रहा निस्तेज गोलक जलधि में असहाय' में रूपकातिशयोक्ति और 'कर्म का अवसाद दिन से कर रहा छल छन्द' में विशेषण-विपर्यय अलंकार है।

उठ रहीं······कोक।

शब्दार्थ—कालिमा=अन्धकार। धूसर क्षितिज=धुंधला क्षितिज। अरुण=सूर्य। आलोक=प्रकाश। वैभवहीन=तेजरहित। निलय=घर, घोंसला।

अर्थ—कवि सन्ध्या का वर्णन करते हुए कहता है कि धुंधले क्षितिज से अंधकार धीरे-धीरे ऊपर उठ रहा था और पश्चिम दिशा में छिपते हुए सूर्य का तेजरहित प्रकाश उस अंधकार से अंतिम मिलन कर रहा था। इस प्रकार सूर्य के तेजरहित प्रकाश का और अंधकार का मिलन एक करुणा से भरे हुए वातावरण की सृष्टि कर रहा था। उसी समय शोक-सन्तप्त होकर कोक अपने घोंसलों को छोड़ रहे थे।

विशेष—मानवीकरण अलंकार।

मनु अभी······संचार।

शब्दार्थ—उपकरण=जीवन-निर्वाह के साधन। अधिकार=स्वामित्व। शस्य=अनाज। धान्य=धान।

अर्थ—सन्ध्या हो गई थी, परन्तु मनु अभी तक अपने ही विचारों में डूबे हुए बैठे थे। उनके कानों में काम का दिया हुआ सन्देश बार-बार रह-रहकर गूँज रहा था। इधर श्रद्धा ने उनके जीवन-साधन में बहुत अधिक परिवर्तन कर दिये थे। उनकी गुफा में अनेक प्रकार के जीवन-निर्वाह के साधन इकट्ठे हो गये थे, जिन पर मनु का स्वामित्व था। साथ ही, अनाज, पशु और धानों को भी श्रद्धा ने इकट्ठा कर लिया था।

नई इच्छा······बंधन-मुक्त।

शब्दार्थ—अतिथि=श्रद्धा। सरल शासन युक्त=मधुर आज्ञाओं से भरा हुआ। सुरुचि समेत=अत्यन्त रुचिपूर्ण। चमत्कृत=आश्चर्य-चकित होकर। बंधनमुक्त=स्वतन्त्रता से भरा हुआ।

अर्थ—श्रद्धा जिस भी प्रकार की नई इच्छा करती, मनु उसे अवश्य पूर्ण

कर देते । इस प्रकार श्रद्धा अपने संकेतों से और सरल अज्ञानों से भरे हुए शासन से जीवन को अत्यन्त रुचिपूर्ण बनाकर चला रही थी । एक दिन यज्ञ-शाला में बैठे हुए मनु ने कौतूहल से तथा आश्चर्यचकित होकर अपनी नियति का स्वतन्त्रता से भरा हुआ एक खेल देखा ।

एक माया……संग ।

शब्दार्थ—माया=आश्चर्य से भरा हुआ । मोह करूंगा=ममता से भरी हुई दया की भावना । करता चमर=चँवर कर रहा था । उद्ग्रीव=गर्दन को ऊपर उठाना ।

अर्थ—मनु ने अत्यन्त आश्चर्य से भरकर देखा कि वह पशु श्रद्धा के साथ आ रहा था, जो श्रद्धा की ममता से भरी हुई दया की भावना के कारण सजीव और सनाथ बना हुआ था, अर्थात् जिसके प्रति श्रद्धा अत्यन्त ममता और करुणा के भाव प्रकट कर रही थी । श्रद्धा अपने कोमल हाथों से लगातार उस पशु के अंगों को सहला रही थी और वह पशु अपनी गर्दन ऊपर उठाकर बालों के गुच्छे सहित अपनी पूँछ को हिलाकर मानो श्रद्धा पर चँवर करता हुआ उसके साथ-साथ चल रहा था ।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलंकार ।

कभी पुलकित……ढार ।

शब्दार्थ—रोम-राजी=रोम-समूह । अतिथि-सन्निधि=श्रद्धा के पास । निहार=देखकर । संचित स्नेह=इकट्ठा किया प्रेम । ढार=उड़ेलना ।

अर्थ श्रद्धा के साथ-साथ चलता हुआ वह पशु कभी तो अपने रोम-समूह से युक्त शरीर को उछालकर उसके चारों ओर घूम जाता था, जिससे श्रद्धा के चारों ओर एक जाल-सा बन जाता था और कभी अपने भो ले नेत्रों से श्रद्धा के मुख को देखकर अपनी दृष्टि के द्वारा अपना सारा इकठ्ठा किया हुआ प्रेम उस पर उड़ेल देता था ।

विशेष—इन पंक्तियों में श्रद्धा की वत्सलता का सजीव चित्रण है । 'त्रिपुरा-रहस्य' में श्रद्धा को एक ऐसी माता बताया गया है जो अत्यन्त वात्सल्य प्रकट करती हुई सभी प्राणियों का पालन-पोषण करती है और भयभीत प्राणियों की रक्षा करती है—

'श्रद्धा माता प्रपन्नं सा वत्सलेव सुते सदा ।
रक्षति प्रौढ़ भीतिभ्यः सर्वथा नरि संशयः ॥'

और वह······विलास ।

शब्दार्थ—स्नेह-शवलित=प्रेम से भरा हुआ । सरल शोभन मधुर मुग्ध विलास=सरल शोभा से युक्त मधुर और मन को मोहने वाली क्रीड़ा ।

अर्थ – और श्रद्धा प्रेम से भरी हुई उमंग के साथ उस पशु को पुचकार रही थी जिसमें उसके हृदय की सरस ममता और हृदय के सद्भाव मिले हुए थे । इस प्रकार मनु के देखते-देखते वे दोनों मनु के पास पहुँच गये और सरल शोभा से युक्त मधुर और मन को मोहने वाली क्रीड़ा करने लगे ।

वह किरण······विभूति डाट ?

शब्दार्थ—किरण-विभूति=वैराग्य की राख । ईर्ष्या-पवन=ईर्ष्या की वायु । व्यस्त=उड़कर । ज्वल-कण=आग की चिनगारी, हृदय की ईर्ष्या के भाव । अस्त=छिपे हुए ।

अर्थ—जब मनु ने श्रद्धा और पशु को परस्पर प्रेम में डूबे हुए देखा तो उसकी वैराग्य की राख ईर्ष्या की वायु से बिखरने लगी; अर्थात् उनके मन में ईर्ष्या के भाव जगने लगे और उनके मन में ईर्ष्या की आग की चिनगारी प्रकट होकर उनके हृदय को जलाने लगी । उस ईर्ष्या को प्रकट होते ही मनु अपने मन में सोचने लगे कि अरे, मेरे इस वैराग्यपूर्ण हृदय में यह कैसा परिवर्तन हो गया है ? मेरे हृदय में कडुवाहट इस प्रकार व्याप्त हो गई है, जैसे मैंने कोई अत्यन्त कडुवी वस्तु पी ली हो और उससे हिचकी आ रही हो । जाने वह कौन है जो मेरे हृदय को वेदना की ईर्ष्या से भर रहा है ।

विशेष—सांगरूपक और रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

आह यह······विराग ।

शब्दार्थ—सरल=निष्कपट । गेह=घर, गुफा । विराग=उपेक्षा की भावना ।

अर्थ—श्रद्धा और पशु के परस्पर प्रेम को देखकर मनु ईर्ष्या के वशीभूत होकर कहते हैं कि खेद है कि श्रद्धा और पशु में इतना निष्कपट और सुन्दर प्रेम है । ये दोनों इस गुफा में मेरे दिये हुए अन्न से ही पल रहे हैं । मैं जो कुछ भी कमाकर लाता हूँ उसमें से ये दोनों अपना-अपना भाग ले लेते हैं,

फिर भी मेरा स्थान इन दोनों के हृदय में नहीं है। ये तो उसने बदले में मुझे केवल उपेक्षा भरी भावना ही देते हैं। कहने का भाव यह है कि मैं तो इनके लिए कमा-कमाकर लाता हूँ, ये दोनों फिर भी मेरी उपेक्षा किये हुए हैं।

विशेष—विषम अलंकार।

अरी नीच……निर्बाध।

शब्दार्थ—कृतघ्नता=उपकार न मानने की भावना। पिच्छल=चिकनी। शिला संलग्न=शिला पर लगी हुई। भग्न=तोड़ना। राजस्व=धन, जिस पर राजा का अधिकार होता है। अपहृत कर=हरण करके। दस्यु=डाकू। निर्बाध=बाधा रहित।

अर्थ—पशु और श्रद्धा के परस्पर प्रगाढ़ प्रेम को देख कर मनु ईर्ष्या के वशीभूत होकर कहते हैं कि हे कृतघ्नता! तू बड़ी नीच है। तू चिकनी शिला पर लगी हुई उस काई के समान है, जो सभी को फिसलाकर उनके हाथ-पैर तोड़ देती है। हे मलिन काई के समान कृतघ्नता! तू और कितने हृदय तोड़ेगी? तुम दोनों उस डाकू की तरह हो जो मेरे हृदय का धन छीन कर—मेरी भावनाओं को आहत करके—मुझसे सदा बाधा रहित सुख चाहते हो। तुम दोनों का इस प्रकार सोचना और आचरण करना पाप से भरा हुआ अपराध है।

विशेष—'मलिन काई-सी' में उपमा और 'हृदय का राजस्व अपहृत कर अधम अपराध' में रूपक और 'दस्यु मुझसे चाहते हैं सुख सदा निर्बाध' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

विश्व में……शान्त।

शब्दार्थ—विभूति=ऐश्वर्य, सम्पत्ति। प्रतिदान=किसी वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु देना। ज्वलित=धधकती हुई। वाड़व-वन्हि=समुद्र के अन्दर रहने वाली आग।

अर्थ—श्रद्धा और पशु के परस्पर प्रगाढ़ प्रेम को देख कर मनु ईर्ष्या से जल कर कहते हैं कि इस संसार में जो सरल, सुन्दर और महान् ऐश्वर्य हैं, सब पर मेरा अधिकार है। मेरे अधिकार में आई हुई वस्तुओं का उपभोग करने वाले प्राणियों से मैं यह चाहता हूँ कि इसके बदले में वे भी मुझे कुछ

दें ; अर्थात् अपना सर्वस्व समर्पण करके मुझे प्रेम करें । मैं उस सागर के समान हूँ जो वड़वानल की ज्वालाओं से सदा अशांत बना रहता है। जिस प्रकार समुद्र की लहरें उसकी अग्नि को शान्त करके उसे सुख पहुँचाती हैं, उसी प्रकार सब प्राणी मुझे प्यार करके मेरी वेदना और व्यथा को शान्त करें।

विशेष—उपमा और रूपक अलंकार।

आ गया······शान्त ।

शब्दार्थ—क्रीड़ाशील=खेल में लगा हुआ। चपल=चंचल। शैशव-सा=बचपन के समान। दप्त=उठा हुआ।

अर्थ—जब मनु पशु और श्रद्धा के परस्पर प्रगाढ़ प्रेम को देख कर ईर्ष्या से जल रहे थे, तभी पशु के साथ प्रेम से क्रीड़ा करने वाली उदार श्रद्धा मनु के पास आ गई। वह अपनी सारी क्रिआओं को इस प्रकार भूल गई जिस प्रकार चंचल बच्चा अपने सारे कार्यों को भूल जाता है। वह मनु को पूछने लगी कि तुम अभी तक ध्यान रहे हुए ही क्यों बैठे हो ? तुम्हारी स्थिति को देखकर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि तुम देख कुछ और रहे और सुन कुछ और रहे हो। तुम्हारा मन और ही कहीं विचरण कर रहा है। आज तुम्हारी यह कैसी दशा हो गई है ? श्रद्धा के मधुर वचनों को सुनकर मनु की धधकती ईर्ष्या और उमड़ती हुई उमंग उसी प्रकार विलीन हो गई, जिस प्रकार सपेरे के सामने साँप अपना फण झुका लेता है। फिर श्रद्धा अपने सुन्दर तथा कमल जैसे कोमल हाथ से मनु को सहलाने लगी। श्रद्धा के अपूर्व सौन्दर्य के रूप को देखकर मनु का मन कुछ शान्त हो गया।

विशेष—पूर्णोपमा और रूपक अलंकार।

कहा······गम्भीर ।

शब्दार्थ—सहचर=साथी। चिरंतन=अत्यधिक।

अर्थ—मनु ने श्रद्धा से पूछा कि हे अतिथि ! तुम अब तक कहां रहे ? किस अज्ञात स्थान में घूमते रहे ? तुम्हारा साथी यह पशु तुमसे इतना अधीर होकर बातें कर रहा था जैसे यह तुम्हें किसी सरलता से प्राप्त होने वाली भविष्य की बातें बता रहा हो आज इस पशु को तुम्हारा इतना अधिक और गम्भीर प्रेम क्यों मिल रहा था ? अर्थात तुम उससे इतना अधिक प्रेम क्यों प्रदर्शित कर रही थीं ?

कौन हो···साख।

शब्दार्थ—ज्योत्स्ना निर्झर=चाँदनी के झरने, अत्यधिक शोभा से पूर्ण। साख=शक्ति।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि इस प्रकार अपनी ओर खींचने वाले तुम कौन हो? जब मेरा हृदय तुम्हारी ओर आकर्षित होता है तो उसे ललचाकर तुम एक ओर हट जाते हो, दूर चले जाते हो। तुम इतने सौन्दर्य-सम्पन्न हो कि तुम्हारे रूप पर दृष्टि ही नहीं ठहरती। ऐसा लगता है, जैसे तुम्हें पहिचान लेने वाली मेरी शक्ति ही नष्ट हो गई है।

विशेष – 'ज्योत्स्ना-निर्झर' में रूपक अलंकार है।

कौन करुण······सानन्द।

शब्दार्थ—वीरुध=पौदे। छन्द=अभिलाषा। आलिंगन=भेंट।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि हे सौन्दर्यशाली! न जाने तुम में असीम करुणा से भरा हुआ कौन-सा रहस्य छिपा हुआ है? लता और पौदे सभी तुम्हारे सौन्दर्य में अपनी छवि देखते हुए तुम्हारे लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए तैयार खड़े रहते हैं। चाहे पशु हो या पत्थर, सभी तुम्हारे सौन्दर्य को देखकर नवीन आशा से भरकर नाचने लगते हैं। सच तो यह है कि सृष्टि के सभी पदार्थ तुमसे भेंट करने के लिए आनन्दपूर्वक तुम्हारी ओर खिचे चले आते हैं।

राशि-राशि······छवि-धाम।

शब्दार्थ—राशि-राशि=ढेर का ढेर। संचित=इकट्ठा किया हुआ। ललित=सुन्दर। लतिका-लास=लता का नाच। अरुण घन=संध्याकालीन लाल बादल। दिनांत=संध्या। सविलास=क्रीड़ा-सहित। मदिर माधव यामिनी=मस्त बना देने वाली वसन्त ऋतु की रात। धीरपद-विन्यास=धीरे-धीरे चलना। यामा का अचल आवास=सौन्दर्य का स्थायी निवास-स्थान हिम हास=बर्फ जैसी स्वच्छ चाँदनी का फैलना।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि जिस प्रकार कोई धनाढ्य उदार होकर अपनी ढेर-ढेर धन-राशि को बिखेर देता है, अर्थात् गरीबों को मुक्तहस्त होकर देने लगता है और गरीब उसको उधार के रूप में ढोकर रख लेता है, उसी प्रकार तुम भी अत्यन्त उदास होकर अपने प्रेम-धन का वितरण कर रही हो और

यह प्रेमाभाव से पीड़ित विश्व उसको प्रतिपादन के रूप में ढो-ढोकर अपने जीवन में भर रहा है। आज मैं आश्चर्यचकित होकर यह देख रहा हूँ कि जिस प्रकार संध्या के समय लाल बादलों की लालिमा चारों ओर फैल कर वह मादक वातावरण प्रस्तुत कर देती है, जिसमें लताएँ भी सुन्दर नृत्य करने लगती हैं और जिसमें मस्त बना देने वाली वसन्त ऋतु की रात धीरे-धीरे चरण रखती हुई अपनी सहज गति तथा क्रीड़ापूर्ण रीति से बढ़ती चली आती है। उस समय वह निर्जन और सूने खंडहर को भी बसने योग्य बना देती है। इसी प्रकार तुमने सूने हृदय को फिर से बसने योग्य बना दिया है जो सूने खंडहर के समान था और जिसमें कोई सद्भाव नहीं रह गया था। हे अतिथि ! जिस प्रकार संध्या की शोभा और वसन्त ऋतु की रजनी सूने खंडहर को सौन्दर्य का स्थायी विकास-स्थान बना देती है और उसमें बसकर सभी को विश्राम मिलता है, उसी प्रकार तुमने मेरे भग्न हृदय को फिर से आशावादी बनाकर मुझे शान्ति प्रदान की है। अतः इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि इस समय मैं सुख की नींद का अनुभव कर रहा हूँ, क्योंकि मेरे चारों ओर बर्फ की स्वच्छ हँसी की भाँति स्वच्छ और निर्मल चाँदनी छिटकी हुई है। तुम इस समय वासना की मधुर छाया मेरे ऊपर डाल रही हो, जिसमें मुझे स्वास्थ्य, बल और विश्राम मिल रहा है। हे हृदय के सौन्दर्य की मूर्ति ! बताओ तो, इतना व्यापक प्रभाव डालने वाली तुम कौन हो ?

कामना······कपाट ?

शब्दार्थ—कामना=अभिलाषा। ओज=प्रकाश। कुन्द=एक पुष्प। मन्दिर=स्थान। सुषमा=शोभा। रुद्ध=बन्द।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि तुम मुझे ऐसी लगती हो जैसे कामना की किरण में प्रकाश से संयुक्त होकर प्रकट हो गई हो। तुम्हें पाकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे तुम वही वस्तु हो जिसे मेरा हृदय पहले भूल गया था और अब वह प्राप्त करली है। जिस प्रकार कुन्दों का स्थान अपनी सुषमा को चारों ओर बिखेर आनन्द देता है, उसी प्रकार तुम्हारी हँसी मेरी व्यथाओं को शान्त करके मुझे आनन्द तो देती है किन्तु तुम अभी तक मेरे लिए वैसी ही अपरिचित बनी हुई हो, जैसे बन्द किवाड़ों के अन्दर की कोई वस्तु होती है। खेद तो यह है कि अभी तक यह कपाट क्यों नहीं खुला ? अर्थात् तुमने

अपना पूर्ण परिचय देकर मेरी जिज्ञासा को शान्त क्यों नहीं किया।

विशेष—उपमा और रूपक अलंकार।

कहा हँसकर······साज !

शब्दार्थ—उद्विग्न=आकुल। इसके अर्थ=इसके लिए। हँसमुख विधु=हँसता हुआ चन्द्रमा, चारों ओर चाँदनी को बिखेरता हुआ चन्द्रमा। जलद लघु खन्ड वाहन=बादल के छोटे टुकड़े को सवारी बनाये हुए। साज=सजावट।

अर्थ=जब मनु श्रद्धा का पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए हठ करते हैं तो श्रद्धा हँस कर कहती है कि 'मैं अतिथि' हूँ, मेरा इतना परिचय ही पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त और परिचय व्यर्थ है। आज से पहले, तुम मेरा सम्पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए इतने आकुल भी नहीं हुए थे, जितने आकुल आज दिखाई दे रहे हो। चलो, इन बातों को छोड़ो और देखो, अपनी स्वाभाविक चाँदनी को चारों ओर बिखेरता हुआ तथा बादल के छोटे टुकड़े को सजाकर उस पर सवारी करता हुआ चन्द्रमा हमें बुलाने के लिए आता है। अतः चलो इस स्वच्छ चाँदनी रात में, भ्रमण कर आयें।

विशेष—रूपक और मानवीकरण अलंकार।

कालिमा ·····अनुमान।

शब्दार्थ—कालिमा=अंधकार। घुलने लगा आलोक=प्रकाश फैलने लगा। निभृत अनंत=सूना आकाश। बसने लगा लोक=तारे निकलने लगे। निशामुख—चन्द्रमा। सुधामया=अमृत से भरी हुई।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि चन्द्रमा के उदय होने के कारण अन्धकार मिटता जा रहा है और प्रकाश फैलने लगा है। इस सूने आकाश में अब विविध प्रकार के तारे भी निकलने लगे हैं। आओ, इस स्वच्छ चाँदनी में विहार करें, और चन्द्रमा की मनोहर एवं अमृत से भरी हुई चाँदनी को देखकर अपने सारे दुःखों को भूलने का प्रयत्न करें।

विशेष—मानवीकरण अलंकार।

देख लो······साधना का राज।

शब्दार्थ—शिखर=पर्वत की चोटी। व्योम चुम्बन व्यस्त=तल्लीन होकर आकाश का चुम्बन करना। कौमुदी=चाँदनी। स्वप्न शासन=स्वप्न

की भाँति मनोहर राज्य।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि चलो, आगे देखें कि यह पर्वत की चोटी किस प्रकार तल्लीन होकर आकाश का चुम्बन कर रही है। सूर्य की अंतिम किरण किस प्रकार आकाश के चरणों में लोटती हुई अस्त हो रही है। चलो, आज हम इस चाँदनी में बिहार कर आवें। यह वातावरण इतना सुन्दर है जैसे पर प्रकृति का स्वप्न की भाँति मनोहर राज्य हो; अथवा यह साधना का राज्य है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्थान पर स्थित है।

विशेष—मानवीकरण अलंकार।

सृष्टि हँसने······स्नेह-संबल साथ।

शब्दार्थ—अनुराग = प्रेम। राग-रंजित=प्रेम में रंगी हुई। चन्द्रिका= चाँदनी। स्नेह-संबल = प्रेम का सहारा।

अर्थ—कवि कहता है कि जब श्रद्धा और मनु अपनी गुफा से चाँदनी में बिहार करने चले तो समूची सृष्टि मानो चाँदनी के रूप में हँसने लगी और उसकी आँखों से प्रेम खिलने लगा। उस समय चाँदनी भी प्रेम से रंगी हुई प्रतीत होती थी। फूलों का पराग उड़ रहा था। उसी समय श्रद्धा मनु का हाथ पकड़कर हँस रही थी। वे दोनों प्रेम का सहारा लिए हुए इस प्रकार आनन्द-विभोर होकर चले जैसे वे किसी स्वप्न-मार्ग पर जा रहे हों।

विशेष—परम्परित रूपक अलंकार।

देवदारु ·····मधु अंध।

शब्दार्थ—निकुंज = लताओं के झुरमुट। गह्वर =गुफा। सुधा में स्नान= अमृत में नहाये हुए। मदिर=मादक। भीनी = हल्की। माधवी=वासन्ती। मधु-अंध=मधु से पागल।

अर्थ—उस समय प्रकृति के सभी-पदार्थ, देवदारु के वृक्ष, लताओं के झुरमुट और गुफाएँ चाँदनी में ऐसी डूबी हुई थीं कि ऐसा प्रतीत होता था जैसे वे सभी अमृत में नहाये हुए हों। उस मनोहर वातावरण को देखकर ऐसा लगता था जैसे प्रकृति के सभी पदार्थ मिलकर जागरण की रात का उत्सव मना रहे हों। उस समय वासन्ती पवन से मादक और हल्की-हल्की सुगंधि आ रही थी। पवन इस प्रकार मधु से पागल होकर मंडरा रहा था जैसे वर्षाकालीन बादल आकाश में मँडराते हैं।

विशेष—रूपक और मानवीकरण अलंकार।

शिथिल······कुतूहल कांत।

शब्दार्थ—कांत छाया=सुन्दर प्रतिबिम्ब। शिशिर कण=ओस की बूँदें। विश्रान्त=थकी हुई। भ्रान्त=भ्रमित। कुतूहल=आश्चर्य।

अर्थ—पेड़ों के झुरमुट पर पड़ी हुई चाँदनी ऐसा प्रतीत होती थी जैसे रात्रि शिथिल और अलसाई होकर तथा अपने सुन्दर प्रतिबिम्ब को लेकर ओस के कणों से बनी हुई मृदुल शैया पर थककर सो रही हो। उस झुरमुट की शोभा को देखकर जहाँ पर चाँदनी सुन्दर कौतूहल पैदा करती थी, मनु के हृदय की काम-वासना जागृत हो गई।

विशेष—मानवीकरण और समासोक्ति अलंकार।

कहा मनु··· ··गीत।

शब्दार्थ—स्पृहणीय=ईर्ष्या करने योग्य, अत्यंत सुन्दर। अतीत=भूत-काल। मदिर घन=मादक बादल।

अर्थ—अपने हृदय में काम-वासना के जागृत होने पर मनु ने श्रद्धा से कहा कि हे अतिथि! मैंने तुम्हें पहले भी कई बार देखा है किन्तु तुम मुझे इतने सुन्दर कभी दिखाई नहीं दिए जितने कि आज दे रहे हो। इसे मैं अपने पूर्वजन्म का सौभाग्य कहूँ या वह अत्यंत मधुर एवं रमणीय भूत काल कहूँ, जब मेरे हृदय में वासना के मादक गीत इसी प्रकार गूँजा करते थे, जिस प्रकार आकाश में बादल गूँजते हैं।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति और परंपरित रूपक अलंकार।

भूलकर······चक्राकार।

शब्दार्थ—अचेत=संज्ञाहीन, बेचैन। सव्रीड़=लज्जासहित। सस्मित=मधुर हँसी से युक्त। चेतना का परिधि=चेतना का घेरा बनकर। चक्राकार=पहिए की तरह।

अर्थ—प्रकृति के चाँदनी युक्त मादक वातावरण को देखकर जब मनु की काम-वासना जागृत हो गई तो वे श्रद्धा से कहने लगे कि हे अतिथि मैं अपने भूतकाल के प्रेम व्यापारों के मधुर दृश्यों को भूलकर बेचैन बना हुआ था वही दृश्य कुछ लज्जा और कुछ मधुर हास्य के साथ मेरे उन पुराने प्रेम व्यापारों की ओर संकेत कर रहा है, अर्थात् मुझे अपनी भूतकाल के प्रेम व्यापार याद

आ रहे हैं। मैं तुम्हारा होता जा रहा हूँ यह विचार आज एक पहिए की तरह घूमता हुआ मुझे सचेत कर रहा है, अर्थात् तुम्हारे प्रति समर्पण करने को वाध्य कर रहा हो।

मधु बरसती······घ्राण।

शब्दार्थ—विधु=चन्द्रमा। मन्थर=मन्द मन्द। सुरभि=सुगंधि। घ्राण=नाक।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि हे अतिथि! अमृत बरसाती हुई चन्द्रमा की ये कोमल किरणें मुझे कांपती हुई सी दिखाई दे रही है। मन्द मन्द गति से चलने वाला सुगन्धित पवन उन्मत्त बना देने वाले मधु भार को लेकर मुझे रोमांचित कर रहा है। समझ में नहीं आता कि तुम्हारे समीप होते हुए भी मेरा मन इतना क्यों व्याकुल हो रहा है और मेरी नासिका न जाने तृप्त होकर भी किस सुगंधि के लिए लालायित हो रही है।

विशेष—मानवीकरण अलंकार।

आज क्यों······लघुभार।

शब्दार्थ—असमर्थ=असफल। धमनियों में=नाड़ियों में। लघुभार=हल्का सा बोझ।

जर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि हे अतिथि! न जाने क्यों मुझे यह संदेह व्यर्थ में ही होता जा रहा है कि तुम मुझसे रूठ गए हो और मैं तुम्हें मनाने में असमर्थ हो रहा हूँ। मेरी नाड़ियों में वेदना के समान रक्त का तीव्र प्रवाह होने लगा है और मेरे हृदय की धड़कन हल्का सा बोझ लिए कांप रही है।

विशेष—'वेदना सा' में उपमा अलंकार और 'कांपती धड़कन' में विशेषण विपर्यय अलंकार।'

चेतना रंगीन······उसमें दाह।

शब्दार्थ—रंगीन ज्वाला=मधुर दाह। अग्नि कीट=आग में रहने वाला कीड़ा।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि आज मेरी चेतना वासना की मधुर आग के घेरे में बंदी हुई, इसे अपना दिव्य सुख मान रही है और मस्त हो कर मधुर गीत गा रही है। लाज यह चेतना वासना की ज्वाला में उसी प्रकार बसी हुई है, जिस प्रकार अग्नि कीट आग में रहकर भी जीवित रहता है न उसके छाले

पड़ते हैं और न उसके जलन होती है।

विशेष—पूर्णोपमा तथा विरोधाभास अलंकार।

कौन हो विनाश······विनाश।

शब्दार्थ—कुहुक सी=जादू सी। भेद सी=रहस्य के समान। कांत=सुन्दर। व्यजन=पंखा।

अर्थ—काम वासना के जागृत होने पर मनु श्रद्धा से कहते हैं कि हे अतिथि! तुम कौन हो? तुम्हारे इस व्यापक प्रभाव को देखकर ऐसा मालूम देता है जैसे तुम इस संसार में अपनी माया को फैलाने वाले साकार जादू हो। तुम्हारा यह सुकुमार रूप मुझे प्राणवान प्राणियों के मनोहर रहस्य के समान जान पड़ता है। जिस प्रकार कोई थका व्यक्ति किसी सुन्दर शीतल छाया में बैठकर और पंखा करके आनन्द की सांस लेता है और अपनी थकावट दूर करता है उसी प्रकार मेरा हृदय भी तुम्हारी सौन्दर्य-रूपी छाया में बैठकर और तुम्हारा मधुर स्पर्श प्राप्त करके अपने मन की ग्लानि को दूर कर रहा है।

विशेष—पूर्णोपमा अलंकार।

श्याम नभ······अनुरक्त।

शब्दार्थ—दक्षिण का समीर विलास=मलय पवन का मन्द मन्द गति से चलना। मुकुल सा=कलि के समान। अव्यक्त=गुप्त। अनुरक्त=प्रेम पूर्वक।

अर्थ—नीले वस्त्रों को धारण किए हुए श्रद्धा जब मनु की बातें सुनकर मुस्कराई तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे नीले बादल में कोई मादक किरण फूट पड़ी हो, अथवा समुद्र में दक्षिण की ओर से आने वाली मलय पवन की मन्द मन्द गति से हल्की-सी हिलोर उठ रही हो। जिस प्रकार किसी कुंज में कोई अविकसित कलि सहसा विकसित होकर चटचट की मधुर ध्वनि से गूँज पड़ती है उसी प्रकार श्रद्धा मनु के प्रश्नों को सुनकर मधुर वाणी से उनका उत्तर देने लगी। मनु प्रेमपूर्वक उन्हें सुनने लगे।

विशेष—उपमा अलंकार।

अतृप्ति······कौन।

शब्दार्थ—अतृप्ति=असंतोष। क्षोभयुक्त=हलचल से भरे हुए, अव्यवस्थित। उन्माद=पागलपन। तुमुल=कोलाहल। विमल शंका=निर्मल पूर्णिमा

की रात्रि।

अर्थ—मनु को काम वासना से पीड़ित देखकर श्रद्धा कहने लगी कि हे सखे ? तुम्हारे अव्यवस्थित और पागल मन की अधीरता को देखकर और कोलाहल करती हुई लहरों के समान तुम्हारे आहों से भरे हुए कथनों को सुन-कर यह स्पष्ट हो जाता है कि तुम्हें अभी तृप्ति नहीं मिली है। ऐसे मनोहर वातावरण में न तो ऐसी बातें कहना ही उचित है और न इस प्रकार के प्रश्न पूछना ही उचित है। उधर देखो वह चन्द्रमा निर्मल पूर्णिमा की रात्रि की साकार मूर्त्ति बनकर अर्थात् अपनी सम्पूर्ण शोभा सँजोकर भी स्तब्ध और मौन बैठा हुआ है।

विशेष – उपमा और रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

विभव······प्रांत।

शब्दार्थ—विभव=ऐश्वर्य। प्रकृति का आवरण वह नील=नीला आकाश। शिथिल=शांत। नखत=तारे। अर्चना=पूजा। अज्ञात=निरन्तर। तामरस=कमल। प्रांत=समीप।

अर्थ—काम वासना से प्रताड़ित मनु से श्रद्धा कहती है कि हे सखे ! यह ऐश्वर्य से उन्मत्त प्रकृति आकाश का आवरण ओढ़े हुए, जो अत्यंत ढीला है, जिसके ऊपर तारों की खीलें बिखरी हुई हैं, किसी वधू की भाँति चुपचाप बैठी हुई हैं। इस प्रकृति वधू की निरन्तर पूजा के लिए ढेर के ढेर तारे रूपी फूल बिखरे हुए हैं, जो चंद्रमा के रूप में दिखाई देने वाले सुन्दर कमल जैसे चरणों के निकट बिखरे हुए हैं।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति, उपमा और समासोक्ति अलंकार।

मनु निखरने······श्रीमंत।

शब्दार्थ—निखरने लगे=देखने लगे। यामिनी=रात्रि। अपरूप=अनु-पम। श्रीमंत=अत्यधिक शोभा से युक्त।

अर्थ—मनु जैसे-जैसे उस रात्रि का सौन्दर्य देखते जाते थे वैसे-वैसे ही उसकी अनुपम अनंत और प्रगाढ़ छाया फैलती जाती थी, अर्थात् उसका सौन्दर्य और भी निखर उठता था। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि मानो आकाश मदिरा की बूँदों के समान उन्मत्त बना देने वाली चाँदनी की बूँदों को लगातार बरसा रहा हो। ऐसे मादक वातावरण में मनु की कामवासना और

भी अधिक बढ़ गई और उनके मन में अत्यधिक मिलन का संगीत बजने लगा, अर्थात् वे मिलन के लिए अत्यन्त आतुर हो उठे।

छूटती ...... था लेश।

शब्दार्थ—चिनगारियाँ = वासना की चिनगारियाँ। उत्तेजना = आवेश। उद्भ्रान्त = पथ भ्रष्ट। वक्ष = हृदय। वातचक्र = आंधी का घेरा, बवंडर। लेश = तनिक भी।

अर्थ—श्रद्धा के वचन सुनकर भी मनु की वासना शांत नहीं हुई। वरन् उसकी चिनगारी और भी अधिकता से छूटने लगी, उनका आवेश पथ भ्रष्ट हो गया अर्थात् उन्हें उचित-अनुचित का भी ज्ञान न रहा। उनके हृदय में वासना की एक मधुर आग जल रही थी जो उसे विकल और अशांत बनाए हुई थी। उनका आवेश बवंडर के समान मनु को झकझोर रहा था। मनु के हृदय में धैर्य लेश मात्र भी नहीं था।

कर पकड़ ...... अकूल।

शब्दार्थ—मधुरिमामय = माधुर्यपूर्ण। विस्मृति = भूल। अकूल = तटहीन।

अर्थ—मनु अत्यधिक वासना से उन्मत्त होकर और श्रद्धा का हाथ पकड़ कर कहने लगे कि आज मैं तुम में सौन्दर्य पूर्ण सजावट का और ही रूप देखता हूँ, अर्थात् आज तुम मुझे सबसे अधिक सुन्दर लग रही हो। तुम्हारी शोभा बिल्कुल वैसी ही है जैसी मैंने पहले कभी देखी थी किंतु मेरी भूल यही रही कि मैं तुम्हें आज तक नहीं पहचान सका। जिस प्रकार किनारे से दूर कोई नाव समुद्र के बीच ही बीच में भटकती रहती है, उसी प्रकार मेरी स्मृति भी आज तक भटकती रही और तुम्हें पहचान नहीं पाई।

विशेष—परंपरित रूपक अलंकार।

जन्म-संगिनी ...... सुषमासूल।

शब्दार्थ—जन्म-संगिनी = बाल-सहचरी। काम-बाला = काम की पुत्री। सुषमा मूल = समस्त सौन्दर्य का मूल।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि तुम्हारे रूप-सौन्दर्य को देखकर मुझे अपनी उस बाल-सहचरी की याद आती है, जो काम की पुत्री थी, उसका मधुर नाम श्रद्धा था। वह मुझे इतनी प्रिय थी कि मेरे हृदय को सदैव उसी से विश्राम मिलता था। फूल अर्घ्य में उसको मकरन्द दिया करते थे। वह इतनी रूपवती

थी कि उसके रूप को देखकर ऐसा लगता था मानों वह समस्त सौन्दर्य का मूल हो ; अर्थात् विश्व का सौन्दर्य उसी के सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब हो ।

विशेष—श्रद्धा और मनु के पति-पत्नी रूप का उल्लेख श्री मद्भागवत पुराण में भी मिलता है—

'तत्र श्रद्धा मनोः पत्नी होतारं समयान्यत ।'

प्रलय में ·····तारक-हार ।

शब्दार्थ—मोद = आनन्द । ज्योत्स्ना-सी = चाँदनी की भांति । नीहार = कुहरा । प्रणय विधु = प्रेम रूपी चन्द्रमा । तारक-हार = तारों का हार ।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि हम दोनों प्रलय-काल में भी इसलिए बच रहे कि हमें फिर मिलन का आनन्द मिले; अर्थात् हम फिर मिलें । और यह सूने जगत् की गोद भी इसलिए बच गई, यह भूखंड इसीलिए प्रलय के प्रवाह से बच गया कि इस पर हमारा फिर मिलन हो जाये । प्रकृति हम दोनों का पुर्नमिलन चाहती थी इसीलिए तुम अज्ञात प्रदेश के कुहासे को पार करके चाँदनी की भाँति मेरे सामने प्रकट हो गईं । वह देखो; प्रेम रूपी चन्द्रमा हमारे लिए प्रकाश में तारों के हार लिए खड़ा है । अर्थात् प्रकृति यह चाह रही है कि हम दाम्पत्य-सूत्र में वँध जायें ।

विशेष—रूपक अलंकार ।

कुटिल-कुंतल·····चल सृष्टि ।

शब्दार्थ—कुटिल कुंतल = घुँघराले बाल । तमिस्रा = रात । दुर्भेद्य = गहन । तम = अन्धकार । चल = चंचल ।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि तुम्हारे घुंघराले बाल ऐसे आकर्षक हैं कि ऐसा जान पड़ता है कि समय ने अपना माया जाल इन्हीं से बनाया हो । तुम्हारे नेत्रों की नीलिमा से ही संसार की रात्रि की रचना हुई है । तुम्हारी दृष्टि नींद की भाँति दुर्भेद्य और गहन अंधकार के समान काली है । तुम्हारी हँसी स्वप्न सी बिखर कर चंचल सृष्टि का निर्माण कर देती है ।

हुई केन्द्रीभूत सी·····था भ्रांत ।

शब्दार्थ—केन्द्रीभूत सी = इकट्ठी हुई सी । स्फूर्ति = उमंग । रम्य = सुन्दर । दिवाकर = सूर्य । भ्रांत = पथ भ्रष्ट होकर ।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि तुम इतनी सेवारत हो कि इसे देखकर

यह कहा जा सकता है कि सारी साधना की उमंग तुममें आकर ही इकट्ठी-सी हो गई हैं। यद्यपि तुम में अखिल सुकुमारता है, सुन्दरता है और तुम नारी की मूर्त्ति हो तथापि तुम अपने कार्य में दृढ़ हो। मैं पुरुष होते हुए सूर्य या दिन के परिश्रम से दुःखी होकर और थककर बच्चे की तरह आज तक पथ भ्रष्ट होकर भटकता फिर रहा था।

विशेष—उपमा अलंकार।

चन्द्र की······अशान्त।

शब्दार्थ—राधा बालिका=पूर्णिमा की पुत्री के समान। माधुरी सी=मधुर रात्रि जैसी। व्रज्या=पगडंडी। आक्रांत=दबी हुई।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि तुम चन्द्रमा को विश्राम देने वाली पूर्णिमा की बालिका के समान सुन्दर हो। तुम संसार को जीतने वाली-सी दिखाई देकर भी मधुर रात्रि की भाँति शांत हो। तुम दूसरों के द्वारा दबाई गई और पद-दलित उस पगडंडी के समान हो, जो थककर तथा अश्रांत होकर हरे-भरे खेतों में जाकर समाप्त हो जाती है।

विशेष—उपमा और उल्लेख अलंकार।

आह! वैसा······की मान।

शब्दार्थ—काम=इच्छा। चेतना=चेतन पुरुष का। मान=मर्यादा।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि मेरे हृदय की गति आज वैसी ही हो रही है जिसे आश्रय और शांति की आवश्यकता है। तुम्हीं से आज मैं अपनी इस इच्छा की पूर्ति देख रहा हूँ। हे विश्वरानी! हे सुन्दरी नारी! हे जगत् की मर्यादा! आज तुम इस चेतन पुरुष का यह समर्पण का दान स्वीकार करो।

धूम लतिका······उपचार।

शब्दार्थ—धूम लतिका=धूँए की लता। गगन तरु=आकाश रूपी वृक्ष। शिशिर निशीथ=शीतकाल की अर्ध रात्रि। सव्रीड़=लज्जा सहित। मर्ममय=अनुनय-विनय से भरा हुआ। उपचार=यहाँ समर्पण से तात्पर्य है।

अर्थ—मनु के आत्म-समर्पण कर देने पर श्रद्धा की दशा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वह उस धुँए की लता के समान दिखाई दे रही थी जो असमर्थ होकर आकाश रूपी वृक्ष पर न चढ़ पाए और शिशिर की अर्ध रात्रि

में ओस बिन्दुओं के भार से दबी रह जाए। श्रद्धा अपनी सुकुमारता और लज्जा के कारण पुरुष का अनुनय-विनय से भरा हुआ समर्पण पाकर थक गई थी।

विशेष—उपमा तथा परंपरित रूपक अलंकार।

और वह······करने रास।

शब्दार्थ—मधुर अनुभाव=मधुर चेष्टाएँ। व्रीड़ा अभिक्ष=लज्जा से मिली हुई। रास=नाचना।

अर्थ—मनु ने आत्म-समर्पण कर देने पर श्रद्धा की दशा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि श्रद्धा में जो नारी सुलभ मधुर चेष्टाएँ थीं वे जैसे अत्यधिक आन्तरिक चाव को बढ़ाती हुई हँसने लगी। उसका हृदय मधुर लज्जा से युक्त, चिन्ता और उल्लास लेकर आनन्द से झूलने लगा तथा नाचने लगा।

गिर रही······गद्गद् बोल।

शब्दार्थ—भ्रू लता=भौंह रूपी लता। ललित=सुन्दर।

अर्थ—मनु के आत्म-समर्पण कर देने के पश्चात् श्रद्धा की दशा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि उसकी पलकें लज्जा के कारण नीचे झुकी हुई थीं। उसकी नासिका की नोक भी नीचे झुक गई थी। उसकी भौंहें निर्बाध गति से कान तक इस प्रकार चढ़ रही थी जैसे कोई लता वृक्ष पर चढ़ जाती है। लज्जा ने उसके सुन्दर कान और कपोलों का स्पर्श करके उन्हें लाल बना दिया था। उसका सारा शरीर रोमांचित होकर वर्षाकाल में कदम्ब के पेड़ की भाँति खिल उठा था और उसकी वाणी प्रेमावेश के कारण गद्-गद् हो गई थी।

विशेष—पूर्णोपमा और रूपक अलंकार।

किन्तु बोल······हो प्रान।

शब्दार्थ—नारी हृदय हेतू=नारी हृदय के लिए। उपभोग करने में=भोगने में।

अर्थ—मनु के आत्म-समर्पण कर देने पर श्रद्धा मनु से कहती है कि हे देव! क्या आज का यह आपका समर्पण नारी हृदय के लिए सदैव के लिए चिरबंधन न बन जाएगा? मैं दुर्बल नारी हूँ क्या मैं हृदय के इस समर्पण को ग्रहण कर सकूँगी, जिसका भोग करने में प्राणों को अत्यन्त विकल होना पड़ता है।

लज्जा

कथासार—जब श्रद्धा ने मनु के समक्ष समर्पण कर दिया तो उसके जीवन में शारीरिक और मानसिक परिवर्तन सहसा इतने हो गये कि उन परिवर्तनों को देखकर स्वयं श्रद्धा भी आश्चर्यचकित हो गई। उसका हृदय एक प्रकार के उन्माद से भर गया जिसमें शत-शत मधुर अभिलाषाएँ उमगने लगीं। अब वह न तो खुलकर हँस पाती थी और न खुलकर बोल ही सकती थी। वह स्वयं में ही सिमटी जा रही थी। उसकी हँसी उसके अधरों तक, आकर रुक जाती थी। उसके नेत्रों में वक्रता आ गई थी। वह जो कुछ देखती थी, वह सभी स्वप्न-सा बनता जा रहा था। उसका हृदय असंख्य अभिलाषाओं से भर गया था। जिस मनु के साथ वह निस्संकोच विचरण किया करती थी, अब उसे छूने में भी उसे झिझक लगती थी। उसे देखते ही उसकी पलकें झुक जाती थीं और कलरव परिहास भरी हुई गूँजें उसके अधरों पर आकर रुक जाती थीं। श्रद्धा को अपने इन परिवर्तनों का तो ज्ञान था, किन्तु इनके कारणों को वह प्रयत्न करने पर भी नहीं जान पा रही थी।

एक दिन संध्या-समय श्रद्धा अपने इन्हीं परिवर्तनों पर विचार कर रही थी कि सहसा उसे एक आकृति-सी अपनी ओर आती हुई दिखाई दी। यह लज्जा थी। लज्जा ने आकर उसे बताया कि उसके सब परिवर्तनों का कारण वही है। लज्जा ने अपना परिचय देते हुए श्रद्धा को बताया कि वही युवतियों का मार्ग-प्रदर्शन करने वाली है। देव-सृष्टि के विध्वंस से पूर्व वह इस धरा पर रति के रूप में विद्यमान थी, किन्तु देवों का नाश हो जाने पर वह एक भावना के रूप में रह गई। लज्जा का परिचय प्राप्त कर लेने के पश्चात् श्रद्धा ने पूछा कि वह अपना जीवन किस प्रकार बिताये? क्या वह अपना सर्वस्व मनु को समर्पित कर दे? इस पर लज्जा ने उत्तर दिया कि तुम तो केवल श्रद्धा हो और तुम्हारा हृदय विश्वास से भरा हुआ है। अतः तुम्हें तो केवल अमृतमयी

नदी की भाँति बहते हुए अपने जीवन को और मनु के जीवन को सुखी बनाना चाहिए, क्योंकि नारी का नारीत्व सर्वस्व समर्पित करने में ही है।

कोमल किसलय······दिपती-सी।

शब्दार्थ—किसलय=नवीन पत्ते। कलिका=कली। गोधूली=संध्या-समय। दीपक के स्वर=दीपक की लौ। दिपती-सी=चमकती हुई-सी।

अर्थ—अपनी ओर बढ़ती हुई एक छाया को देखकर श्रद्धा कहती है कि जिस प्रकार नन्हीं कली स्वयं को कोमल तथा नवीन पत्तों में छिपा लेती है, उसी प्रकार तुम अपने सुन्दर अंचल में अपने-आपको छिपाने का प्रयास करती हुई-सी, जिस प्रकार संध्या-समय गौओं के खुरों से उठी हुई धूल के पट में दीपक की लौ धूमिलता से दिखाई देती है, उसी प्रकार अपने पट से अपने सौन्दर्य को प्रकाशित करती हुई-सी तुम कौन हो?

विशेष—उपमा अलंकार।

मंजुल स्वप्नों······भरे हुए।

शब्दार्थ—मंजुल=मनोहर। विस्मृति=भूल। सुरभित=सुगन्धित। बुल्ले का वैभव=बुलबुले का ऐश्वर्य।

अर्थ—जिस प्रकार मनोहर स्वप्नों में बाह्य वातावरण की भूल आ जाने पर मन का उन्माद द्विगुणित हो जाता है और मन में अनेक प्रकार की उमंगें उसी प्रकार उगली और मिटती रहती हैं जिस प्रकार सुगन्धित लहरों के अन्तर्गत बुलबुले का ऐश्वर्य बिखरता रहता है।

विशेष—उपमा अलंकार।

वैसी······भरे हुए।

शब्दार्थ—माया=मोह का जादू। माधव=वसंत। आँखों में पानी भरे हुए=आँखों में आनन्द और उन्माद के अश्रु भर कर।

अर्थ—उसी प्रकार मोहक जादू जैसे रूपलावण्य में लिपटी हुई और अपने अधरों पर उँगली रखकर दूसरों को चुप रहने का संकेत देती हुई अथवा किसी मनोहर भाव में डूबी हुई तथा वसन्त के आनन्दप्रद कौतूहल से उत्पन्न आंखों में हर्ष और आनन्द के अश्रु भरे हुए यह कौन है?

विशेष—मालोपमा अलंकार।

नीरव शिथिल······जादू पड़ती।

शब्दार्थ—नीरव=शान्त। निशीथ=अर्धरात्रि। आलिंगन का जादू पढ़ती=आलिंगन की प्रेरणा देती हुई।

अर्थ—तुम कौन हो? जो मेरी ओर इस तरह बढ़ी चली आ रही हो जिस प्रकार अर्द्धरात्रि के शान्त वातावरण में लता बढ़ती है। और अपनी कोमल बाँहें फैलाए हुए भी मुझे आलिंगन की प्रेरणा देती हुई मेरी ओर बढ़ी चली आ रही हो।

किन इन्द्रजाल ···· धार ढरे?

शब्दार्थ—इन्द्रजाल=जादू। सुहाग कण=सिंदूर की भाँति लाल-लाल पराग के कण। राग=अनुराग, लाल रंग। मधु धार=मकरन्द की धारा, आनन्द की धारा।

अर्थ—एक मनोहर तथा विलक्षण छाया को अपनी ओर आती हुई देखकर श्रद्धा उससे पूछती है कि तुमने किन जादू के फूलों से सिन्दूर की भाँति लाल-लाल पराग के कण एकत्रित कर लिए हैं। तुम सिर नीचा करके बड़ी तन्मयतता से इन फूलों की माला बना रही हो, जिससे मकरन्द की धारा के समान आनन्द की धारा बह रही है।

विशेष—'सुहागकरण' में रूपकातिशियोक्ति और 'राग' में श्लेष अलंकार है।

पुलकित ···· डर में।

शब्दार्थ—अन्तर=हृदय। फलभरता=फल का भार, सन्तान का भार।

अर्थ—उस विलक्षण छाया को देखकर श्रद्धा कहती है कि तुमने मेरे सारे शरीर को पुलकित कर दिया है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे तुमने मेरे हृदय पर कदम्ब की माला पहना दी हो और जिस प्रकार फलों के बोझ से डालियाँ नीचे झुक जाती हैं, उसी प्रकार तुमने मेरे मन को भी भावी सन्तान के भार के डर से झुका दिया है।

विशेष—'कदम्ब की माला-सी' में उपमा 'मन की डाली' में रूपक और 'फलभरता' में श्लेष अलंकार है।

वरदान सदृश ····· सना हुआ।

शब्दार्थ—वरदान सदृश=वरदान के समान। सौरभ=सुगन्धि।

अर्थ—छाया को अपनी ओर आते देखकर श्रद्धा कहती है कि तुमने वर-

दान के समान नीले धागों से बना हुआ एक ऐसा वस्त्र मुझ पर डाल दिया है जो बहुत हलका तथा सुगन्धि से भरा हुआ है। भाव यह है कि तुमने मेरे हृदय में लज्जा और वासना का संचार कर दिया है।

विशेष—उपमा अलंकार।

सब अंग······पाती हूँ।

शब्दार्थ—मोम से=मोम के समान अत्यन्त कोमल। परिहास=मजाक।

अर्थ—श्रद्धा कहती है कि तुम्हारे कारण ही मेरे सब अंग मोम के समान कोमल बन गए हैं, जिसके कारण मेरा शरीर लचकने लगा है। मेरे मन में संकोच का भाव भी इतना अधिक आ गया है कि मैं स्वयं में ही सिमट-सी गई हूँ और प्रतिक्षण हँसी-मजाक के गीत ही मुझे सुनने को मिलते हैं।

विशेष—उपमा अलंकार।

स्मित······सपना।

शब्दार्थ—स्मित=मुस्कान। तरलहँसी=आनन्द से भरी हुई हँसी।

अर्थ—उस छाया को देखकर श्रद्धा कहती है कि तुमने मुझमें इतना परिवर्तन कर दिया है कि मेरी आनन्द से भरी हुई उन्मुक्त हँसी अब केवल मन्द मुस्कान बनकर रह गई है। मेरे नेत्रों में वक्रता आ गई हैं और मैं जो भी प्रयत्न देखती हूँ वह स्वप्न-सा बन जाता है, अर्थात् मुझे वास्तविकता भी अवास्तविकता की भांति लगने लगी है।

मेरे सपनों······डोल रहा।

शब्दार्थ—कलरव=मधुर ध्वनि। अनुराग समीरों पर=प्रेम की वायु पर।

अर्थ—श्रद्धा कहती है कि जिस प्रकार प्रातःकाल होते ही पक्षी जगकर अपनी मधुर ध्वनि से चहक उठते हैं और उनकी वे मधुर ध्वनि हवा की लहरों पर उन्मत होकर बिखरने लगती हैं उसी प्रकार मेरे मन में अनेक प्रकार की आशाएँ उत्पन्न हो गई हैं, जो प्रेम की वायु पर तैरती हुई तथा इठलाती हुई डोल रही हैं।

विशेष—'कलरव का संसार' में रूपकातिशयोक्ति और 'कलरव का संसार आँख जब खोल रहा' में विशेषण विपर्यय तथा अनुराग समीरों पर में निरंग रूपक अलंकार है।

अभिलाषा······बढ़ती।

शब्दार्थ—सत्कृत करती=सत्कार करती। दूरागत=दूर से। आया हुआ, मनु। रज्जु=रस्सी। निर्झर=झरना। आनन्द शिख=आनन्द की चोटी।

अर्थ—श्रद्धा कहती है कि जब मेरी अभिलाषाएँ अपनी पूर्णता प्राप्त करके अर्थात् अपनी चरम कोटि पर पहुँच कर मिलन के सुख को प्राप्त करने के लिए मचल उठीं और जीवन भर का बल, वैभव समेट कर मनु का सत्कार करने के लिए तत्पर हो गईं तभी तुमने लज्जा की किरणों की रस्सी से मुझे बांध लिया जिसका अवलम्बन लेकर मैं ऊपर चढ़ रही थी और प्रेम के निर्झर में प्रवेश करके आनन्द के शिखर की ओर बढ़ती चली जा रही थी।

विशेष—साम्य रूपक अलंकार।

छूने में······रुकती हैं।

शब्दार्थ—हिचक=झिझक। कलरव परिहास भरी=मधुर हास-परिहास से भरी हुई। गूँजे=बातें। अधरों तक=होठों तक।

अर्थ—उस छाया को देखकर श्रद्धा कहती है कि तुमने मेरे मन में इतना परिवर्तन ला दिया है कि पहले मैं जिस मनु के साथ निःसंकोच भाव से रहती थी, अब उसको छूने में भी मुझे झिझक होती है और उसे देखकर मेरी आँखें नीचे झुक जाती हैं। पहले मैं जिन मधुर हास-परिहास से भरी हुई बातों को निःसंकोच कह दिया करती थी वे अब मेरे होठों पर आकर रुक जाती हैं अर्थात् मैं उनको कह नहीं पाती।

संकेत······पड़ी रही।

शब्दार्थ—रोमाली=रोमों की पंक्ति। बरजती=रोकती। भ्रम में पड़ी रही=व्यक्त न कर सकी।

अर्थ—श्रद्धा कहती है कि मेरे शरीर की रोम पंक्तियाँ मुझे चुपचाप संकेत दे दे कर रोक रही हैं कि मैं अपने हृदय के भावों को मनु पर प्रकट न करूँ। इसी कारण मैं अपने भावों को काली-काली भौंहों के द्वारा प्रकट करना चाहती हूँ किन्तु मेरी भौहें भी काली रेखाओं के समान मेरे प्रेम की भाषा न बन सकने के कारण मेरे भावों को व्यक्त नहीं कर पाती हैं।

तुम कौन······बीन रही।

शब्दार्थ—हृदय की परवशता=हृदय की मजबूरी।

अर्थ—श्रद्धा कहती है कि तुम कौन हो? कहीं तुम मेरे हृदय की मज-

बूरी तो नहीं हो जो मेरी सारी स्वतंत्रता को छीन रही हो और मेरी सुमन रूपी स्वच्छन्द रूप से खिलने वाली अभिलाषाओं को मेरे जीवन के वन से एक-एक करके बीनती चली जा रही हो।

विशेष—'स्वच्छन्द सुमन' में रूपकातिशयोक्ति और 'जीवन वन' में रूपक अलंकार है।

संध्या······देती सी।

शब्दार्थ—आश्रय=सहारा। प्रतिमा=मूर्ति।

अर्थ—जब श्रद्धा अपने जीवन में आए हुए शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों के विषय में विचार कर रही थी, तभी उसे संध्या की लाली में एक छाया की मूर्ति हँसती हुई तथा उसका हीं आश्र य लेती हुई सी गुनगुना उठी जैसे वह श्रद्धा के प्रश्नों का उत्तर दे रही हो।

इतना······विचार करो।

शब्दार्थ—चमत्कृत=आश्चर्य चकित। पकड़=रोक।

अर्थ—श्रद्धा की शंकाओं का निराकरण करती हुई तथा अपना परिचय देती हुई लज्जा कहती है कि हे बाला! इतना आश्चर्यचकित होने की आवश्यकता नहीं है तुम्हारे जीवन में जो शारीरिक और मानसिक परिवर्तन आए हैं उनसे तुम अपने मन का उपकार करो। अर्थात् उनके कारण उत्पन्न स्थितियों का सोच समझ कर उपयोग करो। मैं एक ऐसी ही रोक हूँ जो ऐसी स्थिति में प्रत्येक युवती को यह बताती हूँ कि वह सहसा किसी कार्य को न करे वरन् करने से पूर्व उस पर कुछ विचार कर ले।

अंबर चुम्बी······उन्माद लिए।

शब्दार्थ—अंबर चुम्बी=आकाश को छूने वाले। हिम शृंग=पर्वत की बर्फ से ढकी हुई ऊँची चोटियां। विद्युत=बिजली।

अर्थ—लज्जा श्रद्धा से कहती है कि में उन नवयुवतियों पर नियंत्रण करती हूँ जिनका यौवन आकाश को छूने वाली पर्वत की बर्फ से ढकी हुई चोटियों से निकलने वाले निर्झरों के समान मधुर ध्वनि से कोलाहल करता हुआ स्वच्छन्द गति से बढ़ता है और जिनके प्राणों में बिजली के समान बार बार कोंधने वाली उन्माद की धारा बहती है। भाव यह है कि मैं उन नव-युवतियों के कार्यों पर रोक लगाती हूँ जो अज्ञात यौवना होती हैं।

विशेष—साँग रूपक।

मंगल……हरियाली ।

शब्दार्थ—श्री=शोभा । इठलाती हूँ=मस्ती से पूर्ण हूँ । हरियाली=प्रसन्नता ।

अर्थ—लज्जा श्रद्धा से कहती है कि मैं उन नवयुवतियों की देखभाल करती हूँ जिनमें मंगल कुंकुम की ललिमा के समान सौन्यर्य की लावण्यता हो, जो ऐसी प्रतीत होती है मानों ऊषा की लाली उनके अंगों में निखर आई हो। जो अत्यंत भोली तथा सौभाग्यवती होकर इठलाती हो और जिनमें नवीन-नवीन अभिलाषाओं के कारण प्रसन्नता भरी हुई हो।

विशेष—उत्प्रेक्षा, विशेषण विपर्यय और रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

हो नयनों……पिक-सा-हो ।

शब्दार्थ—नयनों का कल्याण=नेत्रों का सुख । वासन्ती=बसंत ऋतु । पंचम स्वर=मधुर स्वर । पिक=कोयल ।

अर्थ—लज्जा श्रद्धा से कहती है कि मैं उन नययुवतियों पर रोक लगाती हूँ जिनका सौन्दर्य देखने से नयनों को सुख मिलता है, जिनका आनन्द फूलों के समान खिलता है और जिनका स्वर उस कोयल की भाँति मधुर होता है जो बसन्त ऋतु के कारण ऐश्वर्ययुक्त बन में अपने पंचम स्वर में बोलती है।

विशेष—उपमा अलंकार ।

जो गूंज……ढलता सा ।

शब्दार्थ—मूर्च्छना=संगीत का स्वर । आँखों के साँचे में आकर=आँखों में समाकर । रमणीय=मनोहर ।

अर्थ—लज्जा श्रद्धा से कहती है कि मैं उन युवतियों की संरक्षिका हूँ जिनका यौवन संगीत की मूर्च्छना के समान उनकी मधुर वाणी का रूप धारण करके श्रोताओं की नस-नस में गूंजने लगता है और जो आँखों में समाकर सुन्दर सांचे में ढली हुई किसी मनोहर मूर्ति के समान अत्यंत सुन्दर दिखाई देता है।

नयनों की……पाती हो ।

शब्दार्थ—नयनों की नीलम की घाटी=नेत्र रूपी नीलम पर्वत की घाटी । रसघन=शृंगार-रस रूपी बादल । कौंध=चमक ।

अर्थ—लज्जा श्रद्धा से कहती है कि मैं उन नवयुवतियों की रक्षा करती हूँ जिनकी आँखों में सौन्दर्य शृंगार इस का रूप धारण करके उसी प्रकार छाया रहता है जिस प्रकार नीलम पर्वत की घाटी पर बादल छाए रहते हैं। और जो युवतियों के हृदयों में बार-बार चमक कर देखने वालों के हृदयों को अत्यधिक सुख देता है।

विशेष—सांगरूपक।

हिलोल भरा······निरखता हो।

शब्दार्थ—हिलोल=मस्ती की लहरें। मध्याह्न=दोपहरी।

अर्थ—लज्जा श्रद्धा से कहती है कि मैं उन नवयुवतियों पर रोक लगाती हूँ जिनका सौन्दर्य बसन्त ऋतु की सी मस्ती भरी लहरों से भरा हुआ हो। जिनमें अपने प्रेमियों से मिलने की वैसी ही आतुरता हो जैसी गोधूली के समय लौटती हुई गाय को अपने बछड़ों के प्रति रहती है। जिनमें प्रभात काल की सी चेतता पूर्ण हँसी हो और जिनमें दोपहर का सा तेज विद्यमान हो।

विशेष—उपमा अलंकार।

हो चकित·····पर से।

शब्दार्थ—चकित=आश्चर्यचकित होकर। प्राची=पूर्व दिशा। नवल चन्द्रिका=नयी चाँदनी। बिछुड़े=छिसले। मानस=हृदय, मानसरोवर लहरें=भावताएँ, तरंगे।

अर्थ—लज्जा श्रद्धा से कहती है कि मैं उन युवतियों की रक्षा करती हूँ जिनका यौवन उस नवीन चाँदनी के समान होता है जो आश्चर्यचकित होकर अचानक पूर्व दिशा से निकल आई हो और जिसके हृदय की भावना उसी प्रकार अस्थिर हों जिस प्रकार मानसरोवर की लहरें।

विशेष—सांगरूपक अलंकार।

फूलों की·····चंदन में।

शब्दार्थ—अभिनन्दन=स्वागत। कुकुंम चंदन=केसर और चंदन का बना हुआ लेप।

अर्थ—लज्जा श्रद्धा से कहती है कि मैं उन नवयुवतियों की रक्षा करती [illegible] जिनके स्वागत में फूल अपनी कोमल [illegible]ड़ियों को बिखेर देते हैं और जिनके स्वागत के लिए वे केसर और चंदन का लेप बनाते समय उसके स्थान पर

पुष्परस मिलाने हैं।

कोमल ········मनाते हो।

शब्दार्थ---किसलय=नवीन पत्तें। मर्मरव=पत्तों का मर्मर शब्द करता।

अर्थ—लज्जा श्रद्धा से कहती है कि मैं उन नवयुवतियों की रक्षा करती हूँ जिनके सौन्दर्य का कोमल पत्ते मर्मर शब्द जय-घोष करते हैं और जिसमें मन के सारे सुख-दुख मिलकर तया एक रस बनकर आनन्दपूर्वक उतसव-सा मनाते रहते हैं।

उज्ज्वल·········जागते रहाते हैं।

शब्दार्थ---उज्ज्वल=सात्विक। चेतना=चेतनशक्ति, महाचिति।

अर्थ—लज्जा श्रद्धा को सौन्दर्य का स्वरूप बताती हुई कहती है कि जिसे सब लोग सौन्दर्य कहते हैं वह महाचिति का एक सात्विक वरदान है। इसी के कारण युवतियों के मन में अनंत अभिलाषाओं के सपने बनते रहते हैं।

मैं उसी······समझाती।

शब्दार्थ—चपल की=चंचल सौन्दर्य की। धात्री=देखभाल करने वाली।

अर्थ—लज्जा श्रद्धा से कहती है कि में नवयुवतियों के उसी चंचल सौन्दर्य का पालन-पोषण करने वाली हूँ। मैं ही उसे गौरव और महिमा सिखलाती हूँ वह जो भी गलती करने वाला होता है मैं उसे धीरे से समझाकर उस गलत मार्ग से हटा देती हूँ।

मैं देव सृष्टि······संचित हो।

शब्दार्थ—पंचबान=कामदेव। आवर्जना=परित्यक्त।

अर्थ—लज्जा श्रद्धा को अपना परिचय देती हुई कहती है कि मैं देव सृष्टि में रति रानी के रूप में थी किन्तु देव सृष्टि के विध्वंस हो जाने पर मैं अपने प्रियतम कामदेव से वंचित होकर परित्यक्त तथा दीनता की मूर्ति बनकर अपनी ही अतृप्ति की भाँति भटकती हुई विचरण कर रही हूँ।

विशेष—मानवीकरण तथा उपमा अलंकार।

अवशिष्ट······दलिता सी।

शब्दार्थ—अवशिष्ट=शेष। अनुभव में=भावना रूप में। लीला विलास=आनन्दमयी काम क्रीड़ाएं। दलिता सी=पददलित सी।

अर्थ—लज्जा श्रद्धा को अपना परिचय देती हुई कहती है कि देव सृष्टि

के विध्वंस होने के पश्चात् मैं अब केवल भावना रूप में रह गई हूँ और मेरा अस्तित्व अब अपनी भूतकाल की असफलता के समान है। आज मैं खेद, खिन्नता, तथा अत्यन्त थकान से भरी हुई उस नायिका के समान हूँ जो आनन्दपूर्वक अनेक प्रकार की आनन्द-क्रीड़ा करके थकी हुई-सी दिखाई देती है।

मैं रति······मनाती हूँ।

शब्दार्थ—प्रतिकृति = मूर्त्ति। शालीनता = नम्रता।

अर्थ—श्रद्धा को अपना परिचय देती हुई लज्जा कहती है कि मैं कामदेव की प्रिया रति की ही मूर्त्ति हूँ, मेरा नाम लज्जा है, मैं नवयुवतियों को नियंत्रित करके उन्हें विनम्रता सिखाती हूँ। और जिस प्रकार नर्तकी के घुंघरु बार-बार बजकर उसे अधिक नाचने से रोकने की विनती-सी किया करते हैं उसी प्रकार मैं भी नवयुवतियों को बिना सोचे समझे प्रेम मार्ग में बढ़ने से रोकती हूँ।

लाली······जगती।

शब्दार्थ—सरल = कोमल। कुंचित = घुंघराले।

अर्थ—लज्जा श्रद्धा से कहती है कि मैं नवयुवतियों के कोमल कपोलों पर लालिमा के रूप में प्रकट होती हूँ। उनकी आँखों में अंजन के समान दिखाई देती हूँ और उनके घुंघराले बालों की उलझन बनकर दर्शकों के मन की वासना को जागृत करती हूँ।

चंचल किशोर······लाली।

शब्दार्थ—चंचल किशोर सुन्दरता की = चंचलता से भरी हुई किशोरियों के सौंदर्य का।

अर्थ—लज्जा श्रद्धा को अपना परिचय देती हुई कहती है कि मैं चंचलता से भरी हुई किशोरियों के सौन्दर्य की रखवाली करने वाली हूँ। मैं वह हल्की सी मसलन हूँ जो उनके कानों पर लाली के रूप में प्रकट होती हूँ।

हाँ ठीक······रेखा क्या है?

शब्दार्थ—निविड़ निशा में = अन्धकार पूर्ण रात्रि में। आलोकमयी = प्रकाशयुक्त। संसृति = संसार।

अर्थ—लज्जा की बातें सुनकर श्रद्धा उससे कहती है कि तुमने जो कुछ कहा है, वह तो ठीक है, परन्तु मैं तो अपने इस अनिश्चित जीवन में अज्ञानावस्था के कारण इस प्रकार भटक रही हूँ जिस प्रकार कोई पथिक संसार में

अन्धकारपूर्ण रात्रि में प्रकाश के अभाव में अपना मार्ग न दिखाई देने के कारण भटकता फिरता है। अतः यह बताओ कि मैं अपने जीवन में अब क्या करूँ ? मनु को अपना समर्पण करूँ अथवा नहीं ?

विशेष—रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

यह आज……हारी हूँ।

शब्दार्थ—अवयव=शरीर के अंग।

अर्थ श्रद्धा लज्जा से कहती है कि मैं आज ही इस बात को समझ पाई हूँ कि मैं नारी होने के कारण दुर्बल हूँ, मुझमें कोई शक्ति नहीं है। यद्यपि मेरे शरीर के अंगों में कोमलता है किंतु इसी कोमलता के कारण मुझे पुरुष के सन्मुख अपनी हार माननी पड़ी है।

पर मन भी……भर आता है।

शब्दार्थ—ढीला=शीघ्र द्रवित होने वाला। घनश्याम=काला बादल।

अर्थ—श्रद्धा लज्जा से कहती है कि आश्चर्य की बात तो यह है कि मेरा सुदृढ़ संयमशील मन भी अब न जाने क्यों शीघ्र द्रवित होने वाला बनता जा रहा है। काले बादल के टुकड़े के समान मेरी आँखों में न जाने क्यों अचानक आँसू आ जाते हैं।

विशेष—उपमा अलंकार।

सर्वस्व……माया में !

शब्दार्थ—ममता=इच्छा। माया में=मनु के जादू भरे प्रेम में।

अर्थ—श्रद्धा लज्जा से कहती है कि जिस प्रकार कोई पथिक किसी वृक्ष की छाया में शीतलता प्राप्त करने के उपरान्त अपने मन में यह विश्वास बनाता है कि चाहे उसे अपना सब कुछ समर्पित कर देना पड़े, पर वह इस वृक्ष की शीतलता को न छोड़े, इसी प्रकार मेरे मन में भी यह इच्छा जगती है कि मैं अपना सर्वस्व समर्पित करके मनु के जादू-भरे प्रेम की छाया में चुपचाप पड़ी रहूँ।

विशेष—रूपक अलंकार।

छायापथ……शीला ?

शब्दार्थ—तारक=तारे। द्युति-सी=प्रकाश-सा। मधु लीला=मधुर क्रीड़ा। अभिनय करती=बार-बार जग उठती है। निरीहता=भोलापन।

श्रमशीला=परिश्रम से भरी हुई।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि जिस प्रकार तारों का प्रकाश झिलमिलाता हुआ मधुर क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार मैं भी मनु के साथ कोमलता, भोलापन तथा परिश्रम से भरी हुई मधुर आनन्द-क्रीड़ाएँ करती रहूँ, न जाने ऐसी इच्छा मेरे मन में क्यों बार-बार जग उठती है ?

विशेष—उपमा अलंकार।

निस्संबल······सुघराई में।

शब्दार्थ—निस्संबल=असहाय। मानस=हृदय। सुघराई=सुन्दरता।

अर्थ—श्रद्धा लज्जा से कहती है कि मैं अपने हृदय की गहराई में असहाय होकर तैरती रहती हूँ, किन्तु फिर भी यह नहीं चाहती कि मेरा सुन्दरता से भरा हुआ स्वप्न कभी टूट जाये और मैं प्रेमावेश के कारण प्राप्त की गई उन्मत्त दशा से लग जाऊँ।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति और दृष्टान्त अलंकार।

नारी-जीवन······देती हो।

शब्दार्थ—चित्र=वास्तविक रूप। विकल=व्याकुल। अस्फुट=अस्पष्ट।

अर्थ—श्रद्धा लज्जा से कहती है कि जिस प्रकार कोई चित्रकार अपना चित्र बनाने से पहले कुछ अस्पष्ट रेखाएँ खींचकर उनमें रंग भर कर उसे, कला का रूप देता है, उसी प्रकार तुम भी नारी-जीवन का चित्र अंकित करने से पूर्व उसके सम्मुख उसके भविष्य की धुंधली-सी रेखाएँ खींचकर फिर उनमें व्याकुलता का रंग भर कर उसे नारी का रूप देती हो।

रुकती हूँ······अनुदिन बकती।

शब्दार्थ—अनुदिन बकती=प्रतिदिन ऊट-पटांग बातें करती रहती है।

अर्थ—श्रद्धा लज्जा से कहती है कि मैं रुककर और ठहर कर खूब शांति के साथ सोचती हूँ, परन्तु फिर भी कुछ सोच-विचार नहीं कर पाती हूँ। मेरे हृदय में कोई पगली-सी बैठी हुई है, जो प्रति-दिन ऊट-पटांग बातें करती रहती है।

मैं जभी······खाती हूँ।

शब्दार्थ—तोलना=परखना। उपचार=प्रयत्न। भुज-लता=बांह रूपी बेल।

अर्थ—श्रद्धा लज्जा से कहती है कि मैं जब भी मनु को परखने का, उसकी वास्तविकता जान लेने का, प्रयत्न करती हूँ, तभी मैं स्वयं उसके प्रेम के पाश में बँध जाती हूँ। जिस प्रकार कोई लता किसी पेड़ से बँधकर हवा में झूमती रहती है, उसी प्रकार मैं मनु के बाहु-पाश में लटक कर झूले की तरह डावाँडोल स्थिति में लटकती रहती हूँ।

विशेष—परम्परित रूपक और उपमा अलंकार।

इस अर्पण······झलकता है।

शब्दार्थ—अर्पण=समर्पण। उत्सर्ग=बलिदान।

अर्थ—श्रद्धा से लज्जा कहती है कि मुझे तो इस समर्पण में केवल इतना ही मालूम है कि मैं अपना सर्वस्व मनु को बलिदान कर दूँ, अपना सब कुछ दे दूँ, किन्तु उसके बदले में कुछ न लूँ। मेरा तो सीधा-सादा सा यही विचार है।

क्या कहती······सपने।

शब्दार्थ—संकल्प=दान करने की इच्छा।

अर्थ—श्रद्धा की बात सुनती हुई लज्जा उसे बीच में ही रोककर कहने लगती है कि हे नारी! ठहरो, अपनी बातें बन्द करो। तुम तो अपने सुनहले स्वप्नों को पहले ही दान करने की इच्छा करके आँसुओं के जल से मनु को समर्पित कर चुकी हो, अतः अब मनु के प्रति समर्पित होने अथवा न होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

नारी : तुम······समतल में।

शब्दार्थ—श्रद्धा=सत्य, प्रेम और विश्वास का रूप। रजत नग=चाँदी जैसा चमकने वाला पहाड़। पगतल में=पर्वत के नीचे, पुरुष के आश्रय में। पीयूष-स्रोत=अमृत की नदी।

अर्थ—लज्जा श्रद्धा से कहती है कि हे नारी! तुम तो केवल सत्य प्रेम और विश्वास का रूप हो। जिस प्रकार कोई नदी चाँदी जैसे चमकने वाले बर्फ से ढके पर्वतों से निकलकर अमृत जैसा जल लेकर मैदान को समतल बनाती हुई बढ़ा करती है, उसी प्रकार तुम भी मनुष्य के आश्रय में पवित्र विश्वास के साथ जीवन की विषमता को दूर करती हुई, जीवन में सामरस्य लाती हुई, उसे अमृत से सींचो, कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार पर्वत का आश्रय लेकर कोई नदी ऊबड़-खाबड़ प्रदेश को भी समतल बनाती है और अपने पानी

से प्यासे प्राणियों की प्यास बुझाकर उन्हें आनन्द देती है, उसी प्रकार तुम भी मनु का आश्रय लेकर जीवन की विषमताओं को मिटाकर उनमें सामरस्य स्थापित करो और उनके कष्टों तथा दुःखों का निवारण करके उन्हें अपूर्व सुख एवं आनन्द पहुँचाओ।

विशेष—'विश्वास-रजत नग' में रूपक और 'पीयूष-स्रोत-सी' में उपमा अलंकार है।

देवों की······विरुद्ध रहा।

शब्दार्थ—दानवों की=राक्षसों की। उर-अन्तर में=हृदय में। नित्य विरुद्ध रहा=नारी-जीवन के सदैव विपरीत रहा।

अर्थ—लज्जा श्रद्धा से कहती है कि विश्व में आदिकाल से ही देवों का और राक्षसों का—सद्वृत्तियों का और असद्वृत्तियों का—संघर्ष होता आया है, जिसमें सद्वृत्तियों की सदा जय हुई है और असद्वृत्तियों की पराजय हुई है। इसी प्रकार हृदय में भी संकल्प और विकल्प के संघर्ष सदा से चलते आए हैं। परन्तु यह संघर्ष नारी-जीवन के सदैव विपरीत रहा है; अर्थात् नारी को इन संघर्षों में पड़ना उचित नहीं है।

आँसू से······लिखना होगा।

शब्दार्थ—स्मित-रेखा=मधुर मुसकान। संधिपत्र=प्रेम सम्बन्ध को निर्वाह करने की प्रतिज्ञा।

अर्थ—लज्जा श्रद्धा से कहती है कि तुम्हें अपने मन के संकल्प-विकल्प छोड़कर अपने आँसुओं से भीगे हुए अंचल पर मन का सब कुछ न्यौछावर करना पड़ेगा और अपनी मधुर मुसकान से यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि तुम अपने प्रेम के सम्बन्ध को यथाशक्ति निभाओगी।

कर्म

कथासार—श्रद्धा मनु को बार-बार कर्मशील बनने की प्रेरणा देती रही। इसी से प्रेरित होकर मनु ने यज्ञ करने की सोची, किन्तु उन्हें इस बात की चिन्ता थी कि उनके पास कोई पुरोहित नहीं था। श्रद्धा और मनु की भाँति किलात और आकुलि नामक दो असुर पुरोहित भी बच गये थे, जो बहुत दिनों तक इधर-उधर मारे मारे फिरने के पश्चात् एक दिन मनु की गुफा पर आ गए। श्रद्धा द्वारा पालित हृष्ट-पुष्ट पशु को देखकर उनका जी उसका माँस खाने के लिए ललचाने लगा किन्तु श्रद्धा सदैव छाया की भाँति उस पशु के पास रहती थी इसीलिए वे पशु वध का उपाय सोचने लगे।

जब वे मनु के पास गए और उन्हें पता लगा कि मनु को यज्ञ के लिए एक पुरोहित की आवश्यकता है तो उन्होंने मनु से कहा कि तुम जिस देवता का यज्ञ करना चाहते हो आज उन्हीं मित्र वरुण देवता ने हमें तुम्हारे पास भेजा है। अतः अब तुम चिंता छोड़कर और यज्ञ वेदी पर चलकर यज्ञ आरम्भ करो। हम पुरोहित बनकर तुम्हारा कार्य पूरा करवायेंगे। उसकी बात सुन कर मनु को अत्यन्त प्रसन्नता हुई और उन्होंने किलात और आकुलि का आगमन देवता का बलिदान माना। असुर पुरोहितों की प्रेरणा से यज्ञ वेदी पर ही श्रद्धा के पालित पशु का बध किया गया। पशु की कातर वाणी चारों ओर गूँज गई और उसकी हड्डियों तथा खून के छींटों से एक अत्यन्त कारुणिक दृश्य उपस्थित हो गया। श्रद्धा इस दृश्य को न देख सकी और चुपचाप उठकर गुफा में चली गई।

श्रद्धा के चले जाने पर मनु को अत्यन्त बेचैनी हुई उन्होंने सोचा कि श्रद्धा रूठ कर चली गई है। अतः वे मांस से बने हुए पुरूडास को खाकर और सोमरस पीकर नशे में सब कुछ भूलने का प्रयत्न करने लगे। किन्तु फिर भी उनकी बेचैनी दूर नहीं हुई। अतः वे श्रद्धा के पास पहुँचे। श्रद्धा गुफा में

लेटी हुई थी और सोच रही थी कि मनु का मन कितना कठोर और घातक होता जा रहा है। तभी मनु ने उसके पास आकर कहा कि श्रद्धा ! मैं जो कुछ कर रहा हूँ वह सब जीवन को सुन्दर और सुखमय बनाने के लिए कर रहा हूँ अतः तुम रूठना छोड़कर मेरे साथ चलो और इस ज्योत्स्ना पूर्ण रजनी में हम दोनों मधुर सोमरस का पान करके आनन्द मनाए। श्रद्धा ने मनु की भर्त्सना करते हुए कहा कि तुम्हारा मन अत्यधिक निष्ठुर हो गया है, तुम में मानवता का लेश भी नहीं है क्या निरीह पशुओं को जीवित रहने का अधिकार नहीं है यदि तुम उनका बध करते रहे तो किस प्रकार से मानवता का विकास कर सकोगे ? श्रद्धा की बातें सुनकर मनु ने कहा कि तुम्हारी बातें ठीक हैं किन्तु संसार में वैयक्तिक सुख भी तो तुच्छ नहीं है, हमें जो क्षणिक जीवन मिला है उसे सुखमय बनाने के लिए पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए। मनु की स्वार्थ भरी बातें सुनकर श्रद्धा ने क्षोभ से कहा कि ये ठीक है कि वैयक्तिक सुख तुच्छ नहीं हैं किन्तु कोई व्यक्ति अपने में ही सीमित रह करके किस प्रकार सुख प्राप्त कर सकता है, यह एकान्त स्वार्थत्व भयंकर शत्रु है अतः हमें अपने वैयक्तिक जीवन को विस्मृत करके अन्य प्राणियों के जीवन को सुखी बनाने के प्रयत्न करना चाहिए।

श्रद्धा के क्रोध को शान्त करने के लिए मनु ने सोमरस का पात्र उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा कि तुम यह पीलो फिर जैसा तुम कहोगी वैसा ही करूँगा। श्रद्धा मनु की प्रार्थना को न टाल सकी। दोनों ने सोमरस का पान किया। कामाभिभूत होकर मनु ने श्रद्धा से कहा कि इस मधुर मिलन के समय लज्जा और संकोच की आवश्यकता नहीं है, अतः इन्हें दूर करके आनन्दपूर्वक दो हृदयों को परस्पर मिलने दो। इस प्रकार उस एकान्त गुफा में दीर्घकाल के बिछुड़े हुए दो हृदय परस्पर मिल गये।

कर्म सूत्र······जीवन-धुन को।

शब्दार्थ—कर्म सूत्र संकेत सदृश = कर्म में प्रवृत्त होने के इशारे से देती हुई। शिंजनी सी = धनुष की प्रत्यंचा-सी।

अर्थ—मनु की गुफा के चारों ओर जो सोमलताएँ फैली हुई थीं वे उन्हें कर्म में प्रवृत्त होने का संकेत-सा देकर उनके जीवन को कर्म की ओर इसी प्रकार खींच रही थीं जिस प्रकार प्रत्यंचा धनुष को अपनी ओर खींच लेती है।

विशेष—उपमा और रूपक अलंकार ।

हुए अग्रसर······थिर वे ।

शब्दार्थ—अग्रसर=आगे बढ़े । उसी मार्ग में=कर्म मार्ग में । कटु प्रकार=तीव्र इच्छा । थिर==स्थिर ।

अर्थ—जिस प्रकार छूटा हुआ तीर तेजी से अपने लक्ष्य की ओर चलता है उसी प्रकार मनु भी कर्म मार्ग में प्रवृत्त होने के लिए आगे बढ़े। उनके हृदय में यज्ञ करने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हो रही थी, जो उन्हें स्थिर नहीं रहने देती थी ।

विशेष—उपमा और वीप्सा अलंकार ।

भरा कान······आशा ।

शब्दार्थ—अतिरंजित=अत्यधिक रमणीक ।

अर्थ—मनु के कानों में अभी तक काम का संदेश गूँज रहा था अर्थात् उन्हें काम का संदेश अभी तक याद था और मन में नई नई अभिलाषाएँ उत्पन्न हो रही थीं अतः मनु यज्ञादि जीवनोपयोगी कर्म करने के लिए सोचने लगे और उनके हृदय में श्रद्धा को पूर्ण रूप से अपना लेने की अत्यंत रमणीक आशा भी उमड़ने लगी ।

ललक रही······उदासी ।

शब्दार्थ—ललक रही थी=अत्यन्त उत्सुक हो रही थी। ललित लालसा= सुन्दर अभिलाषा ।

अर्थ—मनु के मन में सोमपान की सुन्दर इच्छा अत्यन्त उत्सुक हो रही थी, अर्थात् मनु सोमपान करने के लिए अत्यंत आतुर बने हुए थे किन्तु अपने उस वैभवहीन जीवन के कारण जिसमें यज्ञादि विधान करने का कोई साधन न था, उनकी वह इच्छा उदासी बनकर ही रह जाती थी ।

जीवन की··· · पड़ी थी ।

शब्दार्थ—अविराम साधना=निरन्तर धर्म करने की इच्छा । तरनी= नौका ।

अर्थ—मनु के जीवन में निरन्तर काम करने की अभिलाषा अत्यन्त उत्साह-पूर्ण थी किन्तु वह अभिलाषा साधन हीन होने के कारण उस नौका के समान थी जो प्रतिकूल पवन के कारण नदी की गहरी धारा में लौट रही हो ।

श्रद्धा के······तिल थे ।

शब्दार्थ—भ्रान्त अर्थ = उल्टा अर्थ । बने ताड़ थे तिल थे = साधारण-सी बात को जान-बूझकर बड़ा बना देना ।

अर्थ—श्रद्धा के उत्साह से भरे हुए वचन और काम के द्वारा दी गई प्रेरणा दोनों का ही अर्थ मनु ने गलत लगाया और साधारण-सी बात को बहुत बड़ी बात बना दिया । भाव यह है कि श्रद्धा और काम तो मनु को धर्मशील बनाना चाहते थे किन्तु मनु ने उनकी प्रेरणा का ये अर्थ लगाया कि वे उसको यज्ञ विधान आदि करके तथा पशु वध करके सोमरस पान और कामवासना की ओर प्रवृत्त कर रहे हैं ।

बन जाता······करती है ।

शब्दार्थ—पुष्टि = समर्थन ।

अर्थ—मनु ने श्रद्धा और काम के प्रेरक वचनों का विपरीत अर्थ क्यों लगाया इसका समाधान करते हुए प्रसाद जी कहते हैं कि व्यक्ति पहले किसी सिद्धान्त को बना लेता है और फिर उसके समर्थन के लिए प्रयत्न करता है ठीक उसी प्रकार जैसे कोई व्यक्ति ऋण लेकर के और उसे चुकाने के लिए बार-बार ऋण की खोज में रहता है, उसी प्रकार बुद्धि भी उसी सिद्धान्त की पुष्टि के लिए प्रमाणों को खोजता रहता है ।

मन जब······सपना ।

शब्दार्थ—दैव बल = भाग्य से ।

अर्थ—मन जब कोई अपना मत निश्चित कर लेता है और बुद्धि बल से या भाग्य बल से उसे अपने अनुकूल प्रमाण ढूँढ़ने के लिए वह सतत सपने देखा करता है ।

पवन······तल में ।

शब्दार्थ—तरलता = बहाव । अन्तरतम = हृदय । नभतल में = आकाश और पृथ्वी में ।

अर्थ—व्यक्ति जब अपना कोई सिद्धान्त निश्चित कर लेता है तो वही सिद्धान्त उसे पवन के द्वारा उठाई हुई लहरों में और बहते हुए जल में दिखाई देता है । उसके हृदय की वही प्रतिध्वनि आकाश और पृथ्वी में छा जाती है अर्थात् सर्वत्र उसे अपने मत के प्रमाण ही दृष्टिगोचर होते हैं ।

सदा समर्थन······सीढ़ी।

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—तर्कशास्त्र की परम्परा भी हमेशा उसके मत का समर्थन करते हुए कहती है कि यही मत ठीक है, यही मत सत्य है और यही मत उन्नति तथा सुख का सोपान है।

और सत्य······सुआ है।

शब्दार्थ—गहन=गम्भीर। मेधा=बुद्धि। क्रीड़ापंजर=खेलने का पिंजरा। सुआ=तोता।

अर्थ—कवि कहता है कि सत्य क्या है और क्या नहीं है यह कहना कठिन है। इसीलिए सत्य अत्यन्त गम्भीर शब्द बन गया है यह बुद्धि के लिए उस खेलने के पिंजड़े के पाले हुए तोते की तरह है अर्थात् जिस प्रकार वह तोता पिंजड़े में बन्द होकर बाहर की दुनिया से अनभिज्ञ होकर केवल पिंजड़े को ही सत्य मानता है, उसी प्रकार बुद्धि भी अपने सीमित ज्ञान को ही सत्य मानती है।

विशेष—परंपरित रूपक अलंकार।

सब बातों······छुई मुई है।

शब्दार्थ—छुई मुई=एक विशेष प्रकार का पौधा जो छूने से मुरझा जाता है।

अर्थ—कवि कहता है कि हे सत्य! जीवन के सब क्षेत्रों में तुम्हारी खोज करने की होड़-सी लगी हुई है किन्तु तर्क के हाथों का स्पर्श पाकर तुम छुई-मुई के पौधे की भांति मुरझा जाते हो। भाव यह है कि सत्य को तर्क से नहीं भावना से जाना जा सकता है।

असुर पुरोहित·····सहे थे।

शब्दार्थ—विप्लव=नाश।

अर्थ—उस सृष्टि के नाश से असुर पुरोहित आकुलि और किलात भी बच गये थे, जो अनेक कष्ट सहते हुए भटक रहे थे।

देख देख······कुछ कहती।

शब्दार्थ—सामिष लोलुप=मांस खाने की इच्छा करने वाली। रसना=जीभ।

अर्थ—मनु के हृष्ट-पुष्ट पशु को देखकर उनकी मांस खाने की इच्छा करने वाली जीभ हमेशा चंचल और व्याकुल रहती थी और अपनी इच्छा को आँखों के द्वारा ही प्रकट करती थी।

क्यों किलात······पीऊँ।

शब्दार्थ—घूँट लहू का पीऊँ=मन मानकर बैठा रहूँ।

अर्थ—आकुलि ने किलात से कहा कि हे किलात! मैं कब तक घास खाता हुआ जीवित रहूँ और इस जीवित पशु को देखकर कब तक मन मारकर बैठा रहूँ।

क्या कोई······बीन बजाऊँ।

शब्दार्थ—सुख की बीन बजाना=आनन्द का जीवन व्यतीत करना।

अर्थ—आकुलि किलात से कहता है कि इसका कोई ढंग नहीं निकल सकता जिससे मैं इस पशु के मांस को खाकर फिर बहुत दिनों के बाद सुख की बीन बजाऊँ।

आकुलि ने······हँस के।

शब्दार्थ—मृदुलता=कोमल स्वभाव की। ममता=वात्सल्य से भरी। छाया=मूर्ति।

अर्थ—आकुलि ने उत्तर देते हुए कहा कि क्या तुम देखते नहीं कि उस पशु के साथ एक ममता की हँसती हुई मूर्त्ति (श्रद्धा) हमेशा छाया के समान रहती है।

अन्धकार को······हँस के।

शब्दार्थ—आलोक-किरन-सी=प्रकाश की किरणों के समान। माया=छलकपट। बिंध जाती है=व्यर्थ जाती है।

अर्थ—आकुलि कहता है कि जिस प्रकार प्रकाश की किरणें अन्धकार को दूर करके एक पतली बदली को भी बेध देती है, उसी प्रकार मेरी माया भी उसके सामने व्यर्थ जाती है।

तो भी······सहूँगा।

शब्दार्थ—स्वस्थ=सन्तुष्ट। सहज=स्वाभाविक रूप से।

अर्थ—आकुलि कहने लगा—फिर भी चलो! मैं आज इस पशु को मारने का उपाय सोचकर ही सन्तोष करूँगा। इस उपाय को पूरा करने में चाहे मुझे

कितने ही सुख-दुःख सहने पड़ें मैं सहज ही उन्हें सह लूँगा।

यों ही······लगाये।

शब्दार्थ—विचार=निश्चय। कुञ्ज=लतागृह। मन से=तल्लीनता से।

अर्थ—आकुलि और किलात इस तरह का विचार (निश्चय) करके उस लता कुञ्ज के द्वार पर पहुंचे जहां पर मनु ध्यान मग्न होकर कुछ सोच रहे थे।

कर्म-यज्ञ······खिलेगा।

शब्दार्थ—कर्मयज्ञ=यज्ञ क्रिया। सपनों का स्वर्ग=मधुर कामनाएँ। विपिन=वन। मानस=हृदय।

अर्थ—मनु उस लता कुञ्ज में बैठे हुए यह सोच रहे थे कि यदि मैं विधि-विधान से यज्ञ किया करूँगा तो इस जीवन में मेरी मधुर अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाएँगी और मेरे मन रूपी वन में आशा के फूल खिल उठेंगे।

विशेष—सांगरूपक अलंकार और 'मानस' में श्लेष अलंकार है।

किन्तु······गया है।

शब्दार्थ—पुरोहित=आचार्य। प्रश्न=समस्या। विधान=प्रणाली, विधि।

अर्थ—मनु यह सोचने लगे कि मैं जो यज्ञ करना चाहता हूँ उसका पुरोहित कौन होगा और यह एक नया प्रश्न मेरे मन में उठ खड़ा हुआ है कि यज्ञ किस विधि से होगा क्योंकि मैं तो यह भी भूल गया हूँ कि किस अभीष्ट की प्राप्ति के लिए कौन-सा यज्ञ करना चाहिए।

श्रद्धा······आशा ?

शब्दार्थ—पुण्य प्राप्य=पुण्य कर्म के फलस्वरूप प्राप्त। अनंत अभिलाषा=जिसमें सभी इच्छाएँ केन्द्रीभूत हों। निर्जन=सूना।

अर्थ—मनु सोचते हैं कि श्रद्धा तो मुझे बहुत समय के उपरान्त मेरे पुण्य कर्मों द्वारा ही प्राप्त हुई है उसमें मेरी अनंत अभिलाषाएँ केन्द्रित हैं। उसको मैं कैसे पुरोहित बना सकता हूँ। इसके अतिरिक्त इस निर्जन वन में मैं पुरोहित बनाने के लिए किस व्यक्ति को ढूँढूँ। अर्थात् किसी के मिलने की आशा नहीं है।

कहा असुर······भेजे आये।

शब्दार्थ—असुर मित्रों=आकुल और किलात असुर पुरोहित।

अर्थ—जब मनु उस लता कुंज में बैठे इन्हीं विचारों में डूबे हुए थे, तभी दोनों असुर पुराहित वहाँ पर गम्भीर मुख बनाए हुए पहुँच गए और कहने लगे कि तुम जिसके लिए यज्ञ करना चाहते हो, उसी देवता ने हमें तुम्हारे पास भेजा है।

यजन करोगे······सहे हो ?

शब्दार्थ—यजन=यज्ञ। आशा=प्रतीक्षा। सहे हो=सहन कर चुके हो।

अर्थ—असुर पुरोहित आकुलि और किलात मनु से बोले क्या तुम वास्तव में यज्ञ करना चाहते हो। यदि तुम्हारा यह पक्का विचार है तो हमारे उपस्थित होने पर भी तुम किसकी खोज कर रहे हो। तुमने पुरोहितों की खोज करने के लिए कितने कष्ट सहे हैं, यह सब हमें विदित है।

इस जगती······हो ज्वाला की फेरी।

शब्दार्थ—निशीथ=रात्रि। सवेरा=प्रभात। मित्र=सूर्य। वरुण=चन्द्रमा। आलोक=प्रकाश। पथ प्रदर्शन=यज्ञ-विधान के मार्गदर्शक। विधि=पद्धति। वेदी=यज्ञ के लिए तैयार की गई वह जगह जहाँ अग्नि प्रज्वलित होती है। ज्वाला=अग्नि। फेरी=चक्कर।

अर्थ—आकुलि और किलात मनु से बोले हमें उन देवताओं ने तुम्हारे पास भेजा है जो सारे संसार के प्रतिनिधि हैं। सूर्य के कारण दिन होता है। प्रकाश इसी सूर्य का प्रतिबिम्ब है। चन्द्रमा के कारण रात होती है और अन्धेरा चन्द्रमा की छाया है। आज वे ही हमारे मार्गदर्शक बनेंगे। हमें आशा है जिस विधि से हम यज्ञ करावेंगे, उससे तुम्हारी आशाएं पूरी होंगी। उठो अब चिन्ता छोड़ो और यज्ञ करो, जिससे एक बार फिर से यज्ञ वेदी से अग्नि की लपटें उठें।

परंपरागत······घड़ियाँ।

शब्दार्थ—परंपरागत=रूढ़ि गत। कर्मों=यज्ञों। लड़िया=शृंखला, तार। जीवन साधन=जीवन व्यतीत होना। उलझी=संलग्न है।

अर्थ—मनु सोचने लगे कि जिन यज्ञों को हमारे पूर्वजों ने किया था, उन्हीं की देखा-देखी आगे उनकी सन्तानें करती आई। इससे उन कर्मों की सुन्दर लड़िया बन गई। इसी प्रकार हमारे जीवन में कितने ही ऐसे आनन्दप्रद अवसर मिलते हैं, जिनसे हमें अपने जीवन को व्यतीत करने के लिए स्फूर्ति और

शक्ति मिलती है।

जिनमें है······स्मृतियाँ।

शब्दार्थ—प्रेरणामयी=स्फूर्ति देने वाली। कृतियों=कार्य। पुलक भरी=रोमांचित करने वाली। मादक=मस्त।

अर्थ—मनु सोचने लगे कि उन परम्परागत, यज्ञों, उत्सवों आदि में कितने ही कार्य ऐसे सम्पन्न होते हैं, जिनसे हमें नई चेतना और स्फूर्ति मिलती है। कभी तो कुछ ऐसी आनन्दप्रद घटनाएं होती है, जिनकी स्मृति आते ही हमारा शरीर रोमांचित हो उठता है और अतीव सुख मिलता है।

साधारण से······कटे उदासी।

शब्दार्थ—अतिरंजित=अधिक मनोरंजन करने वाली। गति=जीवन की गति। त्वरा=तीव्रता। लीलाएं=क्रीड़ाएं।

अर्थ—मनु सोचने लगे कि यह जो परंपरागत यज्ञ और उत्सव हैं, इनके मनाने से हमारे जीवन की साधारण गति में एक आनन्दमयी तीव्रता उत्पन्न हो जाती है, जो कि बहुत ही मनोरंजक होती है। वह तीव्रता मनुष्य के एकाकीपन को दूर कर देती है।

एक विशेष ····का लोभी।

शब्दार्थ—विशेष प्रकार=विलक्षण, असाधारण। कुतूहल=आश्चर्य। नूतनता=नवीनता। लोभी=इच्छुक।

अर्थ—मनु सोचने लगे कि मुझे यज्ञ करता हुआ देखकर श्रद्धा को भी आश्चर्य होगा। इस प्रकार सोचकर मनु का मन प्रसन्नता से खिल उठा, क्योंकि वह तो नित नवीनता की इच्छा किया करता था।

यज्ञ समाप्त······की माला।

शब्दार्थ—दारुण=भयंकर। धधक रही थी=तीव्रता से जल रही थी। रुधिर=खून। अस्थिखंड=हड्डियों के टुकड़े। माला=समूह।

अर्थ—यद्यपि यज्ञ तो समाप्त हो गया था परन्तु यज्ञ वेदी पर अग्नि अभी भी तीव्रता से जल रही थी। वहाँ का दृश्य बड़ा ही भयंकर था। स्थान-स्थान पर खून के छींटे पड़े हुए थे और हड्डियों के समूह इधर-उधर बिखरे पड़े थे। क्योंकि असुर पुरोहितों ने श्रद्धा के पशु को बलि के लिए मार दिया था :

वेदी की······प्राणी।

शब्दार्थ—निर्मम=निष्ठुरता से पूर्ण। कातर=दीन, कराह से भरी। कुत्सित=घिनौना।

अर्थ—बलिकर्म करने के पश्चात् वेदी के आस-पास बैठे हुए मनु और असुर पुरोहित ही प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। उनकी प्रसन्नता कितनी ही निष्ठुर थी। जिस पशु का वध किया था उसकी कातर वाणी वहाँ के वातावरण में गूँज रही थी। इस प्रकार कठोर प्रसन्नता और पशु की कातर वाणी के मिलने से वातावरण बहुत ही घृणास्पद बन गया था, जिस प्रकार किसी घिनौने व्यक्ति को देखने से घृणा होती है, उसी प्रकार उस वातावरण से हो रही थी।

सोमपात्र······सब जागे।

शब्दार्थ—सोमपात्र=सोमपात्र से भरा हुआ प्याला। पुरोडाश=यज्ञ से बचा हुआ द्रव्य पदार्थ। सुप्त भाव=दबे हुए भाव।

अर्थ—यज्ञ समाप्त होने के पश्चात् मनु के सामने सोमरस से भरा हुआ प्याला रखा था और यज्ञ से बचा हुआ पशु का माँस भी बचा पड़ा था। श्रद्धा को अपने सामने न पाकर मन की सारी सोई हुई भावनाएँ जाग्रत हो गईं।

जिसका था······ऐंठी।

शब्दार्थ—उल्लास=प्रसन्नता। निरखना=देखना। दृष्टा वासना=तीव्रता से उठी हुई वासना। गरजने लगी=बलवती हो गई।

अर्थ—मनु श्रद्धा को सामने न पाकर सोचने लगे कि जिसको प्रसन्न देखने के लिए मैंने सारा यह कार्य किया था यदि वही मुझसे अलग जा बैठी तो मुझे यज्ञ करने का क्या लाभ था। इस प्रकार सोचते-सोचते मनु के मन में वासना की भावना बहुत बलवती हो गई।

जिसमें······अपना है।

शब्दार्थ—सुन्दर मूर्त्त बना है=साकार मूर्ति धारण किए हुए हैं। हृदय खोलकर=सारी बातें बताकर।

अर्थ—मनु सोचने लगे—श्रद्धा जिसमें मेरे सारे सुख संचित हैं और मैं जिसे सुखों की साकार मूर्ति मानता हूँ, वह ही मुझसे न जाने क्यों रूखा-रूखा व्यवहार करती है। मैं उसके सामने अपने हृदय की सारी बातें खोलकर कैसे कह दूँ वह अपनी है अर्थात् मेरी है।

वही प्रसन्न······होगा।

शब्दार्थ—वही = श्रद्धा । रहस्य = भेद । सुनिहित = छिपा हुआ । बध्क = विघ्न ।

अर्थ—मनु सोचने लगे कि श्रद्धा मुझसे प्रसन्न नहीं रहती, इसमें अवश्य कुछ भेद छिपा हुआ है । आज तो वह पशु जो जीकर भी हमारे प्रेम में बाधक होता था, मर कर भी बाधक ही सिद्ध होगा ।

श्रद्धा रूठ······जाना होगा ।

शब्दार्थ—रूठ गई = नाराज हो गई । पथ = रास्ता, उपाय ।

अर्थ—मनु सोचने लगे कि यदि श्रद्धा मुझसे वास्तव में ही रूठ कर यहाँ से उठकर चली गई है तो क्या मुझे उसे मनाना पड़ेगा या वह खुद ही मान जाएगी । अब मुझे समझ में नहीं आता कि मैं कौन-सा उपाय करूँ ।

पुरोडाश······से भरने ।

शब्दार्थ—पुरोडाश = द्रव्य पदार्थ । प्राण का रिक्त अंश = हृदय का खाली भाग, जीवन का अभाव । मादकता = नशा ।

अर्थ—मनु श्रद्धा के इस रूखे व्यवहार के बारे में सोचते बहुत बेचैन हो गए और वह द्रव्य पदार्थ के साथ सोम रस का पान करने लगे । इस प्रकार वह अपने जीवन के अभावों को कुछ देर के लिए मादकता से भरने लगे । अर्थात् वह सोमरस पोने लगे ताकि कुछ देर के लिए अभावों से छुटकारा मिल जाए ।

संध्या की······शशि-लेखा ।

शब्दार्थ—धूसर = मलिन । छाया = अन्धकार । रेख = कोना । अंकित = चित्रित । शशि-लेखा = चन्द्रमा की किरणें ।

अर्थ—संध्या के समय उस पर्वत प्रदेश में चारों ओर धुँधला अन्धकार फैला हुआ था । उस मलिन अन्धकार में पर्वतों की चोटियाँ पंक्तिवद्ध दिखाई दे रही थीं और उनके ऊपर चन्द्रमा की धुंधली-किरणें भी पड़ रही थीं । उस समय ऐसा लगता था मानो पर्वतों की चोटियाँ पंक्तिबद्ध होकर चन्द्रमा को धारण किए हुए हों ।

श्रद्धा अपनी······मन बिलखाई ।

शब्दार्थ—शयन-गुहा = सोने के लिए बनाई हुई गुफा । विरक्ति बोझ = उदासीनता का भार । बिलखायी = बेचैन ।

अर्थ—श्रद्धा दुःखी होकर अपनी शयन गुफा में लौट आई। उसने यज्ञ में पशुवध की कातर वाणी सुनी थी, इसलिए उसके मन में यज्ञ और मनु के प्रति विरक्ति भावना उत्पन्न हो गई। उस समय वह उदासीनता के बोझ के कारण बेचैन हो रही थी।

सूखी काष्ठ······छलती थी।

शब्दार्थ—काष्ठ सन्धि=लकड़ियों के बीच। शिखा=लौ। आभा=हल्का प्रकाश। तामस=अंधकार। छलती=धोखा देती।

अर्थ—श्रद्धा की उस गुफा के अन्दर सूखी लकड़ियों के बीच आग की लौ उठ रही थी। जो उस गुफा में फैले धुंधले अन्धकार को छल रही थी अर्थात् अन्धकार को कम कर रही थी।

किन्तु कभी······फिर रोके ?

शब्दार्थ—शीत=ठंडे। कौन रोके=जलने बुझने में स्वतंत्र थी।

अर्थ—वह आग की लौ कभी तो पवन के शीतल झौंके के आने से बुझ जाती थी और फिर आने से अपने आप जल उठती थी। इस तरह वह अग्नि-शिखा जलने और बुझने में स्वतंत्र थी।

कामायनी पड़ी······को पावे।

शब्दार्थ—कामायनी=श्रद्धा। चर्म=पशु की खाल। श्रम=थकावट। मृदु=साधारण।

अर्थ—श्रद्धा उस गुफा में कोमल खाल बिछा कर आराम कर रही थी अर्थात् लेटी हुई थी। उसे देखने से ऐसा प्रतीत होता था मानो श्रम स्वयं हल्के आलस्य में आकर; लेटकर थकावट दूर कर रहा है।

धीरे-धीरे······विधु-रथ में।

शब्दार्थ—जगत=प्रकृति। ऋजु=सीधा। विधुरथ=चन्द्रमा का रथ।

अर्थ—प्रकृति के सारे कार्य साधारण गति से चल रहे थे। आकाश में तारे इस तरह धीरे-धीरे निकल रहे थे जैसे उपवा में फूल एक-एक करके खिलते हैं। और चन्द्रमा के रथ में भी घोड़े जुत रहे थे। अर्थात् वह धीरे-धीरे उदय हो रहा था।

अंचल लटकाती······वेदना वाली।

शब्दार्थ—निशीथिनी=रात। ज्योत्स्ना=चांदनी (सफेद) वेदना वाली सृष्टि=दुःखी जीव।

अर्थ—चन्द्रमा आकाश में उदय हुआ जिससे सारी प्रकृति पर उसकी श्वेत चाँदनी की आभा फैल गई। जिस तरह कोई नायिका अपना श्वेत वस्त्र लटका देती है उसी प्रकार चन्द्रमा ने भी अपनी चाँदनी रूपी वस्त्र को नीचे लटका दिया, जिसकी छाया में दुःखी जीव अपनी वेदना शांत कर सके।

उच्च शैल······उजाला।

शब्दार्थ—उच्च शैल शिखर=पर्वत की चोटियाँ। हँसती=प्रकाश फैलाती। प्रकृति चंचला बाला=प्रकृति रूपी चंचल बाला। धवल=श्वेत। मधुर=आनन्ददायक।

अर्थ—पर्वतों की समस्त ऊँची चोटियों पर चांदनी फैल गई थी, जिसे देखकर जान पड़ता था मानों इन चोटियों पर बैठी हुई कोई चंचल युवती की तरह प्रकृति इस चाँदनी के माध्यम से अपनी हँसी फैला रही हो। उसकी मधुर हँसी के कारण ही यह आनन्दमय उजाला फैला हुआ है।

विशेष—१ मानवीकरण अलंकार।

२. 'हँसी' तथा 'हँसती' मे लक्षणलक्षणा है।

जीवन की······वाली पीड़ा।

शब्दार्थ—जीवन की=यौवन काल की। उद्दाम=दुर्दमनीय। लालसा=वासना। उलझी=सिपटी। तीव्र=विकट, उत्कट। उन्माद=आवेश।

अर्थ—श्रद्धा के मन में यौवनकाल की दुर्दमनीय वासना उमड़ रही थी जिसको वह लज्जा के कारण प्रकट न कर पाती थी। इस समय वह बहुत ही आवेश से भरी हुई थी, जो उसके मन को पीड़ा पहुँचा रही थी, जिससे उसे लगता था मानों उसके हृदय को कोई मथे डाल रहा है।

मधुर विरक्ति भरी······मन में।

शब्दार्थ—मधुर विरक्ति=सुन्दर उदासीनता। हृदय गगन=हृदय रूपी आकाश। अन्तर्दाह=अन्दर ही अन्दर जलना। स्नेह=प्रेम।

अर्थ—श्रद्धा के हृदय रूपी आकाश में ऐसी पीड़ा के बादल घिरे हुए थे, जो मधुर उदासीनता की भावना से भरे हुए थे। इतना होने पर भी उसका मन मनु के प्रेम से भरा हुआ था और उस प्रेम के कारण अन्दर ही अन्दर जल रहा था।

वे असहाय······कटुता में।

शब्दार्थ—असहाय=विवशता से भरे। भीषणता में=भीषण दृश्य की कल्पना करके। पात्र=अधिकारी। कुटिल=दुष्ट, दुष्टता। कटुता=खिन्नता।

अर्थ—श्रद्धा मनु के पशु वध संबंधी कार्य से दुःखी होकर गुफा में लेटी हुई थी। उसकी आँखों में विवशता भरी होने के कारण उसे नींद नहीं आ रही थी। कभी वह अपनी आँखें खोल देती थी और कभी पशु की हत्या के भीषण दृश्य की जैसे ही मन में कल्पना उठती तो फिर उन्हें बन्द कर लेती थी। मनु जो उसके स्नेह का अधिकारी था, स्पष्ट ही आज दुष्टता कर बैठा था, जिससे श्रद्धा में मन में उसके प्रति खिन्नता उत्पन्न हो गई थी।

कितना दुःख······सपना हो।

शब्दार्थ—चाहूँ=प्रेम करूँ। कुछ और=धारणाओं के विपरीत। मानस चित्र=हृदय में कल्पना का चित्र। सपना हो=सपने के समान मिथ्या।

अर्थ—श्रद्धा अपने मन में सोचती है कि यह कितने दुःख की बात है कि मैं जिसे (मनु को) प्रेम करती हूँ वही मेरी धारणाओं के विपरीत सिद्ध हुआ। मैंने मनु को सर्वस्व अर्पण करके अपने भविष्य के सुन्दर चित्र का निर्माण किया था, परन्तु आज वह सब मुझे सपने के समान झूठ दिखाई दे रहा है।

जाग उठी······निर्जन में ?

शब्दार्थ—दारुण ज्वाला=व्यथा की भयंकर आग। अनन्त मधुवन में=वसंत ऋतु के कारण विकसित विस्तृत वन में, किन्तु यहाँ कवि का तात्पर्य मधुर भावनाओं से भरा हुआ श्रद्धा का विशाल हृदय। नीरव निर्जन=शून्य नीरवता।

अर्थ—जिस प्रकार वसंत ऋतु में विकसित विस्तृत वन में दारुण आग लग जाती है, उसी प्रकार श्रद्धा के मधुर कल्पनाओं से भरे मन में मनु के हिंसा कर्म के कारण हलचल पैदा हो गई थी, अर्थात् व्यथा की आग लग गई थी। जैसे शून्य स्थान में लगी हुई आग निरन्तर बढ़ती जाती है, उसी प्रकार श्रद्धा के हृदय की बेचैनी भी बढ़ती जा रही थी वहाँ कोई भी व्यक्ति नहीं था, जो इस व्यथा को दूर करने का उपाय बता सकता।

यह अनन्त······अलस सवेरा।

शब्दार्थ—अनन्त=सीमाहीन। अवकाश=अन्तरिक्ष। नीड़=घोंसला। व्यथित सवेरा=वेदना से भरा हुआ निवास स्थान। सजग=जागृत। अलस

सवेरा=आलस्य से भरा हुआ जागरण काल।

अर्थ—अपनी गुफा में लेटी हुई श्रद्धा सोचती है कि जो वेदना अन्तरिक्ष में घोंसला बनाकर रहती थी वहाँ वेदना आज मेरी पलकों में निवास कर रही है। अर्थात् वेदना अधिक होने के कारण मुझे नींद नहीं आती, इसलिए मेरी आँखें भी जगते-जगते लाल हो उठी हैं और मेरा शरीर आलस्य से पूर्ण हो गया है।

विशेष—विरोधाभास अलंकार है।

कांप रहे हैं······मलिन उदास।

शब्दार्थ—काँपना=थर्राना। नीरवता=शून्यता। मलिन उदासी=मलिनता से भरी हुई।

अर्थ—श्रद्धा का मन वेदना से भरा हुआ है इसलिए उसे सारा वातावरण ही वेदना ग्रस्त लगता है। मन्द-मन्द गति से चलने वाला पवन भी उसे लगता है मानों व्यथा भार के कारण उसके चरण काँप रहे हों। चारों दिशाओं में नीरवता का ही राज्य है। और वहाँ पर फैला हुआ मलिन अंधकार ऐसे लगता है, मानो सारा शोक या अवसाद यहीं आकर एकत्रित हो गया है।

विशेष—१. 'पवन के चरण कांपने' में लक्षणलक्षणा है।

२. मानवीकरण तथा गम्योत्प्रेक्षा अलंकार है।

अंतरतम की······चढ़ती हैं।

शब्दार्थ—अंतरतम की प्यास=अनुराग पूर्ण हृदय की प्यास। विकलता=छटपटाहट, बेचैनी। युग-युग की असफलता=समय-समय पर प्राप्त होने वाली विफलताएँ। अवलंबन=सहारा।

अर्थ—श्रद्धा सोचती है कि मन की प्रेम प्यास कितनी अजीब होती है। मन हमेशा अपने प्रेमी को प्राप्त करने के लिए बेचैन रहता है। ज्यों ज्यों उसे असफलताओं का सामना करना पड़ता है उसकी इच्छा उतनी ही तीव्र होती जाती है।

विशेष—'असफलता का अवलंबन' में रूपक अलंकार है।

विश्व विपुल······परम से।

शब्दार्थ—विपुल=अत्यधिक। आतंकग्रस्त=भय से डरा हुआ। विषमताप=तीव्र वेदना। घनी नीलिमा=नभ का नीलापन। अन्तर्दाह=अतंर्जलन।

परम = भारी ।

अर्थ—श्रद्धा सोचती है कि सारा विश्व ही अपनी भयंकर पीड़ा से दुःखी है । यह जो आकाश का नीलापन है, वह इसी विश्व के अन्तर्जलन से उठा हुआ धुंए का ही सघन रूप है ।

उद्वेलित है·····झुलसी ।

शब्दार्थ—उद्वेलित = अशान्त । लोट रही = करवटें बदल रही हैं । चक्रवाल = चन्द्रमा के चारों ओर धुंधले प्रकाश का एक घेरा छा जाता है, उसे चक्रवाल कहते हैं । झुलसी = जलती हुई-सी ।

अर्थ - श्रद्धा का मन दुखित होने के कारण उसको सारा जगत वेदनामय दिखाई दे रहा है । वह सोचती है समुद्र अशांत है और लहरें व्याकुलता से करवटेंबदल रही हैं । ऊपर आकाश में चन्द्रमा के चारों ओर जो प्रकाश का धुंधला गोलक है, वह अपनी ही आग से झुलसा जा रहा है ।

बिशेष—मानवीकरण तथा उत्प्रेक्षा अलंकार ।

सघन धूम······की माला ।

शब्दार्थ—सघन = घना । धूम-कुंडल = धुँए का चक्र । तिमिर = अंधकार फणी = सर्प ।

अर्थ—श्रद्धा सोचती है कि आकाश में चमकने वाले तारे ऐसे लगते हैं मानो घने धुंए में यह अग्नि कण उड रहे हों या फिर अंधकार रूपी अपनी-अपनी असंख्य मणियों की माला पहने हुए हों ।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति और वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है ।

जगती तल······दारुण निर्ममता ।

शब्दार्थ—क्रन्दन = रोना । विषमयी = दुःखदायी । विषमता = असमानता । अंतरग = छिपा हुआ । दारुण = भयंकर । निर्ममता = निर्दयता ।

अर्थ—श्रद्धा सोचती है कि इस दुःखमयी असमानता के कारण ही संसार सदैव पीड़ित रहता है । किसी भी व्यक्ति का व्यवहार सदा एक सा नहीं रहता, संसार में सर्वत्र वेदना से पीड़ित लोगों की कराह ही सुनाई पड़ती है । मनुष्य ऊपर से भला प्रतीत होता है, पर भीतर उसके छल भरा हुआ है, अतः जिस दिन उसके छल कपट से परिचय होता है; उस दिन वह व्यवहार कलेजे में चुभ जाता है ।

जीवन के .....आंखों की क्रीड़ा।

शब्दार्थ—निष्ठुर दर्शन=निर्दय व्यवहारों की चोट। आतुर=घबरा देने वाली। कलुष चक्र=पाप कर्म। आंखों की क्रीड़ा=आँखों के लिए कौतुक बन कर।

अर्थ—श्रद्धा मन में सोचती है कि इस संसार में मनुष्य को कभी-कभी अपने संबन्धियों से इस प्रकार के व्यवहारों को सहना पड़ता है जिनकी चोट सर्प या बिच्छू के डंक के समान हृदय को कचोटती रहती है। आज वे सभी पीड़ाएँ पाप बनकर मेरी आँखों के सामने कौतुक बन कर इस प्रकार नाच रही हैं जिस प्रकार कुम्भकार का चक्कर घूमता हुआ आँखों के लिए कौतुक सा बन जाता है।

विशेष—'कलुष-चक्र' में रूपक और 'कलुष-चक्र सी' में उपमा अलंकार तथा 'बन आँखों की क्रीड़ा' में रूपक अलंकार है।

स्खलन चेतना .....रहते हैं।

शब्दार्थ—स्खलन=असावधानी। बिन्दु=बूँद। विषाद=शोक। नद=बड़ी नदी।

अर्थ—श्रद्ध सोचती है कि संसार में भूल क्या है? जब हमारी चतुर बुद्धि से किसी प्रकार की असावधानी हो जाती है, तब उसी का नाम भूल पड़ जाता है। और भूल, जो छोटी सी बूंद के समान है, परन्तु वर्षा काल में जैसे एक एक बूंद मिलकर बाढ़ कर रूप धारण कर लेती है, वैसे ही यह छोटी सी भूल भी शोक की सरिताओं को जन्म देती है।

विशेष—परम्परित रूपक तथा विरोधाभास अलंकार।

आह वही.....की छाया।

शब्दार्थ—अपराध=दोष। माया=चिन्ह। वर्जित=वंचित रहना। मादकता=सुख से। संचित=एकत्र। तम=निराशा।

अर्थ—श्रद्धा अपने मन में सोचती हुई कहती है कि खेद है मनु ने वही अपराध किया, जिसे संसार में मनुष्यों की दुर्बलता का चिन्ह माना जाता है और जिसमें ऐसी मादकता भरी हुई होती है जिसे पृथ्वी पर कोई भी व्यक्ति ग्राह्य नहीं समझता, और जो इकट्ठे हुए अन्धकार की छाया के समान हैं, अर्थात् जिस प्रकार गहन अन्धकार में कुछ भी दिखाई नहीं देता उसी

प्रकार इस अपराध को करने के पश्चात् मनुष्य का कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ज्ञान नष्ट हो जाता है।

नील गरल······पिये हो।

शब्दार्थ—गरल = विष। कपाल = खप्पर। निमीलित = टिमटिमाती।

अर्थ—श्रद्धा आकाश की ओर देख कर उसे आकाश की कल्पना एक देवता के समान करती हुई कहती है कि—हे प्रभु यह चन्द्रमा तुम्हारे हाथ का खप्पर है और इसके अन्तर की श्यामलता इसके भीतर भरा नीला हलाहल है। इतने भयानक विष को धारण करके भी तुम अन्धकार से ढकी हुई तारिकाओं के रूप में अपनी आँखों की पुतलियों को बन्द करके बड़ी शान्ति के साथ बैठे रहते हो। मानों तुमने विष नहीं शान्ति पी हो।

अखिल······किधर से ?

शब्दार्थ—अखिल = समस्त। विष = पाप और ताप का हलाहल। अमर = शाश्वत।

अर्थ—श्रद्धा आकाश रूपी देवता को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे देव ! तुम्हारे लिए यह प्रसिद्ध है कि तुम विषपान करते हो जो संसार भर की पीड़ा का विष है। यदि तुम उसे न पियो तो संसार जीवित ही कैसे रह सकता है। परन्तु मैं यह पूछती हूँ कि इतना भयंकर विष पीने के पश्चात भी तुम शांत ही रहते हो, इतनी अखंड शीतलता तुम्हें कैसे और कहाँ से प्राप्त होती है।

अचल अनन्त······ये तारे।

शब्दार्थ—अनन्त नील लहर = विस्तृत आकाश रूपी सागर में दिखाई देने वाली नीलिमा रूपी नीली लहरें। श्रमकण = पसीने की बूंदें।

अर्थ—श्रद्धा आकाश रूपी देवता की सम्बोधित करती हुई कहती है—कि इस सर्वत्र फैले हुए नीले आकाश की उमड़ती हुई नीली लहरों के आसन पर तुम सुदृढ़ समाधि जमाए बैठे हो। हे प्रभु ! तारे जिसके शरीर से भारी पसीने की बूंदों से प्रतीत होते हैं, ऐसे तुम कौन हो ?

विशेष—'अनन्त नील लहरों' में रूपकातिशयोक्ति और 'श्रमणक के तारे' में उपमा अलंकार है।

इन चरणों······जो थकते ?

शब्दार्थ—इन = तुम्हारे। कर्म कुसुम = कर्म रूपी फूल। अजंलि = कर-संपुट। छाया = आकाश गंगा।

अर्थ—श्रद्धा आकाश रूपी देवता को सम्बोधित करके कहती है—हे देव! आकाश गंगा पर चलने वाले ये तारे तुम्हारे चरणों में अपने कर्म रूपी फूलों की अंजलि चढ़ाने आ रहे हैं और बड़ी दूर से पैदल चले आने के कारण ये थके हुए से जान पड़ते हैं।

किन्तु कहाँ······नित्य भिखारी।

शब्दार्थ—दुर्लभ = कठिनाई से प्राप्त होने वाली। नित्य = प्रतिदिन आने वाला।

अर्थ—श्रद्धा कहती है कि उन तारागण रूपी राहगीरों को इतना सौभाग्य कहाँ प्राप्त है कि वह तुम्हारे चरणों में पुष्पांजलि चढ़ा सकें। उनके लिए तुम्हारी स्वीकृति इतनी दुर्लभ हो गई है कि वे विचारे निराश करके रास्ते में से ही इस प्रकार लौटा दिए जाते हैं जैसे प्रतिदिन माँगने वाला भिखारी लौटा दिया जाता है।

विशेष—'जैसे नित्य भिखारी' में उदाहरण अलंकार।

प्रखर विनाश शील······उसकी काया।

शब्दार्थ—प्रखर = तीव्र। विनाश शील = टूटना-फूटना। नर्तन = चक्कर विपुल = अखिल। माया = रहस्य।

अर्थ—श्रद्धा सोचती है कि सृष्टि का यही रहस्य है कि यहाँ पर सदैव विनाश और निर्माण का चक्कर चलता रहता है। एक वस्तु नष्ट हो जाती है तो तुरंत ही उसकी जगह नवीन वस्तु प्रकट हो जाती है। यहाँ तीव्र गति से निर्माण करने वाली यह माया शक्ति भी क्षण-क्षण पर नवीन रूप धारण करती हुई इस ब्रह्मांड के अन्तर्गत नये-नये पदार्थों का निर्माण कर रही है।

सदा पूर्णता······मरते क्या?

शब्दार्थ—पूर्णता = जीवन का वास्तविक स्वरूप। यौवन = जीवन की चरम सीमा। जी-जीकर = बार-बार जन्म लेकर।

अर्थ—श्रद्धा सोचती है कि संसार में सभी इसलिए बार-बार भूल करते हैं कि उसका सुधार कर वे भविष्य में पूर्ण बनें? अरे, तब क्या जीवन में इसी पूर्णता अर्थात् यौवन को प्राप्त करने के लिए ही यहाँ बार-बार जन्म

लेते और मरते हैं !

यह व्यापार······हँसता क्या ?

शब्दार्थ—व्यापार = सृष्टि। महागति शील = निरंतर चक्कर करता हुआ। बसता = स्थित। स्थिर मंगल = स्थायी कल्याण की भावना।

अर्थ—श्रद्धा सोचती है कि संसार का यह मरण और जन्म का चक्कर क्या कभी भी समाप्त नहीं होता। क्या पल-पल पर नाशवान इस सृष्टि में छिपी हुई कल्याण की भावना हँसा करती है !

विशेष—'स्थिर मंगल के चुपके से हँसने' में मानवीकरण अलंकार है।

यह विराग सम्बन्ध······निर्ममता।

शब्दार्थ—विराग सम्बन्ध = उदासीनता का सम्बन्ध। मानवता = मानव धर्म। निर्ममता = निष्ठुरता।

अर्थ—श्रद्धा सोचती है कि मनुष्य के हृदय में एक दूसरे के प्रति तनिक भी स्नेह नहीं है, वे परस्पर उदासीन होकर जीवन व्यतीत करते हैं और दूसरों के साथ निष्ठुरता का व्यवहार करते हैं, क्या यही मानव धर्म हैं। शोक की बात है कि प्राणी के मन में प्राणी के लिए केवल निर्दयता शेष रह गई है।

जीवन का······कसता क्यों ?

शब्दार्थ—संतोष = तृप्ति की भावना। रोदन = रोने की क्रिया। विश्राम रुकावट। परिकर = कमर-बंद। कसता = खीचकर बाँधना।

अर्थ—श्रद्धा सोचती है कि इस संसार में न जाने ऐसा क्यों होता है कि कोई प्राणी जब तक किसी को पूर्ण रूप से रुला न दे तब तक उसे सन्तोष नहीं होता ? और हमारे जीवन की प्रत्येक रुकावट क्यों उन्नति को वैसे ही बाँधे रखती है जैसे 'कटि वस्त्र' कमर को कसे रहता है।

विशेष उपमा अलंकार।

दुर्व्यवहार······पायेगा।

शब्दार्थ—दुर्व्यवहार = बुरा बर्ताव। गरल = विष। बुरा व्यवहार। अमृत सुधा, सद्व्यवहार।

अर्थ—श्रद्धा कहती है कि चाहे पशु हो या पक्षी हो या मनुष्य हो यह किसी प्राणी के बुरे बर्ताव को कैसे भुला सकता है। ऐसा कौन सा उपाय है

जो विष को अमृत में बदल देगा अर्थात् यहाँ पर किसी व्यक्ति के बुरे बर्ताव को सद्व्यवहार में बदलना बहुत ही कठिन है।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति तथा निदर्शना अलंकार।

जाग उठी······अब सकता।

शब्दार्थ—तरलवासना=तीव्र वासना। मादकता=नशा।

अर्थ—मनु के हृदय में चंचल वासना फिर जागृत हुई। यज्ञ की समाप्ति पर उन्होंने सोमरस का पान किया था उसके नशे में चूर थे। दूसरा काम वासना का नशा होने के कारण उनको अब श्रद्धा के पास आने से कौन रोक सकता था।

खुले मसृण······सा तिरता।

शब्दार्थ—मसृण=चिकने। भुजमूल=कंधे। आमन्त्रण=निमन्त्रण। उन्नत=उठे हुए। वक्ष=उरोज। आलिंगन सुख=मिलन का आनंद। तिरता =बहना।

अर्थ—गुफा में सोई हुई श्रद्धा के कोमल कंधे खुले हुए थे, जो आकर्षण से भरे होने के कारण ऐसा लगता था मानो निमंत्रण दे रहे हों। और भेष चर्म से ढके हुए श्रद्धा के ऊँचे उरोज भी ऐसे लग रहे थे मानों मिलन सुख के आनंद के लिए विवश कर रहे हों। उन पर सुख लहरों के समान तिरता (बहता) सा जान पड़ता था।

विशेष—उपमा अलंकार है।

नीचा हो······हासी में।

शब्दार्थ—नीचा हो उठना=सांस का बाहर निकालना। जीतन=जिंदगी, जल। ज्वार=चन्द्रमा के आकर्षण से समुद्र का पानी ऊपर उठना। हिमकर =चन्द्रमा मुख। ह्रास=चाँदनी, उज्ज्वलता।

अर्थ—श्रद्धा के उरोज साँस बाहर फैंकने के बाद कुछ नीचे होकर ऊपर उठ जाते थे। जैसे चन्द्रमा की चाँदनी से आकर्षित होकर समुद्र में ज्वार-भाटा आ जाता है उसी प्रकार श्रद्धा के उज्ज्वल मुख की शुभ कान्ति का स्पर्श कर उसके जीवन में ज्वार-भाटा आ गया हो।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति और वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

जागृत था सौन्दर्य······नारी।

शब्दार्थ—जागृत=खिला हुआ। चन्द्रिका=चाँदनी। निशा=रात्रि।

अर्थ—श्रद्धा यद्यपि अपनी गुफा में सो रही थी परन्तु उसका अनुपम सौन्दर्य खिल रहा था। उसका सौंदर्य सोई हुई होने पर भी उसी प्रकार अच्छा लग रहा था, जिस प्रकार चाँदनी के कारण रजनी भी उज्ज्वल दिखाई देती है।

विशेष—'सोने पर भी सौंदर्य के जगने में' विरोधाभास, 'रूपचन्द्रिका' में रूपक और 'निशा-सी उज्ज्वल' में पूर्णोपमा अलंकार है।

वे मांसल······उलझे जाते।

शब्दार्थ—मांसल=माँस से युक्त। परमाणु=अणु-परमाणु। विद्युत=बिजली। अलक=घुंघराले बाल। डोरी=जाल की डोरी।

अर्थ—श्रद्धा के स्वस्थ और सुन्दर शरीर (माँसल युक्त) से बिजली के समान प्रकाश निकल रहा था जैसे कि अणु परमाणुओं की किरणों से प्रकाश निकलता है। उसके प्रकाश से सारी गुफा में एक प्रकार की सुन्दरता-सी आ गई थी। श्रद्धा के काले और घुंघराले बालों में मनु का मन इस प्रकार उलझ गया था जैसे डोरी में बहुत से पदार्थों के कण उलझ जाते हैं।

विगत विचारों······पिरोती।

शब्दार्थ—विगत विचार=थोड़ी देर पहले के विचार। श्रमसीकर=पसीने की बूँदें। मण्डल=गोल आकार का।

अर्थ—मनु ने श्रद्धा के पशु का वध किया था इस समय उसी का विचार आने के कारण श्रद्धा के मुख पर पसीने की बूँदें मोतियों के समान झलक रही थीं और उसके मुख पर मानव सुलभ कल्पना का भाव भी झलक रहा था। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो कल्पना वहाँ पर बैठी हुई मोतियों का हार पिरो रही हो।

विशेष—मानवीकरण और गम्योत्प्रेक्षा अलंकार हैं।

छूते थे······थी फैली।

शब्दार्थ—कंटिकत होना=लता के कष्टों से युक्त होने के समान शरीर का रोमांचित होना। स्वरूप=गहरी। अंगलता=शरीर रूपी लता।

अर्थ—मनु नशे में चूर हुए सोई हुई श्रद्धा के बिल्कुल समीप आ गए और उसके शरीर को स्पर्श करने लगे। स्पर्श करते ही श्रद्धा का शरीर इस तरह

रोमांचित हो उठा जैसे लता काँटों से युक्त होती है। श्रद्धा की सुन्दर देह लता के समान फैली हुई थी और उसके शरीर में गहरी व्यथा की लहरें उठ रही थीं।

विशेष—१. 'कंटकित होती' तथा 'बेली' में लक्षणलक्षणा है।

२. 'अंगलता' में रूपक अलंकार है।

वह पागल सुख······तना था।

शब्दार्थ—पागल=मस्त करने वाला। जगती का सुख=शरीर भोग का सुख। विराट्=महान। अन्धकार=अज्ञान। प्रकाश=सुख का ज्ञान। वितान=चँदोवा।

अर्थ—मनु ने जब श्रद्धा को स्पर्श किया तो उन्हें बहुत सुख का अनुभव हुआ। वासना के नाम से प्रसिद्ध सांसारिक सुख, जो व्यक्ति को पागल बना देता है, आज मनु के सामने बहुत बड़े रूप में आया और उसका मन अज्ञान से भर गया। उस गुफा में हल्का प्रकाश और हल्का अन्धकार इस प्रकार फैला हुआ था मानो रात्रि के अन्धकार में किसी ने सफेद चादर का चँदोवा तान रखा हो।

कामायनी जगी······बनता।

शब्दार्थ—चेतनता=सुध-बुध। मनोभाव=मन के भाव। आकार=स्वरूप। बिगड़ता बनता=क्षण क्षण बदल जाता था।

अर्थ—मनु के स्पर्श के कारण श्रद्धा की नींद कुछ खुल गई थी परन्तु जब वह सोई थी, तब उसके मन में बहुत विचार भरे हुए थे, इसलिए वह उन विचारों में डूबी हुई-सी लगती थी, इसलिए वह पूरी चेतन नहीं लगती थी। उसके मन में उठने वाले भाव श्रद्धा की मुखाकृति से स्पष्ट ही प्रकट होते थे और मिट जाते थे।

जिसके हृदय······कुछ नाता है।

शब्दार्थ - हृदय समीप होना=प्रेम करना। दूर जाना=प्रेम न करना। नाता=सम्बन्ध, अधिकार।

अर्थ—संसार में प्रायः ऐसा होता है कि जिसे हम बहुत प्यार करते हैं, वही हमसे दूर भागता है और हम अपना क्रोध भी उसी पर प्रकट करते हैं, जिससे हमारा कुछ सम्बन्ध होता है।

प्रिय को……लौटा देती ।

शब्दार्थ—प्रिय=प्यारा । मन की माया=मन की प्रेम से भरी मोहक-शक्ति । प्रणय शिला=प्रेम रूपी पर्वत शिला । उलझा लेती=नहीं छोड़ती । प्रत्यावर्त्तन=लौटाना ।

अर्थ—और यह भी सत्य है कि जिस व्यक्ति को हम हृदय से प्यार करते है, उसे ठुकराने के उपरान्त भी हमारा मन प्रेम की एक ऐसी मोहक शक्ति में बँधा रहता है कि उसे छोड़ने को मन नहीं करता, अर्थात् हमारा मन उससे उलझा रहता है । जिस प्रकार ध्वनि पर्वत शिलाओं से टकराकर वापिस आ जाती है वैसे ही हमारा हृदय भी प्रेमी से क्रोधित होने पर भी उसी की ओर उन्मुख होता है ।

विशेष—'प्रणय-शिला' में रूपक अलंकार ।

जलदागम……ले ली ।

शब्दार्थ—जलदागम मारुत=बादलों के आने पर चलने वाली शीतल हवा । कम्पित=काँपती हुई । पल्लव=कोमल पत्ते । सदृश=समान ।

अर्थ—मनु के स्पर्श करने के कारण श्रद्धा का हृदय रोमांचित हो उठा था और उसका सारा शरीर काँप रहा था । मनु ने श्रद्धा की हथेली को हाथ में ले लिया । मनु का स्पर्श पाकर उसकी हथेली इस तरह काँप रही थी जिस प्रकार वर्षाकालीन शीतल पवन चलने पर कोमल पत्ते काँपते हुए दिखाई देते हैं ।

विशेष—पूर्णोपमा अलंकार ।

अनुनय वाणी……आंखें मींचे ।

शब्दार्थ—अनुनय=विनय । उपालंभ=उलाहना । मानवती=मानिनी । माया=मोहक रूप । स्वर्ग=स्वर्गीय आनंद । विफल=नष्ट । अतीत=बीता हुआ । नूतन=नए । निर्जन=सुनसान । ज्योत्स्ना=चाँदनी । पुलकित=प्रसन्न, खिला हुआ । विधु-युत=चन्द्रमा युक्त ।

अर्थ—मनु वासना के नशे में चूर थे इसलिए उनकी वाणी में याचना थी परन्तु उनकी आँखों में उपालम्भ के संकेत स्पष्ट दिखाई दे रहे थे । मनु कहने लगे—हे मानिनी ! तुमने इस तरह रूठकर यह कैसी माया रची है ? हे अप्सरे ! मैंने इस पृथ्वी पर जो स्वर्गीय सुख प्राप्त करने की कल्पना की

है उसको नष्ट करने का प्रयत्न मत करो। उठो और जिस प्रकार पहले तुम मेरे साथ प्रेम पूर्ण बातें किया करती थी उन्हीं को नवीन रूप देकर फिर गुनगुनाओ कि ताकि मेरे मन को शान्ति मिले। इस सुनसान (जनहीन) प्रदेश और चन्द्रमायुक्त आकाश के नीचे मेरे और तुम्हारे सिवा कौन है? तुम इस तरह आँखें बन्द कर मत लेटी रहो अर्थात् यह वातावरण बहुत रम्य है और प्रणय चर्चा के लिए उपयुक्त है।

आकर्षण······वासना-धारा।

शब्दार्थ—भोग्य=भोगने के लिए। कूल=किनारे।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि आकर्षण से भरा हुआ यह संसार भगवान ने हमारे भोग के लिए ही बनाया है। मैं चाहता हूँ, कि मेरे और तुम्हारे मध्य वासना की धारा उसी प्रकार बहती रहे, जिस प्रकार दो किनारों के मध्य नदी बहती है।

विशेष—परम्परित रूपक अलंकार।

श्रम की ·····बहता है।

शब्दार्थ—श्रम=थकावट। अभाव=इच्छाओं की अपूर्त्ति। आकुलता=दुःख। भीषण चेतना=भयंकरता से भरा हुआ। स्वर्ग=अक्षय आनन्द। अनंतता=असीमता। दो बूँद=सोमरस की मादक बूँदें।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि यह संसार श्रम और अभावों से भरा हुआ है, जिससे मन हमेशा व्याकुल रहता है। आओ कोई ऐसा प्रयत्न करें जिससे हम अपनी व्याकुलता और अभावों को भूल जाएँ। इसके लिए तो केवल एक यही उपाय है कि दो घूँट सोमरस के पी लेने चाहिए। जिसके पीने से संसार के सभी अभाव और व्याकुलता भूल जाएँगी तथा स्वर्ग का अक्षय आनन्द प्राप्त हो जाएगा और हमारे जीवन में हठात् ही आनन्द की धारा बहने लगेगी।

देवों को······मिलकर भूलो।

शब्दार्थ—मधु-मिश्रित=मधु मिला हुआ। मादकता=सोमरस का नशा। दोला=झूला।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि हे प्रेयसी! तुमसे मैं यही कहूँगा कि देवताओं को समर्पित किए जाने वाले इस मधुर सोमरस को पियो, इस पात्र

को अपने अधरों से लगाओं। और आओ हम दोनों ही मस्ती से भरकर नरों में ऐसे झूलें जैसे दो प्रेमी मिलकर झूला झूलते हैं।

विशेष—रूपक अलंकार।

श्रद्धा जाग······रस छपकता।

शब्दार्थ—मादकता=नशा। मधुर भाव=प्रेम भाव। छकता=तृप्त करने को भरा हुआ था।

अर्थ—यद्यपि श्रद्धा जाग पड़ी थी परन्तु फिर भी उस पर एक प्रकार का नशा-सा छाया हुआ था। मनु की प्रेम और विनय से भरी बातें सुनकर उसका मन और शरीर मधुर भावना से भर गया था। ऐसा जान पड़ता था मानो प्रेम भावना श्रद्धा के तन मन में व्याप्त होकर अपनी तृप्ति कर रही हो।

विशेष—मानवीकरण तथा गम्योत्प्रेक्षा अलंकार।

बोली एक······बहते हो।

शब्दार्थ—सहज=स्वाभाविक। धारा=आवेश। बहना=कहना।

अर्थ—श्रद्धा मनु को सरल स्वभाव से कहने लगी कि आज तुम मुझे प्रसन्न करने के लिए आवेश में आकर यह सब बातें कह रहे हो। मुझे तुम्हारी बातों पर विश्वास नहीं होता।

कल ही······यज्ञ रचेगा?

शब्दार्थ—परिवर्तन=भावों का बदल जाना। नूतन=नवीन।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि यदि कल ही तुम्हारे भावों में परिवर्तन हो गया तो फिर तुम्हारे निष्ठुर कर्मों के कारण यहाँ कौन बच पाएगा। क्योंकि कि तुम्हें कल ही कोई नवीन साथी मिलेगा तो तुम्हें यज्ञ के लिए प्रेरित करेगा और फिर पशु की बलि दी जाएगी।

और किसी······सुख पाते।

शब्दार्थ—बलि=वध। देव के नाते=देव के निमित्त। धोखा=छल-कपट का कार्य।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि कल ही फिर किसी देव का यज्ञ करने के लिए तुम बलि का बहाना ढूँढ़ लोगे और देवता के निमित्त फिर वध किया जाएगा। और ये सभी तुम्हारे कार्य छल कपट से भरे हुए हैं। देवता का बहाना करके तो तुम केवल अपनी तृष्णा शान्त करते हो और दूसरों को

धोखा देकर सुख का मार्ग निकाल लेते हो।

ये प्राणी······हैं फीके ?

शब्दार्थ—अचला = सुदृढ़। जगती = धरती। फीके = तुच्छ।

अर्थ—श्रद्धा मनु से पूछती है कि इस सुदृढ़ धरती पर जो जीवित प्राणी बचे हुए हैं क्या उनका अपना कोई अधिकार नहीं, अर्थात् क्या उन्हें जीवित रहने की स्वतन्त्रता नहीं है ? हम जब चाहें उनका वध कर सकते हैं। क्या वे सभी तुच्छ हैं।

मनु ! क्या······शवता।

शब्दार्थ—उज्ज्वल = पवित्र। मानवता = मानव धर्म। हेत = श्वेद। शवता = अचेतनता, मृत्यु।

अर्थ—श्रद्धा मनु से पूछती है कि हे मनु ! तुम जिस नवीन उज्ज्वल मानव धर्म की प्रतिष्ठा करने जा रहे हो क्या उसका यही स्वरूप होगा ? जिसमें दूसरों के अस्तित्व का प्रयोग अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए हो। मुझे अत्यन्त खेद के साथ कहना पड़ता है कि उसमें तो केवल मृत्यु के सिवा और कुछ नहीं बचेगा। वह तो प्राणहीन और शव समान ही होगी।

तुच्छ नहीं······कुछ है।

शब्दार्थ—तुच्छ = हेय। दो दिन के = क्षणिक। चरम—सबसे महान्। सब कुछ = एकमात्र लक्ष्य।

अर्थ—मनु श्रद्धा की दयापूर्ण बातों को सुनकर कहने लगे – हे श्रद्धे ! तुम्हारी बात भी सच्ची है परन्तु इस संसार में अपना सुख भी हेय नहीं है, उसकी भी कुछ सत्ता है। इस संसार में हमारा जीवन ही कितना लम्बा है, अर्थात् क्षणिक है, इसलिए इस छोटे से जीवन का महान् लक्ष्य ही एकमात्र सुख है।

इंद्रिय की······कहती हो ?

शब्दार्थ—इंद्रिय की अभिलाषा = इन्द्रियों की कामनाएं। सतत् = निरंतर। विलासिनी तृप्ति = विलास-वासना की पूर्ति। तृप्ति का मधुर गान = भली प्रकार वासना की पूर्त्ति होना। ज्योत्स्ना = चाँदनी। विश्व माधुरी = विश्व का सौन्दर्य। मुकुर = दर्पण। सुख स्वर्ग = स्वर्गीय आनन्द।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं हे श्रद्धे ! इस जीवन का सुख यही है कि

हमारी इन्द्रियों की कामनाएं पूरी होती रहें, जिससे हृदय को यह अनुभव होता रहे कि उसकी विलासिनी तृप्ति आनन्द के गीत गा रही है। हे प्रिय ! इस जीवन का क्या यह सुख कम है कि तुम्हारे मुख पर फिर चाँदनी की तरह मुस्कान खिल उठे, जिसे देखकर मेरा शरीर रोमांचित हो उठे। और अपने मन की आशाओं की पूर्ति के लिए हम एक दूसरे के निकट आ जाएं और परस्पर श्वासों को न्यौछावर करें। मनु कहते हैं से श्रद्धे ! यह सुख क्या कम है कि मैं तुम्हारे मुख रूपी शीशे में से सारे संसार के सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब देखता रहूँ। यह सुख कहीं स्वर्ग के अक्षय सुख से कम है। यह तुम कैसे कह सकती हो कि ये सब व्यर्थ है। क्योंकि मैं तो तुम्हारे रूप में सारे संसार का सौन्दर्य देखकर प्रसन्न होता हूँ वही मेरा स्वर्गिक सुख है। इसलिए तुम सोचो तो सही कि तुम क्या कह रही हो ?

विशेष—मानवीकरण और रूपक अलंकार।

जिसे खोजता······चंचल में।

शब्दार्थ—हिमगिरि = हिमालय पर्वत। अचंल = तलहटी। जीवन चंचल = क्षणिक जीवन।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि कि अभाव से प्रेरित होकर मैं सुख को हिमालय की तलहटियों में खोजता फिरा था आज वही अभाव मेरे इस माणिक जीवन में स्वर्गीय सुख बनकर हँस रहा है।

विशेष—'अभाव के स्वर्ग बनकर हँसने' में रूपक, विरोधाभास तथा मानवीकरण अलंकार है।

वर्तमान जीवन······होता है ?

शब्दार्थ—योग = मिलन। छली = ठग। अदृष्ट = भाग्य।

अर्थ—मनु कहते हैं—हे श्रद्धे ! इस संसार में न जाने ऐसा क्यों होता है कि जब भी कोई व्यक्ति अपने अभावों की पूर्त्ति करके सुख प्राप्त करता है, तभी भाग्य तुरन्त ही अभाव का रूप धारण करके उसके समक्ष फिर उपस्थित हो जाता है। जिससे वह मनुष्य सुखी नहीं रह पाता।

विशेष—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

किन्तु सकल······नहीं तो।

शब्दार्थ—सकल = सारी। कृतियों = कार्यों। विफल = असफल।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं—हे श्रद्ध ! इस क्षणिक जीवन में हम जो भी कार्य करते हैं, वह सभी हम अपने सुख की प्राप्ति के लिए ही करते हैं अर्थात् उनसे प्राप्त सुख की सीमा हम अपने को ही मानते हैं। यदि उन से हमारी कामना पूरी हो जाए तो सुख प्राप्त होता है, नहीं तो वह सभी प्रयास असफल हो जाते हैं।

एक अचेतन······आंखें खोली।

शब्दार्थ—अचेतनता लाती सी=मनु को अचेतन बनाती हुई। सविनय=विनम्रता से। सृष्टि की आँख खोलना=नवीन सृष्टि का विकास होना।

अर्थ—मनु की सारी बातें सुनकर उसको अत्यन्त प्रभावित करती हुई विनम्रता पूर्ण वाणी में श्रद्धा बोली कि मनु ! अन्य देवों की अपेक्षा तुम्हारे मन में अभी सुन्दर भाव बचे हुए थे इसीलिए सम्पूर्ण सृष्टि का संहार करने वाली प्रलय से तुम बच गए हो और अब तुम्हीं से नई सृष्टि का विकास होगा।

विशेष—१. 'सृष्टि के आँखें खोलने' में लक्षणलक्षणा है।
२. मानवीकरण अलंकार।

भेद बुद्धि······ही होंगी।

शब्दार्थ—भेद बुद्धि=बुरे भले का अन्तर बताने वाली बुद्धि। निर्मम ममता=निष्ठुरता से भरा मोह। प्रलय-पयोनिधि=प्रलय का सागर।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि प्रलय के समुद्र की भयंकर लहरें तुम तक आकर इसीलिए लौट गई होंगी कि तुममें अभी निर्दयता और ममता का अन्तर बता देने वाली बुद्धि बची हुई है। इन दोनों को समझने तथा इनसे दूर रहने के कारण ही तुम भयानक प्रलय से बच गए थे।

अपने में······नाश करेगा।

शब्दार्थ—एकान्त स्वार्थ=वैयक्तिक सुख सम्बधी स्वार्थ।

अर्थ—श्रद्धा मनु को समझाती हुई कहती है—मनु ! यदि व्यक्ति सभी सुखों को अपने में समेट कर रखने का प्रयत्न करेगा और दूसरों की तनिक भी परवाह नहीं करेगा तो मनुष्य का विकास कैसे हो सकेगा। यही व्यक्तिगत सुख की भावना ही बहुत भयंकर है। इससे मनुष्य का विनाश ही होगा विकास नहीं।

औरों को······सुखी बनाओ ।

शब्दार्थ—विस्तृत करलो = विस्तार करलो ।

अर्थ—श्रद्धा मनु को समझाती हुई कहती है—मनु ! अपने जीवन को सुखमय और प्रसन्न बनाने का तो केवल एक ही तरीका है कि ऐसे कार्य करो जिससे दूसरे प्राणियों को प्रसन्नता हो, तुम्हारा मन भी प्रसन्न हो सके । तुम सबको सुखी बनाने का प्रयत्न करो । इस भावना से अपने व्यक्तिगत सुख का विस्तार करलो ।

रचना-मूलक······की है ।

शब्दार्थ—रचना-मूलक = निर्माणमयी । यज्ञपुरुष = भगवान विष्णु । संसृति = संसार ।

अर्थ—श्रद्धा मनु को समझाती हुई कहती है मनु ! याद रखो कि सृष्टि की रचना का कार्य भी एक प्रकार का यज्ञ पुरुष का यज्ञ है और हमारे द्वारा संसार की, की गई सेवा से उसका उसी प्रकार विकास होता है, जिस प्रकार पशु-वध द्वारा किये गए यज्ञ से ।

सुख को······मोड़ोगे ।

शब्दार्थ—सीमित = समेटना । इतर = अन्य ।

अर्थ—श्रद्धा कहती है—मनु ! यदि तुम सभी सुखों को अपने लिए समेट लोगे तो अन्य प्राणियों के लिए तो केवल दुःख ही रह जाएगा । तब क्या अन्य प्राणियों के दुःखों को देखकर अपना मुँह मोड़ लोगे ?

ये मुद्रित······भर ले ।

शब्दार्थ—मुद्रित = मुंदी हुई । दल = पंखुड़ियाँ । सौरभ = गन्ध । मरकन्द = पुष्प रस । मर लें = मुरझा जाएँ ।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि यदि समस्त अविकसित कलियाँ अपनी पंखुड़ियों के भीतर सारी सुगन्धि को भर लें और मधुर मकरंद की बूँदों से तनिक भी सरस न हों तो वह मुरझा कर पृथ्वी पर गिर जाएंगी । न तो वह दूसरों को सुगन्धि दे सकेंगी और न ही स्वयं ही सुगन्धि को प्राप्त होंगी ।

सूखें झड़े······लाओगे ?

शब्दार्थ—सौरभ = सुगन्धि । आमोद = गंध । मधुमय = मधुर । वसुधा = पृथ्वी ।

अर्थ—श्रद्धा कहती है—मनु ! जब कलियाँ सूख कर गिर जाएंगी तभी उनके कुचले जाने पर मकरंद प्राप्त होगा। परन्तु तब सारे वातावरण को सुगन्धित करने वाला मकरंद नहीं मिलेगा, वह तो कुचली हुई सुगन्धि होगी। वह सुगन्धि सारी पृथ्वी को आनन्दित नहीं कर पाएगी। इसी प्रकार यदि सारे सुखों को हम अपने लिए ही समेट कर रख लेंगे तो इस पृथ्वी पर न तो कहीं आनन्द ही मिलेगा और न सरसता ही।

सुख अपने ···· वही है।

शब्दार्थ—संग्रह मूल=संकलित करने योग्य। प्रदर्शन=देखने योग्य।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि सुख एकत्रित करके रखने वाली वस्तु नहीं है। बल्कि वह प्रदर्शन करने वाली वस्तु है, जिससे दूसरे उनका दर्शन करके सुख प्राप्त कर सकें।

निर्जन में······सुमन खिलेगा।

शब्दार्थ—प्रमोद=सुगंधि, आनन्द। हृदय का सुमन=हृदय रूपी पुष्प।

अर्थ—श्रद्धा कहती है—मनु ! यदि इस निर्जन स्थान में सभी फूलों की सुगन्धि तुम ही लेना चाहोगे तो अन्य लोग वंचित रह जाएगे। जिससे उनका मन दुःखी होकर तुम्हारे मन को शान्ति नहीं पाने देगा अर्थात् औरों का मन अविकसित ही रह जाएगा। भाव यह है कि यदि तुम अकेले ही सभी सुखों का भोग करना चाहोगे तो न कर सकोगे।

सुख-समीर······धारा।

शब्दार्थ—समीर=पवन। संसृति की सीमा=सृष्टि की सीमा। मानवता-धारा=उदारता आदि सद्गुणों का प्रवाह।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है—मनु ! यदि तुम्हें सुख की लहर मिली है तो वह प्रसन्नता की बात है। परन्तु संसार का विकास तो उदारता के निरंतर आदान-प्रदान से ही हो सकता है। यदि तुम अपने सुखों का उपभोग दूसरे व्यक्तियों के साथ बाँट कर करोगे तो तुम्हारी कीर्ति भी मानवता के साथ-साथ विकसित होती जाएगी।

विशेष—परंपरित रूपक अलंकार।

हृदय हो······सहते।

शब्दार्थ—उत्तेजित=वासना से उभरना। मन की ज्वाला=मन में सभी

वासना की आग।

अर्थ—यद्यपि श्रद्धा मनु को उदारता और अहिंसा की बातें समझा रही थी परन्तु उसके मन में मनु की ही भाँति प्रेम की आग जल रही थी, जिनके फलस्वरूप उसके ओंठ शुष्क हो चले थे।

विशेष—'मन की ज्वाला' रूपक अलंकार।

उधर सोम .....जो खोले।

शब्दार्थ—समय=उपयुक्त अवसर। बुद्धि के बंधन=बुद्धि की मंदता।

अर्थ—श्रद्धा के शुष्क होते हुए ओंठ देखकर मनु भी उपयुक्त अवसर पाकर बोले—श्रद्धे! यह सोमरस पीलो यह बहुत गुणकारी है। इसे पीते ही तुम्हारी बुद्धि के सारे बंधन खुल जायेंगे।

वही करूंगा .....मुख गया?

शब्दार्थ—मनुहार=प्रेमी के द्वारा की गई विनम्र प्रार्थना।

अर्थ—मनु कहते हैं—श्रद्धे! अब मैं वैसा ही करूंगा जैसा तुम कहोगी। यह तुम्हारी बातें सत्य हैं कि जीवन में अकेले सुख भोगना उचित नहीं। फिर क्या था मनु की विनम्र प्रार्थना स्वीकृत हो गई और तब क्या ऐसा भी कोई सुख हो सकता था जो प्याला पीने से रुक जाता?

आँखे प्रिय......नस-नस में।

शब्दार्थ—अरुण अधर=श्रद्धा के लाल ओंठ। काल्पनिक विजय=विजय की मिथ्या भावना। चेतनता=स्फूर्ति, आवेग।

अर्थ—श्रद्धा की अनुराग भरी आँखें मनु की वासन भरी आँखों में डूब गई। उसमें लाल ओंठ सोमरस में भीग गए। श्रद्धा का मन इस विजय पर प्रसन्न था कि मनु ने उसकी बात मान ली है और उसकी नस-नस में स्फूर्ति आ गई थी।

विशेष—'नस-नस' में पुनरोक्ति अलंकार।

छल, वाणी .. विभुता को।

शब्दार्थ—छल वाणी=छल-कपट से भरी हुई प्रतिज्ञाएँ करने वाली वाणी। प्रवंचना=धोखा। शिशुता=बालकों का सा भोलापन। विभुता=सद्भावों का ऐश्वर्य।

अर्थ—जिस प्रकार भोले भाले बच्चों को फुसला कर अपनी इच्छानुसार खेल में लगा लिया जाता है, उसी प्रकार पुरुषों की कपट व्यवहार की बातें

नारी के भोले-भाले हृदयों को ठग लेती हैं और पुरुष की इच्छा के अनुसार नाचती हुई वैसे ही खेल करने लगती है।

जीवन का उद्देश्य······छल में।

शब्दार्थ—जीवन का उद्देश्य=नारी जीवन का लक्ष्य। लक्ष्य की प्रगति दिशा=नारी की अपनी उन्नति का मार्ग। मधुर इंगित=मधुर सकेत।

अर्थ—पुरुष की छलपूर्ण वाणी में वह शक्ति होती है कि वह अपने तनिक से सुन्दर संकेत से ही सुकुमार एवं भोली-भाली नारी के जीवन का उद्देश्य बदल देती है। नारी अपना लक्ष्य निश्चित करके उन्नति करती है परन्तु पुरुष उसको दूसरी ओर मोड़ देने को बाध्य करता है।

वही शक्ति······उलझा लेती।

शब्दार्थ—वही=छल की। अवलंब=सहारा। अभिनय=दिखावटी।

अर्थ—छल कपट की वही शक्ति आज मनु को भी अपना मनोहर सहारा दे रही थी, जो अपने दिखावटी हाव-भाव से किसी दूसरे प्राणी के मन में सुख की संभावना जगा कर उसे उलझाए रखती है।

श्रद्धे होगी······सीमा।

शब्दार्थ—चन्द्रशालिनी=चाँदनी से युक्त। भवरंजनी=संसार जो एक रात्रि के समान है। भीमा=भयंकर।

अर्थ—मनु कहते हैं—हे श्रद्धे! यह संसार एक रात्रि के समान है, तुम्हारे प्रेम रूपी चन्द्रमा के उदित होते ही यह जगमगा उठेगी। मेरे सारे अभाव दूर हो जाएंगे। मैं चाहता हूँ कि मेरे सारे सुखों की सीमा तुम बन जाओ, अर्थात् मैं तुम्हें अपना बना लूँ।

लज्जा का······तुम से।

शब्दार्थ—आवरण=पर्दा। प्राण=हृदय की बातों को। ढँकना=छिपाना। तम=अंधकार। अकिंचन=दरिद्र। अलगाता=अलग करता।

अर्थ—मनु कहते हैं—हे श्रद्धे! देखो यह लज्जा का पर्दा ही तुम्हारे हृदय को ढँकता हुआ हमारी आनन्द-क्रीड़ाओं को उसी प्रकार बाधा पहुँचा रहा है जिस प्रकार अंधकार फैलकर सब प्राणियों को कार्य करने में बाधा पहुँचाता है। इसी लज्जा के पर्दे ने ही तुम्हारी वासना को आवेग हीन तथा दरिद्र बना दिया है और हम तुम को आपस से अलग कर रहा है।

कुचल उठा……मिल जाओ ।

शब्दार्थ—कुचल उठा=बुरी तरह दबाया गया । बाधा=विघ्न ।

अर्थ—मनु कहते हैं—श्रद्धे ! यह लज्जा ही हमारे आनन्द-पूर्ण जीवन की सबसे बड़ी बाधा है, यही हमारे मिलन में बाधक है । इसलिए इसे दूर, हटा दो और दोनों प्रेमी हृदयों को स्वच्छन्दतापूर्वक परस्पर मिल जाने दो जिससे उन्हें अनुकूल सुखों की प्राप्ति हो ।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

और एक……मिस से ।

शब्दार्थ—व्याकुल=प्रेम की व्यग्रता से भरा हुआ । रक्त खौलता=खून तीव्र गति से बहता । शीतल प्राण=सुप्त भावनाओं वाला हृदय । तृषा तृप्ति =कामना पूर्ति ।

अर्थ—इतना सब कहने पर मनु ने उत्तेजित होकर श्रद्धा के कोमल कपोलों पर एक चुम्बन लिया, जिससे श्रद्धा के समस्त शरीर में बिजली-सी दौड़ गई और सारा खून तीव्र गति से चलने लगा । श्रद्धा की सोई हुई सारी कामना जाग उठी और अपनी कामना की पूर्ति करने की अभिलाषा से उसके प्राणों में भी वासना की आग जलने लगी ।

विशेष—'शीतल प्राण' में विशेषण-विपर्यय, 'शीतल प्राण के धधकने' में विरोधाभास अलंकार और 'तृषा तृप्ति के मिस' में कैतवापन्हुति अलंकार है ।

दो कोठों……सुख-सपने ।

शब्दार्थ—दो काठों=दो सूखी लकड़ियाँ, परन्तु यहाँ कवि का तात्पर्य श्रद्धा और मनु से है । सन्धि=मिलन । निमृत=एकान्त । बुझ गई=शान्त हो गई । सुख सपने=मधुर स्वप्न ।

अर्थ—जिस प्रकार दो सूखी लकड़ियों के परस्पर मिलकर जलने वाली लौ उनके समाप्त होने पर शांत हो जाती है, उसी प्रकार मनु और श्रद्धा के मन में जलने वाली वासना की आग उनके मिलन पर शान्त हो गई, और जैसे जग जाने पर सपने समाप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार उस गुफा में जलने वाली अग्नि शिखा भी बुझ गई ।

विशेष—'दो काठों और 'अग्नि शिखा' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है ।

ईर्ष्या

कथासार—ईर्ष्या के वशीभूत होकर एक दिन मनु श्रद्धा को छोड़कर वहाँ से चुपचाप भाग निकले। मार्ग में उन्हें अनेक पर्वत और नदियाँ मिली। नदियों को देखकर मनु के मन में यह विचार उठा कि जिस प्रकार ये नदियाँ किसी अज्ञात दिशा की ओर बढ़ती चली जा रही हैं, उसी प्रकार मेरा भी कोई गन्तव्य नहीं है। उनके मन में नाना प्रकार के भावों का उदय और अस्त हो रहा था। चलते-चलते वे सारस्वत नगर के पास आ गये जो अब केवल खंडहर रह गया था। उसके खंडहरों को देखकर मनु को उसका अतीत जीवन याद आया। वे सोचने लगे कि कभी यही नगर देव और असुरों की संस्कृति का केन्द्र था। इसी सरस्वती नदी के किनारे तो इन्द्र से वृत्रासुर का वध किया था। इस विचार के स्मरण होते ही मनु विचलित हो उठे। उन्हें सहसा देव-जाति का स्मरण हो आया जो अपने अहंकार के वशीभूत होकर भोग-विलासों में लीन रहती थी तथा असुर-जाति का सर्वस्व नष्ट करने को कटिबद्ध रहती थी। इसीलिए इन दोनों जातियों में परस्पर घोर संग्राम हुआ करते थे। जिसका परिणाम यह हुआ कि असुर-जाति के साथ-साथ देव-जाति का भी नाश हो गया।

मनु इसी प्रकार के विचारों में लीन होकर वेदना-विकल हो रहे थे कि अचानक उन्हें काम की वाणी सुनाई दी। काम ने उन्हें शाप देते हुए कहा कि हे मनु ! जिस श्रद्धा ने अपना सर्वस्व तुम्हें समर्पित कर दिया, उसे ही तुम भूल गये और उसे असहाय अवस्था में छोड़कर भाग आये। अतः तुम्हें जीवन में कभी भी सुख और शान्ति प्राप्त नहीं होगी। तुम निरन्तर कष्ट भोगते रहोगे और जिस प्रजातंत्र की तुम स्थापना करना चाहते हो, उसमें भी सदैव द्वेष और संघर्ष की भावनाएँ पनपती रहेंगी।

काम का शाप सुनकर मनु कुछ देर के लिए स्तब्ध-से रह गये। उन्हें

विश्वास हो गया कि जीवन में उन्हें कभी सुख और शान्ति प्राप्त न होगी। इन्हीं निराशा भरे विचारों में उनकी रात्रि व्यतीत हुई। जब प्रातःकाल हुआ तो उन्हें एक अनुपम सुन्दरी दिखाई दी। जो मनु को देखकर उनके पास आ गई और अपना परिचय देती हुई बोली—मेरा नाम इड़ा है और मैं इस उजड़े हुए सारस्वत नगर की साम्राज्ञी हूँ। फिर मनु का परिचय प्राप्त करके उसने उन्हें सान्त्वना दी तथा सारस्वत नगर को पुनः बसाने का भार मनु को सौंप दिया। इस भार को ग्रहण करके मनु को अनुभव हुआ जैसे उन्हें एक ऐसा अवलम्ब मिल गया है जिसके आधार पर वे समस्त संकल्प-विकल्पों से छुटकारा पाकर जीवन में सुख और शान्ति प्राप्त कर सकेंगे।

पल भर······निष्फल अंधकार।

शब्दार्थ—चंचलता=संयमहीनता। स्वाधिकार=स्वतन्त्रता। मधुर निशा=ज्योत्स्ना पूर्ण मधुर रजनी की भाँति प्रेम भरा जीव। निष्फल अन्धकार=असफलता से भरे हुए अन्धकार की भाँति घोर निराशा।

अर्थ—श्रद्धा ने मनु को अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया और वह मनु को अपना जीवन साथी चुन चुकी है। इसलिए वह मनु को अत्यधिक प्रेम करती थी परन्तु मनु का प्रेम तो ढोंगी था। उसने अपनी ढोंग भरी बातों से श्रद्धा को बहुत प्रभावित किया था। इसीलिए श्रद्धा मनु के बिना बेचैन रहने लगी। वह कहती है कि मन की क्षण भर की चंचलता ने जीवन भर की स्वतन्त्रता को समाप्त कर दिया। अब हृदय मनु के पास चला जाने के कारण सदैव के लिए परतंत्र हो गया। जैसे मधुर चाँदनी रातों के उपरान्त अन्धेरी रातें आती हैं, उसी प्रकार वह अपने शरीर का माधुर्य समर्पित कर बैठी, तब उसके जीवन में असफलता और निराशा का घना अंधकार शेष रह गया।

विशेष—१. 'मधुर निशा' और 'निष्फल अंधकार' में लक्षणलक्षणा है।
२. रूपकसातिशयोक्ति अलंकार है।

मनु को······से ललाम।

शब्दार्थ—मृगया=शिकार। रक्त लगना=मांस खाने की आदत पड़ना। हिंसा सुख=वध करने में प्राप्त आनन्द। लाली के ललाम=अनुराग की लाली से भी सुन्दर।

अर्थ—मनु को अब शिकार के सिवा और कोई काम नहीं रहा था, वह

सारा दिन जंगल में शिकार के लिए घूमते रहते थे। उनको मांस खाने की आदत पड़ गई थी और हिंसा करने में उन्हें प्रेम की लाली से भी अधिक आनन्द आता था। अतः वह श्रद्धा की ओर से उदासीन रहने लगे थे।

विशेष—दीपक और रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

हिंसा ही······अवसाद चीर।

शब्दार्थ—अधीर = बेचैन। प्रभुत्व = अधिकार। अवसाद = विषाद, उदासी।

अर्थ—हिंसा करने में मनु को आनन्द तो मिलता था परन्तु उनका मन फिर भी बेचैन सा रहता था वह एक और बात की खोज में थे। वह अपने आपको श्रद्धा का स्वामी मानते थे और चाहते थे कि श्रद्धा मेरे ही सुख की चिन्ता करती रहे। चाहते थे कि जिस प्रकार सुख की सीमा बढ़ने से मन का विषाद नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार मेरे मन का दुख समाप्त होने पर मेरे सुख की सीमा भी बढ़ जानी चाहिए।

जो कुछ ·····रहा दीन।

शब्दार्थ—करतल गत = अधिकार में। विनोद = मनोरंजन। रुचता = अच्छा लगता। दीन = फीका।

अर्थ—मनु ने श्रद्धा के ऊपर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया था परन्तु उन्हें अब उसमें कोई नवीनता नहीं दिखाई देती थी, इसीलिए उनका आकर्षण अब कम होता जा रहा था। श्रद्धा में केवल स्थानीय मनोविनोद की सरलता थी जो कि मनु को बिल्कुल भी पसन्द नहीं था। मनु को उसकी सरल विनोद की हँसी भी फीकी लगती थी।

विशेष—१. 'सरल विनोद के दीन होने' में लक्षणलक्षणा है।

२. मानवीकरण अलंकार है।

उठती अंतस्तल······आप शांत।

शब्दार्थ—अन्तस्तल = हृदय। दुर्ललित = वेगवती, उत्कट। लालसा = कामना। कांत = रंगीन। इन्द्रचाप = इन्द्रधनुष।

अर्थ—कठिनता से दबाई जाने वाली वासना की उत्कट लालसाएँ मनु के मन में सदैव ही उत्पन्न होती रहती थीं। परन्तु उपयुक्त प्रेरणा न मिलने के कारण स्वयं ही इन्द्र धनुष के समान कुछ समय के लिए झिलमिला कर दब जाती थीं।

निज उद्गम······कहां त्राण ?

शब्दार्थ—उद्गम=मूल स्रोत। सोना=जड़ बना रहता। अलसप्राण= आलस्य से पूर्ण। चिरचंचल पुकार=सुख प्राप्त करने की सतत उठने वाली उत्कट कामना। त्राण=लक्ष्य सिद्धि।

अर्थ—मनु की वासना की तृप्ति अब श्रद्धा के जीवन से नहीं हो पाती थी इसलिए वह सोचते हैं कि अलसाये हुए व्यक्ति की भाँति मेरे प्राण मुँह ढक कर कब तक सोते रहेंगे अर्थात् सुख व आनन्द प्राप्ति के बिना ही पड़े रहेंगे। मेरे जीवन में आनन्द प्राप्त करने की उत्कट कामना कब तक मेरे हृदय में लगातार उठती रहेगी। कब तक मुझे निराश होना पड़ेगा। क्योंकि अब श्रद्धा में कोई आकर्षण नहीं रह गया। मैं किस मार्ग का अनुसरण करूँ जिससे मुझे लक्ष्य सिद्ध हो।

विशेष—१. 'प्राणों के मुखबन्द करके सोने' में तथा 'पुकार के रोने में' विशेषण विपर्यय और मानवीकरण अलंकार है।

श्रद्धा का······कुशलसूक्ति।

शब्दार्थ—प्रणय=प्रेम। अभिव्यक्ति=प्रकट करने की रीति। व्याकुल आलिंगन=उत्कट लालसा से भरी मिलन की भावना। अस्तित्व=स्थिति। कुशल सूक्ति=बातों में चमत्कार।

अर्थ—मनु सोचते हैं कि अब श्रद्धा अपने प्रेम को मेरे प्रति अत्यन्त सामान्य रीति (सीधे ढंग) से प्रकट करती है। उसके प्रेम में उत्कट लालसा नहीं होती। और न ही उसके प्रेम प्रकट करने का ढंग ही कौशल और चमत्कार से भरा हुआ है। न ही उसकी बातों में कोई किसी चमत्कार का आभास ही होता है।

भावनामयी······भी नवीन।

शब्दार्थ—भावनामयी=भावों से परिपूर्ण। स्फूर्ति=उत्साह। स्मित रेखा=मुस्कान। विलीन=अंत। अनुरोध=आग्रह। उल्लास=भारी प्रसन्नता। कुसुमोद्गम=फूलों के विकास के समान।

अर्थ—मनु सोचते हैं कि श्रद्धा अब भावों से भरे उत्साह का अनुभव मेरे प्रति नहीं करती, जिसका अंत नए ढंग की मुस्कराहटों से होता था। अर्थात् श्रद्धा के शरीर में तीव्र वासना से भरी हुई स्फूर्ति अब नहीं रही। वह किसी बात के लिए आग्रह भी नहीं करती। जिस प्रकार बसंत आने पर पृथ्वी पर

नए-नए फूल खिलते हैं उसी प्रकार पहले उसके प्रेम में नवीन भावों का जन्म होता रहता था परन्तु अब कोई भी नवीन भाव उसके मन में उत्पन्न नहीं होता।

आती है……चंचल मरोर।

शब्दार्थ—चाव भरी=ललक लालसा से पूर्ण। लीला=मनोरंजन, विनोद हिलोल=लहर। नृत्यमयी=नाचती हुई। चंचल मरोर=मन में उठी हुई वासना की चंचल ऐंठन।

अर्थ—मनु सोचते हैं कि पहले के समान अब श्रद्धा की बातों में किसी प्रकार की चाव पूर्ण क्रीड़ा का आभास नहीं मिलता। पहले भी उसमें लहरों से फँसा नृत्य दिखाई पड़ता था परन्तु अब उस नृत्य के समान कोई नवीनता नहीं है। और न ही वह वासना की चंचल ऐंठन से इठला कर ही चलती हुई दिखाई देती है।

विशेष—रूपक और मानवीकरण अलंकार हैं।

जब देखो……कभी क्लांत।

शब्दार्थ—शालियाँ=धान। श्रांत=आलस्य। क्लांत=थकावट।

अर्थ—मनु सोचते हैं कि—जब की देखो वह खेतों में धान चुनती हुई दिखाई देती है। परन्तु चुनते-चुनते तनिक भी नहीं अलसाती। या फिर अनाज के दाने इकट्ठे करती रहती है और कभी भी नहीं थकती।

बीजों का……हुआ अतीत।

शब्दार्थ—संग्रह=बचाकर रखना। सब कुछ लेना=सब वस्तुओं पर अधिकार प्राप्त करके। मेरा अस्तित्व हुआ अतीत=मेरे जीवन का कोई मूल्य नहीं रहा।

अर्थ—मनु कहते हैं कि—श्रद्धा ने बीजों का भी पर्याप्त संग्रह कर लिया है। जब समय मिलता है तो वह तकली चलाती हुई गीत गाती रहती है। श्रद्धा ने मेरी गुफा आदि सब पर अपना अधिकार कर लिया है, इस प्रकार वह अपने कार्यों से संतुष्ट होकर बैठी रहती है। परन्तु उसके सामने मेरे जीवन का कुछ भी मूल्य नहीं रह गया।

लौटे थे……करते विचार।

शब्दार्थ—मृगया=शिकार।

अर्थ—मनु शिकार करके थके हुए लौटे थे। सामने ही उनको अपनी गुफा का द्वार दिखाई दे रहा था। उनके पैर गुफा की ओर नहीं बढ़ रहे थे क्योंकि मन में श्रद्धा के प्रति कोई आकर्षण नहीं था। यही विचार वह कर रहे थे।

मृग डाल······शृंग, तीर।

शब्दार्थ—शिथिलता = थके हुए। उपकरण = सामान। आयुध = हथियार। प्रत्यंचा = धनुष की डोरी। शृंग = सींग का बना बाजा।

अर्थ—मनु जिस पशु का शिकार करके लाए थे उसको गुफा के द्वार पर ही डाल दिया और धनुष को भी वही पटक अत्यंत थके हुए शरीर से वहीं पर बैठ गये। उनके पास ही आखेट का सारा सामान—सींग का बाजा, तीर और धनुष की डोरी आदि बिखरे पड़े थे।

पश्चिम की······चपल जन्तु ?

शब्दार्थ—रोगमयी = अरुण। काली = अंधकारमयी। अहेरी = शिकारी (मनु)। चपल = चंचल। जन्तु = जीव।

अर्थ—श्रद्धा मनु की प्रतीक्षा कर रही थी। अधिक देर हो जाने के कारण वह चिंतित हो उठी और कहने लगी कि पश्चिम दिशा में संध्या की लाली भी अब समाप्त होकर अन्धकार में बदल गई है। परन्तु अभी तक शिकार पर गये हुए मनु लौटे नहीं। न जाने कोई चंचल पशु उन्हें कितनी दूर ले गया है।

यों सोच······गुल्फ चूम।

शब्दार्थ—अनमनी = उदास। अलकें = केश। गुल्फ = ऐडी की ऊपर की गाँठ।

अर्थ—अधिक अंधेरा हो जाने के कारण श्रद्धा चिंतित होकर मनु के बारे में सोच रही थी तब उसके हाथों में तकली लगातार घूम रही थी। अधिक देर हो जाने के कारण वह बेचैन हो गई और वह उठकर बाहर की ओर चली उस समय उसके काले घुंघराले बाल ऐड़ी के ऊपर की गांठ को छू रहे थे।

विशेष—'अलकों का पैर के टखने छूने' में वाक्यवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्या संभवा आर्थी व्यंजना है।

केतकी······लिए देह ।

शब्दार्थ—केतकी गर्भ = केवड़े के फूल का मध्य भाग जिसे पराग कोष कहते हैं। स्नेह = प्रेम । कृशता = दुर्बलता । लजीली = लज्जा युक्त । कम्पित = काँपती हुई ।

अर्थ = गर्भवती होने के कारण श्रद्धा का मुख केतकी के पराग कोष के समान पीला पड़ गया था । उसका चेहरा दुर्बल हो गया था, गर्भवती होने के कारण उसके मुख पर एक नवीन प्रकार की लज्जा के भाव थे । शरीर दुर्बल हो जाने के कारण ऐसे कांपता था मानो कोई दुर्बल लता कांप रही हो ।

मातृत्व बोझ······रुचिर साज ।

शब्दार्थ—मातृत्व बोझ = माता बनके के कारण स्तनों में दूव भर जाने से उसका बोझिल हो जाना । पयोधर = स्तन । पीन = भारी । पट्टिका = पट्टी । रुचिर साज = सुन्दर आवरण ।

अर्थ—श्रद्धा अब शीघ्र ही माता बनने वाली थी, इसलिए उसके स्तन दूध भर जाने के कारण भारी होकर झुक गए थे । कोमल काली ऊन की एक नवीन पट्टी, जिनमें वे बँधे थे उन पर सुन्दर आवरण का काम कर रही थी ।

सोने की······रही हास ।

शब्दार्थ—सिकता = बालू । कालिन्दी = यमुना । उसास भरना = लहरें लेना । स्वर्गंगा = आकाश गंगा । इन्दीवर = नील कमल । हास = खिलना ।

अर्थ—गर्भवती होने के कारण श्रद्धा का शरीर दुर्बल हो गया था और उसका वर्ण पीला पड़ गया था, इसीलिए उसके पयोधरों पर बँधी काली ऊन की पट्टी ऐसी लगती थी मानो सुनहरी रेत पर यमुना लहराती हुई बह रही हो, या कृष्ण के वियोग में आहें भरती हुई बह रही हो, आहें भरने से ही उसका रंग काला हो गया हो । या ऐसा लगता था मानो श्रद्धा का पीतवर्ण शरीर आकाश-गंगा हो और उस पर बँधी काली पट्टी नील कमलों की विकसित पक्ति यहाँ शोभायमान हो रही है ।

विशेष—वस्तूत्प्रेक्षा और 'या' के कारण संदेह अलंकार है ।

कटि में ····जनली सलील ।

शब्दार्थ—नवल बसन = नया वस्त्र । नील = नीले रंग का । दुर्भर = असह्य । जननी = माँ बनने की स्थिति में आने वाली । सलील = प्रसन्नता से ।

अर्थ—श्रद्धा की कमर में, पयोधरों पर बँधी पट्टी के समान ही एक नीले रंग का बुना हुआ नवीन वस्त्र बँधा हुआ था। यद्यपि इस समय श्रद्धा को गर्भ की असह्य पीड़ा थी परन्तु माँ बनने के आनन्द से वह उसे सहर्ष झेल रही थी।

श्रमबिन्दु……महा पर्व।

शब्दार्थ—श्रमबिन्दु=पसीने की बूँदें। भावी जननी=होने वाली माँ। गर्व=अभिमान। महापर्व=महोत्सव, जन्मोत्सव की शुभ घड़ी।

अर्थ—श्रद्धा सदैव ही काम में व्यस्त करती थी इसलिए उसके ललाट पर पसीने की बूँदें झलक रही थीं। उन्हें देखकर ऐसे लगता था कि वह शीघ्र ही एक शिशु की माँ बनने जा रही है और श्रम बिन्दुओं के रूप में उसका सरस (नारी का मधुर स्वाभिमान) अभिमान झलक रहा है। जब वह बूँदें झर-झर कर पृथ्वी पर गिरती थीं तो ऐसे लगता था मानो जन्मोत्सव का वह शुभ अवसर शीघ्र ही आने वाला है और इसलिए यह बूँदें सुन्दर और सुकुमार फूलों की भाँति पृथ्वी पर बरस रही हों।

विशेष—१. 'श्रमबिन्दु बना सा' में उपमा और 'बन कुसुम' में रूपक अलंकार है।

विशेष – उत्प्रेक्षा अलंकार है।

मनु ने……नहीं अनूप।

शब्दार्थ—सहज=स्वाभाविक। खेद=उदासी। अपनी इच्छा का दृढ़ विरोध=अपनी विलासमयी इच्छा के पूर्ण विपरीत आचरण। अनूप=अद्भुत।

अर्थ—मनु ने द्वार पर बैठे-बैठे अन्दर झाँककर स्वाभाविक उदासी से परिपूर्ण श्रद्धा की मुख आकृति को देखा, जो उनकी उत्कट वासना-वृत्ति का प्रबल विरोध कर रही थी। उन्होंने यह भी देखा कि अब उसमें पहले के समान अद्भुत हाव भाव नहीं रहे।

वे कुछ……उनका विचार।

शब्दार्थ—मनु कुछ भी बोले बिना श्रद्धा को चुपचाप देखते रहे, उनकी आँखों में अधिकार की भावना थी। श्रद्धा ने जब मनु की ओर देखा तो वह धीरे से मुस्करा उठी जैसे कि उसने मनु के विचारों को भाँप लिया हो।

दिन भर······देह-गेह।

शब्दार्थ—भटकना=भूले व्यक्ति के समान घूमना। हिंसा=निरीह पशुओं को मारना। देह-गेह=शरीर और घर।

अर्थ—मनु को उदास एवं उसकी रूखी दृष्टि को देखकर श्रद्धा अपनी वाणी में मधुर स्नेह भरकर बोली—कि तुम सारा दिन कहाँ भूले से भटकते रहे? अब तुम्हें शिकार वृत्ति इतनी प्यारी हो गई है कि तुम्हें अपने शरीर और घर की भी सुध-बुध नहीं रहती।

मैं यहाँ······कर अशांत।

शब्दार्थ—अकेली=एकाकिनी। नितान्त=एकदम। कानन=वन। अशान्त=आतुर, व्यग्र।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि—मैं सारा दिन यहाँ अकेली रहकर तुम्हारा रास्ता देखती रहती हूँ। जब तुम आतुर होकर पशु के पीछे दौड़ रहे थे, तब मैं तुम्हारे पैरों की ध्वनि सुनती हुई-सी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ।

ढल गया······रहे चूम।

शब्दार्थ—ढल गया=समाप्त हुआ। रागारुण=सूर्य के समान लाल। नीड़ों=घोंसलों। विहंग=पक्षी। युगल=जोड़े।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि पीले रंग वाला दिन तो कब का ढल चुका है परन्तु तुम अभी भी रक्त से लथपथ लाल सूर्य के समान इस अंधेरे में घूम रहे हो। देखो नर और मादा पक्षियों के जोड़े अपने-अपने घोंसलों में लौट आए हैं और किस तरह अपने बच्चों का मुख चूम-चूम कर प्यार कर रहे हैं।

विशेष—'रक्तारूप' में श्लेष और 'पीला-पीला' में पुनरुक्ति अलंकार है।

उनके घर······अन्य द्वार।

शब्दार्थ—कोलाहल=पक्षियों की चहचहाहट। सूना=सन्नाटे से परिपूर्ण। कमी=अभाव। अन्य द्वार=बाहर।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि—वह देखो उन पक्षियों के घोंसलों में कितनी चहचहाहट हो रही है परन्तु मेरी गुफा का द्वार अभी तक सूना ही पड़ा है। तुम्हें किस बात की कमी है, जो तुम सारा दिन बाहर जंगल में भटकते रहते हो।

श्रद्धे ! तुमको······विकल घाव ।

शब्दार्थ—कमी = अभाव । मधुर वस्तु = रमणीय वस्तु । विकल = बेचैन कर देने वाला ।

अर्थ—श्रद्धा की बात का उत्तर देते हुए मनु कहने लगे श्रद्धा ! तुमको चाहे किसी बात की कमी नहीं परन्तु मुझे तो अभी जीवन में कमी स्पष्ट दिखाई दे रही है । मैं कुछ ऐसी वस्तु खो बैठा हूँ, जिसके न मिलन पर मेरे हृदय में बेचैनी सी पैदा हो गई है । अर्थात् उसकी स्मृति मेरे हृदय पर तीव्र घाव कर रही है ।

विशेष—उपमा अलंकार ।

चिरमुक्त······रहा डीह ।

शब्दार्थ—चिरमुक्त = सदा से स्वतंत्र । अवरुद्ध = परतंत्रता का । श्वास = जीवन । निरीह = विवशता । गतिहीन = जड़ । पंगु = जो चल न सके । ढहना = गिरना । डीह = टीला ।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि हे श्रद्धे ! तुम जानती हो मैं पुरुष हूँ । पुरुष जाति सदा से ही स्वतंत्र रही है । पुरुष विवशता और परतंत्रता का जीवन नहीं बिता सकता । तुम चाहती हो कि मैं उजड़े हुए गांव के टीले के समान जड़ बन कर पड़ा रहूँ और उन्नति न करूँ अर्थात् आगे न बढ़ूँ । ऐसा कभी नहीं हो सकता ।

विशेष—'पंगु सा' में उपमा और 'ढह कर जैसे बन रहा डीह' में उदाहरण अलंकार है । और 'गतिहीन' में श्लेष अलंकार है ।

जब जड़······हो अधीर ।

शब्दार्थ—मृदु = कोमल । ग्रन्थि = शृंखला । अधीर = छटपटाहट ।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि रस्सी के समान तुम्हारा मोह मुझे जड़ बनाता हुआ मुसे बुरी तरह कस रहा है । परन्तु अधिक कसने से जैसे रस्सी का बंधन अपने आप टूट जाता है उसी प्रकार तुम्हारा मोह, मुझे जितना अधिक जकड़ने का प्रयत्न करता है, उतना ही वह बंधन अधीर होकर टूटता जाता है ।

विशेष—उपमा अलंकार है ।

हँसकर बोले······मधुर प्राण ।

शब्दार्थ—निर्झर=झरना। ललित=सुन्दर। उल्लास=प्रसन्नता, तीव्र उमंग।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि पहले तुम मेरे आने पर जैसे हँसकर बोलती थीं ऐसे लगता था मानो किसी सुन्दर झरने का कलकल गान हो रहा है अर्थात् मधुर संगीत भरा हुआ है। उसका कारण यह था कि उस समय तुम्हारे मन में प्रेम की तीव्र उमंग भरी रहती थी। तुम्हारे उस मधुर संगीत को सुनकर मैं आनन्द से झूमने लगता था।

विशेष—'मधुर निर्झर ललित गान' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

वह आकुलता······रही भूल।

शब्दार्थ—आकुलता=व्याकुलता। तंतु=धागा। सदृश=समान।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि अब तुम्हारी वह प्रेम की उत्कट इच्छा और व्याकुलता कहाँ गई है, जिसे देखकर मैं सब कुछ भूल जाता था। अब तो तुम सारा दिन तकली के काम में लगी रहती हो जैसे कोई आशा के कोमल धागे से बँधा रहता है।

विशेष—'आशा के कोमल तंतु सदृश' में उपमा अलंकार है।

यह क्यों क्या······न कर्म।

शब्दार्थ—यह=तकली चलाना। शावक=पशुओं के बच्चे। मृदुल चर्म=कोमल खालें। मृगया=आखेट।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि तुम सारा दिन तकली क्यों चलाती रहती हो? क्या तुम्हें पशुओं के बच्चों की कोमल खालें नहीं मिलतीं, जिससे तुम अपना शरीर ढक सको। तुम बीज क्यों बीनती रहती हो क्या मैं आखेट से जो मांस लाता हूँ उससे पूरा नहीं पड़ता या मेरा शिकार का काम शिथिल पड़ गया है?

तिस पर······रहा भेद।

शब्दार्थ—सखेद=दुःख एवं उदासी के सहित। भेद=रहस्य।

अर्थ—मनु श्रद्धा से पूछते हैं कि तुम सब यह क्यों किया करती हो। न जाने तुम्हारा शरीर पीला क्यों पड़ गया है। कपड़ा बुनने में तुम इतना श्रम क्यों करती हो, जिससे तुम थक जाओ? यह सब तुम किसके स्वागत की तैयारियां कर रही हो, मुझे कुछ बताओ तो सही कि इसमें क्या रहस्य छिपा

हुआ है।

अपनी रक्षा······शस्त्र।

शब्दार्थ—अस्त्र=फेंक कर चलाया जाने वाला हथियार। शस्त्र=तलवार आदि। हिंसक=हिंसा करने वाले।

अर्थ—श्रद्धा मनु की आखेट वृत्ति से घृणा करती हुई कहती है कि यदि कोई जानवर जंगल में तुम पर आक्रमण कर दे तो अपने बचाव के लिए उस पर अस्त्र चला दो। इस प्रकार शरीर रक्षा के लिए शस्त्र प्रयोग की बात तो मेरी समझ में आती है।

पर जो······न अर्थ।

शब्दार्थ—निरीह=विवश। समर्थ=शक्ति।

अर्थ—परन्तु जो निरीह भोले पशु जिन्दा रहकर हमारे काम आ सकते हैं अर्थात् हमारे लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं वह जिन्दा रहकर हमारे काम क्यों न आए? हम उनका वध क्यों करें? इसका अर्थ मैं अभी तक नहीं समझ सकी।

चमड़े······दुग्ध-धाम।

शब्दार्थ—मांसल=हृष्ट-पुष्ट। अमृत=मधुर दूध। दुग्ध धामा=दूध देने वाले।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि पशुओं का सुन्दर चर्म उनके शरीर का ही आवरण बना रहे। हमारा काम तो ऊन से ही चल सकता है। वे हृष्ट-पुष्ट होकर जीते रहें और जिससे दूध से भरे रहें और हम उनका अमृत के समान दूध पीवें।

वे द्रोह······बने सेतु!

शब्दार्थ—द्रोह=शत्रुता। सहेतु=उद्देश्य से। भव=संसार। सेतु=पुल।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि यदि हम किसी पशु को किसी उद्देश्य और खास प्रयोजन के लिए पाल सकते हैं तो हमें उनसे शत्रुता नहीं करनी चाहिए। यदि हमारा विकास पशुओं से कुछ अधिक है तो हमें चाहिए कि हम इस संसार रूपी समुद्र में उनके उद्धार और रक्षा का कारण बनें।

विशेष—परंपरित रूपक अलंकार है।

मैं यह तो······छले जायें ।

शब्दार्थ—सहज लब्ध=सहज ही प्राप्त। संघर्ष=युद्ध। विफल=असफल। छले जाएं=ऐश्वर्य से वंचित रहें।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहने लगे कि तुमने जो बात कही है मैं उसे नहीं मान सकता क्योंकि जीवन में जो सुख आसानी से प्राप्त हो सकता है मैं उसे छोड़ दूँ। यह जीवन तो एक संघर्ष है। और निरंतर संघर्ष करने के उपरान्त भी हम सुछ ऐश्वर्य आदि से वंचित रहें यह कैसे हो सकता है।

काली आंखों······अनन्य ।

शब्दार्थ—तारा=पुतली। धन्य=सौभाग्यशाली। मानस=मन। मुकुर=दर्पण। प्रतिबिंबित=बिंबि पड़ना। अनन्य=एक व्यक्ति के प्रति दृढ़ निष्टा :

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि हे श्रद्धा! मैं तुम्हारी आँखों की पुतली में केवल अपना चित्र ही देखना चाहता हूँ किसी और का नहीं और यह भी चाहता हूँ कि मेरे मन रूपी दर्पण में तुम्हारी छवि सदैव झलकती रहे।

विशेष—'मानस मुकुर' में रूपक अलंकार है।

श्रद्धे! यह······रहा डोल ।

शब्दार्थ—जब संकल्प=नवीन धारणा। लघु=क्षणिक। अमोल=बहु-मूल्य। चल दल=चंचल पीपल का पत्ता। डोल=चंचल।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि यह मेरी जो धारणा है कोई नई नहीं है बल्कि यह तो मैं जीवन व्यतीत करने के लिए बहुत पहले से ही संकल्प कर चुका हूँ। जो सुख पीपल के पत्ते के समान चंचल है मैं उसे इसी क्षणिक और बहु मूल्य जीवन में भोग लेना चाहता हूँ।

विशेष—उपमा अलंकार।

देखा क्या······विश्वास सत्य ?

शब्दार्थ—स्वर्गीय सुख=बहुत बड़ा सुख, देवों को प्राप्त अलोकिक सुख। प्रलय नृत्य=विनाश। चिरनिद्रा=मृत्यु। विश्वास=निष्ठा। सत्य=अडिग।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि हे श्रद्धा! क्या तुमने देवताओ का विनाश नहीं देखा। उनको कितने अलौकिक सुख प्राप्त थे परन्तु प्रलय ने सब कुछ

नष्ट कर दिया। देवताओं के सुख नष्ट हो गए तथा देवता लोग मृत्यु को प्राप्त हुए। इतना सब कुछ देखते हुए भी न जाने तुमको अहिंसा, परोपकार और विकास आदि के प्रति इतनी दृढ़ निष्ठा क्यों है ?

यह चिर······सानुराग।

शब्दार्थ—चिर प्रशान्त मंगल की अभिलाषा=जीवन में प्राप्त होने वाली अविचल एवं स्थायी कल्याण की कामना। सानुराग=अनुराग से भरी।

अर्थ—मनु श्रद्धा से पूछते हैं कि जब तुम जानती हो कि संसार में कोई भी वस्तु स्थिर नहीं तो फिर न जाने तुम यहां पर चिरस्थायी शान्ति और कल्याण की कामना क्यों करती हो, अर्थात् यह भावना तुम्हारे हृदय में क्यों जाग रही है। यह अपना प्रेम और दुलार तुम किसके लिए एकत्रित कर रही हो। तुम्हारा किस प्राणी के प्रति आजकल अनुराग बढ़ता जा रहा है ?

यह जीवन······रहे भार।

शब्दार्थ—वरदान=सफलता। दुलार=प्यार। तव=तुम्हारा। चित्त= हृदय। चिन्ता का भार वहन करे=केवल मेरी ही सुख सुविधाओं की चिन्ता करे।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि हे रानी! तुम मुझे वह अपना प्यार और दुलार, जो मेरे जीवन के लिए वरदान के समान है अर्थात् सबसे बड़ी सफलता है, दे दो। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा हृदय केवल मेरी ही सुख-सुविधाओं की चिंता करे।

मेरा सुन्दर······एक-एक।

शब्दार्थ—विश्राम=शान्ति देने वाला। सृजता हो=निर्माण करता हो। मधुमय=मधुर। लहरें=भावनाओं की तरंगें।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते कि मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा हृदय मुझे विश्राम देने वाला हो और वह सुखोपयोग की सम्पूर्ण सामग्रियों से सुसज्जित होकर ऐसे रमणीक विश्व का निर्माण करदे जिसमें अनुराग की मधुर धारा बहती हो और उसमें मेरे प्रति भावनाओं की लहरें एक-एक करके उठती हों।

विशेष—'मधु धारा' तथा 'लहरों' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

मैंने तो······वहीं अधीर।

शब्दार्थ—कुटीर = कुटिया। अधीर = उत्सुकता, जल्दी।

अर्थ—मनु की बातों का उत्तर न देती हुई श्रद्धा मनु से कहने लगी कि मैंने भी एक छोटी-सी कुटिया बनाई है चलो उसे देख लो! इतना कहकर वह उनका हाथ पकड़ कर उत्सुकता के साथ उधर ले गई।

उस गुफा······जहाँ कुंज।

शब्दार्थ—पुआल = दाने झड़े धान के डंठल। छाजन = छप्पर। शान्ति पुंज = शान्ति का समूह। सघन = घनी।

अर्थ—श्रद्धा ने गुफा के समीप ही धानों के सूखे डंठलों से अपनी कुटिया बनाई थी। उस पर उसने छप्पर भी डाला था। छप्पर पर कोमल लताओं की डालें इतनी घनी हो गई थीं कि वहाँ कुंज सा बन गया था। उस कुटिया को देखने से ऐसा लगता था मानो शांति का समूह यहाँ आकर इकट्ठा हो गया हो।

विशेष—गम्योत्प्रेक्षा अलंकार है।

थे वातायन······समीर अभ्र।

शब्दार्थ—वातायन = झरोखा, रोशनदान। प्राचीर = दीवार। पर्ण = पत्ते। शुभ्र = स्वच्छ। अभ्र = बादल।

अर्थ—श्रद्धा ने पत्तों से स्वच्छ और सुन्दर दीवारें बनाई थीं। उनमें झरोखे इस ढंग से बनाए थे कि यदि इन झरोखों में से बादल या हवा का टुकड़ा अन्दर भी आ जावे तो तत्क्षण ही सामने वाली दीवार के झरोखे से बाहर निकल सके।

उसमें था······सुरभिपूर्ण।

शब्दार्थ—बेतसी लता = बेंत। सुरुचिपूर्ण = सुन्दर। धरातल = पृथ्वी। सुरुचिपूर्ण = सुगंधित पराग।

अर्थ—श्रद्धा ने अपनी कुटिया में बेंत से बना हुआ एक सुन्दर झूला डाला हुआ था और पृथ्वी पर पुष्पों का कोमल चिकना और सुगंधित पराग का फर्श बिछाया हुआ था।

कितनी मीठी······रहे चूम।

शब्दार्थ—अभिलाषाएँ = कामनाएँ। घूमना = विचरण करना। मंगल = शुभ। कोनों को चूम रही = प्रत्येक कोने में गूँज रही थी।

अर्थ—श्रद्धा की उस कुटिया को देखकर पता चलता था कि श्रद्धा के मन में उत्पन्न भावी सन्तान के लिए कितनी शुभ कामनायें इस कुटिया में चारों ओर चुपचाप घूम रही हैं और न जाने कितने ही मीठे और मंगल गानें उस कुटिया के कोनों में घूम रहे थे।

विशेष—मानवीकरण अलंकार।

मनु देख······साभिमान ?

शब्दार्थ—चकित=हैरान। गृह लक्ष्मी=पत्नी, श्रद्धा। गृह विधान=गृह निर्माण कला। साभिमान=अभिमान सहित।

अर्थ—मनु ने जब श्रद्धा द्वारा बनाई हुई कुटिया देखी तो उन्हें अपनी पत्नी श्रद्धा की गृह निर्माण कला का ज्ञान हुआ। परन्तु उन्हें यह सब अच्छा न लगा। वह सोचने लगे कि वह कौन ऐसा प्राणी है जो इन सब सुखों को गर्व सहित भोगेगा।

चुप थे······अभी भीड़।

शब्दार्थ—नीड़=घोंसला। कलरव=चहचहाट, मधुर ध्वनि। आकुल =चंचल। भीड़=बच्चे।

अर्थ—मनु को चुप देखकर श्रद्धा बोली—देखो घोंसला तो बन गया है परन्तु उसमें कलरव करने वाले शिशुओं की चंचल भीड़ अभी तक नहीं आई है। अर्थात् अभी हमें सन्तान प्राप्ति नहीं हुई है।

तुम दूर······बीच बैठ।

शब्दार्थ—निर्जनता=सूनापन। पेंठ=डूबना।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि जब तुम शिकार खेलते-खेलते बहुत दूर चले जाते हो तब मैं यहाँ सारा दिन अकेली बैठी-बैठी तकली घुमाती रहती हूँ और अपने चारों ओर के सूनेपन में डूब जाती हूँ।

मैं बैठी······को अहेर।

शब्दार्थ—प्रतिवर्त्तन में=बार-बार चक्कर लगाने में। स्वर विभोर= मधुर स्वर में लीन होकर। अहेर=शिकार।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती हैं कि—जब मेरी तकली तेजी से चक्कर लगाने लगती है। तब मैं उसकी मधुर ध्वनि में लीन होकर यह गाती रहती है कि मेरी प्यारी तकली धीरे-धीरे घूम मेरे प्रियतम शिकार खेलने गए हैं।

जीवन का……बढ़े मान।

शब्दार्थ—तंतु=धागे, भावनाएँ। मंजुलता=कोमलता, सुन्दरता। चिर-नग्न=भावों से भरा हुआ जीवन।

अर्थ—श्रद्धा कहती है कि मैं तकली कातते-कातते यह गाती रहती हूँ जैसे तुम्हारे धागे कोमल हैं और बढ़ते जा रहे हैं, उसी प्रकार जीवन की भावनाएँ भी रम्यता धारण करें और हमारा जीवन उन्नति करें। जैसे तुम्हारे धागों से बुने वस्त्र से नग्न शरीर ढक जाने के कारण शरीर का सौंदर्य बढ़ जाता है उसी प्रकार हमारे सौंदर्य की प्रतिष्ठा में भी वृद्धि हो।

किरनों-सी……नवलगात।

शब्दार्थ—प्रभात=प्रातःकाल। नवजात=शिशु। निर्वसना=वस्त्रहीन। नवलगात=नवीन देह।

अर्थ—श्रद्धा तकली को सम्बोधित करती हुई कहती है कि जिस प्रकार प्रभात वेला में सूर्य की किरणें प्रकाश रूपी स्वच्छ वस्त्र बुनकर भोली-भाली नग्न प्रकृति को ढक देती है उसी प्रकार तू भी स्वच्छ वस्त्र से तू मेरे जीवन के मधुर प्रभात अर्थात् नवजात बच्चे को तू वस्त्रों से ढक देना, जिससे यह नंगा सरल शिशु अपने नवलगात को तेरी शुभ्रता में छिपा ले।

विशेष—श्लेष अलंकार।

वासना भरी……कुसुम सयान।

शब्दार्थ—आवरण=पर्दा। कान्तिमान=उज्ज्वल। सौंदर्य=मानव जीवन की सुन्दरता। फुल्ल=खिला हुआ।

अर्थ—श्रद्धा कहती है कि हे तकली! तेरे द्वारा बुना हुआ वस्त्र मेरे उस नवजात शिशु की आँखों पर ऐसा पर्दा डाल दे, जिससे वह इस संसार में फैली हुई वासना को न देख सके। उसके विचार उज्ज्वल हों। जिससे वह उसी तरह सुन्दर लगे, जिस प्रकार लता में खिला हुआ फूल सुन्दर (रम्य) लगता है।

विशेष—पूर्णोपमा अलंकार।

अब वह……कर्मामग्न।

शब्दार्थ—आगन्तुक=नवजात शिशु। निर्वसना=नग्न। वस्त्रहीन जड़ता=अनुभव शून्यता। मग्न=लीन।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि मैं तकली कातते समय इस तरह गाती

रहती हूँ कि हे तकली ! तेरी कृपा से मेरा नवजात शिशु इन पर्वत की गुफाओं में पशुओं के समान नंगा होकर न घूमे। मैं उसके सभी अभावों को पूरा कर देना चाहती हूँ जिससे वह अभावों के कारण अनुभव-शून्य ही न बना रहे।

सूना रहे······मृदुल फेन।

शब्दार्थ—लघुविश्व=छोटी गृहस्थी। फेन=पराग।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि जब तुम कभी बाहर चले जाया करोगे तो मेरी यह छोटी-सी दुनिया सूनी नहीं रहा करेगी। तुम्हारे जाने के बाद मैं अपने उस नवजात शिशु के लिए मकरंद से सना फूलों के पुष्प परारग का सुन्दर और कोमल बिछौना बिछाया करूँगी।

विशेष—'लघुविश्व' में उपादान लक्षणा है और रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

झूले पर······सहज घूम।

शब्दार्थ—वदन=मुख। सहज=सरलता से।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि मैं अपने इस शिशु को इस बेंत से बने हुए झूले पर झुलाया करूँगी और उसके कोमल कपोलों को चूम लिया करूँगी। वह मेरी छाती से लगा रहेगा और बड़ी आसानी से इस सारी घाटी में घूम आया करेगा।

वह आवेगा······प्रवाल।

शब्दार्थ—मलयज=दक्षिण से आने वाला वसंत का सुगन्धित पवन। मसृण=चिकने। मधुमय=माधुर्य से भरी हुई। स्मित=हँसी। प्रवाल=मूँगा।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि जब वह शिशु आवेगा तो उसके आने में वही सुख प्राप्त होगा जो मलय पर्वत से आने वाली वायु के आने पर होगा अर्थात् मलयानिल की भाँति ही वह सुख देने वाला होगा। उस शिशु के चिकने बाल लहराते हुए होंगे। उसके अधरों पर मुस्कान थिरकती होगी। उसके अधर लतिका के समान कोमल होंगे और उनमें से निकलने वाली हँसी मूँगे के समान मूल्यवान। वह हँसी अमृत के समान भी होगी अर्थात् वह जिसकी ओर देखकर हँस देगा उसकी व्याधियों को दूर कर नया जीवन भी प्रदान करेगा।

अपनी······घोल।

शब्दार्थ—रसना=वाणी। मधुर=मीठे। छिड़केगा=डालेगा। मकरंद=पराग।

अर्थ—श्रद्धा कहती है वह शिशु अपनी मीठी वाणी से बड़े सुन्दर और

मीठी-मीठी बातें किया करेगा। उसकी मीठी बातें मेरे हृदय की पीड़ा के लिए एक लेप की भाँति सिद्ध होंगी अर्थात् उसकी बातों को सुन सुनकर मेरे हृदय की पीड़ा शान्त हो जाएगी। जिस प्रकार पराग का लेप पीड़ा को हर लेता है उसी प्रकार उसका प्रत्येक शब्द मेरी पीड़ा को दूर करेगा।

मेरी······मुग्ध।

शब्दार्थ—स्निग्ध=स्नेहयुक्त। निर्विकार=दोष रहित, निश्छल, निर्मल। चित्र=परछाई। मुग्ध=मोहित।

अर्थ—श्रद्धा मनु को बताती हुई कहती है कि जिस समय मैं उस बालक की निर्मल आँखों में मोहित होकर अपनी परछाई देखूँगी, उस समय मेरी आँखों का समस्त जल कोष स्नेह युक्त अमृत में परिणत हो जाएगा। अर्थात् शिशु की सुन्दरता, सरलता और सहजता को देखकर मेरा समस्त दुख नष्ट हो जाएगा और तब सुख ही सुख होगा। जीवन में अभाव नाम की कोई वस्तु न होगी। मेरा यह छोटा-सा विश्व सुखी बन जाएगा।

तुम फूल······कुरंग।

शब्दार्थ—फूल उठना=प्रसन्न होना। कंपित=सिहरन; बिखेरना। सुख-सौरभ=सुख रूपी सुगन्ध। तरंग=लहर। कस्तूरी कुरंग=ऐसा मृग जिसकी नाभि में कस्तूरी रहती है और वह उसकी सुगन्धि में मस्त होकर उसे वन-वन खोजता फिरता है।

अर्थ—श्रद्धा की इन बातों को सुनकर मनु बोले कि तुम तो अपने शिशु को पाकर खुशी से फूल उठोगी और अपने शिशु से प्राप्त सुख तरंग की सिहरन अनुभव करती हुई प्रसन्न रहोगी। और मैं कस्तूरी के मृग की तरह प्रेम पाने के लिए वन-वन भटकता फिरूँगा। जिस प्रकार कस्तूरी हिरन की नाभि में होती है परन्तु वह वन-वन भटकता रहता है उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे पास रहते हुए भी सुख-प्राप्ति के लिए भटकता फिरूँगा।

विशेष—'लतिका-सी' में उपमा, 'सुखसौरभ' में रूपक, वन-वन में यमक 'सुरभि' में रूपकातिशयोक्ति और 'वन कस्तूरी कुरंग' में रूपक अलंकार है।

यह जलन······एक तत्त्व।

शब्दार्थ—जलन=आन्तरिक वेदना। ममत्व=प्रेम। पंचभूत की रचना=पाँच तत्त्वों से बना यह संसार। रमण करूँ=सुखों का उपयोग करूँ।

बन एक तत्व=अकेला ही ।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं—हे श्रद्धे ! मैं अपनी इस आन्तरिक वेदना को और अधिक नहीं सह सकता । मुझे मेरा प्रेम प्राप्त होना चाहिए । मैं तो चाहता हूँ कि पाँच तत्वों से बने इस संसार में अकेला ही तुम्हारे साथ सुखों का उपभोग करता रहूँ ।

विशेष—रूपक अलंकार ।

यह द्वैत······निज विचार ।

शब्दार्थ—द्वैत=भेद दृष्टि । द्विविधा=दो हिस्सों में बँटना । संकट=दुविधा । विचार=इच्छा ।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि—हे श्रद्धा ! तुमने भावी सन्तान की कल्पना करके तो प्रेम बाँटने का नया ढंग सोच लिया है । परन्तु मुझे यह सब सह्य नहीं । मैं अपने प्रेम में किसी को हिस्सेदार नहीं बनाना चाहता । मैं कोई भिक्षु नहीं हूँ जो इस बात पर रहूँ कि तुम जितना चाहो उतना प्रेम मुझे दे दो । यदि यह न हो सका तो मैं इस विचार को ही मन से निकाल दूँगा कि मुझे तुमसे कभी प्रेम नहीं था ।

तुम दानशीलता······शरद इन्दु ।

शब्दार्थ—दानशीलता=दानियों का स्वभाव । सजल=जल भरे । जलद=बादल । सकल कलाधर=सोलह कलाओं से पूर्ण । शरद् इन्दु=शरद्कालीन चन्द्रमा ।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि—तुम जल भरे बादलों के समान अपने प्रेम-रूपी जल की बूँदें सर्वत्र गिराती रहो, मैं इसे नहीं सहन कर सकता । मैं तो अकेला ही शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान सब सुखों का उपयोग करना चाहता हूँ ।

विशेष—परंपरितरूपक अलंकार ।

भूले से कभी······जानु टेक ।

शब्दार्थ—आर्कषणमय=आकर्षक । हास=हास्य । मायाविनी=जादू करने वाली । जानु=घुटने ।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि—हे श्रद्धे ! शिशु के आ जाने पर तुम कभी भूले से या अचानक ही हास्य से भरी हुई दृष्टि मुझ पर डाला करोगी । परन्तु मैं उसको वरदान समझकर घुटने टेक कर स्वीकार नहीं किया करूँगा ।

इस दीन······व्यर्थ ।

शब्दार्थ—दीन अनुग्रह=दरिद्रों पर की जाने वाली कृपा । समर्थन= योग्य । व्यर्थ=विफल ।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं—हे श्रद्धे ! तुम धनियों की भाँति, जो दरिद्रों को दान देकर अपनी कृपा का बोझ उन पर डालते हैं, मुझ पर कृपा करके अपने बोझ में दबाने का प्रयत्न कर रही हो। परन्तु तुम अपने इस प्रयास में कभी सफल नहीं हो सकती, तुम्हारे सभी प्रयास विफल ही रहेंगे ।

विशेष—विशेषण विपर्यय अलंकार ।

तुम अपने······महामंत्र ।

शब्दार्थ—स्वतन्त्र=अकेला । परवशता=परतन्त्रता । महामन्त्र=अत्यंत शक्तिशाली ।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि—तुम अपने सुख को आनन्दपूर्वक भोगो परन्तु मैं तो स्वतन्त्र रहना चाहता हूँ, चाहे मुझे दुख ही उठाने पड़ें । अकेला रहकर मैं इसी मंत्र का जाप करूँगा अर्थात् दुहराऊँगा कि मन की परवशता सबसे बड़ा दुख है ।

लो चला······कुसुम कुञ्ज ।

शब्दार्थ—संचित=एकत्रित । संवेदन भार पुंज=अभावजन्य दुःखानुभूति के भार का समूह । कांटे=कष्ट । कुसुम कुंज=सुख ।

अर्थ—मनु श्रद्धा को कहते हैं कि—हे श्रद्धे ! मेरे जीवन में जितनी भी अभावजन्य दुःखों की अनुभूति के समूह थे, मैं उन सबको यहाँ छोड़कर स्वतन्त्र होकर जा रहा हूँ । अब चाहे मुझे आगे कष्ट ही सहने पड़ें परन्तु मैं अपने आपको धन्य समझूँगा । यह कुंज और कुटिया तुम्हें ही सुख प्रदान करें ।

कह, ज्वलनशील······श्रांत ।

शब्दार्थ—ज्वलनशील=ईर्ष्या की आग से जलता हुआ । अन्तर=मन । शून्य=सूना । निर्मोही=निष्ठुर । अधीर=बेचैन । श्रान्त=थकी हुई ।

अर्थ—इतना सब कहकर मनु ईर्ष्या से जलते हुए मन को लेकर चले गये । वह प्रान्त बिल्कुल सूना हो गया था । श्रद्धा यह चिल्लाते-चिल्लाते कि ओ निष्ठुर मेरी बात तो सुनता जा, थक-सी गई थी ।

इड़ा

कथासार—मनु श्रद्धा को छोड़कर भटकते हुए सरस्वती नदी के किनारे पहुँच गए जहाँ पर सारस्वत प्रदेश उजड़ा हुआ पड़ा था। यह वही सारस्वत नगर था जो कभी देव-संस्कृति का केन्द्र था। यहीं पर इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया था। इस घटना के याद आते ही मनु के मन में देव और असुरों का संघर्ष घूम गया। उन्हें इन दोनों जातियों के प्रति एक प्रकार की घृणा और विरक्ति ने घेर लिया क्योंकि उन दोनों का संघर्ष किसी लोकहित की भावना से नहीं वरन् अपने दम्भ के कारण होता है। इसी समय मनु को लगा कि जैसे वह असहाय और एकांकी हैं। वास्तव में श्रद्धा विहीन होकर वह एक-दम दुर्बल व्यक्ति है।

मनु इसी विचारधारा में डूबे हुए थे कि सहसा उन्हें आकाशवाणी के रूप में काम का शाप सुनाई दिया—'मनु ! तुम उस परम विश्वासमयी श्रद्धा को भूल गए। उसने तो तुम्हारे लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था, किंतु तुम्हारे हृदय में बराबर अविश्वास एवं स्वार्थ बना रहा और तुम सदैव 'कुछ मेरा हो' की संकुचित भावना से भरे रहे। अब इसी संकुचित भावना के कारण तुम्हें तनिक भी सुख नहीं मिलेगा। तुम्हारे जीवन में सदैव द्वन्द्व चलता रहेगा और तुम जिस प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना करना चाहते हो, तुम्हारा वह प्रजातन्त्र भी शाप से भरा रहेगा। सारी प्रजा भेद भाव से भर जाएगी। वह नाना प्रकार की समस्याओं में उलझकर अपने ही विनाश का प्रयत्न करेगी। निरन्तर कोलाहल और कलह बढ़ते रहेंगे। जनता को अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति तो दूर रही प्रत्युत् उन्हें अनिच्छित खेद ही प्राप्त होगा। वे एक दूसरे को भी पहचान न सकेंगे और सब कुछ पास होने पर भी उन्हें संतोष न मिलेगा। इस तरह इस संकुचित दृष्टि के कारण सभी को अमित कष्ट प्राप्त होगा, नाना प्रकार के संदेह उत्पन्न होते रहेंगे स्वजनों में विरोध

फैलेगा चारों ओर दरिद्रता फैलेगी, दोनों में सतत विरोध बना रहेगा । सर्वत्र सद्भावना एवं सहानुभूति का अभाव रहेगा और भेद भाव के फैल जाने से मानव की असीम एवं अमोघ शक्ति का ह्रास हो जाएगा । सारा जीवन ही संघर्ष बन जाएगा, जनता जरा-मरण के चक्कर में पड़कर सदैव अशान्त बनी रहेगी और तुम्हारी प्रजा यह रहस्य न जान सकेगी कि जीवन में श्रद्धायुत रहने से ही यह भूमि कल्याणमयी बन जाती है, अन्यथा यह लोक संकट और संघर्ष से ही भरा रहता है ।" काम का शाप सुनकर मनु अवाक् रह गए । उन्हें लगा जैसे उनका भविष्य अत्यंत दुखपूर्ण और यातनाओं से भरा हुआ है । वे वहीं सरस्वती नदी के किनारे पर बैठ गए ।

प्रभात होने पर उन्हें वहीं पर एक अनुपम सुन्दरी बाला दिखाई दी जिसका नाम इड़ा था । इड़ा ने मनु से उसका परिचय प्राप्त करके कहा—आओ सारस्वत प्रदेश में रहो । यद्यपि यह प्रदेश भौतिक हलचल के कारण उजड़ गया है तथापि मुझे आशा है कि एक दिन यह फिर से बस जाएगा । तुम इसके स्वामी बनो और इसको फिर से बसाने का भार अपने कंधों पर लो । इड़ा की बात सुनकर मनु के हृदय में नवीन स्फूर्ति का संचार हो गया । उन्होंने सारस्वत प्रदेश को फिर से बसाने का कार्य अपने हाथ में ले लिया ।

किस गहन······शून्य चीर ।

शब्दार्थ—गहन = अन्धकार पूर्ण । गुहा = गुफा । झंझा प्रवाह सा = आंधी के झोंके के समान । विक्षुब्ध = कुपित, अत्यन्त तीव्र गति वाला । महासमीर = अत्यंत तीव्र गति से चलने वाली भीषण आंधी । परमाणु पुंज = परमाणुओं का समूह । अनिल = हवा । अनल = अग्नि । क्षिति = पृथ्वी । कटुता = विषमता, द्वेष । जगती = संसार । क्षमता = शक्ति । विराग = उदासीनता । अस्तित्व = जीवन की सत्ता । चिरन्तन = सदैव रहने वाली, सनातन । लक्ष्य भेद को = लक्ष्य को भेदने के लिए । शून्य चीर = अन्तरिक्ष को चीरता हुआ ।

अर्थ—श्रद्धा को छोड़ कर मार्ग में भटकते हुए मनु अपने जीवन की तुलना आँधी से करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार आँधी का प्रवाह तीव्र गति से भीषण रूप धारण करके और अधीर होकर किसी गहरी गुफा से निकल कर आगे बढ़ता है, उसी प्रकार मेरा यह व्यथित जीवन भी हिमालय

की गुफा से निकल कर किसी अज्ञात लक्ष्य की ओर तेजी से दौड़ रहा है जिस प्रकार भयंकर आँधी में मिट्टी, धूल आदि के कण मिले हुए होते हैं, उसी प्रकार मेरा यह जीवन भी आकाश, वायु, अग्नि, पृथ्वी और पानी का समूह है, अर्थात् यह पंचतत्त्वों से बना हुआ है। जिस प्रकार आँधी सभी को भय प्रदान करती है और भय की उपासना में ही तल्लीन सी दिखाई देती है उसी प्रकार मेरा यह जीवन भी सभी के लिए भयभीत बना हुआ है। जिस प्रकार आँधी बसे हुओं को उजाड़ कर संसार में विषमता और गरीबी को जन्म देती है, उसी प्रकार मेरा यह जीवन भी संसार के प्रत्येक प्राणी को कटुता बांट कर उन्हें अधिक दीन बना रहा है। जिस प्रकार आंधी का तीव्र प्रवाह रेगिस्तान की बालू तथा अन्य उपजाऊ मिट्टी के कणों को खेतों में जहाँ-तहाँ फैलाता निर्माण का कार्य करता है और अपने तेज झोंकों से बसे हुओं को उजाड़ कर विनाश का कार्य करने में ही अपनी शक्ति दिखाता है, उसी प्रकार मेरा जीवन भी निर्माण और विनाश के कार्यों में लगा हुआ है क्योंकि मैंने श्रद्धा का घर बसा कर निर्माण का कार्य और वहाँ से भागकर विनाश का कार्य किया है। जिस प्रकार आँधी को सभी के प्रति विराग और सभी के प्रति ममता होती है, उसी प्रकार मेरा जीवन भी वैराग्य और ममता से बंध-कर संघर्ष सा कर रहा है। जिस प्रकार किसी लक्ष्य को भेदने के लिए अंतरिक्ष को चीरता हुआ कोई तीक्ष्ण तीर धनुष से छूटता है, उसी प्रकार मेरा यह शाश्वत जीवन न जाने किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जगत की शून्यता को पार करता हुआ तेजी से आगे बढ़ रहा है।

विशेष—सांगरूपक अलंकार है।

देख मैंने······पतंग।

शब्दार्थ—शैल शृंग=पर्वत की चोटियां। अचल हिमानी से रंजित=जड़ बर्फ से सुशोभित। उन्मुक्त उपेक्षा भरे=सर्वथा उदासी लिए हुए। तुंग=ऊँचे। वसुधा=पृथ्वी। स्वेत बिंदु=पसीने की बूँदें। स्तिमित नयन=शांत मुद्रा में बंद हुए नयन। स्थिर मुक्ति=स्थायी मुक्ति। मरुत सदृश=आंधी के समान। अगजग=सम्पूर्ण संसार। तरंग=गति, लहर। जलन शील=जलता हुआ। पतंग=सूर्य।

अर्थ—मनु हिमालय पर्वत की ऊँची-ऊँची चोटियों को देखकर कहते

कि मैंने पहाड़ की वे ऊँची ऊँची चोटियाँ देखी हैं जो स्थायी बर्फ से सदैव सुशोभित रहती हैं। और जो सर्वथा उदासीनता के भाव से भरी रहती हैं। मानो वे अपने जड़ता के गौरव का प्रतीक बनकर पृथ्वी का अभिमान बनकर के अपनी समाधि में सुख प्राप्त कर रही हों। इन चोटियों से अनजाने ही जो नदियाँ बह निकली हैं वे उसी ऐसी प्रतीत होती हैं मानो वे जलकण समाधि में लीन इन पर्वत की चोटियों के शरीर से निकले हुए पसीने की बूंदे हैं। इन नदियों के निकलने पर भी इन पर्वत चोटियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे उस समय भी इसी प्रकार स्थिर और शान्त मुद्रा में बनी रहती हैं जैसे समस्त विकारों से रहित होकर निश्चल एवं शांत मुद्रा में किसी समाधि में स्थित कोई व्यक्ति निश्चल और स्थिर बैठा हो और उसे संसार के सारे बंधनों से सदैव के लिए छुटकारा मिल कर स्थायी मुक्ति प्राप्त हो गई हो। मैं अपने जीवन की इन चोटियों जैसी जड़ता पूर्ण प्रतिष्ठा नहीं चाहता। मैं तो यही चाहता हूँ कि मेरा मन हवा के समान अबाध गति से आगे बढ़ता जाए। उसके प्रत्येक पग में हलचल की गति हो, जिससे वह इस समस्त संसार को पार करता हुआ चला जाए। और निरन्तर जलते हुए गतिशील सूर्य की भाँति उसकी गति कभी मन्द न पड़े।

विशेष—मानवीकरण, उपमा, रूपक और गम्योत्प्रेक्षा अलंकार है।

अपनी ज्वाला······कुसुमहास।

शब्दार्थ—ज्वाला=हृदय की आग, हृदय की अभिलाषा। कर प्रकाश= अभिलाषा को पूरा करने के लिए साधन इकट्ठे करके। सदय=सहानुभूतिपूर्ण विजन=निर्जन। कुसुमहास=फूलों की हँसी।

अर्थ—मनु अपने जीवन के प्रति ग्लानि प्रकट करते हुए कहते हैं कि मैंने अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए श्रद्धा के साथ अनेक प्रकार के सुखमय साधन जुटा लिए थे। किंतु मैं प्रारम्भिक जीवन के उस सुन्दर निवास को जब छोड़कर ही चला आया हूँ और वन, पर्वत की गुफाएँ, कुंज और मरु प्रदेश में भटकता हुआ अपनी उन्नति का मार्ग खोज रहा हूँ, तब मैं वास्तव में कितना पागल हूँ। मैं कभी भी किसी के प्रति सहानुभूतिपूर्ण नहीं रहा। मैंने सबसे अपना मुंह मोड़ा। मैं किसी पर भी उदारता से मोहित नहीं हुआ। मैं सदैव अपनी ही ईर्ष्या की आग में जलता रहा। अब मैं बिल्कुल अकेला हूँ और

इस निर्जन वन में केवल मेरी दुख-भरी वाणी ही गूँज रही है। उसका कोई उत्तर देने वाला नहीं है। मैं लू की भाँति सबको झुलसाता हुआ दौड़ रहा हूँ इसलिए मुझसे कोई भी फूल नहीं खिल सकता, अर्थात् मैं किसी का भी हित नहीं कर सकता। मैं सदैव कल्पनालोक में रह कर उजड़े हुए स्वप्न को देखता हूँ। मैंने कभी भी फूलों की हँसी नहीं देखी अर्थात् मैं सदैव विनाश कार्यों की ओर ही लगा रहा हूँ। मैंने जीवन में कभी भी किसी को सुख और शान्ति से नहीं देखा।

विशेष—पूर्णोपमा तथा रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

इस दुखमय······कर विनाश।

शब्दार्थ—जीवन का प्रकाश = जीवन की मनोहर आकांक्षाएँ। हताश = निराश। कलियां = सुखमय पदार्थ। कांटे = दुखदायी पदार्थ। बीहड़ पथ = निर्जन मार्ग। उन्मुक्त शिखर = पर्वत की स्वतन्त्र चोटियाँ। निर्वासित = घर से निकाला हुआ। अभिनय = कार्य। कुलांच रही = उछल-कूद मचा रही हैं। पावस रजनी = वर्षा की रात, दुर्दिन। जुगनूगण = खद्योत समूह, ऐसे पदार्थ जो सुख देने वाले दिखाई देते हैं किन्तु जो वास्तव में सुखदायी नहीं होते। ज्योतिकरण = प्रकाश पुंज, सुख देने वाले पदार्थ।

अर्थ—मनु अपने जीवन की असफलताओं और निराशाओं से दुखी होकर कहते हैं कि इस दुःख भरे जीवन की आकांक्षाएं आकाश रूपी नीली लताओं की डालों में उलझ गई हैं और मुझे अब सुख प्राप्ति की कोई आशा नहीं दिखाई देती। मैं जिन वस्तुओं को सुख देने वाली समझ रहा था वे वास्तव में कांटे की तरह से दुःख देने वाली ही सिद्ध हुई हैं। श्रद्धा को छोड़ कर मैं इस निर्जन पथ पर कितना अधिक चला आया हूँ और चल रहा हूँ। जब अत्यंत थक जाता हूँ तो थोड़ा बहुत कहीं विश्राम कर लेता हूँ। पहाड़ की ये स्वतंत्र चोटियां मुझ निर्वासित को अशांत और रोता हुआ देखकर हँसती हुई-सी जान पड़ती है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे इस संसार की नियामिका शक्ति अपने-अत्यंत भीषण कार्यों को करती हुई मेरे चारों ओर उछल कूद मचा रही है। मुझे अब प्रति पद पर दुःख से भरी हुई शून्यता और असफलता ही अपने चारों ओर नाचती कूदती दिखाई देती है। मैं जीवन की जिस वस्तु को सुखप्रद जानकर ग्रहण करने के लिए दौड़ता हूँ, वहीं मुझे निराशा मिलती

है। मेरी स्थिति उस मनुष्य जैसी है जो वर्षा ऋतु की रात में खद्योत समूह को प्रकाश पाने की इच्छा से पकड़ने के लिए दौड़ता है किंतु उसे प्रकाश नहीं मिलता। मैंने सुख देने वाले ज्योतिकणों के समान चमकने वाले पदार्थों का नाश कर दिया है अतः मुझे सुख नहीं मिल सकता।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति रूपक और मानवीकरण अलंकार है।

जीवन निशीथ······केश भार।

शब्दार्थ—जीवन निशीथ=जीवनरूपी अर्ध रात्रि। नील तुहिल जल निधि=नीले रंग के बर्फ के कणों का समुद्र। वार पार=चारों ओर। निर्विकार=सात्विक। अमंग=पूर्ण रूप से। अभंग=आकृतिहीन। अरुन रेखा=ऊषा की लाली। उर्मिल=घुंघराली। छाया उदार=विस्तृत छाया।

अर्थ—मनु अपने जीवन की असफलताओं और निराशाओं की तुलना अर्ध रात्रि के गहन अंधकार से करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार नीले बर्फ के टुकड़ों के सागर की भाँति अर्धरात्रि का गहन अंधकर सर्वत्र फैल जाता है, उसी प्रकार मेरे जीवन में घोर निराशा फैली हुई है। उस गहन अंधकार में जिस प्रकार आकाश में तारे टिम-टिमाकर उस अंधकार को दूर करने का प्रयत्न करते हैं किन्तु उनका प्रकाश उस अंधकार में ही डूब जाता है, उसी प्रकार मेरी चेतना की सात्विक किरणें इस निराशा में डूबी हुई हैं अर्थात् मैं अपने जीवन को उन्नत बनाने के लिए कुछ भी सोच नहीं पा रहा हूँ। हे निराशा! जिस प्रकार रात्रि का अंधकार तमाम विश्व में फैलकर मनुष्यों को उसी प्रकार सुला देता है जिस प्रकार मदमस्त व्यक्ति अपनी चेतना भूल जाते हैं उसी प्रकार तुमने पृथ्वी के प्रत्येक भाग में फैल कर अपने प्रभाव से लोगों को अकर्मण्य बना दिया है। जिस प्रकार अंधकार प्रकाश के आने पर कुछ देर के लिए छिप जाता है और प्रकाश के नष्ट होने पर वह पुनः प्रकट हो जाता है। इसी प्रकार तू भी मेरे जीवन में चुपचाप छिपती और प्रकट होती रहती है। जिस प्रकार किसी सौभग्यवती नारी की घुंघराली लटों के बीच निकली हुई मांग में भरे हुए सिंदूर की भाँति रात्रि के घने अंधकार को चीर कर ऊषा की लाली भी एक क्षीण रेखा दिखाई देती है उसी प्रकार मेरे जीवन में ममता की एक क्षीण रेखा कभी-कभी तेरे गहन अंधकार में चमक जाती है। हे निराशा! जिस प्रकार घोर रात्रि का अंधकार सभी प्राणियों को सुलाकर

विश्राम देता है, उसी प्रकार तू भी मुझे अकर्मण्य बनाकर विश्राम देती है। जिस प्रकार अंधकार में काले बादलों की विस्तृत छाया दिखाई देती है, उसी प्रकार तू भी मोह के रूप में दिखाई देती है। जिस प्रकार अंधकार प्रकृति के काले-काले बालों का सा समूह जान पड़ता है, उसी प्रकार तू भी इस संसार की मायारानी के केश भार सा प्रतीत होती है।

विशेष—सांगरूपक तथा रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

जीवन निशीथ……अपार।

शब्दार्थ—नवज्वलन धूम सा=हाल ही में जलाई गई आग से उठने वाले धुएँ के समान। दुर्निवार=जो रोका न जा सके। कालिन्दी=यमुना नदी। दिगन्त=चारों दिशाएं। कुहुकिनी=जादू करने वाली स्त्री। छलना=धोखा। नवकलना=नवीन रचना। श्यामलपथ=अंधकार पूर्ण मार्ग, हरा-भरा मार्ग। पिक=कोयल।

अर्थ—मनु अपने जीवन की निराशा को सम्बोधित करते हुए कहते है कि हे मेरे जीवन की निराशा! तू अर्धरात्रि के गहन अन्धकार के समान हैं। जिस प्रकार हाल ही में जलाई हुई अग्नि से उठाता हुआ धुंआ चारों ओर फैल जाता है और हटाने से नहीं हटता उसी प्रकार तू भी मेरे जीवन में नई-नई आशाओं के रूप में प्रकट होती है। जिस प्रकार धुएं से दबकर चिनगारी पूर्ण रूप से नहीं चमक पाती है इसी प्रकार तेरे कारण मेरी इच्छाएं अपूर्ण बन कर धधकती रहती हैं। जिस प्रकार मधुबन को छूती हुई यमुना नदी वर्षा ऋतु में चारों दिशाओं में फैल जाती है और संध्या के समय उसमें बच्चे नौकाएं लेकर दौड़ लगाते रहते हैं, उसी प्रकार तू मेरे जीवन में यौवन की धारा को तीव्र गति से प्रवाहित करती है जिससे मेरा मन अनत इच्छाओं की ओर दौड़ता रहता है। हे निराशा! जिस प्रकार आधी रात का अन्धकार किसी जादू करने वाली स्त्री की आँखों में लगे हुए काजल के समान दिखाई देता है जिसमें सुन्दर धोखा छिपा हुआ होता है, उसी प्रकार तू भी मुझे बराबर छूती आ रही है। जिस प्रकार रात्रि का अन्धकार धुंधली रेखाओं से बनाए गए एक सजीव चित्र के समान दिखाई देता है उसी तरह तू भी धुंधली स्मृतियों के द्वारा अपना रूप रचती है। जिस प्रकार रात्रि का अन्धकार उस कोयल की गूंज के समान छाया रहता है,जो अपनी मधुर गूंजसे सारे सर्वत्र आकाश में फैल जाती है और

बहुत दिनों से परदेश में रहने वाले किसी विरही को हरे-भरे मार्ग में सुनाई पड़ती है उसी प्रकार तू भी मेरे प्राणों की व्यथा भरी पुकार के समान मेरे हृदय में छा गई है।

विशेष—मालोपमा, रूपक और रूपकातियोक्ति अलंकार है।

यह उजड़ा······स्वयं शान्त।

शब्दार्थ—विध्वंस=नष्ट-भ्रष्ट। शिल्प=कला। नितान्त=पूर्णतया। विकृत=भद्दी। विकीर्ण=बिखरी हुई। पत्र जीर्ण=पुराने पत्ते। आकाश-बेलि सी=अमर बेल।

अर्थ—मनु जब सारस्वत प्रदेश में पहुच जाते हैं तो देखते हैं कि वह उजड़ा हुआ और सूना पड़ा है। उसके विध्वंस को देखकर तथा उनकी कलाकृतियों को पूर्णत: खंडित देखकर मनु को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उन्हें सुख दुख की परिभाषा छिपी हुई हो। सारस्वत प्रदेश के सुन्दर-सुन्दर भवनों की टूटी-फूटी तथा टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं को वेखकर ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह किसी प्राणी के दुर्भाग्य की टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ हों। उन खण्डहरों में कितनी ही सुख भरी स्मृतियाँ थीं जो अपूर्ण रहकर और बिखर कर मडराती हुई फिर रहीं थीं। उनके विशाल भवनों के गिर जाने से बड़े-बड़े ढेर बन गये थे जिनके नीचे पेड़ों के पुराने और सड़े हुए पत्ते दबकर ऐसे प्रतीत होते थे जैसे वहाँ के विलासी व्यक्तियों की विलास इच्छाएँ दबी हुई पड़ी हों। उन भवनों के टूटे-फूटे कोनों को देखकर ऐसा लगता था जैसे इन कोनों में से किसी को दुलार करने के लिए एक हिचकी सी निकल रही है, जिसमें टीस भरी हुई है। उन खण्डहरों को देखकर ऐसा लगता था जैसे उनमें उनके निवासियों के जीवन पर यह विलास-पूर्ण मनोवृत्ति इन प्रकार छायी हुई थी जिस प्रकार किसी हरे-भरे वृक्ष पर अमर वेल छा जाती है अर्थात् जैसे अमर बेल दूसरे पेड़ को तो नष्ट कर देती है किन्तु स्वयं खूब फलती-फूलती है इस प्रकार विलासता ने उन लोगों को तथा उनके विशाल भवनों को तो नष्ट कर दिया था किन्तु स्वयं अभी तक जीवित थी। सारस्वत प्रदेश के वह खण्डहर वहाँ के निवासियों के सजीव समाधि बने हुए थे जिन पर अशांत दीपक जलते हुए शांत होकर बुझ जाते थे।

विशेष—उपमा, रूपक और दृष्टांत अलंकार है।

यों सोच······ध्वांत।

शब्दार्थ—श्रांत=थके हुए। निर्निमेष=अपलक नेत्रों से। बाम=टेढ़ी। वृत्रघ्नि=इन्द्र। जनाकीर्ण=व्यक्तियों से भरा हुआ। क्लांत=थका हुआ। ध्वांत=अन्धकार।

अर्थ—इस प्रकार थक कर पड़े हुए मनु सोच रहे थे। श्रद्धा का सुख साधन से पूर्ण और शांति से युक्त निवास स्थान छोड़कर जब वे चले आए तो प्रत्येक पथ में भटकते हुए वे इस उजड़े हुए नगर में आ गए, वहाँ पर पूर्ण वेग से सरस्वती बह रही थी और काली रात्रि में पूर्ण शांति छायी हुई थी। आकाश में चमकते हुए तारे ऐसे प्रतीत होते थे मानो वे पृथ्वी की इस दुखदायी और टेढ़ी गति को अपलक नेत्रों से देख रहे हों। इन्द्र का यह नगर कभी बहुत अधिक व्यक्तियों से भरा हुआ था किन्तु आज उस नदी के किनारे पर ही वह सूना पड़ा हुआ था। देवराज इन्द्र की असुरों पर विजय की कथा याद आते ही मनु के मन में दूना दुःख उत्पन्न हो गया और उन्होंने देखा कि वह पवित्र सारस्वत प्रदेश थका हुआ सा होकर बुरे स्वप्न देखता हुआ सा पड़ा था और उसके चारों ओर अन्धकार फैला हुआ था।

जीवन का······दुर्निवार

शब्दार्थ—द्वन्द्व=संघर्ष। असुरों में=वरुण के अनुयायी तथा इन्द्र के अनुयायी देवताओं में। विरत=तल्लीन। सुर वर्ग=इन्द्रानुयायी देवताओं का वर्ग। आराध्य=पूजनीय। आत्म-मंगल=आत्म-कल्याण। विभोर=लीन। उल्लासशील में शक्ति-केन्द्र=उल्लासमयी शक्ति के केन्द्र। उच्छलित=परिपूर्ण। दुर्निवार=दृढ़।

अर्थ—सारस्वत प्रदेश के खण्डहरों में लेटे-लेटे मनु सोच रहे थे कि इस प्रदेश में पहले सुर और असुर साथ-साथ रहा करते थे, किन्तु जीवन के विषय में नवीन विचार-धाराओं के उदित होने के कारण दोनों में संघर्ष छिड़ गया। असुर लोग वरुण के अनुयायी थे और उन्हें अपने शरीर की चिन्ता अधिक थी। इसके विपरीत सुर लोग इन्द्र के अनुयायी थे। उन्हें अपने ऊपर ही दम्भ था और इसी दम्भ में लीन होने के कारण वे पुकार-पुकार कर कहा करते थे कि मैं स्वयं ही तथा निरन्तर ही पूजनीय हूँ। मैं आत्म-कल्याण के लिए प्रयत्नशील हूँ। मैं उल्लासमयी शक्ति का केन्द्र हूँ, फिर मैं और किसकी शरण में जाऊँ, किसकी उपासना करूँ? मेरा जीवन ही आनन्द से भरी हुई शक्ति का

स्रोत है जो भाँति-भाँति की विचित्रताओं से भरा हुआ है। और मैं अपनी शक्तियों के द्वारा इस जीवन का नवीन निर्माण करके इस संसार को हरा-भरा सुख-सम्पन्न रखता हूँ। परन्तु असुर सदैव अपने प्राणों की रक्षा के उपायों में ही लगे रहते थे और अपने जीवन को सुधारने के लिए कठोर नियमों में बँधते जा रहे थे।

था एक······श्रद्धा-विहीन।

शब्दार्थ—एक=एक असुर वर्ग। देह दीन=तुच्छ शरीर को। अहंता में =अहमन्यता में, अहंकार में। प्रवीण=कुशल। दुर्निवार=दृढ़, जिसको टाला न जा सके। ममत्व=ममता से भरा हुआ। आत्ममोह=आत्म-प्रेम या स्वार्थ-भावना। श्रद्धा-विहान=श्रद्धा से रहित, आस्तिकभाव से रहित।

अर्थ—सारस्वत प्रदेश के खंडहरों में पड़े हुए मनु सोच रहे थे कि प्राचीन काल में असुरों के जो दो वर्ग बने थे, उनमें से वरुण का अनुयायी वर्ग तुच्छ शरीर को ही पूजता था; अर्थात् वह दैनिक सुखों को ही जीवन का परम लक्ष्य मानता था। इस प्रकार यह वर्ग जीवन की पूर्णता से अपरिचित था। इसके विपरीत, देह विरोधी वर्ग भी अपगे जीवन में अपूर्ण था, क्योंकि वह अपनी अहमन्यता के कारण अपने को बहुत कुशल समझ रहा था। इस प्रकार इन दोनों वर्गों के असुरों का हठ दृढ़ था। दोनों में ही एक दूसरे के प्रति अविश्वास की भावना थी। अतः उन्होंने अपनी मान्यताओं के तर्कों के द्वारा सिद्ध करने के स्थान पर युद्ध छेड़ दिया। उनका यह संघर्ष चलना रहा और उनके जीवन को अशान्त बनाता रहा। उनकी वे विरोधी भावनाएँ आज तक विद्यमान हैं, जो पुनः देवासुर-संघर्ष का रूप धारण करके मेरे हृदय में चल रही हैं। मुझ में एक ओर तो ममता से भरी हुई स्वार्थ की भावना है जो स्वतन्त्रता के बहाने से उच्छृंखलता बनी हुई है। दूसरी ओर प्रलय-प्रवाह से डर कर मैं अपने शरीर की पूजा के लिए, दैहिक सुख प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो रहा हूँ। पूर्वकाल में हुआ देवासुर-संघर्ष फिर से नवीन रूप धारण करके मुझे बहुत अधिक दुखी बना रहा है। वस्तुतः श्रद्धा से विलग होकर मेरा आस्तिक-भाव नष्ट हो गया है, जो मेरे दुःख का कारण है।

मनु तुम······शूल।

शब्दार्थ—तूल=रूई। असत=नश्वर। उलटि मति=दुर्बुद्धि। समरसता

==सामरस्य, समान भाव या समानता। अम्बर अकूल=असीम आकाश। शूल =काँटा।

अर्थ—सारस्वत प्रदेश के खण्डहरों में पड़े हुए जब मनु विगत देवासुर-संघर्ष के विषय में सोच रहे थे, तभी उन्हें काम का यह शाप सुनाई पड़ा—हे मनु! तुम दैहिक सुखों के लिए इतने पागल हो गये कि तुम श्रद्धा को बिलकुल ही भूल गये। आत्मा में पूर्ण विश्वास करने वाली उस श्रद्धा को तुमने रुई समझकर, एक तुच्छ पदार्थ समझकर, उड़ा दिया। तुमने तो यह समझ लिया है कि यह संसार नश्वर है और कच्चे धागे में लटक रहा है जो किसी भी समय नष्ट हो सकता है, इसलिए तुमने यह ध्येय बना लिया कि सुख-साधन में जितने भी क्षण बीत जायें, उतना ही अच्छा है। तुमने अपनी वासना की तृप्ति को ही स्वर्ग के समान सुख देने वाली मान लिया। वस्तुतः यह तुम्हारी दुर्बुद्धि का व्यर्थ ज्ञान है। तुम अपने पुरुषत्व के मोह में यह भी भूल गये कि नारी की भी कुछ सत्ता होती है। इतना ही नहीं, तुम यह भी भूल गये कि अधिकार और अधिकारी—नारी और पुरुष—में परस्पर समानता का सम्बन्ध है। जब काम की यह कटु वाणी असीम आकाश को गुँजाती हुई गूँजी तो मनु को इस प्रकार की वेदना हुई जैसे उनके पैर में काँटा चुभ गया हो।

विशेष—'मनु को जैसा चुभ गया शूल' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

यह कौन······पूर्ण-काम ?

शब्दार्थ—सुख-विराम=सुख और शांति। अतीत=भूतकाल। अंतरंग=हृदय। ताप=दुःख। ज्वाला=आग। भ्रान्त=मिथ्या। अमृत-धाम=अमृत जैसी प्रेरणादायक भावनाओं का घर। पूर्ण-काम=सन्तुष्ट।

अर्थ—सारस्वत प्रदेश के खण्डहरों पर लेटे हुए मनु जब विगत देवासुर-संघर्ष के विषय में सोच रहे थे, तभी उन्हें काम की वाणी सुनाई दी। उसे सुनकर और अपने हृदय में एक कसक अनुभव करते हुए कहते हैं कि यह किसकी आवाज है? अरे, यह तो उसी काम की आवाज है जिसने मुझे श्रद्धा के प्रेम जाल में फँसाकर मेरे जीवन का सुख और शांति छीन ली है। इसकी वाणी सुनकर आज मुझे भूतकाल की वे सभी घटनाएँ प्रत्यक्ष होने लगी हैं जिनका अब नाम-मात्र ही मेरे लिए शेष रह गया था। उस काल में मैंने जिसे वरदान समझकर ग्रहण किया था, आज वही मेरे हृदय को कम्पित कर रहा है। आज मेरे

अंग और मेरा मन उस वरदान के दुःख की आग में जल रहा है। तदन्तर मनु काम को सम्बोधित करके कहने लगे कि क्या अब तक मैं मिथ्या कार्यों में ही लगा रहा ? क्या तुमने मुझसे नहीं कहा था कि मैं प्रेमपूर्वक श्रद्धा का ग्रहण करूँ ? तुम्हारे कहने से मैंने उसे प्राप्त किया और उसने भी मुझे अपना हृदय, जो अमृत जैसी प्रेरणादायक भावनाओं का घर था, दे दिया था। बताओ तो सही, उस पर भी मेरी सन्तुष्टि क्यों नहीं हुई ?

मनु उसने······क्षुद्र यान।

शब्दार्थ—प्रणय=प्रेम। प्रभा=प्रकाश। सौन्दर्य जलधि=सुन्दरता का सागर। गरल=विष। अबोध=मूर्ख। परिणय=वैवाहिक सम्बन्ध। राग-भाव=स्वार्थ से भरी हुई भावना। मानस जलनिधि=हृदय रूपी समुद्र। क्षुद्र यान=तुच्छ नौका।

अर्थ—काम मनु से कहता है कि हे मनु ! श्रद्धा ने अपना वह हृदय तुम्हें समर्पित कर दिया था जो प्रेम से पूर्ण और सरल था तथा जिसमें उसके जीवन का—नारी-जीवन का—स्वाभिमान भरा हुआ था, जिसमें चेतनता अपने शांत सात्विक प्रकाश से ज्योतित थी। किन्तु तुमने उसके हृदय के इन गुणों को नहीं देखा। तुम तो उसकी सुन्दर जड़ देह की सुन्दरता पर ही रीझकर रह गये। श्रद्धा का जीवन उस सुन्दरता में सागर के समान था, जिसमें अमृत और विष दोनों थे, पर तुमने उसमें से केवल विष को ही ग्रहण किया। तुम अत्यन्त मूर्ख हो और अपनी इस मूर्खता को तुम कभी समझ भी नहीं पाये हो। जिस बात को विवाह सम्बन्ध पूरा करता, उससे तुम अपने-आप दूर चले आये। अपने स्वार्थ में डूब कर तुम तो केवल यही सोचते रहे कि 'कुछ मेरा हो' अर्थात् संसार के सभी प्राणी मेरे अधिकार को मानकर मेरी ही सुख-सुविधा का ध्यान रक्खें। तुम्हारी यह स्वार्थ भरी भावना संकुचित है, जो तुम्हें पूर्णता का बोध प्राप्त करने नहीं देती। स्वार्थ भरी इस तुच्छ नौका से श्रद्धा के विशाल सागर के समान अथाह हृदय का पार पाना असम्भव ही था।

विशेष—रूपक अलंकार।

हाँ, अब······प्रजातन्त्र।

शब्दार्थ—कलुष=पाप, अवगुण। तंत्र=विचार। द्वन्द्वों का=विरोधी भावों का। शाश्वत रहता=सदैव रहता। यंत्र=निश्चित सिद्धान्त। प्रणय-

प्रकाश=प्रेम का प्रकाश। भ्रम तम में=भ्रांति के अन्धकार में। प्रवर्त्तन=प्रारम्भ। तव=तेरा।

अर्थ—काम मनु से कहता है कि तुम स्वयं स्वतन्त्र बने रहने के लिए अपना पाप दूसरों के ऊपर डाल रहे हो। तुम्हारा यह विचार बड़ा ही विलक्षण है। यह एक निश्चित सिद्धान्त है कि हृदय में सदैव विरोधी भावों की उत्पत्ति होती रहती है। ये विरोधी भाव साथ-साथ इसी प्रकार रहते हैं, जिस प्रकार फूल और काँटे, परन्तु तुमने तो अपनी स्वार्थमयी इच्छा के वशीभूत होकर श्रद्धा के जीवन से उसके दोष रूपी काँटों को ही ग्रहण किया, उस जीवन-दान करने वाली आग से तुमने प्रेम का प्रकाश नहीं लिया। तुमने दुःख और वासना को ही अपनी भ्रांति के अन्धकार के कारण प्राथमिकता दी है; अर्थात् अज्ञान के वश होकर तुम तो दुःख और वासना को ही अपनाते रहे हो। अब तुम जिस प्रजातन्त्र की स्थापना करना चाहते हो, वह सदैव शाप से पीड़ित रहेगा और संसार की नियामिका शक्ति तुम्हारे प्रजातंत्र को इस प्रकार घुमाती रहेगी, जिस प्रकार मशीन पहिये को घुमाती है।

विशेष—रूपक अलंकार।

यह अभिनव······संकुचित दृष्टि।

शब्दार्थ—अभिनव=नवीन। मानव प्रजा-सृष्टि=मानव-समाज। द्वयता=भेद-भाव। वर्णों की=ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चार वर्णों की। करती रहे वृष्टि=निर्माण करती रहे। विनष्टि=नाश। अनिच्छित=न चाहा हुआ। वक्षस्थल की जड़ता=हृदय की मूर्खता। तुष्टि=सन्तोष।

अर्थ—काम मनु को शाप देते हुए कहता है कि हे मनु! तुम्हारे द्वारा रचित यह नवीन मानव-समुदाय अर्थात् नवीन सृष्टि सदा भेद-भाव में लगी रहेगी और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा क्षूद्र इन चार वर्णों का निर्माण करती रहेगी। वह सदा अनजान समस्याएँ बनाती रहेगी और उनमें उलझकर वह अपना ही नाश करती रहेगी। उनमें अनंत पारस्परिक संघर्ष चलेगा, जिससे एकता नष्ट हो जायेगी और आपस में भाँति-भाँति के भेद बढ़ जायेंगे। वे लोग जिस वस्तु की इच्छा करेंगे, वह तो उनसे दूर रहेगी, अर्थात् प्राप्त न हो सकेगी और जिस वस्तु को नहीं चाहेंगे, वह उन्हें मिलेगी, जो उनके दुःख और खेद को बढ़ाने वाली होगी। उन लोगों के हृदय में मूर्खता का वह आवरण

पड़ा हुआ होगा, जिसके कारण न तो वे स्वयं को पहिचान सकेंगे और न अन्य को। इसीलिए वह समाज आपस में संघर्ष करता हुआ ही आगे बढ़ेगा। चाहे उन्हें सब कुछ मिल जाये, किन्तु फिर भी उनकी सन्तुष्टि न हो सकेगी और उनकी संकुचित दृष्टि उन्हें सदैव दुःख देती रहेगी।

अनवरत उठे······पतंग।

शब्दार्थ—अनवरत=लगातार। शैल शृंग=पर्वत की चोटियाँ। जीवन-नद=जीवन रूपी नदी। सन्तप्त=दुःखी। स्वजनों का=निकट सम्बन्धियों का। श्याम अमा=अंधकार वाली अमावस्या। दारिद्र-दलित=दरिद्रता से सताई हुई। शस्य-श्यामला=हरी-भरी। रमा=लक्ष्मी। तृष्णा-ज्वाला=लालसा की आग।

अर्थ—मनु को शाप देते हुए काम कहता है कि हे मनु! तुम्हारी प्रजा के हृदय में लगातार कितनी ही इच्छाएँ उत्पन्न होंगी, किन्तु वे अपूर्ण रहकर निराशा के आँसुओं से इसी प्रकार आच्छादिन रहेंगी, जिस प्रकार पर्वत की चोटियाँ बादलों से घिरी रहती हैं। उनका जीवन बरसाती नदी की भांति अनेक प्रकार की लालसाओं से परिपूर्ण होगा और जिस प्रकार वह नदी अपने वेग के कारण कोलाहल करती हुई बहती है, उसी प्रकार उसका जीवन भी पीड़ा से व्याप्त होकर हाहाकार करता रहेगा। उनके जीवन में लालसाएँ इसी प्रकार उमड़ेंगी, जिस प्रकार वसन्त ऋतु में प्रकृति का सौन्दर्य उमड़ पड़ता है, किन्तु वे पतझड़ की भाँति सूखकर बिखर जायेंगी। प्रत्येक व्यक्ति के मन में सदा नये-नये सन्देश उत्पन्न होते रहेंगे, जिसके कारण वे हमेशा दुःखी और डर से भरे हुए रहेंगे। निकट सम्बन्धियों के मध्य में सदा विरोध फैलेगा, जो इस प्रकार भयावह होगा, जिस प्रकार अंधकार से भरी हुई अमावस्या की रात का अंधकार होता है। यह प्रकृति रूपी लक्ष्मी धन-धान्य से हरी-भरी होकर भी दरिद्रता से सताई जाकर बिलखा करेगी। दुःखों में पड़कर मनुष्य इतने अस्थिर चित्त होंगे कि वे इन्द्रधनुष की भाँति कितने ही रंग बदलते रहेंगे। वे लालसा की ज्वाला में इसी प्रकार तड़प-तड़प कर मरते रहेंगे, जिस प्रकार शलभ दीपक की लौ में जलता है!

विशेष—परम्परित रूपक और उपमा अलंकार है।

वह प्रेम······हार जीत।

शब्दार्थ—पुनीत=पवित्र। आवृत्त=ढका हुआ, परिपूर्ण। मंगल रहस्य=छिपी हुई कल्याण की भावना। संसृति=सृष्टि। आकांक्षा-जलनिधि=अभिलाषा रूपी समुद्र। रक्त=डूबी हुई। राग-विराग=प्रेम और द्वेष। सद्भाव=उचित मेल-जोल।

अर्थ—काम मनु को शाप देता हुआ कहता है कि हे मनु! तुम्हारी प्रजा में पवित्र प्रेम न रहे। सभी लोग अपने-अपने स्वार्थों से परिपूर्ण हों और किसी के भी हृदय में कल्याण की भावना छिपी न रहे। सभी लोग परस्पर सौहार्द्र प्रदर्शित करते हुए संकोच करें तथा डरें। समूची सृष्टि विरह के दुःख से भरी हुई हो और दुःख भरे गीत गाते-गाते ही उनका जीवन बीते। उस प्रजा की अभिलाषाओं का कोई ओर-छोर न हो, वे उसी प्रकार अनन्त दिखाई दें जिस प्रकार क्षितिज को छूता हुआ सागर अपार दिखाई देता है। वह सदा निराशा में डूबी रहे। तुम भी सैंकड़ों में बंटकर सब से प्रेम या द्वेष करोगे। मस्तिष्क हृदय के विरुद्ध हो जायेगा और दोनों में कोई उचित मेल-जोल नहीं रह जायेगा। जब मस्तिष्क हृदय को चलने के लिए कहेगा तो वह उसका आदेश न मानकर विकल होकर और कहीं चला जायेगा। उनका सदा वर्तमान काल रो-रोकर बीतेगा और अतीत केवल एक सुन्दर स्वप्न बनकर रह जायेगा। वह हार और जीत के झोटों में सदैव झूलता रहेगा, अर्थात् उसके मन में भीषण संघर्ष निरन्तर चलता रहेगा।

विशेष—'आकांक्षा-जलनिधि' में निरंग रूपक अलंकार है।

संकुचित······भरी मुक्ति।

शब्दार्थ—अमोघ—अचूक। अपूर्ण अहंता=तुच्छ अहंकार। रागमयी-सी=ममता से भरी हुई-सी। महाशक्ति=विराट् शक्ति। व्यापकता=मनुष्य की व्यापक शक्ति। कर्तव्य=कार्य। नित्यता=अखंडता।

अर्थ—काम मनु को शाप देता हुआ कहता है कि तुम्हारी प्रजा की असीम और अचूक शक्ति भी संकुचित बन जायेगी जिसके कारण भेद-भाव से भरी हुई भक्ति मनुष्य के जीवन को बाधाओं से भरे हुए मार्गों पर ले जायेगी। इसके साथ-साथ ही, मनुष्य अपने तुच्छ अहंकार के कारण उस विराट् शक्ति को ममता से भरी हुई-सी तुच्छ शक्ति मानेगा, अर्थात् उसका निरादर करेगा और संसार की नियामिका शक्ति से प्रेरित होकर उसके हृदय में स्थित व्यापक एवं

असीम शक्ति भी उसे अपनी सीमाओं में बंद एवं सीमित सी दिखाई देगी। वह थोड़ा ज्ञान प्राप्त कर लेने पर ही अपने को सर्वज्ञ समझने लगेगा और इसी अल्प ज्ञान के आधार पर वह काव्य-रचना की ओर प्रवृत्त होगा। सारी ललित कलाओं को वह इस प्रकार चित्रित करेगा कि वे छाया के समान नश्वर और क्षण भंगुर होंगी। उसके हृदय से जीवन और जगत् की व्यापकता एवं अखंडता-विषयक भावनाएँ लुप्त हो जायेंगी और वह विकास की अपेक्षा ह्रास की ओर बढ़ेगा। उस समय तुम्हारी भी यह स्थिति होगी कि तुम बुराई और भलाई में किसी प्रकार का अन्तर नहीं देख सकोगे, अर्थात् तुम्हारा उचितानुचित का ज्ञान नष्ट हो जायेगा और तुम्हारे सामने तर्क से भरी हुई युक्तियाँ भी विफल सिद्ध होंगी।

विशेष—'नश्वर छाया-सी' में उपमा अलंकार।

जीवन सारा......हो अशुद्ध।

शब्दार्थ—रक्त अग्नि की वर्षा में=युद्ध में बहे हुए खून और आग के समान जलाने वाली पीड़ाओं की वर्षा में। आवृत्त किये रहो=घेरे रहो। कृत्रिम=बनावटी। दंभ-स्तूप=अहंकार का टीला। संसृति=संसार। नव-निधि=नव निधियों के समान मूल्यवान् हृदय की भावनाएँ। प्रपंच=कार्य।

अर्थ—काम मनु को शाप देता हुआ कहता है कि सारा जीवन ही युद्ध बन जाये, अर्थात् जीवन आन्तरिक और बाह्य संघर्षों से परिपूर्ण हो जाये। उस युद्ध में बहे हुए खून और आग के समान जलाने वाली पीड़ाओं की वर्षा में जीवन के सभी शुद्ध भाव नष्ट हो जायें, तुम अपनी ही शंकाओं से व्याकुल होकर अपने ही विरुद्ध बन जाओ, अर्थात् तुम्हारा आत्म-विश्वास नष्ट हो जाये और तुम निरन्तर अपने ही उत्पन्न किये हुए संघर्षों में उलझकर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ बने रहो। तुम अपने असली रूप को छिपाकर अपने बनावटी रूप को प्रकट करो और इस प्रकार दूसरों को अपने इस बनावटी रूप से घेरे रहो। पृथ्वी के समतल धरातल पर ऊँचा और चलता-फिरता अहंकार का टीला बन जाये, अर्थात् पृथ्वी के सभी लोग अत्यन्त अहंकारी बनकर अपने ही अहंकार में डूबे रहें। तुमने उस श्रद्धा को धोखा दिया है, जो इस संसार का व्यापक रहस्य और शुद्ध रूप से विश्वासमयी है और जिसने नव निधियों के समान सुख देने वाली अपने हृदय की भावनाओं को तुमको अर्पित कर दिया था। श्रद्धा

को धोखा देने के कारण तुम अपने वर्त्तमान सुखों से तो वंचित रहोगे ही, भविष्य में भी तुम अटके हुए रहोगे, अर्थात् तुम्हारा भविष्य भी संदिग्ध बना रहेगा। तुम्हारे सारे कार्य अशुद्ध अर्थात् पाप से भरे हुए और दुःख देने वाले होंगे।

तुम जरा मरण······सदैव श्रांत।

शब्दार्थ—जरा-मरण=वृद्धावस्था और मृत्यु। चिर=अत्यधिक। वंचक =धोखा देने वाला। ग्रह-रश्मि-रज्जु=नक्षत्रों की किरण रूपी रस्सी। अतिभारी=स्वेच्छाचारी। वंचना=धोखा। बुद्धि-विभव=बौद्धिक उन्नति। भ्रांत=भटके हुए। श्रांत=थके हुए।

अर्थ—काम मनु को शाप देता हुआ कहता है कि हे मनु! तुम वृद्धावस्था और मृत्यु का भय सोच-सोचकर अत्यधिक अशांत बने रहोगे। देव होने के कारण तुम अब तक जिस मृत्यु को जीवन का अनंत परिवर्त्तन मानते थे, उसे ही तुम अब जीवन का अनिवार्य अन्त समझकर व्याकुल होते रहोगे और इस प्रकार तुम जीवन की अमरता को भूल जाओगे, अर्थात् साधारण मानव की भाँति तुम्हें भी वृद्धावस्था और मृत्यु के कष्ट भोगने पड़ेंगे। हे मनु! तुम सदैव दुःखों के विषय में सोचते हुए दुःखों की मूर्ति बन जाओगे और श्रद्धा-विहीन होकर अत्यन्त अधीर बने रहोगे। मनुष्य-सृष्टि नक्षत्रों की किरण रूपी रस्सी से अपने भाग्य को बाँधकर उसका अंधानुकरण करेगी, अर्थात् सभी मनुष्य भाग्यवादी बनकर अकर्मण्य बन जायेंगे। एक श्रद्धालु व्यक्ति ही इस रहस्य को जानता है कि यह लोक कल्याण की भूमि है, किन्तु तुम्हारी प्रजा श्रद्धा-विहीन होकर इस ज्ञान से वंचित रहेगी। वह स्वेच्छाचारी बनकर इस संसार को मिथ्या मानेगी और परलोक के सुख की आशा में स्वयं को छलती रहेगी। वह अपना बौद्धिक विकास होने के कारण बुद्धि के नियंत्रण में आशाओं को भी निराशाओं में परिणत करके सदैव भटकती रहेगी और थकी हुई-सी बनकर अपने मार्ग पर चलती रहेगी, अर्थात् उसके जीवन में आशा और उत्साह की उमंग न होगी।

विशेष—'ग्रह-रश्मि-रज्जु' में रूपक और 'आशाओं में निराश' में विरोधा-भास अलंकार है।

अभिशाप प्रतिध्वनि······भी न।

शब्दार्थ—अभिशाप प्रतिध्वनि = काम के शाप की वाणी। लीन = शांत। अन्तस्तल = हृदय। महामीन = बड़ी मछली। मरुत = वायु। फेनोमय = फेन के समान। तन्द्रालस = आलस से ऊँघता हुआ। विजन प्रान्त = निर्जन सारस्वत प्रदेश। रजनीतम = रात का अन्धेरा। पुँजीभूत सदृश = पुँजी के समान। अदृष्ट = भाग्य। काली छाया = अशुभ प्रभाव। अवशिष्ट = शेष।

अर्थ—जिस प्रकार कोई बड़ी मछली समुद्र के ऊपर प्रकट होकर तुरन्त उसी के तल में जाकर छिप जाती है उसी प्रकार काम के शाप की वह तीक्ष्ण वाणी अचानक आकाश में लीन हो गई। और जिस प्रकार बड़ी मछली के डुबकी लगाने पर समुद्र में लहरों के साथ झाग उठने लगता है उसी प्रकार आकाश में पवन के कोमल झोंकों के साथ-साथ तारों के समूह मन्द-मन्द गति से टिमटिमाते हुए दिखाई देने लगे। उस समय सारा सारस्वत प्रदेश नीरव और चुपचाप था जैसे वह समूचा निर्जन प्रान्त आलस से ऊँघ रहा था। रात्रि के अन्धकार के समूह के समान मनु बेचैन होकर सांस ले रहे थे और सोच रहे थे कि वही काम आज मेरा फिर भाग्य बन कर आया है जिसने पहले मेरे जीवन पर अशुभ प्रभाव डाल कर मुझे श्रद्धा को अपनाने के लिए विवश किया था। उसी ने आज फिर से मेरा भविष्य लिख दिया है अब तो मुझे अनन्त दुःख उठाने पड़ेंगे। इसके अतिरिक्त और कोई साधन है भी नहीं।

विशेष—'फेनोमय तारागण' उपमा और 'तन्द्रालस था विजन प्रान्त' में मानवीकरण अलंकार है।

करती सरस्वती······सुसम्वाद।

शब्दार्थ—मधुरनाद = मीठी आवाज। श्यामल = हरी भरी। निर्लिप्त भाव सी = विकार हीन भावों के समान। अप्रमाद = शान्तिपूर्वक। उपल = पत्थर। कर्म निरन्तरता प्रतीक = कर्म करने के लिए प्रेरणा देने वाली मूर्ति। हिम-शीतल = बर्फ के समान ठंडा। कूल = किनारा। आलोक = प्रकाश। अरुण किरणों का = सूर्य की किरणों का।

अर्थ—सवेरा होने वाला था। इसलिए मनु सारस्वत प्रदेश के खण्डहरों को छोड़कर आगे बढ़े। जब वे सरस्वती नदी के किनारे पहुँचे तो उन्होंने देखा कि सरस्वती मधुर ध्वनि करती हुई हिमालय की हरी-भरी घाटियों में विकारहीन शुद्ध भावों के समान शांतिपूर्वक बह रही थी। उस नदी के किनारे

बहुत से तिरस्कृत पत्थर पड़े हुए थे, जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो नदी के मन में किसी प्रकार की चिन्ता या खिन्नता नहीं है, इसीलिए शोक नामक भाव निष्ठुर एवं जड़ बनकर नदी के किनारे पड़े हुए हैं। नदी की धारा मधुर गान करती हुई प्रसन्नता के साथ आगे बढ़ती जा रही थी जो प्राणियों को सदैव कर्म करने की प्रेरणा देती हुई-सी जान पड़ती थी और जिसमें अनन्त ज्ञान भरा हुआ था। उस नदी की बर्फ के समान शीतल लहरें रह-रहकर किनारों से टकरा रही थीं। उन लहरों पर प्रातःकालीन सूर्य की किरणें अपना प्रकाश बिखेर रही थीं। सरस्वती का यह सौन्दर्य अद्भुत दिखाई देता था। सरस्वती नदी अपना रास्ता बनाकर अबाध गति से चलती हुई और सुन्दर कर्मों का सन्देश देती हुई, पथिक के समान बढ़ी चली जा रही थी।

विशेष—'निर्लिप्त भाव-सी' में उपमा अलंकार, 'सब उपल उपेक्षित पडे रहे जैसे वे निष्ठुर जड़ विषाद' में वस्तूत्प्रेक्षा और 'निज निर्मित पथ का पथिक' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

प्राची में······तम विराग।

शब्दार्थ—प्राची=पूर्व दिशा। राग=लालिमा। मंडल=लालिमा का घेरा। पराग=पीला प्रकाश। परिमल=सुगन्धि, किरणें। श्यामल कलरव=हरी-भरी डालों पर सोये हुए पक्षी का मधुर स्वर। आलोक रश्मि=प्रकाश की किरणें। आन्दोलन=हलचल। अमन्द=तीव्र। वितरने को=बांटने को। मरन्द=मकरन्द, पुष्परस। रम्य फलक=सुन्दर चित्रपट। नवल=नवीन। नयन महोत्सव=नयनों को सुख देने वाला वातावरण। अम्लान=खिले हुए। नलिन=कमल। सुस्मित-सा=सुन्दर हँसी के समान। सुराग=मधुर प्रेम। तम विराग=अन्धकार रूपी वैराग्य।

अर्थ—पूर्व दिशा में मधुर लालिमा फैल गई, जिसके मंडल में सुगन्धि से भरे हुए कमल के समान प्रकाश से भरा हुआ सुनहरी सूर्य उदित हो गया। सूर्य की किरणों से जगकर हरी डालियों पर सोये हुए पक्षी मधुर ध्वनि करने लगे। जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो पूर्व दिशा में खिले हुए कमल की मधुर सुगन्धि से आन्दोलित होकर सभी पक्षी उस कमल का गुनगान करते हुए जाग पड़े हों। ऊषा की लालिमा से भरा हुआ प्रभात का समय

ऐसा प्रतीत होता था मानो प्रकाश की किरणों से बना हुआ ऊषा का आंचल हो। उस मधुर वातावरण में प्रातःकालीन मधुर वायु फूलों की सुगन्धि को बाँटने के लिए तीव्र गति से हलचल मचा रही थी। पूर्व दिशा के सुन्दर चित्रपट पर सहसा नए चित्र के समान एक सुन्दर युवती प्रकट हुई, जो नेत्रों को अधिक सुख देने वाले किसी महान उत्सव की प्रतीक जान पड़ती थी और खिले हुए कमल के फूलों की नई माला के समान ज्ञात होती थी। उसके अपार सौन्दर्य से सुशोभित मुख-मण्डल पर सुन्दर मुस्कान छाई हुई थी जो समस्त सृष्टि में मधुर राग को बिखेर रही थी। प्रातःकाल के आलोक के कारण जीवन का अन्धकार रूपी वैराग्य नष्ट हो गया था।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति, विशेषण विपर्यय, रूपक और फलोत्प्रेक्षा अलंकार।

बिखरी अलकें……भरी ताल।

शब्दार्थ—अलकें=बाल। शशि-खंड-सदृश=अर्द्ध चन्द्रमा के समान। पद्म पलाश=कमल के पत्ते। चषक=प्याला। अनुराग-विराग=प्रेम और वैराग्य। मधुप=भौंरा। मुकुल-सदृश=अधखिले फूल के समान। आनन=मुख। वक्षस्थल=हृदय, छाती। संस्मृति=सृष्टि। वसुधा=पृथ्वी। जीवन-रस=जीवन का आनन्द। अवलम्ब=सहारा। त्रिगुण=सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। आलोक वसन=श्वेत वस्त्र। ऊराल=टेढ़ा।

अर्थ—कवि इड़ा के व्यक्तित्व का वर्णन करता हुआ कहता है कि उसके घुँघराले बाल तर्क-समूह के समान परस्पर उलझे हुए थे। उसका ललाट अत्यन्त उज्ज्वल था, जो संसार के मुकुट के समान अर्द्ध चन्द्रमा के समान प्रतीत होता था। उसके दोनों नेत्र कमल के पत्तों से बने हुए दो प्यालों के समान थे, जिनमें से प्रेम और वैराग्य छलक रहे थे। उसका मुख अधखिले फूल के समान था, जिससे निकलती हुई आवाज ऐसी प्रतीत होती थी मानो फूल पर कोई भौंरा गूँज रहा हो। उसकी ऊँची छाती को देखकर ऐसा जान पड़ता था जैसे वह अपने हृदय में संसार के समस्त ज्ञान और विज्ञान को एकत्रित किये हुए हो। उसके एक हाथ में कर्म का पात्र था, जिसमें पृथ्वी पर रहने वाले समस्त प्राणियों के जीवन के आनन्द का भार भरा हुआ था, अर्थात् जिससे सभी लोगों को वास्तविक जीवनानन्द प्राप्त होता है और उसका दूसरा

हाथ विचारों के आकाश को मधुरता तथा निर्ममता के साथ सहारा दे रहा था, अर्थात् केवल विचारों की गहनता थी। उसकी नाभि के समीप स्थित उदर की तीन रेखाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण की तरंगें लहरा रही हों। उसने श्वेत वस्त्र को टेढ़ा करके धारण कर रक्खा था। जिस प्रकार नाचने वाले के चरण ताल के अनुसार आगे बढ़ते हैं, उसी प्रकार इड़ा के चरण भी उसके विचारों के अनुकूल ही आगे बढ़ते थे, इसीलिए उसके चरणों में गति और ताल विद्यमान थी।

विशेष—१. यहाँ कवि ने इड़ा का वर्णन उसे बुद्धि की प्रतीक मानकर किया है। जिस प्रकार बुद्धि के विविध तथा वैषम्यपूर्ण पहलू होते हैं, उसी प्रकार कवि ने इड़ा के व्यक्तित्व में भी विरोधी गुणों का आधान किया है।

२. 'बिखरी अलकें ज्यों तर्क-जाल', 'मुकुट-सा', 'शशि-खंड-सदृश', 'चषक-से' में उपमा और 'विचारों के नभ' में तथा 'त्रिवली थी त्रिगुण तरंगमयी' में रूपक अलंकार है।

३. 'आलोक वसन' में लक्षणलक्षणा शब्दशक्ति है।

नीरव थी……बार-बार।

शब्दार्थ—नीरव=शान्त। प्राणों की पुकार=प्राणों की हलचल। जीवन-सर=जीवन रूपी तालाब। निस्तरंग=तरग-रहित, विचार-शून्य। नीहार=कुहरा। निस्तब्ध=शान्त, चुपचाप। अलस=अलसाती हुई। चंचल बयार=चचल हवा, चंचल इच्छा। मन-मुकुलित कंज=मन रूपी आधा खिला हुआ कमल। मधु बूँदें=पुष्प-रस, मधुर भाव। निस्वन=ध्वनि। दिगंत=पश्चिम दिशा। रुद्ध=रुकना। आलोकमयी स्थिति चेतना=प्रकाश से भरी हुई हँसती-सी चेतना। हेमवती=सुनहरी। तन्द्रा के स्वप्न=जीवन का आलस्य। उजली माया=प्रकाशपूर्ण चेतना। वीचियाँ=लहरें।

अर्थ—इड़ा के वैषम्यपूर्ण एवं दिव्य रूप को देखकर मनु के प्राणों की हलचल शांत हो गई। जिस प्रकार कोई तालाब तरंग रहित होकर शांत हो जाता है, उसी प्रकार मनु का जीवन भी, जीवन में मचलते हुए विविध भाव, शांत हो गये। जिस प्रकार जाड़ों के दिनों में तालाब कुहरे से घिरा रहता है, उसी प्रकार मनु का जीवन भी विविध विरोधी एवं अवसादपूर्ण भावों से घिरा हुआ था। जिस प्रकार शांत तालाब से यह स्पष्ट हो जाता है कि चंचल हवा

नहीं चल रही है, वरन् वह आलस्यवश कहीं सो गई है, उसी प्रकार मनु के जीवन की समस्त मचलती इच्छाएँ शान्त हो गई थीं, इड़ा के दिव्य रूप को देखकर मनु का मन अपने ही विचारों में इस प्रकार लीन हो गया था जैसे तालाब में अध-खिला हुआ कोई कमल का फूल अपने पुष्प-रस को स्वयं ही चुपचाप पी रहा हो। पश्चिम दिशा में पक्षियों की ध्वनि भी सहसा रुक गई थी, अर्थात् चारों ओर निस्तब्ध वातावरण छाया हुआ था। उसे देखकर मनु स्वयं ही सोचने लगे—'ओ, यह कौन है? क्या अपने सुनहरे प्रकाश को फैलाती हुई तथा आलोक के साथ हँसती हुई चेतना ही साकार रूप धारण करके यहाँ आ गई है।' उसी समय मनु के मन का आलस्य दूर हो गया और उन्हें अपने अतीत की धुँधली-सी स्मृति आ गई, जब वे श्रद्धा के संसर्ग से आनन्द के कारण पुलकित रहा करते थे। जिस प्रकार शान्त तालाब में लहरों के सहसा उठ जाने पर तालाब चंचल और सक्रिय हो जाता है, उसी प्रकार अपने बीते जीवन की याद करके मनु का मन भी गत घटनाओं की लहरों में थिरकने लगा। अर्थात् उन्हें बार-बार अपने जीवन की बीती घटनाएँ याद आने लगीं।

विशेष—यहाँ मनु के जीवन की तुलना सरोवर से की गई है। सभी अंगों का उल्लेख है, अतः यहाँ सांग रूपक अलंकार है।

प्रतिभा प्रसन्न······द्वार खोल!

शब्दार्थ—प्रतिभा=ईश्वर के द्वारा दी गई असाधारण बुद्धि। नासिका= नाक। स्मित=हँसी। भौतिक हलचल=सांसारिक विपत्तियाँ। मोल= लक्ष्य।

अर्थ—जब इड़ा ने मनु को देखा तो वह ईश्वर के द्वारा दी गई असाधारण बुद्धि से चमकते हुए अपने मुख को स्वाभाविक ढंग से खोलती हुई बोली कि मेरा नाम इड़ा है। लेकिन यहाँ पर घूमने वाले तुम कौन हो? इस प्रश्न को करते समय इड़ा की पतली तथा नुकीली नाक के छिद्र फड़कने लगे और उसके अधरों पर मनोहर हँसी बिखर गई। इड़ा का प्रश्न सुनकर मनु ने उत्तर दिया—हे बाले! सुनो, मेरा नाम मनु है। मैं इस संसार का पथिक हूँ और अत्यन्त दुःखों का सामना कर रहा हूँ। मनु के जीवन की कथाओं को जानकर इड़ा ने कहा कि हे पथिक! तुम्हारा स्वागत है। तुम मेरा यह उजड़ा हुआ

सारस्वत प्रदेश देख रहे हो। यह मेरा ही देश है, अर्थात् मैं ही इस देश की शासिका हूँ। यह देश सांसारिक उपद्रवों के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो गया है। मैं अभी तक इसमें इसी आशा से पड़ी हुई हूँ कि कभी तो मेरे भी अच्छे दिन आयेंगे और यह उजड़ा हुआ प्रदेश फिर से धनधान्य सम्पन्न बन जायेगा। यह सुनकर मनु ने कहा कि हे देवि ! मेरे यहाँ आने का कारण यह है कि मैं इस जीवन का यथार्थ लक्ष्य जानना चाहता हूँ। अतः मेरे लिये संसार के भविष्य का द्वार खोलकर मुझे मेरा मार्ग बताओ।

इस विश्व······दिया डाल।

शब्दार्थ—कुहर = अन्तरिक्ष। इन्द्रजाल = जादू-टोना। विद्युत = बिजली। नखत माल = नक्षत्र-समूह। महाकाल = शिव, परम सत्ता। सृष्टि = निर्माण का कार्य। अविरत = लगातार, सदैव। विषाद = दुःख। चक्रवाल = झंझावात। पट = परदा।

अर्थ—मनु इड़ा से कहते हैं कि जिस शिव ने अन्तरिक्ष में अपना जादू-टौना फैलाकर बड़े-बड़े नक्षत्र-समूह, ग्रह, तारा-समूह और बिजली की रचना की है, वही विनाश का अत्यन्त भयंकर रूप धारण करके समुद्र की भयंकर लहरों के समान इस संसार में क्रीड़ा किया करता है, अर्थात् संसार का नाश किया करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस निष्ठुर शिव ने इस सृष्टि की रचना पृथ्वी के छोटे-छोटे प्राणियो को डराने के लिए ही की है। क्या उसकी इस कठोर रचना में सदेव केवल विनाश की ही जीत होगी ? अर्थात् सृष्टि का विध्वंस ही होता रहेगा। फिर भला मूर्ख मानव उसके इस विध्वंस कार्य को क्यों निर्माण का कार्य समझता आ रहा है। इस सृष्टि का स्वामी कोई ऐसा है, जिस तक दुखियों की पुकार नहीं जाती, अर्थात् जो दुखियों के दुःख को देखकर द्रवित नहीं होता। यहाँ पर सदैव दुःख का झंझावात सुख के घोंसलों को घेरे रहता है। न जाने किसने यह परदा डाल दिया है, जिसके कारण संसार अपने वास्तविक स्वरूप को भुलाये रहता है।

विशेष—१. इस पद में शैव-दर्शन का प्रभाव स्पष्ट है। शैव-दर्शन में शिव को सृष्टि का संहारक बताया गया है, जो सागर ही लहरों के समान इस संसार से क्रीड़ा क्रिया करता है।

२. 'तरंग-सा' में उपमा और 'महाकाल' में परिकरांकुर अलंकार है।

शनि का······रोक।

शब्दार्थ—शनि=शनिग्रह जो अशुभ माना जाता है। सुदूर=अत्यन्त दूर। नील-लोक=शोक से भरा हुआ संसार। ओक=स्थान। गंतव्य=लक्ष्य। कोक=लगन।

अर्थ—मनु इड़ा से कहते हैं कि यद्यपि शोक से भरा हुआ शनिग्रह का संसार इस संसार से अत्यन्त दूर है, तथापि उसकी छाया के रूप में फैला हुआ शोक से भरा नीला आकाश पृथ्वी के ऊपर-नीचे सर्वत्र शोक को विकीर्ण करता रहता है। सुना जाता है कि इससे भी परे, बहुत दूर, प्रकाश का विशाल स्थान है, अर्थात् जहां सर्वत्र सुख ही सुख है, परन्तु क्या ईश्वर इस सुख भरे लोक की एक किरण का प्रकाश देकर मेरे जीवन की स्वतन्त्रता में मेरा सहायक बन सकता है और मुझे इस संसार के झंझटों से छुटकारा दिलाने का कोई उपाय कर सकता है? मनु की इन बातों को सुनकर इड़ा कहती है कि ईश्वर चाहे जैसा हो, पर वह तुम्हारी सहायता क्यों करेगा? वास्तविकता तो यह है कि मनुष्य पागल बनकर उसके ऊपर निर्भर रहता है, जबकि उसे नहीं रहना चाहिए। मनुष्य की मनुष्यता इसी में है कि वह अपनी दुर्बलताओं को सम्हालता हुआ अपने लक्ष्य की ओर अपने कदम बढ़ाये। अतः हे मनु! तू किसी के भी सम्मुख कृपा के लिए अपने हाथ न फैला, बल्कि अपने पैरों से चल, क्योंकि जिसको चलने की लगन लगी रहती है, उसे कभी भी कोई रोक नहीं सकता।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति, उपमा और रूपक अलंकार है।

हाँ तुम ही······रहे छाय।

शब्दार्थ—सहाय=सहायक। रमणीय=सुन्दर। शोधक=शोध करने वाला, जानने वाला। पटल=परदा, रहस्य। परिकर कसकर=कमर कस कर। क्षमता=शक्ति। निर्णायक=निर्णय करने वाले।

अर्थ—इड़ा मनु से कहती है कि हे मनु! तुम स्वयं ही अपने सहायक हो। मनुष्य को सदैव बुद्धि के आधीन रहना चाहिए, क्योंकि यदि कोई मनुष्य बुद्धि के आदेश को ठुकराता है तो फिर उसके लिए शरण ग्रहण करने के लिए कोई भी स्थान नहीं रहता। जितने भी विचार और संस्कार हैं, उनके शुभ-अशुभ का निर्णय के केवल बुद्धि से ही हो सकता है, क्योंकि इसके अतिरिक्त इनका

और कोई उपाय नहीं है। यह प्रकृति अत्यन्त सुन्दर और सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से भरी हुई है, किन्तु इन ऐश्वर्यों को जानने वाले का और इनका उपभोग करने वाले का यहाँ सदैव प्रभाव रहा है। तुम पुरुष हो, इसलिए कर्मशील बनकर प्रकृति के इस रहस्य को खोलने के लिए कमर कसकर तैयार हो जाओ और प्रकृति के सभी पदार्थों पर अपना शासन रखते हुए विश्व पर शासन करो तथा अपनी शक्ति को बढ़ाओ। इस संसार में कहाँ विषमता है और कहां रूपता है, तुम ही इसका निर्णय करने वाले बनो। तुम जड़ पदार्थों को चेतन बनाओ और विज्ञान ही इसके लिए सहज और साधन सम्पन्न उपाय है। इससे तुम्हारा यश सारे संसार में आ जायेगा।

हंस पड़ा······सकल शोक।

शब्दार्थ—शून्य लोक=सूना संसार। क्रंदन=तड़प। कोक=चकवा। प्राची=पूर्व। मलयाचल की बाला=दक्षिण पवन। उन्निद्र=विकसित। नोक-झोंक=छेड़छाड़।

अर्थ—जब इड़ा के कहने पर मनु ने सारस्वत प्रदेश को पुनः बसाने का भार अपने कन्धों पर ले लिया तो उस समय आकाश का सूना संसार भी हँस पड़ा, अर्थात् आकाश की शून्यता नष्ट हो गई और उसमें सुखद वातावरण दिखाई देने लगा। आकाश के इसी सूनेपन के भीतर कितने ही जीवन-मरण और शोक से उजड़ चुके थे। कितने ही हृदयों का मधुर मिलन बिछुड़े हुए चकवा की भाँति तड़पकर चीत्कार कर चुका था अर्थात् कितने ही प्रेमी और प्रेमिकाएँ मिलकर बिछुड़ चुके थे। मनु ने सारस्वत प्रदेश को बसाने का विषम भार अपने ऊपर ले लिया था। इस दृश्य को देखकर आकाश में पूर्व दिशा में उदित ऊषा भी हँस पड़ी थी और नर के द्वारा संचालित राज्य कार्यों को देखने के लिए दक्षिण की चंचल हवा भी आश्चर्य से चल पड़ी थी। ऊषा की लाली से प्रकृति के कपोलों की लालिमा देखकर तारों का समूह भी मतवाला होकर अपना सर्वस्व चढ़ाने लगा; अर्थात् धीरे-धीरे तारे भी छिपने लगे। विकसित कमल-बनों में भौंरों की छेड़छाड़ होने लगी और पृथ्वी अपना सारा शोक भूल-कर आनन्द से पुलकित हो उठी।

विशेष—'मधुर मिलन क्रन्दन करते' में विशेषण-विपर्यय, 'वन विरह-कोक' में रूपक और 'मलयाचल की बाला' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

जीवन-निशीथ······खुला द्वार ।

शब्दार्थ—जीवन-निशीथ=जीवन का अंधकार। मुख आवृत कर=मुँह छिपाकर। निहार=देखकर। मनोभाव=मन के भाव। विहंग=पक्षी। अवलम्ब=सहारा। विकल्प=अस्थिर विचार। संकल्प=स्थिर विचार।

अर्थ—जब इड़ा ने मनु को सारस्वत प्रदेश का भार दे दिया तो मनु इड़ा से कहने लगे कि हे इड़ा ! तुमको देखकर मेरे जीवन का अंधकार उसी प्रकार भाग गया है, जिस प्रकार ऊषा के आने पर रात्रि का अंधकार मुँह छिपाकर सुदूर क्षितिज में छिप जाता है। तुम मेरे जीवर में अत्यन्त उदार बनकर ऊषा की भाँति आई हो। जिस प्रकार ऊषा के आने पर सोये हुए पक्षी मधुर ध्वनि करते हुए जग पड़ते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे सम्पर्क से मेरे अकर्मण्यभाव कर्मशील बनकर जग पड़े हैं। मेरी भावनाएँ इस प्रकार नवीन उत्साह से भरकर नाच रही हैं, जिस प्रकार ऊषाकाल में प्रकाश की किरणें नाचा करती हैं। जब मैंने अन्य बातों का सहारा छोड़कर बुद्धिवाद को अपनाया तो मैं स्वाभाविक रूप से अपने गन्तव्य की ओर बढ़ा। तुम्हें प्राप्त करके मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो तुम्हारे रूप में स्वयं बुद्धि मुझे मिल गई है। अब मैं चाहता हूँ कि मेरे अस्थिर विचार स्थिर हो जायें और मेरे जीवन में व्यापक कर्मण्यता आ जाये, जिससे मुझे सभी सुख साधन आसानी से प्राप्त होते रहें।

विशेष—१. ऋग्वेद में इड़ा को यूथ-माता 'इड़ा यूथस्य माता', मनुष्य की चेतना 'इड़ा मनुष्यदिह चेतमन्ती' और मनुष्य की शासिका 'इड़ामकृण्वन् मनुष्य स्मशासनीम्' कहा गया है। इस पद में इसी परम्परा का निर्वाह है।

२. 'जीवन-निशीथ का अंधकार' में रूपकातिशयोक्ति, 'किरणों की सी तरंग' में उपमा अलंकार है।

स्वप्न

कथासार—जब मनु श्रद्धा को छोड़कर चले गये तो श्रद्धा हिमालय की उस विस्तृत गुफा में अकेली ही अपने विरह के दिन अत्यन्त उदास और दुखी रहकर काटने लगी। विरह-दुःख के कारण उसके शरीर की सारी कांति क्षीण हो गई। उस समय वह मकरन्दहीन पुष्प, रंगहीन चित्र, ज्योतिहीन चन्द्रमा, प्रकाशहीन सन्ध्या और मुरझाए हुए कमल के समान दिखाई देती थी। उसे क्षण-भर को भी चैन नहीं मिल रहा था। अपने दुःख को भुलाने के लिए कभी वह आकाशगंगा से पूछती कि इस जीवन में सुख अधिक है या दुःख! वह फिर भी अपना दुःख भूल न पाती। कभी वह यह सोच कर अपने मन को सान्त्वना देने का प्रयास करती कि चाहे मनु जहाँ हो, मुझे इसी में सुख है कि मैं अकेली इस कुटिया में शांति के साथ विरहाग्नि में जलती रहूं, और मेरी यह दीपशिखा कभी भी न बुझे। प्रकृति का समूचा सौन्दर्य उसके हृदय को अत्यधिक पीड़ा देता, किन्तु वह कड़ा हृदय करके अपने असीम दुःख को सहन करने का प्रयास करती। पुरानी बातें, मधुर मिलन के विगत स्वप्न, उसके विचारों में मँडराने लगते, किन्तु वह दृढ़ता से उनका दुःख भी सहन कर लेती।

एक दिन संध्या के समय, अपनी कुटिया के सामने बैठी हुई श्रद्धा इसी प्रकार के विचारों में लीन थी। तभी उसका पुत्र मानव माँ-माँ चिल्लाता हुआ आया। वह धूल-धूसरित था। उसने आकर श्रद्धा को पकड़ लिया। श्रद्धा ने अनमने भाव से उसे दुत्कारा—चल हट, तू भी अपने पिता की भाँति किसी दिन मुझसे रूठकर दूर भाग जायेगा। मानव इस मधुर दुत्कार को सुनकर कुटिया के अन्दर जाकर सो गया। श्रद्धा का वात्सल्य उमड़ पड़ा। उसने सोते हुए मानव का चुम्बन ले लिया, पर इससे उसकी विरह-वेदना में वृद्धि ही हुई।

थोड़ी देर बाद, श्रद्धा भी अपने पुत्र के पास आकर सो गई। उसने स्वप्न

में देखा कि मनु इड़ा के पास पहुँच गये हैं और इड़ा के इशारे पर ही सारे कार्य कर रहे हैं। उन्होंने इड़ा के कहने से उसका उजड़ा हुआ। सारस्वत प्रदेश फिर से बसा दिया है। उसमें बड़े-बड़े प्राचीर बनवाये गये हैं जहाँ वर्षा, धूप शीत आदि से बचने के लिए सुन्दर व्यवस्था की गई है। सभी लोग अपने-अपने कार्यों में नवीन उत्साह लेकर लग गये हैं। किसान अत्यधिक प्रसन्न होकर अपने खेतों में हल चला रहे हैं। स्वर्णकार सोने-चांदी को गलाकर विविध प्रकार के आभूषण तैयार कर रहे हैं। लोग मृगया से लौटकर सुन्दर-सुन्दर उपहार ला रहे हैं। मालिनें बागों में से खिले हुए फूलों को चुनकर उनके रंगों से तथा रसों से अनेक प्रकार के अंगराग के प्रसाधन बना रही हैं। नगर में सर्वत्र संगीत की मधुर ध्वनियाँ थिरक रही हैं। भावना यह है कि वह नगर पूर्णतः सुख और सम्पत्ति से भरा हुआ है।

श्रद्धा प्रहरियों की आँखें बचाकर राजमहल में घुस गई। उसने देखा कि एक ऊँचे सिंहासन पर मनु विराजमान हैं। साथ इड़ा बैठी हुई है, जो उन्हें मदिरा के प्याले पर प्याले पिला रही है। अर्ध-उन्माद की अवस्था में मनु ने पूछा—इड़े ! क्या तुम्हारे नगर में अभी और कुछ करना शेष रह गया है? इड़ा ने उत्तर दिया—अभी कार्य पूरे कहाँ हुए हैं। क्या सभी साधन अपने वश में कर लिए ? इस पर मनु ने उत्तर दिया कि अभी तक तो मैं अपने हृदय को भी वश में नहीं कर पाया हूँ। यद्यपि मैंने तुम्हारा नगर फिर से बसा दिया है, तथापि मेरा हृदय अभी तक उजड़ा हुआ ही है। इसी आवेश में आकर मनु ने इड़ा का आलिंगन कर लिया। इड़ा का आलिंगन करते ही सारे नगर में क्रांति मच गई। प्रकृति भी क्षुब्ध हो उठी। सारस्वत नगर के निवासी राजनियमों की उपेक्षा करके मनु से इस अपमान का बदला लेने के लिए कटि-बद्ध हो गये। अचानक ऐसी विषम एवं भयानक परिस्थिति देखकर मनु ने राजद्वार बन्द करवा दिया और हृदय में एक प्रकार का आंतक-सा लिए हुए अपने शयनागार में चले गये।

यह विचित्र और भयावह स्वप्न देखकर श्रद्धा कांप उठी। उसकी आँखें खुल गईं। बहुत देर तक वह अपने स्वप्न के विषय में ही सोचती रही और इस प्रकार सोचते-सोचते उसने शेष रात्रि बिता दी।

सन्ध्या अरुण······मँडराती।

शब्दार्थ—अरुण जलज=लाल कमल, छिपता हुआ लाल सूर्य। केसर=पीला पराग, सूर्य की पीली किरणें। तामरस=कमल, सूर्य। कुंकुम=सिंदूर, सन्ध्या की लालिमा। कालिमा=अन्धकार। काकली=मधुर ध्वनि।

अर्थ—कवि सन्ध्या का वर्णन करता हुआ कहता है कि जिस प्रकार कोई नायिका अपने हाथ में लाल कमल का पीला पराग लेकर अब तक अपने मन को बहलाती रही है, वही कमल, मुरझाकर उसके हाथ से गिर पड़ता है और वह अँधेरा होने के कारण उसे खोज नहीं पाती, उसी प्रकार संध्या भी अस्त होते हुए लाल सूर्य की पीली किरणों से अब तक अपने मन को बहलाती रही और अब वह सूर्य प्रकाशहीन होकर न जाने कहाँ जा गिरा, अस्त हो गया। संध्या अँधेरा होने के कारण अब उसको ढूँढ़ भी तो नहीं सकती। अन्धकार के मलिन करों ने क्षितिज के भाल की लालिमा को इस प्रकार मिटा दिया है, जिस प्रकार क्रूर काल किसी सौभाग्यवती नारी के भाल के सिंदूर को देखते-देखते ही पोंछ देता है। इस समय कमल की मुरझाई हुई कलियों पर कोयल व्यर्थ ही अपने मधुर स्वर को गुँजा रही है, अर्थात् कोयल के स्वर में अब कोई माधुर्य प्रतीत नहीं होता।

विशेष—१. कवि ने यहाँ पर प्रकृति का जिस कुशलता से चित्रण किया है, यह आगे आने वाली श्रद्धा की विरह-कथा का स्पष्ट संकेत है। श्रद्धा भी तो मनु को इसी प्रकार नहीं ढूँढ़ पा रही है, जिस प्रकार नायिका को कमल और संध्या को सूर्य नहीं मिल रहा है।

२. 'अरुण जलज, केसर', 'तामरस', 'कुंकुम' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। सम्पूर्ण पद में समासोक्ति अलंकार है।

कामायनी······**नहीं जहाँ।**

शब्दार्थ—कामायनी=श्रद्धा। मकरंद=पुष्प-रस, सौन्दर्य। हीनकला=ज्योति-विहीन।

अर्थ—विरह-विधुरा श्रद्धा की दशा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि श्रद्धा उस कुसुम के समान बसुधा पर पड़ी हुई थी जिसमें पुष्प-रस न रहा हो। वह चित्र के समान थी, जिसमें केवल रेखायें ही थीं। रंग नहीं थे। वह उस ज्योति-विहीन प्रातःकालीन चन्द्रमा के समान थी जिसमें न तो किरणें हैं और न चाँदनी है। वह उस सूनी संध्या के समान थी जिसमें सूर्य, चन्द्रमा

और तारे भी नहीं है।

विशेष—मालोपमा।

जहाँ तामरस······जम जाये।

शब्दार्थ—तामरस=लाल कमल; मुख की लाली। इन्दीवर=नीला कमल, आंखों की नीलिमा। सित शतदल=सफेद कमल, शरीर का गौर वर्ण। सरसी=सरोवर। मधुप=भौंरा। जलधर=बादल। चपला=बिजली। श्यामलता=बादल की श्याम कांति। शिशिर कला=शीतलता की चाँदनी। क्षीण स्रोत=लघु सोता। हिमतल=बर्फीला प्रदेश।

अर्थ—कवि श्रद्धा की विरह-विधुरा दशा का वर्णन करता हुआ कहता है कि मुख की लाली, आंखों की नीलिमा और शरीरावयवों का वर्ण क्षीण हो जाने पर श्रद्धा उस सरोवर की भाँति दिखाई देती थी जिसके लाल, नीले और सफेद कमल मुरझाकर अपने डंठलों पर शोभा-विहीन होकर खड़े हों और इसी कारण उन पर कोई भी भौंरा न आता हो। श्रद्धा अपनी शोभा-विहीनता के कारण उस बादल के समान बन गई थी जिसमें न तो बिजली की चमक थी और न श्यामलता की कांति। शरीर की कृशता के कारण वह शिशिर काल में प्रवाहित होने वाले उसे लघु सोते के समान थी, जिसकी क्षीण धारा बर्फीले प्रदेश में पहुँच कर जम जाती है।

विशेष—निरंग रूपक और रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

एक मौन······पार नहीं।

शब्दार्थ—विजन=निर्जन। झिल्ली=झींगुर। जगती की=संसार की। हरित कुंज की छाया=कुंज की हरियाली का अवशेष। वसुधा=पृथ्वी।

अर्थ—कवि विरह-विधुरा श्रद्धा की दशा का वर्णन करते हुए कहता है कि श्रद्धा उस निर्जन प्रदेश की मौन वेदना के समान थी, जिसमें झींगुर का स्वर भी सुनाई नहीं देता। वह संसार की एक ऐसी उपेक्षा थी, जिसके उपेक्षित होने का कारण स्पष्ट नहीं था और जो साकार कसक थी। वह उस विगत हरियाली से मुक्त कुंज के समान थी, जो हरियाली के अवशेष को लेकर ही पृथ्वी पर पड़ी हुई थी। वह विरह की उस नदी के समान थी, जो देखने में तो छोटी दिखाई देती थी, किंतु जिसकी गहराई की थाह पा लेना असम्भव था।

विशेष—उत्प्रेक्षा और निरंग रूपक अलंकार ।

नील गगन······घन घिरने ।

शब्दार्थ—विहग-बालिका-सी=पक्षी की पुत्री के समान । किरनें=सूर्य की किरणें । तम-घन=अन्धकार के बादल ।

अर्थ—कवि विरह-विधुरा श्रद्धा की दशा का वर्णन करता हुआ कहता है कि जिस प्रकार पक्षी की पुत्री नीले आकाश में उड़ती-उड़ती थक कर स्वप्न लोक के समान आनंद देने वाली नींद की सेज पर गिरने के लिए चली जाती है, उसी प्रकार सूर्य की किरणें भी दिन-भर नील गगन का चक्कर लगाकर किसी अज्ञात लोक में विश्राम करने के लिए छिप जाती हैं। किंतु विरहिणी के जीवन में तो एक क्षण के लिए भी विश्राम नहीं होता । इसीलिए जब अंधकार के बादल घिरते, संध्या हो जाती, तभी श्रद्धा के हृदय में मनु की याद बिजली की भाँति चमक उठती ।

विशेष—पूर्णोपमा तथा मानवीकरण ।

सन्ध्या नील······भरते थे ।

शब्दार्थ—सन्ध्या नील सरोरुह से=सन्ध्या रूपी नीले कमल से । श्याम पराग=अन्धकार रूपी पराग । शैल घाटियों के=पर्वत की घाटियों के । तृण-गुल्मों से=घास और झाड़ियों से । नग=पर्वत ।

अर्थ—विरह-विधुरा श्रद्धा की असहाय दशा का वर्णन करने हुए कवि कहता है कि जब सन्ध्या रूपी नीले कमल से अंधकार रूपी पराग झरने लगता, अर्थात् सन्ध्या का अंधकार फैलने लगता और यह अंधकार धीरे-धीरे पहाड़ की घाटियों में भर जाता, तब श्रद्धा की विरह-वेदना असह्य हो उठती । उसकी विरह-वेदना को घास और झाड़ियों से भरे हुए केवल पर्वत ही सुन पाते । वह वेदना श्रद्धा की सूनी साँसों से मिलकर स्वर का रूप धारण कर लेती थी ।

विशेष—मानवीकरण और वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार ।

जीवन में······खोलोगी ।

शब्दार्थ—मन्दाकिनी=आकाशगंगा । नखत=नक्षत्र, तारे ।

अर्थ—विरह-वेदना से सन्तप्त श्रद्धा आकाशगंगा को सम्बोधित करते हुए पूछती है कि हे आकाश गंगे ! क्या तुम मुझे यह बताओगी कि जीवन में सुख अधिक है या दुःख ! आकाश में तारे अधिक हैं या सागर में बुलबुले ! क्या

तुम तारों और बुलबुलों की गणना कर सकती हो! सारे तारे तुम ही में प्रतिबिम्बित हैं और तुम समुद्र से मिलने के लिए जा रही हो। तुम क्या मुझे इस रहस्य को भी बता सकती हो कि तारे और बुलबुले—सुख और दुःख—दोनों एक सत्ता की ही छाया हैं, या इनके पृथक्-पृथक् आधार हैं?

विशेष—यथासंख्य अलंकार।

इस अवकाश······बुनते हैं।

शब्दार्थ—अवकाश पटी=शून्य चित्र-फलक अर्थात् अन्तरिक्ष। सुरधनु=इन्द्रधनुष। पट=वस्त्र। व्यापक नील शून्यता-सा=सर्वत्र फैले हुए नीले आकाश की नीलिमा की भाँति।

अर्थ—विरह-विधुरा श्रद्धा अपनी वेदना पर विचार करती हुई कहती कि जिस प्रकार चित्र-फलक पर बने हुए चित्र बनते और बिगड़ते रहते हैं, उसी प्रकार शून्य अन्तरिक्ष में नाना प्रकार के सुन्दर पदार्थ बनते हैं और बिगड़ जाते हैं। इन चित्रों में जो सुन्दर रंग भरे जाते हैं, वे स्थायी नहीं होते, वरन् वे इन्द्रधनुष रूपी वस्त्र से इसी प्रकार घूम जाते हैं जिस प्रकार इन्द्रधनुष के रंग देखते-देखते फीके पड़ जाते हैं। इन पदार्थों के मिटने से उनके अणु बिखर कर इस सर्वत्र फैले हुए नीले आकाश की नीलिमा में मिल जाते हैं और उसकी नीलिमा को विस्तृत-सा बना देते हैं तथा इस संसार के लिए वेदना का एक ऐसा धुँधला-सा वस्त्र बुन जाते हैं जो सारे संसार को ढक लेता है; अर्थात सारे संसार में वेदना ही वेदना दिखाई देने लगती है।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति, रूपक और उपमा अलंकार।

दग्ध श्वास······यहाँ।

शब्दार्थ—दग्ध श्वास=विरह के कारण दुःख भरी साँस। कुहू=अमावस्या की रात। स्नेह=तेल, प्रेम। साँझ किरन-सी=सन्ध्याकालीन किरण के समान। दीप शिखा=दीपक की लौ। शलभ=पतंग, मनु।

अर्थ—विरहिणी श्रद्धा कहती है कि मुझे डर लग रहा है कि कहीं ओस के रूप में आँसू बहाने वाली इस अमावस्या की रात्रि को देखकर मेरे हृदय से विरह के कारण गर्म साँसें न निकलने लगें; अर्थात् मेरा विरह दुःख प्रकट न हो जाये। यद्यपि मेरी तुलना उस छोटे-से दीपक से भी नहीं की जा सकती, जो अपना तेल जलाकर निरन्तर दूसरों को प्रकाश देता रहता है, तथापि

मेरी यह इच्छा है कि इस कुटिया में जलने वाला मेरा प्रेम-दीप सन्ध्याकालीन सूर्य की किरण की भांति बुझ न जाये। यह अच्छा ही है कि आज यहाँ मनु रूपी पतंगा नहीं है, अतः मेरे प्राणों का यह दीप अकेले ही सुखपूर्वक यहाँ जलता रहे, यही मेरी इच्छा है।

विशेष—श्लेष, उपमा, परम्परित रूपक और रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

आज सुनूँ······सह ले।

शब्दार्थ—कोकिल = कोयल।

अर्थ—विरहिणी श्रद्धा प्रकृति को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे कोयल ! आज चाहे तू जो भी ध्वनि कर, मैं उसे केवल चुपचाप होकर सहन करती रहूँगी। किंतु आज परागों में पहले जैसा सौंदर्य नहीं है। इस समय मेरे विरह के कारण इस वन में भी पतझड़ आ गया है, जिसके कारण सभी डालें सूनी बनी हुई हैं। सन्ध्या भी किसी की प्रतीक्षा करते-करते बीत जाती है। हे कामायनि ! तू अपने हृदय को कड़ा करके इस विरह दुःख को धीरे-धीरे सहती चल।

विरल·····पार बहे।

शब्दार्थ—विरल डालियों के = पत्ते और पुष्पों से रहित थोड़ी सी डालों के। समीर = हवा।

अर्थ—विरहिणी श्रद्धा कहती है कि आज उपवन की डालियाँ भी पत्र और पुष्पों से रहित होकर ऐसी प्रतीत होती हैं जैसे सारा निकुंज ही किसी के विरह के कारण दुःख के साँस ले रहा हो। इस कुंज में चलने वाली हवा ऐसी प्रतीत होती है जैसे वह किसी की याद में भूली-भूली-सी चली आ रही हो। अतः यह भी मेरे प्रियतम के विषय में कुछ नहीं बता सकती। अपने समूचे वातावरण को देखकर मुझे ऐसा लग रहा है जैसे सारा अभिमानी संसार ही मुझसे बिना मेरे अपराध के ही रूठ गया है। अतः मेरे ये आँसू जो मेरे पलकों से निकल रहे हैं, किन चरणों को धोयें अर्थात् किस-किस को अपनाएँ, क्योंकि केवल मनु ही नहीं, वरन् सारा संसारा ही मुझसे रूठा हुआ है।

विशेष—मानवीकरण और गम्योत्प्रेक्षा अलंकार।

अरे मधुर······लड़ियां।

शब्दार्थ—निस्संबल = बेसहारा।

अर्थ—श्रद्धा अपने अतीत जीवन के विषय में सोचती हुई कहती है कि निश्चय ही बीते जीवन की कड़ियाँ मधुर होती हैं, चाहे वह जीवन कितना ही कष्टपूर्ण रहा हो। अतीत जीवन की यह मधुरता तब और भी अधिक बढ़ जाती है, जब कोई व्यक्ति मेरी भाँति बेसहारा होकर अपने गत जीवन की बिखरी कड़ियों को जोड़ रहा हो। वही एक सत्य—सुखपूर्ण गृहस्थ-जीवन बिताने का सत्य—अपनी चिर सुन्दरता में सत्य बन गया था; अर्थात् मन में कितनी मधुर कल्पनाएँ गृहस्थ-जीवन को सुखपूर्ण बिताने की थीं, किन्तु वही सत्य आज कहीं छिप गया है। अतः ये सुख-दुख की उलझी हुई कड़ियाँ किस प्रकार सुलझ सकती हैं।

विशेष—'मधुर है कष्टपूर्ण जीवन भी' में विरोधाभास और 'जोड़ रहा बिखरी कड़ियाँ' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

विस्मृत हों······हार नहीं।

शब्दार्थ—विस्मृत हों = पूत बन जायें। जलती छाती = प्रेम के आवेग से भरा हुआ हृदय। शीतल प्यार = सुख देने वाला प्रेम। लीन होना = डूबना।

अर्थ—विरहिणी श्रद्धा अपने अतीत को याद करती हुई कहती है कि अच्छा यही है कि बीती बातें सभी भूल बन जायें, क्योंकि अब उनमें कोई सार नहीं रह गया है। अब मेरे हृदय में न तो प्रेम का आवेग ही शेष रह गया है और न सुख देने वाला प्यार ही शेष बचा है। मेरी सारी आशाएँ और मधुर इच्छाएँ अतीत में डूब चुकी हैं। यह सच है कि इस प्रकार मेरे प्रियतम मनु की जीत हो गई है, किन्तु इसे मेरी हार भी तो नहीं माना जा सकता; क्योंकि मनु ने ही मुझे छोड़ा है, मैंने तो उसका त्याग नहीं किया।

विशेष—'वह जलती छाती न रही अब वैसा शीतल प्यार नहीं' में विरोधाभास अलंकार है।

वे आलिंगन······अनुमान रहा।

शब्दार्थ—पाश = बंधन। स्मित = हँसी। चपला = बिजली। वंचित जीवन = ठगा हुआ जीवन। अकिंचन = दरिद्र, हीन।

अर्थ—विरहिणी श्रद्धा अपने जीवन के गत प्रेम-व्यापारों का स्मरण करती हुई कहती है कि वे आलिंगन जिनके द्वारा हम दोनों एक बंधन में बँध जाते थे और आनन्द के कारण हमारे होठों पर बिजली के समान हँसी चमकने

लगती थी, आज न जाने कहाँ छिप गये। वह मधुर विश्वास था कि अब हम दोनों कभी अलग नहीं हो सकते, केवल पागल मन का मोह ही बनकर रह गया, अर्थात् मेरा वह विश्वास भी झूठ ही सिद्ध हुआ। अब तो मुझ ठगी हुई जीवन वाली दीन का यही अभिमान शेष रह गया है कि मैंने भी कभी अपने जीवन को मनु के लिए समर्पित कर दिया था। अब तो यही अनुमान शेष रह गया है कि मैंने मनु को कुछ दे दिया था।

विशेष—'वे आलिंगन एक पाश थे, स्मिति चपला थी' में रूपक अलंकार है।

विनमय······बिखरे।

शब्दार्थ—विनिमय=आदान-प्रदान। भय-संकुल=भय से भरा हुआ। उडुगन=तारों के समूह।

अर्थ—विरहिणी श्रद्धा कहती है कि प्राणों का आदान-प्रदान करना, परस्पर प्रेम करना, यह व्यापार भारी भय से भरा हुआ है। इस व्यापार में प्राणी जितना देना चाहे, उतना ही दे सकता है, किंतु इसमें कुछ लेने की इच्छा करना दुःख का कारण होता है। प्रेम में लेने की इच्छा वस्तुतः परिवर्तन की इच्छा है जो कभी पूरी नहीं हो सकती। यथा—संध्या आकाश को सूर्य जैसा तेजस्वी पदार्थ देकर उसके बदले में केवल कुछ बिखरे हुए तारों के समूह ही प्राप्त कर पाती है।

विशेष—'संध्या रवि देकर पाती है इधर-उधर उडुगन बिखरे' में दृष्टांत अलंकार है।

वे कुछ······छल से।

शब्दार्थ—अंतरिक्ष=आकाश और पृथ्वी के बीच का सूना स्थान। अरुणाचल=अरुण पर्वत जहाँ से सूर्य निकलता है। कूजन=ध्वनि। कुहुक=जादू। चिर प्रवास में=सदैव के लिए विदेश में।

अर्थ—विरहिणी श्रद्धा कहती है कि जिस प्रकार प्रभात में अंतरिक्ष में सूर्य के उदय होने पर असंख्य फूल खिल उठते हैं, पक्षी ध्वनि करने लगते हैं और पृथ्वी पर एक प्रकार की जादू-भरी शक्ति व्याप्त दिखाई देने लगती है, सूर्य की किरण के समान आलोक फैलाती हुई कलियाँ हँसी के समान आकर्षक बन जाती हैं, उसी प्रकार मेरे जीवन में मनु के आने पर मेरे आनन्द और

उल्लासों की कोई सीमा नहीं थी, किंतु वे इस प्रकार चुपचाप मुझे छोड़कर चले गये जिस प्रकार कोई छल से लौटने के लिए कह कर सदैव के लिए विदेश में चला जाता है। श्रद्धा का कहने का भाव यह है कि जो आनंद उसे मनु के साथ मिलता करते थे, वे अब उसे कभी नहीं मिल सकेंगे, क्योंकि मनु धोखे में उसे छोड़कर चले गये हैं।

विशेष—'फूलों की भरमार'. 'स्वरों का कूजन' और 'स्थिति की माया' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

जब शिरीष की······मुसक्याते।

शब्दार्थ—शिरीष=सिरस का वृक्ष। मधु ऋतु=वसंत ऋतु। रक्तिम मुख=लाल मुख।

अर्थ—विरहिणी श्रद्धा कहती है कि सिरस वृक्ष की मादक सुगंधि के कारण अपने सौंदर्य से गर्वित होकर बसन्त ऋतु की रातें रूठकर चली जाती हैं और मेरे रात-भर जागरण के कारण क्रोधित होकर ऊषा की लालिमा के रूप में अपने क्रोध को लाल-मुँह के द्वारा प्रकट करती हैं। रात के बीत जाने पर पुनः दिन आता है जो आकाश में प्रेमियों के मधुर वार्तालाप की भाँति छा जाता है तो आकाश में टिमटिमाते हुए तारे मुझे ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे मेरे मधुर स्वप्न दिवा-स्वप्न बनकर आकाश में मुस्करा रहे हों।

विशेष—१. बसन्त ऋतु की रातों का श्रद्धा के ऊपर क्रोध करने का कारण यह है कि संयोग काल में श्रद्धा उनके आगमन पर सर्वत्र प्रसन्नता विखेरती थी और अब विराहणी होने के कारण विषाद से युक्त बनी रहती है।

२. मानवीकरण अलंकार।

बन बालाओं के······कण-कण बरसे।

शब्दार्थ—वन-बालाओं के=वन की देवियों के। वेणु=वंशी। तुहिन-बिंदु=ओस की बूँदें।

अर्थ—विरहिणी श्रद्धा का दयनीय दशा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि संध्या के आगमन के साथ ही सब बन की देवियों के कुंजों से वंशी के मधुर स्वर सुनाई देने लगे। सभी प्राणी अपने-अपने घरों की याद करके अपने-अपने घर को लौटकर चले गये। किंतु प्रवासी मनु लौटकर नहीं आया और

उसकी प्रतीक्षा करते-करते श्रद्धा को एक युग-सा बीत गया। इस प्रकार श्रद्धा की दीन दशा से करुणार्द्र होकर रात की पलकें भी भीगने लगीं और ओस की बूँदों के रूप में उसकी आँखों से आँसू के कण गिरने लगे।

विशेष—१. प्रकृति का उद्दीपन विभाव के रूप में चित्रण।

२. 'रजनी की भीगी पलकों से तुहिन-बिन्दु कण-कण बरसे' में मानवीकरण अलंकार है।

मानस का······रचने।

शब्दार्थ—मानस=हृदय। स्मृति शतदल=स्मृति रूपी कमल। मरंद=मकरंद। पारदर्शी=जिसमें अन्दर तक की बातें दिखाई दें। विद्युत्कण=बिजली के कण। नयनालोक=नेत्रों की ज्योति। संबल=पाथेय, मार्ग का सहारा, भोजन आदि।

अर्थ—कवि श्रद्धा की विरह-दशा का वर्णन करता हुआ कहता है कि जिस प्रकार सरोवर में कमल के खिलते ही उसमें से अत्यधिक मकरंद के बिन्दु झरने लगते हैं, उसी प्रकार मनु की याद आते ही श्रद्धा के हृदय में अनेक प्रकार के भाव जागृत हो जाते थे। उसकी आँखों से आँसू बहने लगते थे जो मोतियों के समान सुन्दर तो थे, पर उनकी भाँति कठोर नहीं थे तथा वे पारदर्शी भी थे जिसके माध्यम से श्रद्धा के हृदय में छिपी हुई अथाह वेदना को स्पष्ट देखा जा सकता था। इन आँसुओं में उसकी विरह-व्यथा के अनेक चित्र अंकित रहते थे श्रद्धा के ये भोले तथा सुकुमार आँसू बिजली के कणों के समान थे जो विरह के अन्धकार में आँखों में ज्योति के समान उदित होते थे। इन्हीं आँसुओं का सहारा लेकर श्रद्धा उसी प्रकार अनेक कल्पना-लोकों की रचना किया करती थी जिस प्रकार कोई पथिक पाथेय के सहारे अपने मार्ग की अनेक कल्पनाएँ कर लिया करता है।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति एवं परम्परित रूपक अलंकार।

अरुण जलज······डरे डरे।

शब्दार्थ—अरुण जलज=लाल कमल, लाल आँखें। शोण=लाल। कोण=कोना। नव तुषार=नवीन ओस। मुकुर=दर्पण, हृदय। प्रतिच्छवि=प्रतिबिम्ब। वर्षा विरह कुहू=वर्षाकाल रूपी विरह की अन्धकारमयी अमावस्या की रात्रि।

अर्थ—कवि श्रद्धा की विरह-दशा का वर्णन करता हुआ कहता है कि जिस प्रकार लाल कमल की लाल पंखुरियों के कोने नवीन ओस की बूँदों से भर जाते हैं, उसी प्रकार विरह-दुख में निरन्तर रोते रहने के कारण श्रद्धा की लाल-लाल आँखें के लाल कोये भी आँसुओं से भरे रहते थे। इन आँसुओं को देखकर ऐसा प्रतीत होता था जैसे किसी दर्पण की भाँति श्रद्धा का हृदय भी चूर्ण-चूर्ण हो गया है और जिस प्रकार दर्पण के चूर्ण हो जाने पर उसके टुकड़े अनेक प्रतिबिम्बों को लेकर चमकने लगते हैं, उसी प्रकार श्रद्धा के हृदय में भी अनेक स्मृतियाँ सजग हो उठती थीं। अब श्रद्धा के जीवन में न तो पहला जैसा प्रेम शेष रह गया था, न उसके मुख पर हँसी थी और न उसमें दुलार ही था। जिस प्रकार वर्षाकाल की अन्धकारमयी अमावस्या की रात्रि में छाये हुए अन्धकार में डरते हुए-से जुगनू इधर-उधर चमकते रहते हैं, उसी प्रकार विरह के कारण श्रद्धा के जीवन में भी विषाद तथा निराशा का अन्धकार छाया रहता था और उसमें अतीत जीवन की स्मृतियाँ जुगनू की भाँति चमक उठती थीं।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति, परम्परित रूपक तथा मानवीकरण अलंकार।

सूने गिरि-पथ······ज्वाला जलतीं।

शब्दार्थ—गुंजारित=गूँजती हुई। शृंगनाद=सींगी बाजे की आवाज। आकांक्षा=इच्छा। दुःख-तटिनी=दुःख रूपी नदी। पुलिन=किनारा। अंक=गोद। नभ के दीप=तारे। शलभ=पंतगे। ज्वाला=विरह-दुःख की आग।

अर्थ—विरहिणी श्रद्धा की दयनीय दशा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि जिस प्रकार सूने पर्वत के मार्ग से निकल कर गूँजती हुई नदी सींगी बाजे के समान ध्वनि करती हुई बहती रहती है, और उसमें उठने वाली छोटी-छोटी लहरें बार-बार किनारों की गोद में छिपती रहती हैं, उसी प्रकार श्रद्धा की विरह-वेदना भी हिमालय पर्वत की शून्यता में हाहाकार करती हुई बह रही थी। उसमें अभिलाषाओं की लहरें बार-बार उठकर निराशा के किनारे पर पहुँच कर समाप्त हो रही थी। जिस प्रकार आकाश में तारों के टिमटिमाने पर पंतगे उड़कर उनकी ओर चलने लगते हैं, उसी प्रकार श्रद्धा की आशाएँ भी तारों की ओर लग जाती थीं। उनके आँसू यद्यपि सदैव उसकी आँखों में भरे

रहते थे, पर उससे उसकी विरह-दु:ख की आग नहीं बुझती थी।

विशेष—'दुख-तटिनी' और 'अभिलाषा-शलभ' में रूपक तथा 'भरा रह गया आँखों में जल बुझी न वह ज्वाला जलती' में विशेषोक्ति अलंकार है।

माँ······बुझती धूनी।

शब्दार्थ—किलक=बालक की हर्षभरी किलकार। दूरागत=दूर से आई हुई। लुटरी=लटें। अलक=घुँघराले बाल। रज-धूसर=धूल से सनी हुई। निशा-तापसी=रात्रि में तपस्या करने वाली नारी।

अर्थ—जब श्रद्धा मनु के वियोग में दु:खी होकर अपने गत जीवन की घटनाओं को याद कर रही थी, तभी मानव की माँ-माँ की दूर से आई हुई हर्ष भरी किलकार सुनाई दी जिससे सूनी कुटिया आनन्द एवं उल्लास की ध्वनि से गूँज उठी। उस गूँज को सुनकर श्रद्धा हृदय में वात्सल्यपूर्ण दूनी उत्कंठा लेकर दौड़ी। मानव के घुँघराले बालों की लटें खुलकर मुँह की ओर बिखरी हुई थीं और धूल में खेलने के कारण उसके हाथ-पैर धूल से सने हुए थे। वह पास में आते ही धूल से सनी हुई बाँहों से लिपट गया। उसकी इस क्रिया से श्रद्धा की सोई विरह-वेदना इसी प्रकार जग उठी जिस प्रकार रात के तप करने वाली नारी की धूनी की आग हवा का झोंका लगते ही फिर धधकने लगती है।

कहाँ रहा······तुझे मना।

शब्दार्थ—प्रतिनिधि=प्रतिरूप। वनचर=जंगली। मृग=हिरन।

अर्थ—मानव को अपनी बाँहों में भरकर श्रद्धा उससे कहती है कि अरे मानव! तू तो बहुत ही नटखट है। अब तक तू मेरा भाग्य बना हुआ कहाँ घूमता फिर रहा था। तू वास्तव में अपने पिता का प्रतिरूप है। जिस प्रकार तेरे पिता ने मुझे सुख और दु:ख दोनों ही पर्याप्त मात्रा में दिये हैं, उसी प्रकार तू भी मुझे पास रहकर सुख और दूर जंगल में जाकर दु:ख देता है। तू जंगली हिरन की भाँति चंचल बनकर चौकड़ी भरता हुआ न जाने कहाँ दौड़ता फिर रहा था। मैं डरती हूँ कि यदि मैं तुझे रोकूँ तो तू भी अपने पिता की भाँति रूठ न जाये। इसीलिए मैं तुझे बाहर जाने से रोकती भी तो नहीं हूँ।

मैं रूठूँ······भरी रही।

शब्दार्थ—विषाद=दु:ख।

अर्थ—श्रद्धा की बातें सुनकर मानव कहता है कि हे माता! तुमने यह

कितनी अच्छी बात कही है कि मैं रूठूँ और तू मुझे मना। लो, मैं अब जाकर सोता हूँ और आज मैं तुमसे बोलूँगा भी नहीं। मेरा पेट पके हुए फलों से भरा हुआ है, अतः आज नींद भी गहरी आयेगी। मानव की ये बातें सुनकर श्रद्धा ने उसको चूम तो लिया, परन्तु उसके मन में वात्सल्य का सुख और मनु के वियोग का दुःख दोनों साथ-साथ भरे रहे।

जल उठते हैं······गल के।

शब्दार्थ—मुक्त=व्यापक। दिवा-श्रांत=दिन में थकी हुई। आलोक-रश्मियाँ=प्रकाश की किरणें। नील निलय=आकाश। स्मृति=संसार।

अर्थ—श्रद्धा की विरह-दशा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि जीवन में संयोग के समय जो सुख के अल्पकालिक क्षण आते हैं, वियोग में वे ही दुख बनकर जलने लगते हैं। श्रद्धा भी विरहिणी होने के कारण सर्वत्र विषाद की छाया देख रही थी। व्यापक आकाश में चमकते हुए तारे उसे ऐसे दिखाई देते थे मानो आकाश के शोकपूर्ण हृदय में फफोले पड़ गये हों। उस समय दिन में थकी हुई प्रकाश की किरणें आकाश में कहीं जाकर छिप गई थीं। यद्यपि इस समय श्रद्धा मौन थी किन्तु उसका विरह-वेदना से युक्त करुण स्वर रात्रि के सूने संसार में आँसुओं के रूप में परिवर्तित होकर बह रहा था।

विशेष—इन पंक्तियों में प्रकृति का चित्रण उद्दीपन विभाव के रूप में अंकित किया गया है।

प्रणय किरण······बना जाता।

शब्दार्थ—प्रणय किरण=प्रेम की किरण। मानस=हृदय। अभिन्न-प्रेमास्पद=घनिष्ठ प्रेमी।

अर्थ—श्रद्धा की विरह-दशा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि यद्यपि श्रद्धा के प्रेम की किरण का बंधन टूट गया था और वह उससे मुक्त हो गई थी, क्योंकि मनु उसे छोड़कर चले गये थे, तथापि वह प्रतिदिन और प्रगाढ़ होता जाता था। यद्यपि मनु श्रद्धा को छोड़कर उससे दूर चले गये थे, तथापि वह निरन्तर उसकी याद करती रहती थी और इस प्रकार वह नित्य उसके हृदय के समीप रहते थे। जब उनके हृदय पर मधुर चाँदनी की भांति तन्द्रा फैलने लगी, उसे झपकियाँ आने लगीं तो उसका हृदय मूर्च्छित-सा हो गया। तब उसे अपने घनिष्ठ प्रेमी मनु के चित्र दिखाई देने लगे, अर्थात्

उसे स्वप्न में मनु दिखाई दिये ।

विशेष—१. प्रेमी दूर रह कर भी प्रेमिका के सदा समीप रहता है, इसी भाव को 'रत्नाकर' जी ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

'ज्यौं-ज्यौं बसे जात दूरि-दूरि प्रिय प्रान-मूरि,
त्यौं-त्यौं धँसे जात मन-मुकुर हमारे में ।'

२. 'बंधन मुक्ति बना' में विरोधाभास और 'चाँदनी-सी' में उपमा अलंकार है ।

कामायनी······देख रही ।

शब्दार्थ—कामायनी=श्रद्धा । प्रसारित=ठगी हुई । लेख=लिखावट । दल=समूह ।

अर्थ—कवि श्रद्धा की विरह-वेदना का वर्णन करता हुआ कहता हैं कि उसके सुख तो मनु के चले जाने पर वैसे ही समाप्त हो चुके थे किन्तु स्वप्न में उसने अपने शेष सुखों को और भी अधिक नष्ट होते हुए देखा । उस स्वप्न में उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह मनु के द्वारा युग-युगों से छली तथा ठगी जाकर बेचैन बना दी जाती रही हो और वह केवल मिटी हुई लिखावट के समान ही रह गई हो । एक दिन ऐसा भी था जब वह फूलों के कोमल समूह पर पवन के द्वारा अंकित भव्य और मनोहर लिखावट के समान थी, किन्तु आज वह अपनी विरह-व्यथा के कारण इतनी क्षीण हो गई है कि जैसे वह पपीहा की व्यथा-भरी ध्वनि को अंकित करती हुई आकाश में खिंची हुई कोई क्षीण रेखा हो ।

विशेष—रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार ।

इड़ा······उत्साह भरी ।

शब्दार्थ—अग्नि-ज्वाला-सी=आग की लपटों के समान । उल्लास=उमंग । आलोकित करती=प्रकाशित करती । विपद-नदी=विपत्ति रूपी नदी । तरी=नौका । आरोहण—सीढ़ी । शैल-शृंग-सी=पहाड़ की चोटी के समान । श्रांति=थकावट ।

अर्थ—श्रद्धा स्वप्न में देखती है कि मनु के सामने इड़ा नाम की एक युवती उमंगों से भरकर बैठी हुई है जो आग की लपटों के समान जल रही है । वह विपत्तियों में मनु को इसी प्रकार मार्ग दिखाती है जिस प्रकार नाव

नदी को पार करने में सहायक होती है। वह मनु के लिए उन्नति की ओर ले जाने वाली सीढ़ी है, उसका गौरव पहाड़ की चोटियों के समान ऊँचा है और निरन्तर कार्य करते रहने पर भी वह कभी थकती नहीं है। वह उत्साह से परिपूर्ण है और प्रेरणा की तीव्र धारा के समान बह रही है।

विशेष—१. इन पंक्तियों में इड़ा का चरित्र-चित्रण करने के लिए कवि ने वैदिक ग्रंथों का सहारा लिया है। वैदिक ग्रन्थों में इड़ा को विश्वरूपिणी, अग्निस्वरूपा, दीप्तिवती, मनुष्यों को बुद्धि या चेतना प्रदान करने वाली तथा तेजमयी बताया गया है।

२. 'अग्नि-ज्वाला-सी' में पूर्णोपमा, 'विपद-नदी में बनी तरी' में परम्परित अलंकार है।

वह सुन्दर······उपहार दिये।

शब्दार्थ—आलोक=प्रकाश। हृदय-भेदिनी=सम्पूर्ण रहस्यों को जानने वाली।

अर्थ—कवि श्रद्धा को स्वप्न का वर्णन करता हुआ कहता है कि श्रद्धा ने स्वप्न में इड़ा को देखा जो ज्ञान की ज्योति से युक्त होने के कारण प्रकाश की किरण के समान दिखाई दे रही थी। उसकी दृष्टि सम्पूर्ण रहस्यों को जानने वाली थी। वह जिधर देखती थी। उधर ही प्रकाश फैल जाता था और अन्धकार (अज्ञान) के द्वारा बंद किये हुए द्वार तुरन्त खुल जाते थे। वह मनु की निरन्तर होने वाली सफलता की उदित हुई और विजय प्राप्त करने वाली तारा के समान थी; अर्थात् मनु की सफलताओं में उसका महत्त्वपूर्ण योग था। उसकी जनता ने, जो आश्रय की भूखी, अपनी मेहनत के उपहार मनु को दिये थे, अर्थात् मनु का आश्रय पाकर इड़ा की जनता जी-जान से परिश्रम करने में जुट गई थी।

विशेष—'आलोक किरण-सी' में पूर्णोपमा अलंकार।

मनु का······श्रम-स्वेद सने।

शब्दार्थ—सहयोगी=सहायक। प्राचीर=परकोटे की दीवार। शिशर=जाड़े की ऋतु। प्रमुदित=प्रसन्न होकर। श्रम-स्वेद=परिश्रम का पसीना।

अर्थ—श्रद्धा ने स्वप्न में देखा कि मनु ने एक सुन्दर नगर बसा लिया है और उस नगर के सभी निवासी उसके सहायक बने हुए हैं। मजबूत परकोटे

की दीवारों में अनेक मंदिरों के द्वार दिखाई दे रहे हैं। उस नगर में वर्षा, धूप और जाड़े से बचने के लिए सभी साधन इकट्ठे कर लिए गए हैं। किसान प्रसन्न होकर खेतों में हल चला रहे हैं और उनके शरीरों से परिश्रम के कारण पसीने निकल रहे हैं।

उधर धातु ···· प्रसाधन में।

शब्दार्थ—साहसी=शिकारी। मृगया=शिकार। पुष्पलावियाँ=फूल चुनने वाली स्त्रियाँ। अध-विकच=आधी खिली हुई। लोध्र=एक वृक्ष का नाम, जिसके फूलों की रज को, प्राचीन काल में पाउडर के काम में लाया जाता था। कुसुम-रज=फूलों का पराग।

अर्थ—श्रद्धा ने स्वप्न में देखा कि मनु ने एक भव्य नगर का निर्माण कर लिया है जिसमें धातुओं को गलाकर आभूषण और नवीन अस्त्रों का निर्माण किया जा रहा है। कहीं पर शिकारी नये-नये शिकार लाकर मनु को उपहार के रूप में दे रहे हैं। फूल चुनने वाली स्त्रियाँ बन-फूलों की आधी खिली हुई कलियों को चुन रही हैं और कहीं लोध्र वृक्ष के फूलों के पराग से चूर्ण बनाया जा रहा है। ये सभी नवीन श्रृंगार-सामग्रियाँ उस नगर में बनाई जा रही हैं।

घन के·····दिखती निखरी।

शब्दार्थ—घन के आघातों से=भारी हथौड़ों की चोटों से। प्रचंड=तीव्र। शेष-भरी=कर्कश। मूर्च्छना=संगीत की मधुर तान। श्री=शोभा।

अर्थ—श्रद्धा ने स्वप्न में देखा कि मनु के बसाये हुए नगर में यदि भारी हथौड़ों की चोटों से तीव्र तथा कर्कश ध्वनि उत्पन्न हो रही थी तो रमणियों के मधुर कंठों से हृदय को आकर्षित कर देने वाली संगीत की मधुर तान भी निकल रही थी। सभी लोग अपने-अपने वर्ग बनाकर सभी प्रकार से परिश्रम करते थे। उन लोगों के मिले हुए प्रयत्न की प्रथा से उस नगर की शोभा निखरती हुई दिखाई दे रही थी।

देश काल का·····तल में हैं।

शब्दार्थ—लाघव=छोटा करना, अन्तर मिटा देना। संबल=जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक। वसुधा=पृथ्वी।

अर्थ—श्रद्धा ने स्वप्न में देखा कि मनु के बसाये हुए नगर में सभी प्राणी इतनी फुर्ती से अपना-अपना कार्य कर रहे हैं जैसे उन्होंने स्थान और समय के

अन्तर को मिटा दिया है। उनके जीवन-निर्वाह के लिए जो पदार्थ आवश्यक हैं, वे उन सभी को इकट्ठा कर रहे हैं। उनके निरन्तर परिश्रम तथा संगठित शक्ति के बल से ज्ञान और व्यवसाय की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। उस नगर के प्राणियों का विचार है कि पृथ्वी के तल में जो कुछ भी छिपा हुआ है, वह मनुष्यों के परिश्रम से ऊपर आना चाहिए; अर्थात् मनुष्य को अपने प्रयत्नों से पृथ्वी में छिपे पदार्थों को निकाल कर उनका उपभोग करना चाहिए।

सृष्टि बीज······रहा डरा।

शब्दार्थ—सृष्टि बीज = मानव-सृष्टि का बीज। प्रफुल्लित = फूला हुआ। स्वचेतन = चेतनायुक्त। धरणी = पृथ्वी।

अर्थ—श्रद्धा ने स्वप्न में देखा कि यद्यपि प्रलय में सारी देव-सृष्टि का नाश हो गया था, तथापि मनु के रूप में उसका बीज शेष रह गया था इसीलिए मनु के रूप में सुरक्षित वही सृष्टि का बीज आज इस नगर में अंकुरित, फूला हुआ और हरा-भरा बनकर सफलता से दिखाई दे रहा है। आज मनुष्य प्रलय के भयावह विध्वंस से भयभीत नहीं है, वरन् चेतनायुक्त बनकर तथा अपने जीवन के प्रति अनेक प्रकार की मंगल कामनाएँ करके स्वावलम्बन की मजबूत धरती पर खड़ा हुआ है; अर्थात् आज वह स्वावलम्बी बयकर अपने भविष्य का स्वयं निर्माता बन गया है।

विशेष—'सृष्टि-बीज' में रूपक अलंकार है।

श्रद्धा उस······शिखा जलती।

शब्दार्थ—आश्चर्य लोक = अचम्भे में डालने वाला मनु का नगर। मलय बालिका = दक्षिण से आने वाली पवन। सिंह द्वार = मुख्य फाटक। प्रहरी = पहरेदार। छलती = आंख बचाती। स्तंभ = खंभ। वल्भी = मकान के ऊपरी भाग में बनी बरसाती। प्रासाद = महल। धूप धूम = सुगंधित धुआँ। आलोक शिखा = प्रकाश की ज्योति।

अर्थ—श्रद्धा स्वप्न में अचम्भे में डाल देने वाले मनु के नगर में इस प्रकार पहुँच गई, जिस प्रकार मलय पवन बसंत ऋतु में मन्द-मन्द गति से बहती हुई पहुँच जाती है। वहाँ पर मुख्य द्वार पर पहुँच कर पहरेदारों की दृष्टि से बचती हुई वह नगर के भीतर घुस गई। अन्दर उसने ऊँचे-ऊँचे खम्भों पर बने हुए महलों को देखा जिनके ऊपर सुन्दर बरसातियाँ बनी हुई थीं। सभी

महल धूप से सुगंधित धुंए से सुवासित थे और सभी में प्रकाश ज्योति चमक रही थी।

स्वर्ण कलश······पराग सने।

शब्दार्थ–स्वर्ण कलश=सोने के कलशे। ऋजु=सीधे। प्रशस्त=स्वच्छ। दम्पति=पति-पत्नी। समुद=प्रसन्नता के साथ। गलबाँही=गले में बांहें डाल कर। रसीले=पुष्प रस का पान करने वाले। मदिरा मोद पराग= पुष्प रस से मदिरा का आनन्द लेने वाले।

अर्थ—श्रद्धा ने स्वप्न में ही मनु के उस नगर में जाकर देखा कि सभी भवन सोने के कलशों से युक्त होने के कारण सुन्दर दिखाई देते हैं। उनके समीप ही सुन्दर बगीचे शोभा पा रहे हैं, जिनसे बीच से होकर सीधे स्वच्छ मार्ग गये हैं। कहीं-कहीं लताओं के घने कुंज हैं, जिनमें पति-पत्नी प्यार से ओत-प्रोत एक दूसरे के गले में बाँहें डालकर आनन्दित होकर घूम रहे हैं। वहीं पर ही फूलों के रस का पान कर भौंरे इस प्रकार मस्त होकर गूंज रहे हैं जिस प्रकार शराब के नशे में मस्त आदमी गुनगुनाया करता है।

विशेष—'मदिरा मोद पराग' में रूपक अलंकार।

देवदारु के······थे बहुरंग।

शब्दार्थ—देवदारु—एक बहुत ऊँचा और सीधा वृक्ष जो कि पहाड़ों पर मिलता है। भुज=बाहु, लम्बी-लम्बी शाखाएँ। मुखरित=ध्वनि। कलरव= मधुर ध्वनि। आश्रय=सहारा। नाग केसर=एक प्रकार का फूलदार वृक्ष।

अर्थ—श्रद्धा ने मनु के उस नगर में देखा कि देवदारु के वृक्ष कहीं-कहीं शोभा दे रहे हैं। उनकी लम्बी-लम्बी शाखाएँ भुजाओं के समान दूर-दूर तक फैली हुई हैं। वृक्ष शान्त होने से कारण ऐसा लगता था कि मानो वायु की लहरियां उन लम्बी-लम्बी शाखाओं से लिपट रही हों। वहाँ पर पक्षियों के बच्चे आभूषणों की झंकार के समान मधुर ध्वनि कर रहे थे। वन की ओर से आने वाली स्वर लहरियाँ जब बाँसों के झुरमुट में आकर रुक जाती थीं तो यहाँ से और भी अधिक तीव्र ध्वनि करती हुई निकलती थीं। उस नगर में कहीं-कहीं नागकेसर की सुन्दर क्यारियां थीं, जिनमें और भी कई प्रकार के रंग-बिरगे फूल खिले हुए थे।

विशेष—'मुखरित आभूषण' में पूर्णोपमा, वेणु के आश्रय देने में मानवी-

करण और 'प्रलम्ब भुज' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

नव मण्डल······गई कहाँ ?

शब्दार्थ—मंडप=चँदोपा। मंच=मूढ़ा, लकड़ी या पत्थर का बना हुआ बैठने का ऊँचा स्थान। चर्म=चमड़ा। शैलेय अगरु=पहाड़ी अगर। आमोद =प्रसन्नता।

अर्थ—श्रद्धा ने उस नगर में देखा कि विशाल भवनों के बीच एक नवीन मंडप की रचना की गई और उसके सामने कोमल चमड़ों से मढ़े हुए कई छोटे-छोटे मंच बैठने के लिए रखे हुए हैं, जो बैठने में सुखद होते हैं। श्रद्धा को उस नगर में चारों ओर से पहाड़ी अगर की मीठी सुगन्ध आती है। श्रद्धा यह सब देखकर स्वप्न में ही आश्चर्यचकित होती हुई सोचती है अरे ! मैं कहाँ आ गई हूँ ?

और सामने······बार जिये ?

शब्दार्थ—चषक=प्याला। ऋतुमय=यज्ञ प्रेमी। मादक भाव=मस्ती।

अर्थ—श्रद्धा ने उस नगर में अपने सामने ही यज्ञ प्रेमी मनु को अपने सफल हाथों में प्याला लिये हुए सुन्दर सिंहासन पर बैठे हुए देखा। मदिरा पीने के कारण मनु का मुख सन्ध्या की लालिमा जैसी आभा से पूर्ण हो गया था। मनु के समीप बैठी हुई इड़ा को देखकर श्रद्धा को ऐसे लगा मानो मनु की मस्ती ही साकार हो गई हो। और वह सोचने लगी कि सुन्दर चित्र के समान इतनी आकर्षक युवती कौन है ? जिसे देखने के लिये यह प्राणी मनु मर-मर कर भी सौ बार जीने की इच्छा करेगा।

विशेष—'संध्या की लालिमा पिये' लक्षण लक्षणा।

इड़ा डालती······भास नहीं।

शब्दार्थ—आसव=मदिरा। तृषित=प्यासा। वैश्वानर=आग। मंच वेदिका=यज्ञ-वेदी के रूप में बने हुए मंच। सौमनस्य=प्रसन्नता। जड़ता= अलस्य। भास=चिन्ह।

अर्थ—इड़ा वह मदिरा मनु के प्याले में डाल रही थी, जिससे कभी प्यास शांत न होती थी, अथवा जिसे बार-बार पीने पर भी मनुष्य का प्यासा कंठ ऐसा सोचता था कि उसने अभी कुछ नहीं पी। यज्ञ-वेदी रूपी मंच पर बैठी इड़ा आग की लपट के समान जान पड़ रही थी। इड़ा वहां पर बैठी हुई एक

शान्तिपूर्ण शिष्टता तथा विवेक का वातावरण निर्माण कर रही थी वहाँ पर अकर्मण्यता और आलस का कोई चिन्ह लक्षित नहीं होता था।

विशेष—'सौमनस्य बिखराती शीतल जड़ता का कुछ भास नहीं' में विरोधाभास अलंकार।

मनु ने पूछा······देश यहाँ।

शब्दार्थ—सविशेष=असाधारण। स्ववश=अपने अधिकार में। रिक्त=शून्य। मानस=मन।

अर्थ—मदिरा पीने के उपरान्त मनु ने इड़ा से प्रश्न किया क्या अभी कोई और कार्य करने के लिए शेष रह गया है? इड़ा ने उत्तर दिया—"तुमने अभी तक जो किया है, भला कर्म की विशेष सफलता इतने में ही कहाँ है? क्या सृष्टि के समस्त सुखों के साधन तुम्हारे वश में हो गये हैं। मनु ने इड़ा की बात का उत्तर देते हुए कहा—नहीं मैं तो अभी अभावों से भरा हूँ। यह तो सत्य है कि मैंने सारस्वत नगर बसा दिया है, परन्तु मेरे मन का देश अभी सूना ही पड़ा है।

विशेष—अन्तिम पंक्ति में विरोधाभास अलंकार।

सुन्दर मुख······किसके हैं?

शब्दार्थ—आँखों की आशा=आँखों में किसी की आकांक्षा भरी हुई। बाँकपन=तिरछापन। प्रतिपद शशि=प्रारम्भिक चन्द्रमा। रिस=क्रोध। अनुरोध=आग्रह। मान मोचन=नायिका के रूठने पर नायक का उसे मनाना।

अर्थ—मनु इड़ा पर आसक्त हो गए हैं और उससे कहते हैं कि तुम्हारा सुन्दर मुख है और तुम्हारी आँखों में किसी को प्राप्त करने की आकांक्षा भरी हुई हुई है। परन्तु इन पर किसी का अधिकार नहीं तुम्हारी चितवन दौज के चन्द्रमा के समान बाँकी है जिसमें कुछ क्रोध के भाव झलकते हैं। और तुम्हारी इन आँखों से मुझे कुछ ऐसा संकेत मिलता है मानो तुम मुझे मनाने के लिए आग्रह कर रही हो। हे मेरी चेतना शक्ति तू ही बता कि तुम किसकी हो और तुम्हारी यह भाव भरी आँखे और सुन्दर मुख किसका है?

विशेष—'एक बाँकपन प्रतिपद शशि का' में उपमा अलंकार तथा 'चेतनते' पद में परिकर अलंकार है।

प्रजा तुम्हारी……हूँ मैं।

शब्दार्थ—प्रजा=किसी राज्य में रहने वाले लोग। प्रजापति=राजा। मराली=हंसिनी। प्रणय=प्रेम।

अर्थ—मनु का प्रश्न सुनकर इड़ा बोली—मैं तो केवल यही मानती हूँ कि तुम हमारे प्रजापति हो और मैं तुम्हारी प्रजा हूँ। मेरा और आपका संबंध स्पष्ट है फिर यह मैं संदेह भरा प्रश्न यह नवीन प्रश्न कैसे सुन रही हूँ। मनु ने उत्तर दिया—हे इड़ा! तुम मेरे हृदय की रानी हो। अब तुम मुझे अधिक भ्रम में न रखो। तुम एक सुन्दर हंसिनी के समान हो। अब तुम मुझे इसी तरह कहो कि मैं तुम्हारे प्रेम को उसी तरह स्वीकार करती हूँ जैसे कोई हंसिनी सरोवर में मोती चुगना सहर्ष स्वीकार कर लेती है।

विशेष—'मधुर मराली' में परिकर और 'प्रणय के मोती' में रूपक अलंकार है।

मेरा भाग्य……रस में।

शब्दार्थ—भाग्य-गगन=भाग्य रूपी आकाश। प्राची पट=पूर्व दिशा। प्रभापूर्ण=आलोक से भरी। अतृप्त=अभावों से परिपूर्ण। भिखारी=इच्छुक। डूबेगी=पूर्ण होगी।

अर्थ—मधु इड़ा से कहते हैं कि मेरा भाग्य रूपी आकाश असफलताओं और निराशाओं से भरा होने के कारण धुँधला-सा है। और तुम उसमें पूर्व दिशा के समान हो। जिस प्रकार पूर्व दिशा का पर्दा खुलने पर सर्वत्र प्रकाश फैल जाता है उसी प्रकार तुमने मेरे जीवन में प्रवेश करके मेरे भाग्य के धुंधले पर्दे को हटा दिया है और तुम्हारी प्रेरणा से मेरा यश सारे संसार में फैल गया है। मैं अभावों से भरा हुआ हूँ, प्रेम के प्रकाश का भिखारी हूँ और तुम ऊषा के समान हो, वह कौन सा दिन होगा जब तुम्हारे इन मधुर अधरों का रस पान कर मेरी अभिलाषा शान्त होगी।

विशेष—'प्राचीपट सी' में पूर्णोपमा, 'आलोक' में 'रूपकातिशयोक्ति', 'प्रकाश बालिके' में रूपक तथा परिकर अलंकार है।

ये सुख……धनमाया।

शब्दार्थ—सुख साधन=भोग की सामग्री। रूपहली=चाँदी के रंग के समान चमकने वाली चाँदनी से भरी। उन्मद=उन्मत्त। मदिर घटा=मस्ती

की घटा। अन्धकार की घन माया=अंधकार की घटाएँ।

अर्थ—मनु इड़ा से कहते हैं कि आज भोग की सारी सामग्री हमारे पास उपस्थित है ; ऊपर चाँदी जैसी चमकती हुई रातों की शीतल चाँदनी, मधुर स्वर से युक्त दिशाएँ, मेरा मन उन्मत्त और शरीर तुम्हारे प्रेम में शिथिल हो रहा है। "अतः हे मेरी रानी ! इस रमणीय वातावरण में तुम मेरी प्रजा मात्र मत बनो" यह बात कहते ही मनु के मन में पशु के समान वासना हुंकार करने लगी। उसी समय अन्धकार की घटाएँ भी चारों तरफ छाने लगीं।

विशेष—'नरपशु' में रूपक और 'मदिर घटा-सी' में पूर्णोपमा अलंकार।

आलिंगन ! फिर······शाप उठी।

शब्दार्थ—क्रन्दन=चिल्लाना। वसुधा=पृथ्वी। अतिचारी=अत्याचारी परित्राण=रक्षा। नाप उठी=खोजने लगी। रुद्र हुंकार=शिव का भयंकर नाद। आत्मजा=पुत्री। शाप बन उठी=अमंगलकारी सिद्ध हुई।

अर्थ—जब मनु ने बलात् इड़ा का आलिंगन किया तो वह भय के कारण चिल्लाने लगी। उस समय वह इस प्रकार काँप रही थी जैसे भूचाल आने पर पृथ्वी काँपने लगती है। मनु इड़ा के साथ अनाचार करने के लिए कटिबद्ध थे, अतः वह दुर्बल नारी अपनी रक्षा के लिए मार्ग ढूँढ़ने लगी। यह दृश्य देखकर अंतरिक्ष में हलचल मच गई और शिव भयंकर हुंकार करने लगे। प्रजा होने के कारण इड़ा मनु की पुत्री के समान थी, उसके साथ बलात्कार करना वस्तुतः पाप था। इसीलिए मनु का यह अनैतिक कार्य स्वयं उसके लिए ही अमंगलकारी सिद्ध हुआ।

विशेष—१. मनु द्वारा अपनी पुत्री के साथ बलात्कार करने का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण, मत्स्यपुराण आदि में भी मिलता है।

२. 'वसुधा जैसे काँप उठी' में उपमा अलंकार है।

उधर गगन······प्रतिशोध भरी।

शब्दार्थ—क्षुब्ध=विचलित, क्रोधित। रुद्र=शिव। शिव=मंगलकारी। शिंजिनी=प्रत्यंचा, धनुष की डोरी। अजकव=शिव का एक धनुष। प्रतिशोध =बदला।

अर्थ—जब मनु ने इड़ा के साथ बलात्कार करने का प्रयत्न किया तो

आकाश में स्थित सारी देव-शक्तियाँ क्रोधित होकर विचलित हो उठीं। शिव का विनाशकारी तीसरा नेत्र भी अचानक खुल गया। इस दैवी क्रोध को देखकर सारस्वत नगर के निवासी डर से काँपने लगे। जब स्वयं प्रजापति ही पापी बन गया था, तो फिर देवता किस प्रकार मंगलकारी बने रह सकते थे ; अर्थात् कदापि नहीं। इसीलिए मनु से बदला लेने की भावना से प्रेरित होकर शिव ने अपने 'अजकव' नामक धनुष की डोरी चला ली ; अर्थात् वे मनु का वध करने के लिए तत्पर हो गये।

प्रकृति त्रस्त······थर-थर कँपना।

शब्दार्थ—त्रस्त=भयभीत। भूतनाथ = शिव। नृत्य-विकम्पित= प्रलयंकारी नाच करने के लिए चंचल। भूत सृष्टि=पंच तत्वों से बनी हुई प्राणियों की सृष्टि। कलुष=पाप। संदिग्ध=भय और सन्देह से युक्त।

अर्थ—जब मनु ने इड़ा के साथ बलात्कार करने का प्रयत्न किया तो प्रकृति भयभीत हो गई। शिव ने प्रलंयकारी नृत्य के लिए चंचल गति से भरे हुए अपने चरण को उठाया, जिससे कारण समूची प्राणी-सृष्टि नष्ट होने वाली थी। सब प्राणी अपनी-अपनी रक्षा के लिए आश्रय प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो रहे थे। स्वयं मनु भी अपने पाप के कारण भय और सन्देह में पड़े हुए थे। पृथ्वी को थर-थर काँपते देखकर मनु को यह आशंका उत्पन्न हो गई थी कि अब पुनः विध्वंसकारी प्रलय आने वाली है।

विशेष—'भूत सृष्टि सब होने जाती थी सपना' में लक्षण-लक्षणा शब्द-शक्ति है।

काँप रहे थे······चली थी किन्तु।

शब्दार्थ—प्रलयमयी क्रीड़ा=विनाशकारी खेल। आशंकित जन्तु=भय से भरे हुए प्राणी। छिन्न स्नेह का कोमल तन्तु=प्रेम का कोमल तागा टूट गया।

अर्थ—सृष्टि के सभी प्राणी विनाशकारी खेल के भय से भरे हुए काँप रहे थे ; अर्थात् सभी को यह आशंका बनी हुई थी कि अब शीघ्र ही समूची सृष्टि का पुनः विनाश होने वाला है। सबके प्रेम का कोमल धागा टूट गया था ; अर्थात् सभी ने मोह-ममता को त्याग दिया था और सभी अपने-अपने प्राणों की रक्षा के लिए चिन्ता कर रहे थे। मनु की अब वह शासन-व्यवस्था

नष्ट हो गई थी जिसमें मनु ने सभी की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया हुआ था। प्रकृति और नगर की यह स्थिति देखकर इड़ा क्रोध और लज्जा में भरकर राजमहल से बाहर निकली।

देखा उसने......अविरुद्ध रही।

शब्दार्थ—रुद्ध=रोकना। प्रहरी=पहरेदार। नियमन=शासन का निमन्त्रण। अविरुद्ध=अनुकूल।

अर्थ—जब इड़ा क्रोध और लज्जा से भरकर राजमहल से बाहर निकली तो उसने देखा कि सारी जनता मनु से प्रतिशोध लेने की भावना से व्याकुल होकर राजद्वार को रोके खड़ी है। पहरेदारों का समूह भी उनके साथ ही राजमहल की ओर बढ़ा चला आ रहा है और अब उनके हृदय के भाव शुद्ध नहीं रहे; अर्थात् वे मनु की रक्षा का भाव त्याग कर उसका वध करने को तत्पर दिखाई दे रहे हैं। जिस प्रकार भार से कोई दबी हुई वस्तु या तो टूट जाती है या उस भार को दूर फेंककर ऊपर उठ जाती है, उसी प्रकार इड़ा की प्रजा भी राज-नियमों को एक प्रकार का भार मानकर उसे दूर फेंककर विद्रोह करने के लिए उतारू हो रही थी। जो प्रजा अब तक मनु के अनुकूल बनी हुई थी, निरन्तर उसके आदेशों पर चल रही थी, आज वह कुछ और ही सोच रही थी; अर्थात् आज वह मनु के द्वारा बनाई गई समूची राज्य-व्यवस्था को भंग करने के लिए कटिबद्ध थी।

विशेष—'नियमन एक झुकाव दबा सा' में उपमा अलंकार है।

कोलाहल में......उधर मरे।

शब्दार्थ—लख=देखकर। त्रस्त=भयभीत। तरंगों में=लहरों में। महानील-लोहित-ज्वाला का=आग भी नीली और लाल लपटों का।

अर्थ—प्रजा के कोलाहल से घिर कर छिपे हुए मनु बैठे-बैठे अपने ही विचारों में तल्लीन थे। जब प्रजा राजभवन में आश्रय के लिए आई और उसने राजद्वार को बन्द देखा तो वह और भी अधिक भयभीत हो उठी। जब राजमहल में ही उसे आश्रय नहीं मिला तो उसका मन किस प्रकार धैर्य धारण कर सकता था। इसीलिए यह विद्रोही बन गई। उधर आकाश में, शिव के अत्यधिक क्रोधित होने के कारण सारी देव-शक्तियों में इस प्रकार हलचल मची हुई थी, जिस प्रकार समुद्र में भाटा आने पर उसकी तरंगों में मच जाती

है। शिव के तीसरे नेत्र खुल जाने पर उसमें से भयंकर आग की नीली और लाल लपटें निकल रही थीं, जिनका लपलपाना सभी भयंकर दृश्यों से अधिक भयंकर था।

विशेष—'शक्ति-तरंगों' में रूपक अलंकार।

वह विज्ञानमयी······जुड़ने की।

शब्दार्थ—विज्ञानमयी=विज्ञान। पंख लगाकर उड़ने की=असंभव को भी संभव करने को, महत्त्वाकांक्षाओं से भरी हुई।

अर्थ—मनु ने सारस्वत निवासियों के हृदय में जो यह अभिलाषा भर दी थी कि वे उसके आधार पर असंभव को भी संभव बनाने के लिए प्रयत्नशील थे, उनके जीवन में वे आशाएँ भर दी थीं, जिनका किसी भी प्रकार दमन नहीं हो सकता था; उन्हें वे अधिकार दे दिये थे, जिनसे उन्हें अत्यधिक मोह हो गया था। आज उन्हीं अभिलाषाओं से, आशाओं से और अधिकारों से मनु की प्रजा में इतना भेद-भाव बन गया था, जो किसी भी प्रकार नहीं मिटाया जा सकता था।

असफल मनु······कुचक्र जैसी।

शब्दार्थ—क्षुब्ध=विचलित। परिमाण=रक्षा। कुचक्र=षड्यन्त्र।

अर्थ—जब मनु ने अपनी समूची शासन-व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट देखा तो वे अपनी असफलता के कारण कुछ विचलित से हो गये और सोचने लगे कि आज यह अचानक बाधा किस प्रकार आकर उत्पन्न हो गई है। वे बहुत सोचने पर भी इस बात को नहीं समझ पाये कि यह सब किस प्रकार हुआ और क्यों प्रजा इस प्रकार की विद्रोही भावनाएँ लेकर राजद्वार पर एकत्रित हो गई है। जो प्रजा पहले अपनी रक्षा के लिए विकल थी और मनु के द्वार पर अपनी रक्षा की प्रार्थना लेकर आई थी, वही अब देव-शक्तियों के क्रोध से प्रेरित होकर मनु के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए तैयार खड़ी थी। इड़ा को भी विद्रोही प्रजा के साथ देखकर मनु सोचने लगे कि जब इड़ा भी इसके साथ है तो निश्चय ही यह कोई षड्यन्त्र है।

विशेष—'परिमाण प्रार्थना विकल थी' में विशेषण-विपर्यय अलंकार है।

द्वार बन्द······लेना-देना।

शब्दार्थ—शयन-कक्ष में=सोने के कमरे में। जीवन का लेना-देना=

जीवन की लाभ-हानि ।

अर्थ—जब मनु ने इड़ा को भी विद्रोही प्रजा के साथ देखा तो उन्होंने क्रोध में भरकर पहरेदारों को आज्ञा दी कि राजभवन का द्वार बन्द कर दो और यहाँ किसी को भी मत आने देना । क्योंकि आज प्रकृति उत्पात मचा रही है, इसलिए मैं भी सोने के लिए जा रहा हूँ । मुझे आकर मत जगाना । मनु ने इस प्रकार कहकर क्रोध तो प्रकट किया, किन्तु वे अपने मन में भयभीत से थे । जीवन की लाभ-हानि सोचते हुए तब मनु अपने सोने के कमरे में सोने के लिए चले गये ।

श्रद्धा कांप······बीत चली ।

शब्दार्थ—सहसा=अचानक । स्वजन स्नेह=आत्मीय व्यक्तियों का प्रेम । आशंकाएँ=सन्देह से भरी हुई कल्पनाएँ । रजनी=रात ।

अर्थ—अपने स्वप्न में इस घटना को देखकर श्रद्धा कांप उठी और अचानक उसकी आँखें खुल गईं । वह सोचने लगी कि स्वप्न में मैंने यह क्या देखा है ? मनु किस प्रकार इतना अधिक छली बन गया है ? आत्मीय व्यक्तियों के प्रेम में उनके अनिष्ट की कल्पनाओं से मन में अनेक प्रकार की आशंकाएँ उत्पन्न हो जाती हैं, अतः श्रद्धा के मन में भी मनु के अनिष्ट की अनेक आशकाएँ उभर आईं । वह सोचने लगी कि अब क्या होगा, किस प्रकार मनु की रक्षा की जा सकती है । इसी प्रकार सोचते-सोचते श्रद्धा ने व्याकुलता से शेष रात को बिता दिया ।

संघर्ष

कथासार—श्रद्धा ने जो स्वप्न देखा था वह सत्य सिद्ध हुआ। प्रजा का विद्रोह देखने के पश्चात् मनु अपने शयन कक्ष में चले तो गए किन्तु उन्हें नींद नहीं आई। वे पड़े-पड़े यही सोचते रहे कि सारस्वत नगर की जिस प्रजा को मैंने सर्व सुखों से सम्पन्न बनाना चाहा उसी ने मेरे विरुद्ध विद्रोह कर दिया। मैं इसका राजा हूँ अतः मुझे न तो प्रजा के विद्रोह से डरना ही चाहिए और न अपने अधिकारों का समर्पण ही करना चाहिए। जब मैं श्रद्धा के सम्मुख ही नहीं झुका तो इड़ा के सम्मुख झुकने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। इड़ा मुझे बन्धन में बांधना चाहती है। उसे यह पता नहीं है कि संसार का प्रत्येक पदार्थ बन्धनहीन है। रवि, शशि, तारे आदि सभी स्वतन्त्रतापूर्वक ही विचरण करते हैं। पृथ्वी कभी समुद्र बन जाती है और कभी समुद्र मरुस्थल के रूप मेंपरि-वर्तित हो जाता है। आज न जाने क्यों मेरी प्रजा में यह धारणा घर कर गई है कि विश्व एक नियम से बँधा हुआ है अतः नियामक को भी नियमों का पालन करते हुए बन्धन में ही रहना चाहिए। किन्तु मैं किसी का भी बन्धन स्वीकार नहीं कर सकता।

जब मनु की विचारधारा कुछ क्षण के लिए टूटी तो उन्होंने इड़ा को अपने पास खड़ा देखा। इड़ा ने मनु को समझाना प्रारम्भ किया कि यदि नियमों का बनाने वाला ही उनका पालन नहीं करेगा तो निश्चित रूप से समाज में व्यवस्था नहीं आ सकती। यदि तुम चाहते हो कि सभी लोग तुम्हारे नियमों पर चलें तो तुम्हें भी उनका पालन करना चाहिए। सारा विश्व एक ही चेतना का विराट् शरीर है और मानव चेतना का विकसित रूप है। यद्यपि सर्वत्र एक ही चेतना विद्यमान है तथापि वह भिन्न-भिन्न पदार्थों के रूप में विभाजित हुई सी दिखाई देती है। इसीलिए संसार में जीवन के लिए संघर्ष चलता रहता है उस संघर्ष में वे लोग जीत जाते हैं जो शक्तिशाली होते है और दुर्बल नष्ट

हो जाते हैं। इसीलिए सारा संसार राग और द्वेष से भरा हुआ है और प्रत्येक प्राणी अपने लिए सुख की सामग्री एकत्र करने में तल्लीन है। राष्ट्र का स्वामी होने के नाते तुम्हारा यह कर्त्तव्य है कि तुम वैयक्तिक सुख और स्वार्थ की अपेक्षा सामाजिक सुख को महत्व दो। प्रजा के स्वार्थ एवं हित में अपना हित समझते हुए प्रजा के अनुकूल होकर शासन करो।

इड़ा की यह बातें सुनकर मनु कुछ उत्तेजित हो उठे उन्होंने कहा कि क्या प्रजापति होने का मेरा यही अधिकार है कि मैं सदैव अतृप्त रहूँ और अपनी किसी भी अभिलाषा को पूर्ण न करूँ। अतः यदि मैं अपनी अभिलाषा पूर्ण नहीं कर सकता तो मुझे प्रजापति का अधिकार भी नहीं चाहिए। मैं तुम पर अपना पूर्ण अधिकार चाहता हूँ। और अपने इसी अधिकार को प्राप्त करने के कारण समस्त देव शक्तियाँ मेरे विरुद्ध होकर उत्पात मचा रही हैं। इस समय तुम मेरे पास ही रहो मुझे अधिकार के धोखे में डालकर अपने प्रेम में वंचित मत करो।

इड़ा ने मनु को बहुत कुछ समझाने का प्रयत्न किया किन्तु मनु अपने हठ पर अड़े ही रहे। उन्होंने इड़ा को स्पष्ट बता दिया कि यदि उनकी इच्छा की पूर्त्ति नहीं होगी तो समूचा सारस्वत नगर फिर से नष्ट हो जाएगा। इड़ा ने मनु को पुनः समझाने का प्रयत्न किया किन्तु मनु अपने मानसिक आवेश को न रोक सके और उन्होंने इड़ा को बलात् अपनी ओर खींचकर हृदय से लगा लिया। तभी राजभवन का सिंह द्वार तोड़कर प्रजा अन्दर घुस आई और मनु को सम्बोधित करके कहने लगी कि हे पापी! तूने हमें सुख की अपेक्षा दुःख ही अधिक दिया है। तूने लोभ दिखाकर हमें संवेदनशील बना दिया, जिसके कारण हम अनावश्यक रूप से दुःखी होते रहे। तूने यंत्रों का आविष्कार करके हमारी स्वाभाविक शक्ति छीन ली और अब हमारी रानी पर भी अत्याचार करने पर तुला हुआ है। तुझे तेरे पापों का दण्ड अवश्य मिलेगा। तभी मनु और प्रजा के अन्तर्गत संघर्ष छिड़ गया। प्राकृतिक शक्तियां भी प्रजा की सहायक बन गईं। भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में भगवान शंकर के भयंकर बाण से मनु मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

श्रद्धा······का आये।

शब्दार्थ—क्षोभ=क्रोध। विप्लव=हलचल। त्राण=रक्षा।

अर्थ—श्रद्धा ने जो स्वप्न देखा वह बिल्कुल सत्य था। मनु के अनैतिक व्यवहार के कारण इड़ा अत्यन्त सकुचा रही थी और प्रजा क्रोध से परिपूर्ण थी क्योंकि प्राकृतिक हलचल देखकर वे सभी दुःखी और घबराए हुए थे और अपनी रक्षा की आशा से राजभवन में शरण लेने के लिए आये थे।

किन्तु मिला······तांडव लीला।

शब्दार्थ—मनस्ताप=मानसिक कष्ट। रोष=क्रोध। वदन=मुख। तांडव लीला=दैविक हलचल, भयंकर हलचल।

अर्थ—सभी प्रजाजन रक्षा की इच्छा से राजभवन में आए थे लेकिन अपमान ही मिला। मनु ने राजभवन का द्वार बन्द करवा कर उनके साथ बुरा व्यवहार किया था। सभी व्यक्ति मानसिक कष्ट के कारण दुखी थे और मनु के अत्याचार के कारण इड़ा के पीले पड़े हुए मुख को देख रहे थे। इधर प्रकृति की भयंकर हलचल भी समाप्त नहीं हुई थी।

प्रांगण में······झुकी सी।

शब्दार्थ—पटी=पर्दा। लुकी-सी=छिपी हुई-सी।

अर्थ—प्रजा के लोग धीरे-धीरे राजभवन में आ गए और इस प्रकार राजभवन के आँगन में भारी भीड़ इकट्ठी हो गई। पहरेदार भी द्वार बन्द करके अत्यन्त सावधानी से इस दृश्य को देख रहे थे। रात्रि गहरे अन्धेरे के पर्दे में दबकर छिपी हुई सी दिखाई देती थी। किन्तु बार-बार आकाश में प्रकट होने वाली बिजली की ज्योति चमक उठती थी।

शब्दार्थ—श्वापद=हिंस्रपशु। तुष्ट=सन्तुष्ट। रुष्ट=क्रोधित।

अर्थ—मनु अपने पलंग पर पड़े हुए और चिन्ता में डूबे हुए से सोच रहे थे कभी उन्हें क्रोध आता था और कभी किसी आशंका से भयभीत हो उठते थे मानो क्रोध और आशंका के हिंस्र पशु उन्हें नोच रहे हों। वे सोच रहे थे कि मैं इस नगर की प्रजा को व्यवस्थित और सुखपूर्ण बनाकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ था और मैंने कभी भी उन पर क्रोध नहीं किया।

किन्तु जब······बनाकर।

शब्दार्थ—जब=तीव्र गति से। चक्र=शासन का चक्र, कुम्हार का चाक।

अर्थ—मनु सोच रहे थे कि मैंने सारस्वत नगर की बिखरी हुई और

शासनहीन प्रजा का तीव्र गति से शासन करके संगठित रूप बना दिया। जिस प्रकार कुम्हार तेजी से अपने चाक को घुमाकर बिखरी हुई मिट्टी को इकट्ठा करके उसे सुन्दर रूप देता है उसी प्रकार मैंने भी इस नगर के लोगों में एकता और सौन्दर्य की भावना भर दी। अब इनमें इतना अधिक ऐक्य है कि शारीरिक दृष्टि से भिन्न-भिन्न होते हुए भी यहां के लोग भावनाओं से एक हैं, अर्थात् सभी के विचार समान हैं। मैंने इनमें एकता उत्पन्न करने के लिए अपनी बुद्धि बल के आधार पर अत्यधिक प्रयत्न किया है और इनके लिए ऐसे नियम बनाए हैं, जिससे इनकी एकता और व्यवस्था नष्ट न हो।

विशेष—'चक्र' में श्लेष अलंकार।

किन्तु स्वयं······रहूँ मैं।

शब्दार्थ—स्वच्छन्द=स्वतन्त्र। स्वर्ण=सोना। सृष्टि=प्रजा। अविनीत =नियम विरुद्ध चलने वाला।

अर्थ—इड़ा के समझाने पर मनु सोचने लगे कि जिन नियमों को बनाकर मैं प्रजा का पालन करता था क्या उन्हीं नियमों का मुझे भी पालन करना पड़ेगा। जिस प्रकार सोने को गलाकर अपनी इच्छानुसार ढाला जा सकता है क्या उसी प्रकार मुझे प्रजा की इच्छा के अनुसार ही कार्य बनना पड़ेगा। जो मेरी प्रजा है और मैं जिसका राजा हूँ क्या मुझे उससे भी डर कर रहना पड़ेगा? क्या मुझे इतना अधिकार नहीं कि मैं उन नियमों के विरुद्ध आचरण करूँ।

विशेष—'स्वर्ण-सा' में पूर्णोपमा अलंकार।

श्रद्धा का······न माना।

शब्दार्थ—परतन्त्र=पराधीन। निर्बाधित=बाधा रहित। अधिकार= हक।

अर्थ—मनु सोचते हैं कि श्रद्धा मेरी पत्नी थी, उसके अधिकार अनुसार मैंने उसे भी समर्पण नहीं किया और अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए मैं वहाँ से भाग आया और अपने विचारों के अनुसार मैं प्रतिक्षण बढ़ता ही गया। और यहां पर इड़ा मेरी स्वतन्त्रता को स्वीकार न करती हुई मुझे राज्य के नियमों में बाँधना चाहती है उसे मेरा बाधाहीन अधिकार स्वीकार्य नहीं।

विश्व एक·····ज्वाला जलती।

शब्दार्थ—बंधन-विहीन=स्वतंत्र। वसुधा=पृथ्वी। जलनिधि=समुद्र। उदधि=समुद्र।

अर्थ—मनु सोचते हैं कि मैं ही क्या यह सारा विश्व ही परिवर्तनशील है इसमें सूर्य, चन्द्रमा और तारे सभी स्वतंत्रतापूर्वक विचरण करते हैं। उनको एक नियम में कैसे बाँधकर रखा जा सकता है। पृथ्वी कभी समुद्र का रूप धारण कर लेती है और समुद्र सूख कर कभी मरुस्थली वन जाते हैं तथा उस अथाह जल समूह में भी बड़वाग्नि की ज्वाला जलती है।

विशेष—विरोधाभास अलंकार।

तरल अग्नि······यहां सुभीता।

शब्दार्थ—तरल अग्नि=आग की धारा। हिम-नग=बर्फ के पर्वत। स्फुलिंग का नृत्य=अग्नि की तीव्र धारा का प्रभाव। टिकना=ठहरना।

अर्थ—मनु सोचते हैं कि इस संसार में सभी वस्तुओं में आग की धारा प्रभावित हो रही है। इसी कारण बर्फ से ढके हुए पर्वत गल-गलकर सरिताओं का रूप धारण कर बह रहे हैं। आग की धारा का प्रवाह एक क्षण भी नहीं ठहरता। मनुष्य भी इसी आग की चिन्गारी के समान है जो कुछ समय के लिए ही इस पृथ्वी पर ठहरता है। यहाँ पर सभी पदार्थ क्षणिक हैं क्योंकि इस आग की धारा ने किसी को भी अधिक देर तक ठहरने की सुविधा प्रदान नहीं की।

कोटि कोटि······परवशता इतनी।

शब्दार्थ—कोटि=करोड़ों। शून्य=आकाश। महाविवर=विशाल गुफा के समान। लास राग=कोमल नृत्य। अधर=निराधार, आकाश। स्तर=तह, परत। चीत्कार=चीख। परवशता=पराधीनता।

अर्थ—मनु सोचते हैं कि आकाश के नीचे महान गुफा के समान फैले हुए अन्तरिक्ष में निराधार स्थान में लटकते हुए करोड़ों तारे चक्कर काटते हुए ऐसे लगते हैं मानो कोयल नृत्य कर रहे हों। जिस प्रकार तारे स्वच्छन्दता पूर्वक चक्कर काटते हैं, उसी प्रकार हवा भी समुद्र की लहरों की भाँति अपनी परतों में न जाने कितनी लहरियाँ उठती हैं, अर्थात् स्वच्छन्दता से विचरण करती है। और इसी अन्तरिक्ष में अनेकों दुःखी लोगों की चीखें और परतंत्रता की भावनाएँ भी स्वच्छन्दता से चक्कर लगाती हैं।

विशेष—'शून्य महाविवर' में रूपक अलंकार ।

यह नर्तन उन्मुक्त······जिससे जीवन ।

शब्दार्थ—नर्त्तन=नृत्य । उन्मुक्त=स्वच्छन्द । स्पंदन=हलचल । द्रुततरा =अधिक । पुनरावर्त्तन=पुन: लौट कर आना ।

अर्थ—मनु सोचते हैं कि विश्व के इस मुक्त नृत्य की हलचल तीव्रतर होती हुई एक गति धारण कर लेती है । और जिस प्रकार एक नृत्यकार तबला वीणा आदि बाजों की लय के अनुसार अपने पैर की गति बढ़ा लेता है वैसे ही गति के अनुसार संसार की हलचल भी बढ़ती जाती है । कभी-कभी हम देखते हैं कि कुछ घटनाएँ पुन: लौटकर होती हैं और उन्हीं को दुबारा होते देखकर हम उसे मान लेते हैं और सोचते हैं कि इसी से हमारा जीवन चल रहा है

रुदन हास······हरा है ।

शब्दार्थ—पलक में छलकना=आँखों में प्रकट होना । शत-शत=सैकड़ों । विमुक्ति=स्वतन्त्रता । ललकना=इच्छा करना । अभिशाप=अशुभ कामना । सृष्टि=संसार ।

अर्थ—मनु सोच रहे हैं कि इस संसार की दशा भी विभिन्न है । यहाँ पराधीन रहने वाले व्यक्ति को इतनी स्वतन्त्रता भी नहीं है कि वह अपनी भावनाओं को सही-सही प्रकट कर सके । यद्यपि वह दु:खी होता है, पर अपनी पीड़ा को छिपाकर होठों पर बलात् हँसी लाता है, ऐसे सैकड़ों प्राणी पराधीनता से छुटकारा पाने के लिए सदैव लालायित रहते हैं, क्योंकि पराधीन जीवन अनेक प्रकार के शाप, अमंगल और कष्टों से भरा हुआ होता है । इन कष्ट-सन्तप्त प्राणियों का जीवन भी कुछ दिन के लिये इसी प्रकार उल्लासपूर्ण दिखाई दिया करता है जिस प्रकार पतझड़ से नष्ट होने वाली वाटिका कुछ दिनों के लिए ही हरी-भरी दिखाई देती है ।

विशेष—'रुदन हास वन' में विरोधाभास और 'सृष्टि-कुंज' में रूपक अलंकार है ।

विश्व बँधा······मैंने माना ।

शब्दार्थ—पुकार=माँग । परखा=पहचाना । वशी=पराधीन । नियामक =नियमों को बनाने वाला ।

अर्थ—मनु सोचते हैं कि आज सभी नगरवासियों के मन में वह पुकरा

घर कर गई है कि सारा संसार एक नियम के अनुसार चल रहा है । इन्होंने मेरे बनाए हुए नियमों को अच्छी तरह परख लिया है और यह गान गाए हैं कि नियमों को मान कर चलने से ही सुख प्राप्त होता है । परन्तु नियमों को बनाने वाला ही नियमों के वश में होकर रहे मैं कभी नहीं मानता अर्थात् मैं प्रजाजनों की भाँति नियमों के बन्धन में बँधकर नहीं रह सकता ।

विशेष—'प्रकार-सी' और 'दृढ़ प्रचार-सी' में उपमा अलंकार ।

मैं चिर······सब सपना ।

शब्दार्थ—चिर-बन्धन-हीन=किसी प्रकार के बन्धन को न मानने वाला । मृत्यु-सीमा उल्लंघन=मृत्यु तक सभी प्रकार की सीमाओं का उल्लंघन । सतत =लगातार । महानाश की सृष्टि=नश्वर संसार । सपना=निस्सार ।

अर्थ—मनु सोचते हैं कि मैंने कभी बन्धन स्वीकार नहीं किया इसलिए मैं बन्धन में नहीं बंध सकता । मेरी यह दृढ़ प्रतिज्ञा है कि मैं मृत्यु तक किसी भी नियम का पालन नहीं करूँगा अर्थात् सभी का उल्लंघन करता रहूँगा । क्योंकि इस नवश्र जगत में हम जितने भी क्षण स्वतन्त्रतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर लेंगे उसी में हमारी आत्मा को सन्तुष्टि मिलेगी । नहीं तो सब कुछ सपना ही है । अर्थात् परतंत्र जीवन तो पूर्णतया निरर्थक और निस्सार है ।

विशेष—१. 'महानाश की सृष्टि' में विरोधाभास अलंकार और 'चेतनता की तुष्टि' में विशेषण विपर्यय अलंकार है ।

२. 'सपना' पद में लक्षण लक्षणा है ।

प्रगतिशील······कुछ देकर ।

शब्दार्थ—प्रगतिशील=गतिवान । अविचल=स्थिर ।

अर्थ—मनु के विचारालीन और अत्यन्त चंचल मन की चिंता-धारा एक क्षण के लिए रुकी तो उन्होंने करवट ली तो सामने देखा कि इड़ा अपना सब कुछ गँवा कर भी वहाँ पर स्थिर भाव से खड़ी है ।

और कह······निश्चय जाने ।

शब्दार्थ—सरल है ।

अर्थ—मनु ने जब इड़ा को देखा तो इड़ा कहने लगी—यदि नियमों का

बनाने वाला ही नियमों का पालन न करेगा तो यह निश्चित ही है कि उसका सारा कार्य-क्रम नष्ट हो जाएगा।

ऐं तुम······अब कितना ?

शब्दार्थ—उपद्रव=हलचल। तुष्टि=सन्तोष।

अर्थ—इड़ा की बात सुनकर मनु आश्चर्यचकित होकर इड़ा से पूछने लगे—अरे तुम यहाँ फिर कैसे चली आई हो ? अब क्या और कोई नया उपद्रव खड़ा करने का विचार है। क्या आज जो उपद्रव हुआ है उससे तुम्हारा मन नहीं भरा ? अर्थात् प्रजा को तुमने ही भड़का कर सारा उपद्रव खड़ा किया था। करने को शेष अब रह ही क्या गया है ?

मनु सब······किसने भोगा ?

शब्दार्थ—स्वत्व=अधिकार। तुष्टि=संतोष। निर्बाधित=बंधन रहित।

अर्थ—इड़ा मनु को समझाती हुई बोली—हे मनु ! सारी प्रजा सदैव ही तुम्हारे बनाए हुए नियमों का पालन करके संतोष का अनुभव करती है। वह एक क्षण भी नियमों से स्वतंत्र होकर अपना जीवन व्यतीत नहीं करना चाहती। परन्तु तुम नियामक होकर भी नियमों का पालन नहीं करना चाहते। हे प्रजापति ! ऐसा न तो कभी हुआ है और न हो सकता है। यहाँ पर उन्मुक्त अधिकारों का भोग किसने किया है।

यह मनुष्य······भरता है ?

शब्दार्थ—आकार=स्वरूप। चिति केन्द्र=चेतना का केन्द्र रूप मनुष्य। द्वयता=भिन्नता।

अर्थ—इड़ा मनु को समझाती हुई कहती है कि यह संसार (मनुष्य) चेतना की ही विकसित मूर्त्ति है और उसकी उस चेतना के पर्दे में राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि मनोविकारों का अपना ही विश्व बना हुआ है। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य चेतना का केन्द्र बना हुआ है। सभी मनुष्यों में एक ही चेतना का विकास होने पर भी मनुष्यों का आपस में संघर्ष चलता है जिसके कारण वह अपने मन में यह समझने लगते हैं कि चेतना के केन्द्र स्वरूप मानव परस्पर भिन्न-भिन्न हैं।

वे विस्मृत······मार्ग बतावें।

शब्दार्थ—विस्मृत=भूले हुए। स्पर्द्धा=होड़। उत्तम=योग्य।

अर्थ—इड़ा कहती है कि वे भिन्न-भिन्न प्राणी धीरे-धीरे भूले हुए सत्य

को पहचान लेते हैं कि हम एक ही चेतना शक्ति के अंश है। इस भावना के उठते ही वे एक दूसरे को निकट आने लगते हैं और उनके विचार सदैव उनके समीप लाकर मिला देते हैं। परन्तु आज तो शारीरिक और मानसिक शक्तियों की होड़ लगी हुई है। इस प्रतियोगिता में जो योग्य और सशक्त होंगे वही ठहर पाएंगे और वे संसार का कल्याण करने के लिए सब को कल्याण का मार्ग बताएंगे।

व्यक्ति-चेतना······जाली।

शब्दार्थ—परतंत्र=पराधीन। रागपूर्ण=स्नेह से भरी हुई। द्वेष-पंक=वैरभाव रूपी कीचड़। नियत=निश्चित। श्रांत=थकी।

अर्थ- इड़ा मनु को समझाती हुई कहती है कि होड़ के कारण ही चेतनशील मानव पराधीन सा बना हुआ लगता है। वह ऊपर से तो सभी व्यक्तियों के साथ प्रसन्न रहता है परन्तु मन ही मन प्रतिद्वन्द्वी के लिए वैररूपी कीचड़ में फँसा हुआ रहता है। जिससे वह पग-पग पर निश्चित मार्ग से पथ भ्रष्ट होकर ठोकरें खाता है और फिर वह थका हुआ-सा अपने लक्ष्य की पूर्ति में लग जाता है।

विशेष—'द्वेष-पंक' में रूपक अलंकार।

यह जीवन······काया में।

शब्दार्थ—उपयोग=प्रयोजन। बुद्धि-साधना=बुद्धि द्वारा की जाने वाले कोशिशें। रमो=विचरण करो। राष्ट्र की काया=राष्ट्र का शरीर।

अर्थ—इड़ा मनु को समझाती हुई कहती है कि इस जीवन का प्रयोजन ही यह है कि हम सदैव कल्याण के लिए उद्यत रहें और अपनी बुद्धि के प्रयत्नों द्वारा ऐसे कार्य करें जिससे हमारे सुखों की प्राप्ति हो। वह कार्य ऐसे हों कि उनसे अन्य व्यक्तियों का भी भला हो। यदि प्रजा तुम्हारी राजसत्ता की छाया में शरण लेने को आए तो उसे सुख ही मिले तो तभी तुम सच्चे अर्थों में राजा हो। इसलिए जिस प्रकार सारे शरीर में प्राण रहते हैं उसी प्रकार तुम इस राष्ट्र में विचरण करो और इसके कल्याण में सहायक बनो।

विशेष—'प्राण सदृश' में उपमा अलंकार।

देश कल्पना······विस्मृति में।

शब्दार्थ—देश-कल्पना=देश की सीमाओं का विचार। काल-परिधि=

समय की सीमा। लय = विलीन। महाचेतना = विराट चिति। क्षय = विलीन। उन्मद = स्वतन्त्रापूर्वक। द्वयता = भेद भाव।

अर्थ—इड़ा मनु को सान्त्वना देती हुई कहती है कि हे मनु देव विनाश की स्मृति करके तुम्हें चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इस संसार में कोई भी पदार्थ अक्षय नहीं है। देश की कल्पना काल की सीमा में लीन हो जाती है और काल उस विराट् शक्ति में जाकर समा जाता है। यहां पर केवल वह विराट् शक्ति का सीमा हीन है जो अपनी अनंतता से उन्मत्त होकर सर्वत्र अपने भेद-भाव की सीमित सीमा को भूलकर उस विराट् शक्ति की भाँति और सभी कालों में स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण किया करती है अतः तुम भी व्यापक बनकर इस संसार में निर्द्वन्द्व होकर जीवित रहने का प्रयत्न करो।

विशेष—प्रत्यभिज्ञादर्शन का प्रभाव स्पष्ट है इस दर्शन के अनुसार चिति ही संसार में स्वतन्त्रता से विचरण करती है—'चिति स्वतन्त्रता विश्वसिद्धि-हेतुः।

क्षितिज पटी·····इसमें।

शब्दार्थ—क्षितिज-पटी = क्षितिज रूपी पर्दा, माया पर्दा। ब्रह्मांड = विश्व। विवर = छिद्र, गुफा। घन-नाद = बादलों की गर्जना। कुहर = गुफा। लय = स्वरों का मेल। विवादी स्वर = प्रतिकूल बात।

अर्थ—इड़ा मनु को समझाती हुई कहती है कि यह समूचा संसार एक गुफा के समान है जिस पर क्षितिज का परदा पड़ा हुआ है। यदि तुम संसार के वास्तविक स्वरूप का परिचय प्राप्त करना चाहते हो तो इस परदे को उठा कर संसार के रूप को देखो तथा इसमें गूँजते हुए दुःखी व्यक्ति रूपी बादलों की पीड़ा रूपी गरज को सुनो। जिस प्रकार कोई कुशल गायक अपने गीत में ताल, लय और स्वर का बराबर ध्यान रखता है, उसी प्रकार तुम भी अपनी प्रजा के सुख-दुःख का बराबर ध्यान रक्खो और कोई ऐसा विपरीत आचरण न करो जिससे प्रजा में किसी प्रकार के असन्तोष के भाव जगें।

विशेष—रूपक अलंकार।

अच्छा ! यह·····चुका सब।

शब्दार्थ—प्रेरणामयी = उत्साहित करने वाली, परन्तु यहाँ कवि का तात्पर्य मूर्ख बनाने वाली से है।

अर्थ—इड़ा की सब बातें सुनकर मनु बोले कि ठीक है। अब यह सब तुम्हें फिर से समझाने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम दूसरों को मूर्ख बनाने में कितनी चतुर हो।

किन्तु आज······बात समायी ?

शब्दार्थ—बात समाना = विचार करना।

अर्थ—मनु ने कहा। मुझे तो इस बात का आश्चर्य है कि तुम कभी अपमानित समझ कर क्रोध से बाहर चली गई थी परन्तु फिर दुबारा मेरे कमरे में आने की हिम्मत तुम में कैसे आई। मेरे लिए तो यही बात विचारणीय है।

आह प्रजापति······सहूँ क्या।

शब्दार्थ—वितरित = बाँटना। सतत = निरन्तर। प्रयास = प्रयत्न।

अर्थ—मनु ने कहा मुझे इस बात का दुःख है कि मेरा प्रजापति होने का क्या यही अधिकार है कि मेरे मन की इच्छाएँ सदा ही अपूर्ण रहें। मैं सारी प्रजा को सुख सुविधाएँ बाँटता रहूँ तरन्तु जब मैं किसी साधन का उपयोग करूँ तो वह पाप होगा। क्या मैं इसको सहन कर सकता हूँ।

तुमने भी······कही है।

शब्दार्थ—प्रतिदान = बदला।

अर्थ—मनु इड़ा से बोले मैंने जो तुम्हारे राज्य का भार संभाला या उसके बदले में तुमने मुझे क्या दिया है ? तुमने मुझे ज्ञान अवश्य सिखाया है परन्तु इससे बदला पूरा नहीं हो सकता। मैं जिस वस्तु को चाहता हूँ यदि मुझे वह ही नहीं मिली तो तुम्हारी सभी बातें बेकार है अतः तुम इन्हें वापिस ले लो। अर्थात् यदि मैं तुम्हें प्राप्त नहीं कर सकता तो ज्ञान की बातें भी व्यर्थ हैं।

इड़े ! मुझे······तनिक अब।

शब्दार्थ—वृथा = व्यर्थ।

अर्थ—मनु इड़ा से बोले। हे इड़े ! मुझे तो मेरी इच्छित वस्तु चाहिए। मैं तुम पर अपना अधिकार बनाना चाहता हूँ तभी मैं पूर्ण रूप से अपने को प्रजापति समझूँगा अन्यथा मेरा प्रजापति होना बेकार है तुम्हारे सौन्दर्य को देख कर मेरे मन के सभी बन्धन टूट रहे हैं अर्थात् मेरा मन स्वयंको प्रजापति मानने को तैयार नहीं होता। मैं तो केवल तुम्हें चाहता हूँ। मुझे शासन करने के

अधिकार की तनिक भी इच्छा नहीं।

देखो यह......रहा अकेला।

शब्दार्थ—दुर्धर्ष = अजेय। समक्ष = सामने। क्षुद्र = तुच्छ। स्पन्दन = हलचल। प्रलय खेल = विनाशकारी कार्य।

अर्थ—मनु इड़ा से बोले—इड़े! देखो यह अजेय प्रकृति कितनी हलचल मचा रही है। परन्तु मेरे हृदय की तीव्र हलचल के सामने प्रकृति की तीव्र हलचल भी तुच्छ जान पड़ती है। मेरा हृदय बहुत सबल है अर्थात् कठोर है क्योंकि इसने प्रलय के विनाशकारी खेल का भी हँसते हुए सामना किया। परन्तु आज अपने अकेलेपन को जान चुका है और साथी की आवश्यकता जाग्रत कर रहा है इसीलिए यह तुम्हारे सामने इतना दीन बना हुआ है।

तुम कहती......पा लूँ।

शब्दार्थ—लय = ताल। क्रन्दन = विलाप करना। अट्टहास = खिलखिला-कर हँसना।

अर्थ—मनु बोले—हे इड़े! तुम कहती हो कि संसार संगीत की लय के समान है और मैं उसमें लीन होकर ही अपना जीवन व्यतीत करूँ। परन्तु मुझे यह बताओ कि उसमें किस सुख की प्राप्ति होती है। मैं तो चाहता हूँ कि मैं अपने दुखी जीवन का एक स्वतन्त्र लोक निर्माण करना चाहता हूँ। मेरा जीवन शोक संताप से भरा हुआ है परन्तु यदि मुझे तुम्हारी प्राप्ति हो जायेगी तो मैं उसी समय खिलखिलाकर हँस पड़ूँगा। अर्थात् मुझे बहुत आनंद मिलेगा।

विशेष—'विश्व एक लय' में रूपक, 'क्रन्दन के आकाश' में रूपकाति-शयोक्ति और 'रोदन में अट्टहास हों' में विरोधाभास अलंकार।

फिर से......खेलो तुम।

शब्दार्थ—मर्यादा = सीमा। झंझा = आंधी-तूफान। वज्र-प्रगति = बिजली की तीव्र गति।

अर्थ—मनु इड़ा से कहने लगे—यदि तुम मिल जाओगी तो फिर मुझे कोई चिन्ता नहीं रहेगी। चाहे समुद्र अपनी मर्यादा लाँघकर उछल-उछल कर बहने लगे। चाहे आंधियाँ और तूफान बिजली के समान तीव्र गति से आएँ, चाहे फिर मैं अपनी रक्षा के लिए नाव में बैठूँ और मेरी नाव डगमगाए और

इधर-उधर भागती हुई-सी लगे, चाहे तारागण, सूर्य तथा चन्द्र भी उस समय विचलित हुए से नींद से जागें और अपनी रक्षा के लिए चिंतित हों परन्तु हे बालिके! तुम मेरे पास ही रहो। तुम मेरी हो, मैं तुम्हें कहीं नहीं जाने दूँगा। मैं कोई खिलवाड़ नहीं हूँ जो तुम मेरे साथ खेलना चाहती हो।

विशेष—'रवि शशि—तारा सावधान हो चौंके जागे' में मानवीकरण।

आह······यहाँ रहूँ क्या ?

शब्दार्थ—उत्तेजित=आवेश पूर्ण। प्राप्य=मिलने योग्य। आतंक विकम्पित=भय से काँपती हुई। शुभाकांक्षिणी=भला चाहने वाली।

अर्थ—मनु की सब बातें सुनकर इड़ा बोली—मुझे इस बात का दुख है कि तुम इतना भी नहीं समझ पाते कि मैं जो बातें कह रही हूँ वह तुम्हारे कल्याण की हैं। आवेश में आकर तुम योग्य वस्तुओं को भी प्राप्त नहीं कर पाते। एक ओर तो प्रजा अत्यन्त उत्तेजित होकर तुम्हारी शरण में आई है और राजद्वार पर खड़ी है। दूसरी ओर प्रकृति लगातार भयानक रूप से कांपती हुई दिखाई दे रही है। इसलिए मनु अब तुम सावधान हो जाओ। मैं तो तुम्हारा भला चाहने वाली हूँ, मुझे जो कहना था कह चुकी। यदि तुम मेरी बातों को नहीं समझ पाते तो मेरा यहाँ रहना ही व्यर्थ है।

विशेष—'प्रकृति विकम्पित' में मानवीकरण।

मायाविनी······सीख निकाला।

शब्दार्थ—मायाविनी=जादूगरनी। खुट्टी=सम्बन्ध विच्छेद की बच्चों की एक विशेष प्रकार की क्रिया। मूर्त्तिमती=साकार प्रतिमा। अभिशाप=अहितकारिणी। संघर्ष=विरोध। उहचार=अनुशासन का विधान।

अर्थ—इड़ा की बातें सुनकर मनु बोले—हे इड़ा! तुमने तो मेरे साथ इस तरह सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है जिस प्रकार बच्चे खेल-खेल में एक दूसरे से खुट्टी कर लेते हैं। मैं तो इन सब बातों को बिलकुल भी नहीं जानता। तुम्हीं वह हो जो मेरे सामने अमंगल की साकार मूर्ति बनकर उपस्थित हुई और तुमने ही मुझे विद्रोह करने के नए-नए ढंग सिखलाए। तुम्हारी प्रेरणा के कारण ही यज्ञ की पवित्र वेदियाँ पशुओं के रक्त से रंजित होने लगी और तुम्हारी प्रसन्नता के कारण ही यज्ञ भूमि में भयंकर लपटें उठी। तुम्हीं ने मुझे प्रजा को अनुशासन में लाने का ढंग सिखाया और उसका प्रचार भी

किया।

विशेष—'मूर्त्तिमती अभिशाप बनी-सी' में उपमा अलंकार।

चार वर्ण……कैसा उर।

शब्दार्थ—श्रम=कार्य। शस्त्र=हथियार। यन्त्र=मशीन। शक्ति का खेल खेलना=शक्ति के आधार पर असम्भव कार्यों को भी करने का प्रयत्न करना। आतुर=उत्सुक। प्रकृति संग संघर्ष=प्रकृति पर अपना अधिकार करने की तैयारी।

अर्थ—मनु बोले—हे इड़ा! आज तुम्हारी प्रेरणा से ही सारा सारस्वत नगर चार श्रेणियों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में विभाजित हो गया। प्रत्येक वर्ग ने अपना-अपना कार्य संभाल लिया। तब ऐसे हथियार और मशीनें बनने लगीं जिनका कभी मैंने सपना भी नहीं देखा था। आज सभी साधनों से सम्पन्न होकर मनुष्य असम्भव कार्यों को करने के प्रयत्न कर रहे हैं। अब वह प्रकृति से भयभीत न होकर उसके साथ निरन्तर युद्ध करके अपना अधिकार जमाना चाहता है।

बाधा नियमों……धुआँ सा।

शब्दार्थ—हताश=निराश। वैभव=सुख ऐश्वर्य। ध्वंस=नष्ट।

अर्थ—मनु इड़ा से कहने लगे—हे इड़ा! तुम मुझे अपने राज्य के नियमों में बाँधने का प्रयत्न मत करो। मेरी सभी आशाएँ नष्ट हो चुकी हैं, इसलिए एक क्षण भर के लिए तो मुझे सुख से जीवन व्यतीत कर लेने दो। अरी सारस्वत राज्य की रानी! तुम अपने प्रजापति के पद एवं अन्य ऐश्वर्य को वापिस ले लो। मुझे इनकी इच्छा नहीं है। मुझे तो केवल इतना अधिकार चाहिए कि मैं सब प्रकार से तुम्हें अपना कह सकूं। यदि ऐसा न हो सका तो समझ लो कि सारा सारस्वत प्रदेश फिर नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा। और तुम इसे आग की शिखा के समान जला दोगी तथा सारा राष्ट्र धुंए के समान उड़ जाएगा।

मैंने जो……मत फूलो।

शब्दार्थ—फूलो=प्रसन्न होना।

अर्थ—मनु की बातों का उत्तर देती हुई इड़ा कहने लगी मैंने तुम्हारी उन्नति के लिए जो कुछ किया उसको इस तरह मत भूल जाओ। और राष्ट्र

से जो तुम्हें सम्मान या वैभव प्राप्त हुआ उस पर गर्व मत करो ।

प्रकृति संग······बड़ा है ।

शब्दार्थ—केन्द्र = मुख्य स्थान । अनहित = बुराई । विभूति = ऐश्वर्य । अन्तर्यामी = सभी रहस्यों को जानने वाला । हाँ में हाँ मिलाना = चापलूसी करना ।

अर्थ—इड़ा मनु से कहती है कि मैंने तुम्हें प्रकृति के संग संघर्ष करने का ढंग सिखाया और राज्य में तुम्हें प्रमुख व्यक्ति मानकर मैंने तुम्हारा कोई बुरा नहीं किया । मैंने तुम्हें स्वाभाविक ही इस सृष्टि के बिखरे हुए ऐश्वर्य का अधिपति बना दिया । जिसके कारण आज तुम राष्ट्र के सभी रहस्यों को जानते हो । परन्तु अब स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि यदि मैं तुम्हारी हाँ में हां न मिलाऊं तो बहुत बड़ा अपराध है । मेरा धन्यवाद करने की अपेक्षा तुम चाहते हो कि मैं तुम्हारी चापलूसी करूं ।

मनु ! देखो······धरो तो ।

शब्दार्थ—भ्रान्त = भ्रम में डालने वाली । प्राची = पूर्व दिशा । नव ऊषा = प्रभात की लालिमा । तमस = अंधकार, अज्ञान । बात बनती = काम बनना ।

अर्थ—इड़ा मनु से कहती है—मनु ! देखो तुम्हें भ्रम में डालने वाली यह रात्रि बीत चली है और पूर्व दिशा में ऊषा की लालिमा फैलने लगी है, अर्थात् तुम्हारी बुद्धि का अज्ञान रूपी अंधकार पर नव उदित ऊषा विजय पा रही है । अभी तो समय है अभी कुछ नहीं बिगड़ा । यदि तुम मेरे ऊपर विश्वास करते हो और अपने हृदय में धैर्य धारण करो तो सब बात बन जाएगी ।

और एक······रही वह ।

शब्दार्थ—प्रमाद = उन्माद । निस्सहाय = निराश्रय । दीन = बेबस ।

अर्थ—इड़ा की बातें सुनकर मनु का मन चंचल हो गया और जब इड़ा ने द्वार की तरफ पैर बढ़ाया तो वासना में पागल हुए मनु ने उसे अपनी भुजाएं फैलाकर वहीं रोक लिया । इड़ा की सहायता करने वाला वहाँ कोई नहीं था । वह केवल उसे बेबसी दृष्टि से देखती रही ।

यह सारस्वत······मनमानी ।

शब्दार्थ—अस्त्र = प्रयोग का साधन ।

अर्थ—इड़ा को रोककर मनु कहने लगे—हे इड़े ! यह सारा सारस्वत प्रदेश तुम्हारा है और तुम इसकी रानी हो । मुझे अब पता चला है कि तुम मुझे अपने कार्य सिद्धि का साधन बनाकर मनमानी करा रही हो ।

यह छल······न सकेगी ।

शब्दार्थ—छल = कपट । पंगु = व्यर्थ । जाल से मुक्त = बन्धन से स्वतन्त्र ।

अर्थ—मनु कहने लगे—इड़ा ! अब तुम समझ लो कि यह तुम्हारा छल कपटपूर्ण व्यवहार अब न चल सकेगा और अब मैं भी तुम्हारे बन्धन से स्वतन्त्र हूँ। तुम्हारे शासन की उन्नति अब स्वाभाविक ही रुक जाएगी क्योंकि मैं अब तुम्हारा दास बन कर अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकता ।

विशेष—'छल के पंगु होने' में मानवीकरण अलंकार और 'जाल' में लक्षण-लक्षणा है ।

मैं शासक······अतल में ।

शब्दार्थ—चिर-स्वतन्त्र = सदैव किसी के बन्धन में न रहने वाला । असीम = अनन्त । सकल व्याख्या = सम्पूर्ण शासन प्रबन्ध । अतल में डूबना = नष्ट होना, रसातल में चले जाना ।

अर्थ—मनु बोले—हे इड़े ! मैं इस राज्य का शासक हूँ और सब प्रकार से स्वतन्त्र हूँ। जिस प्रकार सारी प्रजा पर मेरा अधिकार है उसी प्रकार मैं चाहता हूँ कि तुम पर भी मेरा अधिकार हो । तभी मेरा जीवन सफल हो सकता है । यदि ऐसा न हुआ तो सारस्वत प्रदेश का सारा शासन प्रबंध एक क्षण में ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा और यह व्यवस्था भी नष्ट हो जाएगी ।

विशेष—'व्यवस्था के डूबने' में लक्षण-लक्षणा ।

देख रहा······आहों में ।

शब्दार्थ—अति भय = अत्यधिक डर । निर्मम क्रन्दन = कठोर गर्जना ।

अर्थ—मनु बोले—मैं देख रहा हूँ कि पृथ्वी भयंकर हलचल के कारण बहुत तेजी से काँप रही है और बिजली की भयंकर गड़गड़ाहट के कारण आकाश का भी विलाप सुन रहा हूँ। परन्तु हे इड़े ! आज तुम मेरी

बाहों में बंदी हो, मेरे हृदय में बसी हुई हो, इसके पश्चात् सब कुछ आहों में डूब गया।

सिंहद्वार······कांप रहे थे।

शब्दार्थ—सिंह द्वार=राजभवन का मुख्य द्वार। अरराया=टूट कर गिरना। चीत्कार=शोर। स्खलन विकंपित=मार्ग से विचलित होने के कारण कांपते हुए।

अर्थ—उसी समय राजभवन का मुख्य द्वार अररा कर टूट गया और सारी जनता राजभवन के अन्दर घुस आई और 'मेरी रानी' 'मेरी रानी' कह कर शोर मचाना शुरू किया। उस समय मनु अपनी दुर्बलता प्रकट होने के कारण काँप रहे थे। वासना के कारण वह पथ-भ्रष्ट हो गए थे, इसीलिए अब उनके पैर बुरी तरह से काँप रहे थे।

सजग हुए······कहता हूँ अब।

शब्दार्थ—सजग=सावधान। वज्र खचित=इंद्र के आयुध के समान भीषणता से परिपूर्ण। राजदण्ड=अधिकार सूचक दंड।

अर्थ—जब मनु सावधान हुए, अर्थात् सचेत हुए तो इन्द्र के आयुध के समान भीषणता से परिपूर्ण राज दण्ड को पकड़ कर इस तरह कहने लगे—तो मैं भी अब कुछ तुमसे कहता हूँ उसे ध्यानपूर्वक सुनो—

तुम्हें तृप्ति······हमारी ?

शब्दार्थ—तृप्ति कर=सन्तुष्ट करने वाले। सकल=सब। श्रम भाग=कार्य विभाजन। कृति=कार्य। प्रतिकार=बदला लेना। पशु=असभ्य। कानन-चारी=वन में रहने वाले। उपकृति=उपकार।

अर्थ—मनु प्रजाजनों से कहने लगे कि मैंने तुम्हें सुख के वे सभी साधन बताए जिनसे हृदय तृप्त होता है। मैंने समाज को चार वर्गों में विभाजित करके कार्यों का विभाजन किया। और प्रकृति के उन सब अत्याचारों को जिनको हम सब सहते हैं, हमने विरोध करना सीख लिया है। पहले के समान चुप करके नहीं बैठे रहते वरन् बदला लेते हैं। क्योंकि आज हम पशु नहीं अर्थात् असभ्य नहीं हैं, और न गूँगों की तरह वन में घूमने वाले प्राणी हैं। मेरे द्वारा किए गए सब उपकारों को आज तुम भूल गए हो ?

वे बोले······में डाला।

शब्दार्थ—सक्रोश=क्रोध के साथ। योग क्षेम=आवश्यक वस्तु की प्राप्ति और प्राप्त वस्तु की रक्षा। संचय=संग्रह।

अर्थ—मनु की बातें सुनकर समस्त नगरवासी बहुत क्रोधित हो उठे। मानसिक पीड़ा से दुःखी होकर बोले—देखो आज पापी ही अपने ही मुख से अपने दोषों की चर्चा कर रहा है। यदि हम अपने जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करना और उनकी रक्षा करना सीखते तो ठीक था परन्तु तुमने हमें संग्रह करने की आदत डाल कर हमें लोभी और चिंतित बना दिया।

हम संवेदनशील······जर्जर झीनी।

शब्दार्थ—संवेदनशील=अनुभूतिमय। कृत्रिम=बनावटी। प्रकृत=स्वाभाविक। शोषण=चूसना। जर्जर=क्षीण। झीनी=शक्तिहीन।

अर्थ—प्रजाजन मनु से बोले कि तुम्हारे प्रयत्नों से हम अधिक अनुभूतिशील हो गये। हमें यही सुख मिला कि पहले हम प्राकृतिक दुःखों से दुखी होते थे परन्तु अब कृत्रिम दुःखों से दुखी होने लगे। तुमने आज मशीनों का आविष्कार करके सभी प्राणियों की प्राकृतिक शक्ति छीन ली और हम सबको दुर्बल बना दिया।

और इड़ा······कहाँ हैं ?

शब्दार्थ—बन्दिनी=कैदी। यायावर=खानाबदोश।

अर्थ—प्रजाजन मनु से बोले—हे मनु! तुमने आज इड़ा के साथ जो अत्याचार किया है क्या इसीलिए हमारे बल पर जीवन व्यतीत कर रहे थे। आज तुमने सारस्वत प्रदेशकी रानी इड़ा को बन्दिनी बना रखा है। ओ खानाबदोश अब देखते हैं कि तेरा छुटकारा यहाँ से कैसे होता है।

तो फिर हूँ······सचमुच देखें।

शब्दार्थ—पुतलों=मानवों। पौरुष=पुरुषार्थ। लेखें=जानें। वज्र बना-सा=अत्यंत भयंकर।

अर्थ—प्रजाजनों की क्षोभ भरी बातें सुनकर मनु बोले—यदि ऐसी बात है तो आज मैं इस जीवन संग्राम में प्रकृति और उसके मनुष्यों के भयंकर उत्पातों का मैं अकेले ही सामना करूँगा। आज मैं अपने वज्र के समान राज दण्ड का प्रहार जब तुम्हारे शरीर पर करूँगा तो तुम जान जाओगे कि

मुझ में कितनी सामर्थ्य एवं शक्ति है ।

विशेष—'जीवन-रण' में रूपक और 'वज्र बना सा' में उपमा अलंकार ।

यों कह······नीले पीले ।

शब्दार्थ—आग=क्रोध । नाराच=बाण । धूमकेत=पुच्छल तारा ।

अर्थ—इतना कहकर मनु ने अपने भयंकर शस्त्रों को संभाल कर हाथ में ले लिया उसी समय देवताओं ने भी मनु के अपराध पर क्षोभ प्रकट किया और वे उसी समय उसे दण्ड देने को उतारू हो गए और प्रकृति में तीव्र हलचल मचने लगी । प्रजाजनों के धनुषों से तीखे बाणों की वर्षा होने लगी और उधर आकाश से नीले पीले जलते हुए तारे टूटने लगे ।

अंधड़ था······प्राणों को ।

शब्दार्थ—अधंड़=भीषण तूफान । वारण=रक्षा ।

अर्थ—युद्ध में ज्यों ज्यों प्रजा की झुँझलाहट बढ़ती जा रही थी, उसी गति से तूफान की भयंकरता भी बढ़ रही थी । बिजली भी ठीक उसी प्रकार चमक रही थी जैसे युद्ध में शस्त्र चमक रहे थे । किन्तु निर्दयी मनु उन बाणों से अपनी रक्षा करते हुए तथा अपनी तलवार से प्रजा के प्राणों को कुचलते हुए आगे बढ़ते जा रहे थे ।

तांडव में······निर्मम में ।

शब्दार्थ—तांडव=भयानक नृत्य । प्रगति=विशेष गति । विकर्षणमयी=अस्तव्यस्त । अलात-चक्र=चक्कर करती मशाल । रक्तिम=खून बहाने वाला । उन्माद=आवेश ।

अर्थ—आकाश में रुद्र का विनाशकारी नृत्य बड़ी तीव्र गति से चल रहा था । जिसके कारण सभी परमाणु इधर-उधर बिखर गए थे । सभी दैनिक शक्तियाँ संसार की व्यवस्था को अस्त-व्यस्त करने में लगी हुई थीं, जिसके कारण सभी भयभीत थे । उस समय घना अंधकार छाया हुआ था उस अंधकार में मनु चक्कर काटती हुई मशाल के समान घूम-घूम कर लड़ रहे थे । आवेश से भरे हुए निर्दयी मनु का हाथ खून बहाने में चंचलता से काम कर रहा था ।

उठा तुमुल······धनु ने ।

शब्दार्थ—तुमुल=कोलाहल । विपक्षी=विरोधी । आहत=जख्मी ।

टिककर=सहारा लेकर। श्वास लिया=दम लिया। टंकार=धनुष की ध्वनि। दुर्लक्ष्यी=कठिन निशाने को बींधने वाला।

अर्थ—युद्ध में भयंकर कोलाहल छा गया और स्थिति बहुत भयानक हो गई। मनु के विरोधियों का समूह उसके विरुद्ध आगे बढ़ता जा रहा था और सारी शासन व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई थी वह इस तरह शान्त थी जैसे कोई नारी पैरों तले कुचली जाने के कारण चुपचाप पड़ी हो। उस युद्ध में घायल होकर मनु कुछ पीछे हटे और एक खम्भे का सहारा लेकर उन्होंने कुछ दम लिया। तब मनु ने तलवार को छोड़कर ऐसे धनुष की टंकार की जो कठिन निशानों को भी बींधने वाला था।

बहते विकट······लेना-लेना।

शब्दार्थ—विषम=भयानक। उन्चास बात=उन्चास प्रकार की पवनें। मरणपर्व=प्रलय काल। सजग=सचेत।

अर्थ—उस समय उन्चास प्रकार की भयंकर पवनें चल रही थीं। प्रजा के लोगों के लिए वह प्रलय काल था। पुरोहित आकुलि और किलात प्रजाजनों के नेता बने हुए थे। मनु को देखते ही उन्होंने ललकार कर कहना शुरू किया 'अब इस शासक मनु को मत जाने देना, परन्तु मनु पहले ही सचेत थे और वह यह कहते-कहते कि 'इन दुष्टों को पकड़ो-पकड़ो' उन पुरोहितों के पास पहुंच गए।

विशेष—'लेना-लेना' में वीप्सा अलंकार।

काया ! तुम·······ओ आकुलि।

शब्दार्थ—उत्पात=ऊधम। बलि=बलिदान।

अर्थ—आकुलि और किलात के पास पहुँचकर मनु कहने लगे कायरो ! तुमने ही यह सारा ऊधम मचाया है। तुम्हें अपना समझ कर ही मैंने अपनाया था। यदि यही बात है तो आगे बढ़ो। तुम दोनों यज्ञ पुरोहित हो तुमने कितने ही पशुओं की बलि कराई है। यह यज्ञ नहीं बल्कि रणक्षेत्र है यहाँ पर देखो कि मनुष्यों की बलि कैसे होती है।

और धारा·····जी ले।

शब्दार्थ—धराशायी=मरकर भूमि पर गिर जाना। जनसंहार=मनुष्यों का विनाश। आतंक=शक्ति का भय।

अर्थ—उसी समय दोनों पुरोहित आकुलि और किलात मनु का प्रहार

खाकर भूमि पर लोट गए। इड़ा चिल्ला-चिल्लाकर बराबर कह रही थी कि बस अब युद्ध बन्द करो देखो प्रकृति की भयंकर हलचल के कारण अपने आप ही मनुष्यों का विनाश हो रहा है अतः पागल हुए प्राणियों तुम परस्पर लड़कर अपना जीवन व्यर्थ मत गँवाओ। तब मनु को कहने लगी ओ घमण्डी मनु ! तुम प्रजा पर अपनी शक्ति का आतंक क्यों जमा रहे हो। तुम युद्ध बन्द करदो और अन्य प्राणियों को सुख से जीने दो, फिर इसके साथ तू भी सुख से अपना जीवन व्यतीत कर।

किन्तु सुन······बन पानी।

शब्दार्थ—वेदी ज्वाला धधकती = यज्ञ कुण्ड के समान युद्ध की आग चारों ओर धधक रही थी। पंथ = ढंग। रक्तोन्मद = खून बहाने में पागल। घर्षिता रगड़ खाई हुई। वे = प्रजाजन। प्रतिशोध = बदला।

अर्थ—परन्तु इड़ा की बात को कौन सुन रहा था वहाँ पर तो यज्ञ कुण्ड की आग के समान रण की आग चारों ओर धधक रही थी। वहाँ पर सामूहिक रूप से बलि देने का ढंग निराला ही निकाला गया था। रक्त बहाने का पागलपन मनु पर अब भी सवार था उनका हाथ अब भी नहीं रुका था साथ ही प्रजा का साहस भी कम नहीं हुआ था। भयानक युद्ध क्षेत्र में सारस्वत प्रदेश की रानी बहुत ही अपमानित और पद दलित-सी होकर खड़ी थी। और प्रजा अपनी रानी का बदला लेने को अधीर थी। अतः युद्ध स्थल में रक्त पानी के समान बह रहा था।

धूमकेतु सा······उस भू पर।

शब्दार्थ—नराच = लोहे का बाण। प्रलयंकर = विनाशकारी। महाशक्ति = दैवी शक्ति। मुमूर्षु = मूर्च्छित होकर।

अर्थ—उसी समय मनु को दण्ड देने के लिए रुद्र का एक भयंकर तीर अपनी पूँछ में विनाशकारी आग लिए हुए मनु की ओर इस प्रकार चला जैसे कोई पुच्छल तारा टूटकर पृथ्वी की ओर गिरता है। सहसा आकाश में रुद्र की (दैवी शक्ति) की हुंकार सुनाई पड़ी, और प्रजाजनों के शस्त्रों की गति भी तीव्र हो गई। तथा वे सभी शस्त्रों की धारें मनु पर टूट पड़ी। मनु वहीं मूर्च्छित होकर गिर पड़े। वहाँ पृथ्वी पर इतना नर संहार हुआ कि वहाँ खून की नदी बहने लगी।

विशेष—'धूमकेतु-सा' में पूर्णोपमा अलंकार।

निर्वेद

कथासार—जब इड़ा की प्रजा और मनु के बीच का घोर संग्राम समाप्त हुआ तो सर्वत्र शोक और वीभत्सा का वातावरण छा गया। राजभवनों में भयावह सूनापन हो गया। एक राजमहल में मनु मूर्च्छित अवस्था में पड़े हुए थे और उन्हीं के निकट बैठी हुई इड़ा मनु के प्रति करुणा के भावों में लीन थी। उसे वह समय याद आ रहा था जब मनु एक परदेशी के रूप में उसे मिले थे और मनु ने कितने प्रयत्न से सारस्वत नगर को पुनः बसाया था। जिन व्यक्तियों के सुख के लिए मनु ने अथक प्रयत्न किया, वे ही इनके विरोधी बन गये और विषम आघातों से इसे मूर्च्छित कर गये।

इसी बीच इड़ा को दूर से आती हुई किसी विरहिणी की विकल ध्वनि सुनाई पड़ी जो एक बच्चे का हाथ पकड़े उसी राजभवन की ओर आ रही थी। वह श्रद्धा थी। इड़ा ने दया से द्रवित होकर उसे आश्रय दिया, किन्तु जब श्रद्धा ने मूर्च्छित मनु को पड़े हुए देखा तो उसकी व्यथा असीम हो गई। उसने मनु को सहलाना आरंभ किया जिससे उनकी मूर्च्छा दूर हो गई और उन्होंने श्रद्धा को उसी प्रकार देखा जिस प्रकार कोई अपराधी अपने हितैषी को देखता है। मनु ने प्रायश्चित्त भरे स्वर में श्रद्धा के उन गुणों का और उपकारों का वर्णन किया, जिनके द्वारा उसने मनु को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने का प्रयास किया था। श्रद्धा केवल सुनती रही, चुपचाप और भरी हुई आँखों से।

इसी प्रकार वह भयावह रात्रि समाप्त हो गई और दिन निकल आया। पुनः रात्रि हो गई। लम्बे मार्ग की थकान और रात भर के जागरण के कारण श्रद्धा को नींद आ गई। मनु को श्रद्धा के सम्मुख रहना दुसह्य हो रहा था और फिर वे सारस्वत निवासियों से प्रतिशोध भी तो लेना चाहते थे, जो श्रद्धा के रहते हुए सम्भव नहीं था, अतः अवसर पाकर वे रात को चुपचाप

श्रद्धा और कुमार को छोड़कर पुनः भाग निकले। प्रातःकाल होने पर जब श्रद्धा, कुमार और इड़ा को उनके भाग जाने का पता चला तो वे तीनों प्राणी अत्यधिक दुःखी हुए। इस कार्य से इड़ा को लज्जा भी आ रही थी क्योंकि इस कार्य के लिए वह स्वयं को ही दोषी मान रही थी। श्रद्धा चुपचाप बैठी थी जैसे किसी गहरी उलझन में उलझ रही हो।

वह सारस्वत······तना।

शब्दार्थ—क्षुब्ध=विचलित। विगत कर्म का=युद्ध का। विषाद-आवरण=दुःख का पर्दा।

अर्थ—मनु और सारस्वत-निवासियों के मध्य हुए युद्ध के उपरांत सारस्वत नगर की दशा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि वह सारस्वत नगर विचलित, मलिन और कुछ मौन-सा बना हुआ सुनसान पड़ा हुआ था जिसके ऊपर हाल ही में हुए युद्ध का भयंकर दुःख का पर्दा तना हुआ था, अर्थात् पारस्परिक युद्ध ने सारस्वत नगर की शोभा को छिन्न-भिन्न कर दिया था और अब वह बिल्कुल सुनसान नगर दिखाई देता था।

विशेष—मानवीकरण अलंकार।

उल्काधारी······मचल रहे।

शब्दार्थ—उल्काधारी=मशालों को लिये हुए। प्रहरी=पहरेदार।

अर्थ—सारस्वत नगर तो बिल्कुल सुनसान और शान्त पड़ा हुआ था, किन्तु आकाश में चमकते हुए ग्रह और तारे मशालों को लिए हुए पहरेदारों की भाँति घूम रहे थे, मानो वे यह देख रहे हों कि पृथ्वी पर क्या-क्या घटनाएँ घटित होती हैं और इसका प्रत्येक अणु क्यों स्पन्दित होता है।

विशेष—उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार।

जीवन में······भीमा है।

शब्दार्थ—जागरण=चेतना। सुषुप्ति=अचेतना। भव-रजनी=संसार रूपी रात। भीमा=भयंकर।

अर्थ—जीवन में चेतना सत्य है या अचेतना ही इसकी सीमा है; अर्थात् क्या अचेतना में ही जीवन का पर्यवसान होना आवश्यक है। यह संसार रूपी रात्रि अत्यन्त भयंकर है, रह-रहकर यह पुकार-सी आती है।

विशेष—सन्देह और रूपक अलंकार।

निशिचारी······सन्नाटे ।

शब्दार्थ—निशिचारी=रात्रि में विचरण करने वाले ।

अर्थ—रात्रि में विचरण करने वाले भीषण विचार बहुत तेजी से उड़ रहे थे । सरस्वती नदी सन्नाटे को खींचती-सी चुपचाप बही जा रही थी ।

विशेष—मानवीकरण अलंकार ।

अभी घायलों ·····करुण कथा ।

शब्दार्थ—मर्म-व्यथा=अत्यन्त पीड़ा । पुर-लक्ष्मी=नगर की लक्ष्मी । खग-रव के मिस=पक्षियों की बोली के बहाने से ।

अर्थ—अभी तक युद्ध में घायल हुए व्यक्ति कराह रहे थे और उनकी अत्यन्त पीड़ा अभी तक उनको पीड़ित कर रही थी । पक्षियों की बोली के बहाने से नगर की लक्ष्मी कुछ करुण कथा कह उठती थी ।

विशेष—अपन्हुति अलंकार ।

कुछ प्रकाश······अवसाद रहा ।

शब्दार्थ—धूमिल=धुंधला । अवसाद=दुःख ।

अर्थ—यद्यपि समूचा सारस्वत नगर पूर्णतः सुनसान था, तथापि कुछ धुँधला सा प्रकाश उसके दीपकों से निकल रहा था, अर्थात् उसमें कुछ दीपक टिमटिमा रहे थे । हवा रुक-रुककर और धीरे-धीरे चल रही थी, मानो उसमें खिन्नता से भरा हुआ दुःख हो जिसके भार के कारण वह द्रुतगति से न चल पाती हो ।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलंकार ।

भयमय मौन · ···रहा बड़ा ।

शब्दार्थ—भयमय=भय से भरा हुआ । दृश्य जगत=दिखाई देने वाला भौतिक जगत ।

अर्थ—सारस्वत नगर के ऊपर जो अंधकार छाया हुआ था, वह इतना विशाल था कि दिखाई देने वाले भौतिक जगत् की सीमाओं से भी बड़ा प्रतीत होता था । वह भय तथा शून्यता से भरा रहने के कारण ऐसा लग रहा था जैसे कोई निरीक्षक चुपचाप किन्तु अत्यन्त सजगता से सारस्वत नगर का निरीक्षण कर रहा हो ।

विशेष—उपमा अलंकार ।

मंडप के सोपान······धधक रही।

शब्दार्थ—सोपान=सीढ़ी। अग्नि-शिखा-सी=अग्नि की लपटों के समान।

अर्थ—मंडप की सीढ़ियाँ सूनी पड़ी थीं और वहाँ पर इड़ा के अतिरिक्त और कोई व्यक्ति नहीं था। स्वयं इड़ा ही उसकी सीढ़ी पर अकेली बैठी हुई थी जो आग की लपटों के समान धधक रही थी, चमक रही थी।

शून्य······रहा पड़ा।

शब्दार्थ—शून्य=रहित।

अर्थ—वह मंदिर राजचिन्हों से रहित होकर केवल समाधि की भाँति सूना और भयावह दिखाई दे रहा था, क्योंकि वहीं पर घायल हुए मनु का मूर्च्छित शरीर पड़ा हुआ था।

विशेष—'समाधि-सा' में उपमा अलंकार है।

इड़ा ग्लानि······रातें।

शब्दार्थ—ग्लानि=घृणा। ममता=मोह।

अर्थ—उस सूने राजमन्दिर में, जहाँ मनु का मूर्च्छित शरीर पड़ा हुआ था, इड़ा बैठी हुई घृणा से भरी हुई पिछली बीती हुई बातों को सोच-सोचकर दुःखी हो रही थी। उसकी ऐसी अनेक रातें इसी प्रकार के घृणा और मोह से भरे हुए विचारों में बीत चुकी थीं; अर्थात् उसके जीवन में ऐसे अनेक अवसर आये थे जब उसके विचारों में घृणा और ममता के भावों का संघर्ष हुआ था।

नारी का······रँग देता।

शब्दार्थ—सुधासिन्धु=अमृत का सागर; दया, ममता, करुण आदि सात्विक भावों का अपार समूह। बाड़व जलन=बाड़वाग्नि; क्षोभ, उद्वेग, संताप आदि भाव। कंचन-सा=सोने के समान।

अर्थ—यद्यपि इड़ा ऊपर से कठोर और निष्ठुर दिखाई देती थी, किन्तु उसके पास नारी का वह कोमल हृदय था जिसमें दया, ममता, करुणा आदि भावों के अपार समूह विद्यमान थे। जब उसे मनु के अपराध और नर-संहार की याद आती तो उसका हृदय क्षोभ आदि भावों के कारण पीड़ा से सोने की भाँति पीला पड़ जाता।

विशेष—सांगरूपक अलंकार ।

मधु पिंगल······माया नचती ।

शब्दार्थ—पिंगल=पीली । संसृति रचती=संसार का निर्माण करती । प्रतिशोध=बदला लेने की भावना । माया नचती=रूप दिखाई देते ।

अर्थ—इस इड़ा के हृदय में एक ओर तो क्षोभ आदि भाव उगकर उसके भावों को उत्तेजित कर रहे थे और दूसरी ओर नारी की कोमलता होने के कारण उसमें दया, ममता आदि के रूप में स्थित शीतलता एक नये संसार का निर्माण कर रही थी । इस प्रकार इड़ा के हृदय में श्रद्धा और प्रतिशोध दोनों के पृथक्-पृथक् रूप दिखाई दे रहे थे ।

विशेष—सांगरूपक अलंकार ।

उसने स्नेह······जहाँ कहीं ।

शब्दार्थ—अनन्य=अटूट । सहज लब्ध =स्वाभाविक रूप से प्राप्त ।

अर्थ—इड़ा सोच रही है कि यद्यपि मनु ने मुझसे अटूट प्रेम किया था, तथापि में अटूट न रह सका । उसकी वह अटूटता स्वाभाविक रूप से प्राप्त की जा सकती भी, किन्तु मैं उसे भी प्राप्त न कर सकी ।

बाधाओं का····· तोड़ चले ।

शब्दार्थ—अतिक्रमण कर=पार करके । अबाध हो=बाधा-रहित ।

अर्थ—इड़ा सोच रही है कि जो प्रेम सब प्रकार की बाधाओं को पार करके तथा बाधा-रहित होकर बढ़ा, वही उचित और अनुचित की सीमा तोड़ने के कारण अपराध बन गया ।

हां अपराध !······असीम बना ।

शब्दार्थ—भीम=भयंकर ।

अर्थ—इड़ा सोच रही है कि जो प्रेम अबाध गति से पल्लवित हुआ था, वही सब प्रकार की सीमाओं को तोड़ने के कारण अपराध बन गया । और यह अकेला अपराध ही इतना भयंकर बन गया कि जीवन के एक कोने से उठकर आज सीमा-रहित बन गया ।

और प्रचुर······छल-छाया ?

शब्दार्थ—प्रचुर=बहुत, अनेक ।

अर्थ—इड़ा सोच रही है कि मनु ने अपनी सहृदयता के कारण मुझ पर

अनेक उपकार किये, किन्तु वे सभी उपकार आज मिट्टी में मिल गये हैं। वस्तुतः वह प्रेम, जो मनु ने मेरे प्रति प्रदर्शित किया था, शून्य था और शून्यता के कारण छल से भरा हुआ था।

कितना दुःखी······छाया था।

शब्दार्थ—एक परदेशी=मनु। नीचे धरा नहीं थी=कोई सहारा नहीं था। चतुर्दिक्=चारों ओर।

अर्थ—इड़ा सोच रही है कि मनु उस दिन कितने दुःखी थे. जब वे एक परदेशी के रूप में मेरे पास आये थे। उस दिन उसे किसी भी प्रकार का सहारा नहीं था और उसके चारों ओर विषाद और निराशा के कारण शून्यता ही छाई हुई थी।

वह शासन ·····साकार बना।

शब्दार्थ—सूत्रधार=चलाने वाला। नियमन=नियन्त्रण। निर्मित= बनाये हुए। नव विधान से=नये राज्य-नियमों से।

अर्थ—इड़ा सोच रही है कि मनु ने ही सारस्वत प्रदेश में आकर शासन को चलाया और वह राज्य के नियन्त्रण का आधार बना; अर्थात् उसने राज्य में सभी प्रकार से व्यवस्था स्थापित की, किन्तु वह अपने ही बनाये हुए नवीन नियमों से स्वयं ही दण्ड का भागी बना अर्थात् उसे उसके ही बनाये गये नियमों के आधार पर दण्ड मिला।

सागर की······सदा।

शब्दार्थ—शैल-शृंग=पहाड़ी की चोटी। अप्रतिहत=जो रोकी न जा सके।

अर्थ—इड़ा मनु के गुणों का उल्लेख करती हुई कहती है कि जो मनु सागर की लहरों से उठकर आसानी से पहाड़ की चोटियों पर चढ़ गया; अर्थात् जिसने बड़े-बड़े साहसिक कार्य किये और जो न रोकी जाने वाली गति के द्वारा संस्थाओं से सदा आगे बढ़ता रहता था।

आज पड़ा······अपना।

शब्दार्थ—मुमूर्षु-सा=मृतक के समान। अतीत=बीता-काल।

अर्थ—इड़ा मनु के विषय में सोच रही है कि जो मनु प्रत्येक साहसिक कार्य को सफलतापूर्वक पूर्ण करने की शक्ति रखता था, वही आज मृतक के

समान पड़ा हुआ है। उसके किये गये साहसिक कार्यों को याद करके ऐसा प्रतीत होता है कि वे सब एक स्वप्न के समान थे ; अर्थात् उनमें कोई सार नहीं था। वह मनु जो सबके लिए अपनत्व की भावना रखता था, आज अपनों से ही उपेक्षित होकर पड़ा हुआ है।

विशेष—उपमा अलंकार।

किन्तु वही······गुणकारी था।

शब्दार्थ—उपकारी=उपकार करने वाला, भलाई करने वाला। गुणकारी =गुण करने वाला, हित करने वाला।

अर्थ—इड़ा मनु के विषय में सोचती हुई कहती है कि मेरा भी तो अपराधी वही है जिसका वह उपकार करने वाला था। जो सबका हित करने वाला था, उसी मनु ने प्रकट रूप से दोष किया है।

अरे सर्ग-अंकुर······प्यार करें।

शब्दार्थ—सर्ग-अंकुर=सृष्टि-बीज । पल्लव=पत्ते। युगल को=दोनों को।

अर्थ—इड़ा बुराई और भलाई का विश्लेषण करती हुई कहती है कि इस सृष्टि में जो अंकुर अंकुरित होते हैं, उनमें बुराई और भलाई के, दोनों प्रकार के पत्ते आते हैं ; अर्थात् सृष्टि में बुराई और भलाई आवश्यक रूप से मिलती है, किन्तु इन दोनों की अपनी-अपनी सीमाएँ हैं। अतः हमें इन दोनों को ही प्रेम करना चाहिए।

विशेष—इन पंक्तियों में गाँधीवाद का प्रभाव स्पष्ट है।

अपना हो······ज्ञात नहीं।

शब्दार्थ—विन्दु=सीमा।

अर्थ—इड़ा सोच रही है कि सुख चाहे अपना हो, या औरों का हो, किन्तु जब वह अपनी सीमा का उल्लंघन कर जाता है तो दुःख बन जाता है। यह सीमा क्या है, इसका पता संसार के किसी भी व्यक्ति को ज्ञात नहीं है अतः वह निरन्तर दुःख भोगता रहता है।

प्राणी निज······रोड़े।

शब्दार्थ—भविष्य-चिन्ता में=भविष्य को सुखी बनाने की चिन्ता में।

अर्थ—इड़ा सोच रही है कि यह कैसी विडम्बना है कि मनुष्य अपने

भविष्य को सुखी बनाने की चिन्ता में वर्त्तमान काल के सुख को छोड़ देता है। इस प्रकार वह स्वयं अपने ही मार्ग में रोड़े बिखेरता हुआ-सा दौड़ा चल रहा है ; अर्थात् अपने लिए वह स्वयं ही बाधाएँ उपस्थित कर रहा है।

इसे दंड······वाली मैं ?

शब्दार्थ—विकट पहेली=उलझन भरी हुई समस्या।

अर्थ—मूर्च्छित मनु के पास बैठी हुई इड़ा सोच रही है कि मैं यहाँ पर बैठकर मनु को दंड दे रही हूँ या मैं इसकी रखवाली कर रही हूँ। यह वास्तव में एक उलझन से भरी हुई समस्या है और मैं स्वयं भी तो उलझन वाली हूँ।

एक कल्पना······वर देगा।

शब्दार्थ—वर देगा=वरण कर देगा।

अर्थ—इड़ा सोचती है कि यह एक कल्पना है जो बहुत ही मीठी है। इससे सुन्दर और क्या हो सकता है। यह कल्पना वास्तविकता से अच्छी है और सत्य इसी का वरण कर देगा।

चौंक उठी······फेरा।

शब्दार्थ—दूरागत=दूर से आती हुई। निस्तब्ध निशा में=सूनी रात में। प्रवासी=परदेशी, मनु।

अर्थ—इड़ा जब ये बातें सोच रही थी तो वह अपने विचार से स्वयं ही चौंक उठी। तभी दूर से आती हुई उसे एक ध्वनि सुनाई दी। इड़ा ने सुना कि इस सूनी रात में भी कोई यह चिल्लाती हुई चली आ रही है कि अरे, दयाकर के मुझे यह बता दो कि मेरा परदेशी मनु कहाँ है ? उसी पागल से मिलने के लिए मैं सर्वत्र घूमती फिर रही हूँ।

रूठ गया······किसको मैं।

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—इड़ा ने सुना कि कोई स्त्री उस सूनी रात में यह कहती हुई चली आ रही है कि मेरा परदेशी प्रियतम मुझसे अप्रसन्न होकर चला आया था, फिर भी मैं उसको अपना न सकी। वह जब मेरा अपना ही था, अर्थात् मुझ में और उसमें कोई भेद-भाव नहीं था, तो फिर भला मैं किसको मनाती।

यही भूल······कह दे रे।

शब्दार्थ—शूल-सदृश = काँटे के समान । साल रही = दुःख दे रही ।

अर्थ—इड़ा ने सुना कि कोई स्त्री उस सूनी रात में चिल्लाती हुई आ रही थी कि वही भूल कि मैं उसको मना न सकी अब काँटे की भाँति मेरे हृदय में कसकती हुई मुझे दुःख दे रही है । कोई मुझे यह उपाय बता दे कि मैं अब किस प्रकार उसको प्राप्त कर सकती हूँ ।

इड़ा उठी······जलती ।

शब्दार्थ—वाणी में = ध्वनि में । करुण वेदना = करुणा से भरी हुई पीड़ा ।

अर्थ—उस ध्वनि को सुनकर इड़ा उठी तो उसने राजपथ में एक धुँधली सी छाया चलती हुई देखी । उस छाया की ध्वनि में करुणा से भरी हुई पीड़ा थी जिससे वह ध्वनि जलती हुई-सी प्रतीत होती थी ।

विशेष—उपमा अलंकार ।

शिथिल शरीर······हुई कली ।

शब्दार्थ—शिथिल शरीर = थकी हुई देह । वसन विशृंखल = अस्त-व्यस्त कपड़े । कबरी = वेणी । छिन्न पत्र = टूटे हुए पत्ते । मकरन्द = पुष्परस ।

अर्थ—इड़ा ने राजपथ पर आती हुई उस छाया को देखा । उसका शरीर थका हुआ था, कपड़े अस्त-व्यस्त थे और उसकी वेणी अधीरता के कारण सबसे अधिक खुली हुई थी । वह उस मुरझाई हुई कली के समान दिखाई दे रही थी, जिसके पत्ते टूट गये हों और पुष्प-रस लुट गया हो ।

विशेष—उपमा अलंकार ।

नव कोमल······जकड़े ।

शब्दार्थ—नव कोमल अवलम्ब = नवीन और कोमल सहारा अर्थात् श्रद्धा पुत्र मानव । वय = अवस्था ।

अर्थ—श्रद्धा के साथ उसका पुत्र मानव भी था जो उसके लिए नवीन और कोमल सहारे के समान था, जिसकी किशोर अवस्था थी । वह माँ की उँगली पकड़े हुई मौन धैर्य की भाँति अपनी माता श्रद्धा के साथ चला आ रहा था ।

विशेष—उपमा अलंकार ।

थके हुए······लेटे ।

शब्दार्थ—बटोही = पथिक ।

अर्थ—वे दोनों दु:खी पथिक माँ-बेटे यात्रा करने के कारण थके हुए थे और वे दोनों उन्हें त्याग कर भाग आने वाले उस मनु की खोज कर रहे थे जो घायल होकर लेटे हुए थे।

इड़ा आज······किसने ?

शब्दार्थ—द्रवित=करुणा से भरना। बिसराया=त्याग दिया।

अर्थ—जब इड़ा ने उन दोनों दु:खियों को देखा तो वह आज करुणा से भरकर उनके पास पहुँची और पूछने लगी कि तुमको किसने त्याग दिया है ?

इस रजनी······खोलो तो।

शब्दार्थ—रजनी=रात। चंचल=उत्सुक।

अर्थ—इड़ा श्रद्धा से पूछती है कि तुम मुझे यह बताओ कि इस रात में भटकती हुई तुम कहाँ जाओगी। तुम्हारी वेदना की कहानी सुनने के लिए आज मैं बहुत उत्सुक हो गई हूँ, अतः अपनी वेदना की गाँठें मेरे सामने खोलो; अर्थात् अपने दु:ख का कारण मुझे बताओ।

जीवन की······की रातें।

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—इड़ा श्रद्धा को सान्त्वना देती हुई कहती है कि तुम धीरज रक्खो, तुम्हारा प्रियतम तुम्हें अवश्य मिल जायेगा, क्योंकि जीवन की लम्बी यात्रा में खोये हुए भी मिल जाते हैं। यदि जीवन बना रहे तो कभी-न-कभी प्रियतम से मिलन हो ही जाता है और मिलन की आशा से दु:ख की रातें भी कट जाती हैं।

श्रद्धा रुकी······प्रज्वलित रही।

शब्दार्थ—श्रान्त=थका हुआ। वह्नि-शिखा=आग की लपटें। प्रज्वलित रही=जल रही थीं।

अर्थ—इड़ा की सान्त्वना से भरी बातें सुनकर श्रद्धा वहीं रुक गई। कुमार भी लम्बी यात्रा के कारण थका हुआ था, अतः उसने वहीं रुककर विश्राम करना उचित समझा। वह इड़ा के साथ वहाँ चली गई जहाँ आग की लपटें जल रही थीं।

सहसा धधकी······डग भरती।

शब्दार्थ—वेदी-ज्वाला=वेदी की आग। आलोकित=प्रकाशित।

अर्थ—जब श्रद्धा इड़ा के साथ अन्दर पहुँची तो सहसा वेदी की आग धधक उठी, जिसने समूचे मंडप को प्रकाशित कर दिया। उस प्रकाश में श्रद्धा की दृष्टि किसी वस्तु पर पड़ी और वह कदम उठाती हुई उस ओर चल दी।

और वही······नीर बहा।

शब्दार्थ—नीर बहा=आँसू बहने लगा।

अर्थ—जब श्रद्धा आगे बढ़ी तो उसने घायल मनु को पड़े हुए देखा। उसने आश्चर्यचकित होकर कहा कि क्या सचमुच ही ये मनु हैं जो घायल पड़े हुए हैं। तब तो मेरा स्वप्न सत्य सिद्ध हुआ। तब वह विलाप करती हुई कहने लगी कि हे प्राणप्रिय! तुम्हें यह क्या हुआ? तुम इस प्रकार यों क्यों पड़े हुए हो? तब श्रद्धा का हृदय दु.ख से पिघलने लगा, जो आँसू बनकर बहने लगा।

इड़ा चकित······रह जाती?

शब्दार्थ—चकित=आश्चर्य में होना। अनुलेपन-सा=मरहम पट्टी-सा।

अर्थ–श्रद्धा की अवस्था को देखकर इड़ा आश्चर्य से भर गई। श्रद्धा मनु के पास बैठकर उसे सहलाने लगी। श्रद्धा के मधुर स्पर्श का प्रभाव मनु पर मरहम पट्टी के समान पड़ा। भला फिर उनकी व्यथा किस प्रकार रह सकती थी। अर्थात् श्रद्धा के मधुर स्पर्श से मनु की व्यथा दूर हो गई।

विशेष—'अनुलेपन-सा' में उपमा और 'व्यथा भला क्यों रह जाती' में काकुवक्रोक्ति अलंकार है।

उस मूर्च्छित······आकर छाये।

शब्दार्थ—स्पन्दन=गति।

अर्थ—श्रद्धा के सहलाने के कारण उस नीरवता में कुछ हल्की-सी गति आई जो मनु के मूर्च्छित होने के कारण बनी हुई थी। उन्होंने अपनी आँखें खोलीं और दोनों आँखों के चारों कोनों में आँसू की बूँदें झलकने लगीं।

उधर······जी को?

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—उधर कुमार आश्चर्यचकित होकर ऊँचे-ऊँचे पवन, मंडप और वेदी को देख-देखकर सोच रहा था कि ये सब वस्तुएँ क्या हैं जो इतनी सुन्दर दिखाई देती हैं और मन को बहुत ही अच्छी लग रही हैं।

माँ ने कहा······खड़े हुए।

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—जब कुमार ऊँचे-ऊँचे पवन, मंडप और वेदी को देखने में तल्लीन था तो श्रद्धा ने उसे पुकार कर कहा कि हे कुमार! इधर आओ। देख यहां पर तेरे पिता जी पड़े हुए हैं। कुमार ने यह सुनकर आश्चर्य से कहा कि क्या मेरे पिता जी हैं? तब तो मैं आ रहा हूँ। यह कहते हुए पिता-प्रेम के कारण उसका शरीर रोमांचित हो गया।

माँ जल······रही कहाँ?

शब्दार्थ—मुखर हो गया=ध्वनियों से भर गया।

अर्थ—जब कुमार मनु के पास आया और उन्हें पृथ्वी पर पड़े हुए देखा तो वह श्रद्धा से कहने लगा कि हे माँ तू इन्हें पानी दे दे। ये प्यासे होंगे। तू यहाँ बैठी-बैठी क्या कर रही है? कुमार के इन शब्दों से वह सूना मंडप ध्वनियों से भर गया। न जाने यह सजीवनता, जो इस समय इस मंडप में छा ई हुई थी, अब तक कहां छिपी हुई थी।

आत्मीयता घुली······संगीत बना।

शब्दार्थ—आत्मीयता=घनिष्ठ अपनापन। घुली=प्रकाशित होने लगी, व्याप्त हो गई।

अर्थ—मनु, श्रद्धा और कुमार के मिल जाने पर उस घर में घनिष्ठ अपनेपन की भावना व्याप्त हो गई और एक छोटा-सा परिवार एकत्रित हो गया। इस वातावरण में श्रद्धा का मधुर स्वर संगीत बनकर गूँजने लगा।

तुमुल······बात रे मन!

शब्दार्थ—तुमुल=भयंकर। कलह=विरोध, झगड़ा। विकल=दुःखी। मलय की बात=मलय पर्वत से आने वाली सुगंधित हवा।

अर्थ—मनु को प्राप्त करके श्रद्धा आनंद-विभोर होकर गाती है कि मैं भयंकर कोलाहल और झगड़े में हृदय की बात हूँ; अर्थात् मैं हार्दिक भावनाओं के रूप में कोलाहल और कलह को शान्त करने वाली हूँ। जब चेतना नित्य दुःखी और चंचल होकर तथा थकी-सी बनकर नींद के क्षण खोजती है; अर्थात् जब चेतना थककर विश्राम के लिए लालायित हो जाती है तो मैं मलय पर्वत से आने वाली सुगंधित और हल्की-हल्की हवा के समान चलकर उस थकी हुई

चेतना को विश्राम देती हूँ।

चिर-विषाद-विलीन……प्रात रे मन !

शब्दार्थ—चिर-विषाद-विलीन=सदैव दुःख में डूबा हुआ। तिमिर=अंधकार। कुसुम-विकसित=खिला हुआ फूल।

अर्थ—मनु को प्राप्त करके श्रद्धा आनन्द-विभोर होकर गाती है कि हे मन ! मैं सदैव दुःख में डूबे हुए मन के लिए तथा इस व्यथा के अंधकार-पूर्ण वन के लिए ऊषा की-सी प्रकाश-रेखा तथा खिले हुए पुष्पों के भरे हुए प्रातःकाल के समान हूँ।

विशेष—'उषा-सी' में उपमा और 'कुसुम-विकसित प्रात' में रूपक अलंकार है।

जहाँ मरु……बरसात रे मन !

शब्दार्थ—मरु=मरु प्रदेश। कन को=पानी की बूँद को। सरस=पानी से भरी हुई।

अर्थ—मनु को प्राप्त करके आनन्द-विभोर होकर श्रद्धा गाती है कि हे मन ! मैं उन्हीं जीवन-घाटियों की पानी से भरी हुई बरसात हूँ जहाँ मरु प्रदेश होने के कारण सदैव गर्मी की आग धधकती रहती है और जहाँ चातकी पानी की एक-एक बूँद के लिए तरसती रहती है।

पवन की प्राचीर……रात रे मन !

शब्दार्थ—प्राचीर=चहारदीवारी। कुसुम ऋतु=कुसुम ऋतु।

अर्थ—मनु को प्राप्त करके श्रद्धा आनन्द-विभोर होकर गाती है कि हे मेरे मन ! जब जीवन पवन की चहारदीवारी में बंद होकर जलकर झुक जाता है तो इस झुलसते हुए विश्व के दिन की मैं बसन्त ऋतु हूँ; अर्थात् ज्वाला में धधकते हुए विश्व को शान्ति प्रदान करने वाली हूँ।

चिर निराशा……जलजात रे मन !

शब्दार्थ—नीरधर=बादल। प्रतिच्छायित=घिरे हुए। अश्रु-सर में=आँसुओं के सर में। मधुप=भौंरा। मुखर=गूँजना। मरंद=मकरंद, पुष्प रस। मुकुलित=खिला हुआ। जलजात=कमल।

अर्थ—मनु को प्राप्त करके श्रद्धा आनन्द-विभोर होकर गाती है कि हे मन ! गहरी निराशा के बादलों से घिरे हुए आँसुओं के तालाब में मैं वह

करुणा से भरा हुआ कमल हूँ जिस पर भौंरे गूँजते रहते हैं और जो खिल कर पुष्प-रस को वितरित करता है।

विशेष—रूपक अलंकार।

उस स्वर-लहरी……नयन खुले।

शब्दार्थ—स्वर-लहरी = संगीत के स्वर। संजीवन = जीवनदायिनी शक्ति। रस = आनन्द। प्राची = पूर्व दिशा। मुद्रित = बंद हुए, भिचे हुए।

अर्थ—श्रद्धा के गीत का मनु पर क्या प्रभाव पड़ा, इसका वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि उस संगीत के सभी स्वर जीवनदायिनी शक्ति और आनंद से भरे हुए थे। उधर पूर्वदिशा में प्रभात का भी उदय हो गया और मूर्च्छित मनु के बंद हुए नेत्र खुल गये; अर्थात उन्हें चेतना आ गई।

श्रद्धा का……अनुराग भरे।

शब्दार्थ—अवलम्ब = सहारा। कृतज्ञता = अहसान। अनुराग = प्रेम।

अर्थ—मनु श्रद्धा का सहारा पाकर और उसके प्रति अहसान से भरा हुआ हृदय लेकर उठ बैठे और गद्‌गद् होकर कुछ प्रेम से भरे हुए शब्दों को सम्बोधित करते हुए कहने लगे।

श्रद्धा! तू……घृणा।

शब्दार्थ—स्तम्भ = खम्भे। वेदिका = वेदी। घृणा = नफरत।

अर्थ—मूर्च्छित मनु सचेत होकर श्रद्धा से कहने लगे कि हे श्रद्धा! तू यहाँ आ ही गई। भला यह तो बताओ कि क्या मैं इसी स्थान पर मूर्च्छित पड़ा हुआ था। फिर मनु ने अपने चारों ओर देखा तो उन्हें वे ही पवन, खम्भे और वही वेदी दिखाई दी जिनके चारों ओर उसके लिए नफरत बिखरी हुई थीं; अर्थात् उनको देखकर मनु के मन में घृणा जग आई।

आंख बन्द……फिर तुझको।

शब्दार्थ—क्षोभ = दुःख।

अर्थ—मनु के अपने वातावरण में चारों ओर बिखरी हुई घृणा को देखकर दुःख के कारण अपनी आँखें बन्द कर लीं और श्रद्धा से कहने लगे कि तुम मुझे यहाँ से कहीं दूर ले चलो, क्योंकि मुझे डर लग रहा है कि इस भयावने अन्धकार में मैं तुम्हें फिर से न खो दूँ।

हाथ पकड़……कुसुम खिले।

शब्दार्थ—अवलम्ब=सहारा। कुसुम=फूल।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहने लगे कि हे श्रद्धा! यदि मुझे तुम्हारा सहारा मिले और तुम मेरा हाथ पकड़ लो तो मैं तुम्हारे साथ उस स्थान को चल सकता हूँ जहाँ भी तुम मुझे ले चलना चाहो। फिर इड़ा को देखकर के घृणा से कहने लगे कि वह तू कौन है, यहाँ से दूर चली जा। और फिर श्रद्धा से कहने लगे कि हे श्रद्धा! तुम मेरे पास आओ जिससे मेरे हृदय का फूल खिल जाये; अर्थात् मुझे आनंद मिले।

श्रद्धा नीरव······वृथा डरे ?

शब्दार्थ—नीरव=चुपचाप। वृथा=वेकार।

अर्थ—श्रद्धा ने मनु के शब्दों का कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप मनु के सिर को सहलाती रही। उसकी आंखों में प्रेम का विश्वास भरा हुआ था। उस विश्वास के द्वारा मानो श्रद्धा मनु से कह रही हो कि जब तुम मेरे हो तो तुम्हें इस प्रकार के भय से अब वेकार डरने की कोई आवश्यकता नहीं है।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलंकार।

जल पीकर······यहां रहने।

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—जब पानी पीकर मनु कुछ स्वस्थ हुए, चेतन हुए तो बहुत धीरे श्रद्धा से कहने लगे कि तू मुझे इस छाया से बाहर ले चल और मुझे यहाँ एक पल भी मत रहने दे।

मुक्त नील······सह लेंगे।

शब्दार्थ—मुक्त=व्यापक। नील नभ=नीला आकाश। गुहा=गुफा।

अर्थ—कुछ चेतन होकर मनु श्रद्धा से कहने लगे कि तुम मुझे यहां से ले चलो। हम कहीं व्यापक नीले आकाश के नीचे या वहीं कहीं किसी गुफा में रहकर अपना जीवन व्यतीत कर लेंगे। इसमें चिन्ता करने की कोई बात नहीं है, क्योंकि मैं तो दुःखों को प्रारम्भ से ही झेलता आया हूँ, अतः अब जो भी दुःख पड़ेंगे, उन्हें भी हम प्रसन्नतापूर्वक सहन कर लेंगे।

ठहरो कुछ······न हमें।

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—मनु के दूर चलने के आग्रह को सुनकर श्रद्धा उससे कहने लगी कि थोड़ी देर और ठहर जाओ ताकि तुममें कुछ शक्ति और आ जाये। तभी मैं तुम्हें यहाँ से ले चलूँगी। क्या इतने थोड़े समय के लिए भी इड़ा हमें अपने भवन में न रहने देगी? अर्थात् इतनी देर ठहर जाने के लिए इड़ा को भी कोई आपत्ति नहीं होगी।

इड़ा संकुचित······नहीं रुकी।

शब्दार्थ—संकुचित=संकोच में भरकर। अविचल=दृढ़।

अर्थ—उधर संकोच में भरी हुई इड़ा खड़ी हुई इन दोनों की बातें सुन रही थी। वह श्रद्धा के इस अधिकार को कि बस थोड़ी देर भवन में ठहर कर मनु को कहीं दूर ले जायेगी, न छीन सकी। श्रद्धा दृढ़ भाव से बैठी हुई थी, किन्तु मनु चुप न रह सके। वे कहते ही गये।

जब जीवन······बोध भरा।

शब्दार्थ—साध=उमंग। अनुरोध=आग्रह। बोध=ज्ञान।

अर्थ—मनु अपने गत जीवन की घटनाओं का स्मरण करते हुए प्रायश्चित्त करते हुए कहते हैं कि जब मेरा जीवन उमंगों से भरा था, उच्छृंखलता से भरा हुआ आग्रह था। जब अभिलाषाएँ भरे हुए हृदय में अपने मन का ज्ञान भरा हुआ था, अर्थात् हृदय ममता से पूर्ण था।

मैं था······माया थी।

शब्दार्थ—सघन=गहरी। मलयानिल=मलय पर्वत से आने वाली शीतल और सुगंधित हवा। उल्लासों की=उमंग भरी हुई प्रसन्नताओं की।

अर्थ—अपने गत जीवन की स्मृति करके मनु प्रायश्चित्त करते हुए कहते हैं कि तब मैं स्वयं को ही सब कूछ समझता था, फूलों की गहरी और सुनहली छाया की भाँति मनोहर भाव मेरे मस्तिष्क में विद्यमान रहते थे। मलय पर्वत से आने वाली शीतल और सुगंधित हवा के समान भावों की लहरें निरन्तर मेरे हृदय में उठती रहती थीं। तब मैं उमंग भरी प्रसन्नताओं की माया से घिरा हुआ था; अर्थात् मेरे जीवन में और मेरे विचारों में सर्वत्र मोहकता परिव्याप्त थी।

उषा अरुण······आंखें मींचे।

शब्दार्थ—अरुण=लाल। सुरभित=सुगंधित। अलसाई=मादकता से

भरी हुई।

अर्थ—अपने गत जीवन की स्मृति करते हुए मनु प्रायश्चित्त करते हुए कहते हैं कि उस समय ऊषा काल में जो लाल सूर्य का मंडल उदित होता था वह ऐसा लगता था जैसे ऊषा मधु का प्याला भर लाई हो। उस प्याले के मधु को मेरा यौवन सुगंधित छाया के नीचे मादकता भरी हुई आँखों को बन्द करके पीता रहता था; अर्थात् प्रकृति भी मुझे सदैव मादकता प्रदान करती रहती थी।

ले मकरंद······घुँघराली।

शब्दार्थ—मकरंद=पुष्प-रस। शरद=शरदकालीन। अलकें=लटें।

अर्थ—मनु अपने गत जीवन के सुखमय क्षणों की स्मृति करते हुए कहते हैं कि उस समय शरदकालीन प्रातःकाल में शेफाली नवीन पुष्प-रस से भरकर चू पड़ती थी। सन्ध्या की सुन्दर और घुघराली लटें सुख ही सुख की वर्षा मेरे ऊपर करती रहती थीं।

सहसा अंधकार······लहरी।

शब्दार्थ—विक्षुब्ध=आन्दोलित। उद्वेलित=हलचल से भरी हुई। मानस लहरी=हृदय के भाव।

अर्थ—अपने गत जीवन की घटनाओं को याद करते हुए मनु कहते हैं कि जब मेरे जीवन में सर्वत्र मादकता और सुख था तभी क्षितिज से तीव्र गति से अचानक विषाद से भरी हुई एक आँधी उठी, जिससे समूचा विश्व आन्दोलित हो उठा और मेरे हृदय के भावों में भी हलचल मच गई; अर्थात् मेरा सुखमय जीवन विषाद और अशांति की ओर मुड़ गया।

व्यथित हृदय······जमी।

शब्दार्थ—व्यथित=दुःखी। आभा-पथ-सा=आकाशगंगा के समान। मंगलमयी=कल्याणकारिणी। मधुर स्मिति=मधुर हँसी।

अर्थ—अपने गत जीवन की घटनाओं की याद करते और श्रद्धा के प्रति कृतज्ञता दिखाते हुए मनु कहते हैं कि हे देवि! जब मेरा हृदय आए हुए आकस्मिक दुःख से उसी प्रकार भर गया, जिस प्रकार नीले आकाश में आकाशगंगा तारों से भर जाती है, तभी तुमने मेरे जीवन में आकर और अपनी मधुर हँसी बिखेर कर मेरे दुःख को दूर कर दिया।

दिव्य तुम्हारी······खिची भली।

शब्दार्थ—दिव्य=महान्, अत्यन्त सुन्दर। छवि=शोभा। रंग-रली=रंगरंगेलियाँ। नवल=नवीन। हेम-लेखा-सी=सोने की रेखा के समान। निकष=कसौटी।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि तब तुम्हारी महान्, अमर और अमिट शोभा मेरे साथ रंगरेलियाँ खेलने लगीं; अर्थात् तुम्हारी अपार शोभा ने मुझे अत्यधिक आकर्षित कर लिया। तुम्हारी वह शोभा इसी प्रकार मेरे हृदय पर अपना अमिट प्रभाव बना गई जिस प्रकार कसौटी पर सोने की रेखा खिंच जाती है।

विशेष—'हेम-लेखा-सी' में उपमा अलंकार है।

अरुणाचल····· महिमा।

शब्दार्थ—अरुणाचल=पूर्व दिशा में सूर्य का उदित होने का स्थान। मुग्ध=मोह लेने वाली। माधुरी=मधुरता से भरी हुई। नव प्रतिमा=नई मूर्ति।

अर्थ—मनु श्रद्धा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे श्रद्धा! मेरे मन रूपी मन्दिर में बसी हुई तुम्हारी वह शोभा उसी प्रकार मोह लेने वाली, मधुरता से भरी हुई और नई मूर्ति थी, जिस प्रकार पूर्व दिशा से उदित होने वाली उषा होती है। तुम प्रेम की मूर्ति-सी बनकर मुझे सुन्दरता की मनोहर महिमा सिखाने लगी।

विशेष—'अरुणाचल मन-मन्दिर' में रूपक और 'अरुणाचल की नव प्रतिमा' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

उस दिन तो······सहते।

शब्दार्थ—किसके हित=किसके लिए।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि परस्पर प्रेम-सूत्र में बँधकर ही उस दिन हम जान सके थे कि सुन्दरता किसको कहते हैं और तभी हमें इस तत्त्व का भी बोध हुआ कि समस्त प्राणी किसके लिए सुख और दुःख को सहते हैं।

जीवन कहता······पाले।

शब्दार्थ—सम्बल=प्रेम का आश्रय, प्रिय पात्र।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि जब मैं तुम्हारी छवि पर अनुरक्त हो गया था, तब मेरा जीवन मेरे यौवन से सदैव यही पूछता रहता था कि हे मतवाले!

क्या तुमने कुछ देखा है ? इसका उत्तर देते हुए मेरा यौवन कहता कि हे पागल ! तू किसी प्रिय पात्र का सहारा लेकर अर्थात् किसी से प्रेम करके अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत करता चल।

हृदय बन रहा······बनी।

शब्दार्थ—स्वाती की बून्द=स्वाति नक्षत्र में बरसने वाली पानी की बूँद। मानस-शतदल=हृदय रूपी कमल। मकरन्द=पुष्प-रस।

अर्थ—मनु श्रद्धा से अपने गत जीवन की घटनाओं का उल्लेख करते हुए कहते है कि जब मेरा मन किसी का प्रेम प्राप्त करने के लिए इस प्रकार लालायित था, जिस प्रकार सीपी स्वाति की बूँद प्राप्त करने की इच्छा से सदैव अपना मुँह खोले रहती है तो तुम अपने प्रेम का उपहार लेकर मेरे उस मन के लिए स्वाति की बूँद बनीं; अर्थात् तुमने अपना प्रेम मेरे प्रति समर्पित कर दिया। जब मेरा हृदय रूपी कमल अपनी मादकता लेकर झूम उठा तो उसके लिए तुम पुष्प-रस बनकर आई। भाव यह है कि तुमने मेरे जीवन के हर प्रकार के अभाव को पूर्ण किया।

विशेष—'सीपी-सा' में उपमा और 'तुम उसमें मकरन्द बनीं' में परम्परित रूपक अलंकार है।

तुमने इस······इतनी।

शब्दार्थ—सूखे पतझड़ में=पतझड़ के समान नीरस हृदय में। हरियाली =हर्ष, आनंद।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहते हैं कि तुमने मेरे पतझड़ के समान नीरस हृदय में अपना जीवन देकर हरियाली रूपी आनन्द भर दिया। वह आनन्द मेरे लिए मादकता बन गया। जिस प्रकार मदमस्त व्यक्ति कभी तृप्त नहीं होता, उसी प्रकार मेरी तृप्ति की भी कोई सीमा नहीं रही। तुमने जितना अधिक प्रेम-दिया, मैं उसके लिए उतना ही अधिक और लालायित हो उठा; अर्थात् तुम्हारा अपार प्रेम पाकर भी मेरी प्रेम-भावना तृप्त न हुई।

विशेष—'तुमने इस पतझड़ में' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

विश्व······नचती।

शब्दार्थ—लहरी=लहर। बुदबुद की माया=बुलबुले के समान क्षणभंगुर जीवन।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि हे श्रद्धा ! मुझे जब तक तुम्हारा प्रेम प्राप्त नहीं हुआ था, तब तक मैं एक ऐसे संसार में रहता था जिसमें सदैव दुःख की आँधियाँ और वेदना की लहरें उठती रहती थीं; अर्थात् जिसमें निरे दुःख और निरी वेदना थी, जिसमें जीवन भी मृत्यु के समान निर्जीव बना हुआ था और जिसमें रहकर मैं जीवन को बुलबुले के समान क्षणभंगुर तथा व्यर्थ समझता था ।

विशेष—'दुःख की आँधी' और 'पीड़ा की लहरी' में रूपक तथा 'जिसमें जीवन मरण बना था' में विरोधाभास अलंकार है ।

वही शान्त······उठा रहा ।

शब्दार्थ—मंगल-सा=कल्याण के समान, कल्याण की प्रतिमा । कानन-सा =बन के समान । सृष्टि-विभव=संसार का वैभव ।

अर्थ—श्रद्धा से मनु कहते हैं कि जो जीवन तुम्हारे आने से पूर्व सूखे पतझड़ की भाँति नीरस था, वही तुम्हारे आने पर शान्त, उज्ज्वल और कल्याण के समान दिखाई देने लगा; अर्थात् उसमें दुःख और निराशा के भावों के स्थान पर उच्च भाव पनपने लगे । जिस प्रकार वर्षा के आने से कदम्ब का सूखा बन हरा बनकर इतना वैभवशाली दीखने लगता है, जैसे समूची सृष्टि का वैभव मुखरित हो उठा हो, उसी प्रकार मेरा सूखा जीवन भी आशा और उल्लासों से परिपूर्ण हो गया ।

विशेष—'मंगल-सा' और 'कानन-सा' में उपमा अलंकार है ।

भगवति ! वह······धुल जाए ।

शब्दार्थ—पावन=पवित्र । मधु धारा=अमृत की धारा । रम्य=सुन्दर । शैल=पर्वत ।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि हे भगवति ! तुम्हारा प्रेम एक पवित्र अमृत की धारा के समान था, जिसे देखकर स्वयं अमृत भी उसे प्राप्त करने के लिए ललचा उठता था; अर्थात् तुम्हारे प्रेम के सामने अमृत भी तुच्छ था । तुम्हारे प्रेम की वह अमृतमयी धारा सुन्दर सुन्दरता के पर्वत से निकलती थी जिसमें जीवन को आत्मसात् करने की शक्ति थी; अर्थात् जो जीवन की सब प्रकार की कालिमाओं को धोकर उसे पूर्णतः शुद्ध और निर्मल बनाने की क्षमता रखता था ।

विशेष—'देख अमृत भी ललचाये' में व्यतिरेक अलंकार है।

संध्या अब······विकल व्यथा।

शब्दार्थ—अकथ=अकथ्य, जिसको कहा न जा सके। श्रम की=थकान की। विकल व्यथा=व्याकुल वेदना।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि हे भगवति! तुम्हारा पवित्र प्रेम प्राप्त करके मेरा जीवन आनन्द और उल्लास से इस प्रकार भर गया, मानो अंधकार से भरी हुई संध्या भी तारों के रूप में अपने आनन्द और उल्लास की प्रेरणा मुझसे ही लिया करती थी। मैं निश्चिन्त होकर इतनी प्रगाढ़ नींद में सोता था कि वह नींद स्वाभाविक रीति से मेरी समूची थकान को और उससे उत्पन्न व्याकुल बना देने वाली वेदना को नष्ट कर देती थी।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलंकार।

सकल कुतूहल······धन्य घड़ी।

शब्दार्थ—सकल कुतूहल=सारे आश्चर्य। कुसुम=फूल जैसे कोमल भाव।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि हे श्रद्धा! मेरे जीवन के सारे आश्चर्य और सारी कल्पनाएँ तुम्हें प्राप्त करके तुम्हारे ही चरणों में उलझ गईं; अर्थात् तुम्हें प्राप्त करके मेरा जीवन निर्द्वन्द्व हो गया, उसमें न तो किसी प्रकार का आश्चर्य रहा और न किसी मधुर कल्पना को करने का अवकाश। तब मेरे फूल जैसे कोमल भाव हँसते-हुए-से दिखाई देने लगे। मेरे लिए जीवन की वह घड़ी धन्य थी।

स्मिति मधु राका······मिलता!

शब्दार्थ—स्मिति=मुस्कान। मधु राका=बसन्त ऋतु की सुन्दर पूर्णिमा। पारिजात=स्वर्गस्थ देवताओं के नन्दन-बन का एक वृक्ष जो सदैव विकसित और सुगंधित रहता है। कानन=वन। मरंद-मथर=मकरन्द भार के कारण धीरे-धीरे चलने वाली। मलयज-सी=दक्षिण वायु के समान। वेणु=वंशी।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि उस समय मैं तुम्हारे पवित्र प्रेम से इतना आनंद-विभोर हो गया था कि तुम्हारी हँसी मुझे बसन्त ऋतु की पूर्णिमा-सी दिखाई देती थी, तुम्हारे श्वासों से पारिजातों का बन खिलता था। तुम्हारी गति उस दक्षिण वायु के समान थी, जो पुष्प भार के कारण धीरे-धीरे चलता है। तुम्हारे कंठ के स्वर की समता वंशी का सुरीला और मोहक स्वर भी

नहीं कर सकता था ।

विशेष—'श्वासों से पारिजात खिलता' में प्रतीप और 'स्वर में वेणु कहाँ मिलता' में व्यतिरेक अलंकार है ।

श्वास पवन……अभिनय सी ।

शब्दार्थ—श्वास पवन=साँस रूपी वायु । दूरागत=दूर से आने वाली । रव=ध्वनि । कुहर=गुफा । दिव्य रागिनी=अलौकिक गीत । अभिनव=नया ।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि जिस प्रकार वायु पर चढ़कर दूर से आई हुई वंशी की ध्वनि विश्व की गुफाओं को ध्वनित कर देती है, उसी प्रकार तुम भी मेरे जीवन में एक नवीन तथा अलौकिक गीत बनकर गूँज उठीं ।

जीवन जलनिधि……रोक खड़े ।

शब्दार्थ—जलनिधि=सागर । मुक्ता=मोती । जग-मंगल=संसार का कल्याण करने वाला ।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि मेरे प्रति तुम्हारे प्रेम, ममता सेवा आदि के भाव उसी प्रकार सहसा प्रकट हो गये जैसे सागर के हृदय से स्वयं मोती निकलकर उसके किनारे पर आ पड़े हों । जब मैं तुम्हारे संसार के कल्याण करने वाले संगीत की प्रशंसा करता था तो मैं रोमांचित हो जाया करता था ।

विशेष—'जीवन-जलनिधि' में रूपक और 'मुक्ता थे वे निकल पड़े' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है ।

आशा को……हुई हरी ।

शब्दार्थ—आलोक-किरन=सूर्य की किरण । मानस=हृदय । जलधर=बादल । सृजन=निर्माण । शशि-लेखा=चाँदनी । प्रभा-भरी=प्रकाश से पूर्ण होकर । जलद=बादल । वनस्थली=बन-प्रदेश ।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि जिस प्रकार सूर्य की किरण सरोवर से पानी लेकर बादल का निर्माण करती है, उसी प्रकार मेरे मन में भी तुम्हारे प्रेम ने आशा का निर्माण किया था । जिस प्रकार उस बादल को चाँदनी घेरे रहती है, उसी प्रकार मेरी आशा को तुम्हारी मधुर मुस्कान घेरे रहती थी और जिस प्रकार बादल में बिजली चमककर अपनी प्रभा प्रकट कर देती है, उसी प्रकार तुमने भी अपने प्रेम में सात्विक गुणों का प्रकाश भरकर मेरे मन को आलोकित कर दिया था । जिस प्रकार वह बादल रिमझिम बरसकर बन-

प्रदेश को हरा-भरा कर देती है, उसी प्रकार तुम्हारे प्रेम से आप्लावित होकर मेरा मन भी हर्ष और आनन्द से भर गया।

विशेष—सांग रूपक अलंकार।

तुमने हँस-हँस······मेल चली।

शब्दार्थ—खेल है=आनन्द प्राप्त करने का स्थान है।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि तुम निरन्तर हँसती रहती थीं जिससे मैंने यह पाठ सीखा कि विश्व आनन्द प्राप्त करने का स्थान है, अतः यहाँ पर सभी प्रकार से आनन्द प्राप्त करना चाहिए : तुमने मुझसे मिलकर मुझे यह सिखाया कि इस संसार में सबसे मेल के साथ रहो।

यह भी······ज्ञान दिया।

शब्दार्थ—बिजली के से=बिजली के समान उज्ज्वल। विभ्रम=हाव-भाव।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि तुमने अपने बिजली के समान उज्ज्वल हाव-भावों से मुझे संकेत के द्वारा यह भी बता दिया था कि अपने मन पर अपना ही अधिकार होता है और यह किसी भी व्यक्ति को, जिसे चाहा जाये, दिया जा सकता।

तुम अजस्र······संतोष बनी।

शब्दार्थ—अजस्र=लगातार बरसने वाली। स्नेह=प्रेम। रजनी=रात। अतृप्ति=असन्तोष।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि तुमसे जब मेरी भेंट हुई, उसी दिन से तुम मुझ पर लगातार सौभाग्य की वर्षा करती रहीं। जिस प्रकार बसन्त ऋतु की रात आनन्ददायिनी होती है, उसी प्रकार तुम मुझे अपने प्रेम के कारण सभी प्रकार के आनन्द देती रहीं। यदि मेरा जीवन ऐसे असन्तोष से पूर्ण था. जिसकी कभी सन्तुष्टि नहीं हो सकती थी तो तुमने उसमें सन्तोष के भाव भरे।

कितना है······हृदय हुआ।

शब्दार्थ—आश्रित=अधीन। प्रणय=प्रेम। आभारी=अहसानमंद। संवेदनमय=सहृदयता से भरा हुआ।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि तुमने मेरे जीवन में नवजीवन उत्पन्न किया, इसलिए मैं तुम्हारा उपकार मानता हूँ। तुम्हारा उपकृत होने के कारण ही मेरा प्रेम तुम्हारे आधीन हुआ। मैं तुम्हारा बहुत अधिक अहसानमन्द हूँ क्योंकि तुमने निरन्तर विपदाओं से जूझते रहने के कारण मेरे शून्य हृदय को सहृदयता से भर दिया था।

विशेष—'आश्रित मेरा प्रणय हुआ' में विशेषण विपर्यय अलंकार है।

किन्तु अधम······छाया को।

शब्दार्थ—अधम=पापी। मंगल की माया=कल्याणकारिणी नारी।

अर्थ—मनु प्रायश्चित्त के स्वर में श्रद्धा से कहते हैं कि मैं इतना पापी हूँ कि उस कल्याणकारिणी नारी (श्रद्धा) के स्वरूप को ठीक प्रकार से न समझ सका और आज भी उसके स्वरूप को न समझकर अज्ञान के कारण हर्ष-शोक के भावों में बँधा हुआ

मेरा तब कुछ······न छुआ।

शब्दार्थ—उपादान=यह पदार्थ जिससे कोई वस्तु बने। गठित हुआ=बना। किरणों ने=ज्ञान के प्रकाश ने।

अर्थ—मनु प्रायश्चित्त करते हुए श्रद्धा से कहते हैं कि भला मैं कल्याण-कारिणी नारी श्रद्धा के स्वरूप को किस प्रकार पहचान सकता था, क्योंकि मेरे जीवन का निर्माण ही क्रोध और मोह के तत्त्वों से हुआ था। अपने जीवन के कार्य-कलापों को देखकर तो मुझे यही अनुभव [illegible] कि मेरा ज[illegible] अज्ञान से ही भरा हुआ है और ज्ञान की किरणों ने कभी भी इसका स्पर्श नहीं किया।

शापित-सा······अटकता।

शब्दार्थ—शापित-सा=शापग्रस्त व्यक्ति के समान, कंकाल=हड्डियों का ढाँचा, निस्सार जीवन।

अर्थ—प्रायश्चित्त करते हुए मनु श्रद्धा से कहते कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे मैं शापग्रस्त व्यक्ति के समान पथभ्रष्ट होकर इस निस्सार जीवन को लिए हुए भटक रहा हूँ और उसी खोखलेपन में कुछ ढूँढ़ने का प्रयास करत हूँ, किन्तु उसी में उलझ जाता

अंध-तमस······खीझ रहा।

शब्दार्थ—ग्रंध-तमस=गहरा ग्रन्धकार ।

ग्रर्थ—प्रायश्चित्त करते हुए मनु श्रद्धा से कहते हैं कि यद्यपि मेरे जीवन में निराशा का गहरा ग्रन्धकार छाया हुग्रा है, तथापि प्रकृति का ग्राकर्षण मुझे ग्रपनी ग्रोर खींचता हुग्रा-सा प्रतीत होता है । मैं इस ग्रवस्था पर सभी व्यक्तियों पर ग्रौर स्वयं ग्रपने पर भी झुँझलाकर खीझता रहता हूँ ।

नहीं पा सका……ढाल रही ।

शब्दार्थ—क्षुद्र मात्र=नीच व्यक्ति । मधु=ग्रमृत ।

ग्रर्थ—प्रायश्चित्त करते हुए मनु श्रद्धा से कहते हैं कि ग्रपने जीवन की दुर्दशा को देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे मैं उस वस्तु को नहीं प्राप्त कर सका हूँ, जिसे तुम मुझे देना चाहती हो । वस्तुतः मैं तो एक नीच व्यक्ति हूँ जिस पर तुम ग्रपने दिव्य प्रेम की ग्रमृतमयी धारा ढाल रही हो, ग्रर्थात् मैं इस योग्य भी नहीं हूँ कि तुम्हारी ममता प्राप्त कर सकूँ ।

सब बाहर……भर न सका ।

शब्दार्थ—स्वागत=ग्रपने हृदय में स्थान देना, ग्रहण करना । तर्क=दलील । छिद्र=छेद ।

ग्रर्थ—मनु प्रायश्चित्त करते हुए कहते हैं कि हे श्रद्धा ! तुम मुझको ज्ञान देना चाहती थीं, पर मैं तुच्छ मात्र होने के कारण उसे ग्रपने हृदय में स्थान न दे सका, क्योंकि मुझमें बुद्धि की दलीलों के कारण ग्रनेक छेद थे, जिनमें से वह ज्ञान सब बाहर निकल जाता था ।

विशेष—इन पंक्तियों में कठोपनिषद् की इन पंक्तियों का प्रभाव स्पष्ट है—

'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुनाश्रुतेन ।'

ग्रर्थात् इस ग्रात्मा का ज्ञान तर्क के द्वारा या बुद्धि के द्वारा ग्रथवा ग्रनेक शास्त्रों का श्रवण करने से नहीं हो सकता ।

यह कुमार……जहां ढला ।

शब्दार्थ—उच्च ग्रंश=उत्तम भाग । कल्याण-कला=संसार का कल्याण करने वाली कला अर्थात् श्रद्धा ।

ग्रर्थ—मनु प्रायश्चित्त करते हुए श्रद्धा से कहते हैं कि हे संसार का कल्याण करने वाली श्रद्धा ! यह कुमार मेरे जीवन का उत्तम भाग है । यह मेरे लिए कितने लोभ की बात है, क्योंकि हमारे हृदयों के सम्पूर्ण प्रेम ने इस कुमार के

रूप में ढलकर ही साकारता प्राप्त की है।

सुखी रहे……आंधी को।

शब्दार्थ—आँधी को=विचारों के आवेश को।

अर्थ—प्रायश्चित्त करते हुए मनु श्रद्धा से कहते हैं कि मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि मेरा यह पुत्र मानव सदा सुखी रहे और इसके साथ-साथ तुम सब लोग भी सुखपूर्वक रहो। मैं अपराधी हूँ, इसलिए तुम सब मुझे मेरे भाग्य पर ही छोड़ दो। श्रद्धा मनु के इन प्रायश्चित्त भरे वाक्यों का कोई उत्तर नहीं दे रही थी, वरन् वह उनके अन्दर उठते हुए विचारों के आवेश को चुपचाप देख रही थी।

दिन बीता……उमंग लिए।

शब्दार्थ—रजनी=रात। तन्द्रा=आलस्य।

अर्थ—इसी प्रकार सारा दिन बीत गया और आलस्य तथा नींद को साथ लिए हुए रात आ गई, अर्थात् रात के आने पर सभी को आलस्य और नींद का अनुभव हुआ। अपने मन की उमंग को दबाकर इड़ा कुमार के पास खड़ी हुई थी।

श्रद्धा भी……फैली है ?

शब्दार्थ—खिन्न=उदास। उपधान=तकिया। अभिशाप=संकट। इन्द्रजाल=सांसारिक प्रलोभन।

अर्थ—श्रद्धा भी कुछ उदास और थकी हुई-सी होकर तथा हाथों का तकिया लगाकर पड़ी हुई मन ही मन कुछ सोच रही थी। उधर मनु भी चुपचाप पड़े हुए अपने सभी गत और आगत संकटों की उपेक्षा करते हुए सोचने लगे कि क्या जीवन में कहीं सुख मिल सकता है ? नहीं, इसमें सुख कभी नहीं मिल सकता, क्योंकि जीवन स्वयं एक भयंकर समस्या है, जिसका सुलझाना बहुत ही कठिन है। अतः इस सांसारिक प्रलोभन से—सबका मोह त्याग कर मुझे यहाँ से भाग जाना चाहिए। यदि इसमें मुझे विपत्तियाँ भी झेलनी पड़ें तो उनकी भी कोई चिन्ता नहीं, क्योंकि अब तक जिन विपत्तियों का सामना किया है, वे भी क्या कुछ कम रही हैं।

यह प्रभात……कलुषित काया।

शब्दार्थ—स्वर्ग किरण-सी=सुनहली किरण के समान। कलुषित काया=

अपराधी शरीर।

अर्थ—मनु पड़े-पड़े सोच रहे थे कि श्रद्धा सवेरे चमकने वाली सूर्य की सुनहली किरण के समान दिव्य और मधुर है जो चंचलता से झिलमिलाती रहती है। उस श्रद्धा को मैं अपना मुँह अथवा अपना यह अपराधी शरीर किस प्रकार दिखला सकता हूँ, अतः मेरा यहाँ से भागना ही उचित है।

और शत्रु····· चुपचाप करूँ।

शब्दार्थ—कृतघ्न=उपकार को न मानने वाले, एहसान फरामोश। प्रतिहिंसा=बदला लेने के लिए की गई हिंसा। प्रतिशोध=वैर।

अर्थ—मनु पड़े-पड़े सोच रहे थे कि श्रद्धा और कुमार को छोड़कर इस नगर के सारे निवासी मेरे शत्रु हैं, ये एहसान फरामोश भी हैं, अतः इनका विश्वास करना उचित नहीं। इसके प्रति मेरे मन में प्रतिहिंसा और वैर की भावना है, अतः उस भावना को अपने मन में दबाकर मरना उचित नहीं है; अर्थात् मुझे इनसे बदला अवश्य लेना चाहिए।

श्रद्धा के·····जाऊँगा।

शब्दार्थ—सरल है।

अर्थ—मनु सोच रहे थे कि मुझे सारस्वत नगर व निवासियों से अपने वैर का बदला अवश्य लेना चाहिए, किन्तु श्रद्धा के रहते हुए यह कार्य कभी भी संभ नहीं हो सकता, अतः मुझे यहाँ से भाग निकलना चाहिए, चाहे मुझे कहीं भी शांति मिले, मैं निरन्तर उसको खोजता रहूँगा।

जगे सभी·····उलझ रही।

शब्दार्थ—कामायनी=श्रद्धा।

अर्थ—नवीन प्रातःकाल अपने पर जब वे सब लोग जगे तो उन्होंने देखा कि वहाँ पर मनु नहीं हैं। 'पिता कहाँ हैं' यह कहकर और प्रशान्त-सा होकर कुमार उन्हें ढूँढ़ने लगा। आज इड़ा अपने को सबसे अधिक अपराधी समझ रही थी और श्रद्धा चुपचाप बैठी हुई अपने ही विचारों से उलझ रही थी।

दर्शन

कथासार—मनु के सारस्वत नगर से चुपके-से भाग जाने पर श्रद्धा और कुमार कई दिन तक इड़ा के राजमहल में ही रहे, किन्तु श्रद्धा का मन सदैव दुःखी रहता था। एक दिन वह राजभवन से दूर निकलकर सरस्वती नदी के किनारे आकर बैठ गई। वह यही सोच रही थी कि किस प्रकार मनु का पता चले। सहसा कुमार वहाँ आ गया। उसने श्रद्धा को उदास बैठी हुई देखकर कहा—'माँ! तुम यहाँ पर अकेली और उदास क्यों बैठी हुई हो। चलो, अपने घर चलें।' इस पर श्रद्धा ने उत्तर दिया—'बेटा! जिसे तुम अपना घर समझ रहे हो, यह मेरा घर नहीं है। मेरा घर तो इस चहारदीवारी के घिरे हुए घर की अपेक्षा बहुत व्यापक और विशाल है जिसकी छत नीला आकाश है, जिसकी परिक्रमा मेघ करते हैं, जिसमें तारे झिलमिलाते हैं और जिसका द्वार सदैव सबके लिए खुला रहता है।' श्रद्धा जब यह कह रही थी तो उसके कानों में ये शब्द पड़े—'माँ! तुम जब इतनी उदार हो तो मुझ से विरक्त क्यों रहती हो? क्यों मुझे अपने अनुराग से वंचित किए रहती हो?' ये शब्द इड़ा के थे जो चुपचाप श्रद्धा के पीछे आ खड़ी हुई थी। श्रद्धा इड़ा को सान्त्वना देती हुई बोली—'मैं तुमसे किस प्रकार विरक्त रह सकती हूँ। तुम तो प्रत्येक प्राणी को आश्रय देने वाली हो। जो प्राणी मुझसे बिछुड़ गया था, उसे तुमने ही तो आश्रय दिया था। मेरे पति के यहाँ आने के कारण ही तुम्हें इतने कष्ट उठाने पड़े। इसमें मेरा ही अपराध है। मैं इसके लिए क्षमा चाहती हूँ। 'इड़ा ने कहा—यह आप क्या कह रही हैं। संसार का प्रत्येक प्राणी अपराधी है। मैं भी तो अपराधी हूँ। मेरे ही अपराध के कारण मेरी सारी शासन-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई है।' श्रद्धा ने उत्तर दिया—'इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। तुम्हारे ऊपर अभी भी दैवी प्रकोप है। तुम्हारी शासन-व्यवस्था के छिन्न-भिन्न होने का कारण यह है

कि तुमने कभी किसी के हृदय पर अधिकार पाने का प्रयत्न नहीं किया, वरन् सदा सभी के सिर पर चढ़ी रहीं। इसी कारण सभी व्यक्ति तुम्हारे विरुद्ध होते गये। तुममें बुद्धि और तर्क तो हैं, किन्तु हृदय का अभाव है। इसीलिए तुम नारीत्व की कोमलता छोड़कर सुख-दुख के मिथ्या आडम्बर में फँस गई। अतः जब तक तुममें अन्य व्यक्तियों के प्रति सरसता न होगी, तब तक तुम्हारी शासन-व्यवस्था ठीक-ठीक प्रकार से नहीं चल सकती। इसीलिए मैं तुम्हारे पास अपने पुत्र मानव को छोड़ती हूँ। तुम तर्कमयी हो, यह श्रद्धामय है। तुम दोनों ही मिलकर राज्य-कार्य को ठीक प्रकार से चला सकते हो।' यह कहकर श्रद्धा अपने पुत्र कुमार को इड़ा को सौंपकर आगे बढ़ गई।

वहाँ से चलकर श्रद्धा सहसा उस शान्त और निर्जन स्थान पर पहुँच गई जहाँ पर मनु तपस्या कर रहे थे। श्रद्धा को देखकर वे कहने लगे—'तुम देवी हो। मैं तुम्हें फिर छोड़कर भाग आया था, परन्तु तुमने मुझे फिर ढूँढ़ लिया। लेकिन क्या इड़ा ने तुम्हारा पुत्र छल लिया है?' श्रद्धा ने उत्तर दिया—'मैं स्वयं ही उसे उसके पास छोड़कर आई हूँ। वह इड़ा के साथ रहकर राज्य-कार्य करेगा और जिस कार्य को आप अधूरा छोड़ आये हैं, उसे वह पूर्ण करके आपका यश फैलायेगा।'

श्रद्धा की ये बातें सुनकर मनु के हृदय में श्रद्धा के प्रति सच्चा अनुराग उत्पन्न हुआ और उन्हें कैलाश पर्वत पर शिव नृत्य करते हुए दिखाई देने लगे। समूचा वातावरण एक अलौकिक एवं दिव्य प्रकाश से प्रकाशित हो उठा था। उस दृश्य को देखकर मनु श्रद्धा से कहने लगे—'श्रद्धे! बस, अब तुम मुझे शिव के उन पावन चरणों तक ले चलो जिससे मेरे सभी पाप तथा पुण्य इनकी तीव्र ज्वाला में जलकर पवित्र बन जायें, सम्पूर्ण असत्य ज्ञान नष्ट हो जाये और मैं रूपरसता में लीन होकर अखंड आनंद को प्राप्त कर सकूँ।

वह चन्द्र हीन······निजी बात।

शब्दार्थ—चन्द्र हीन रात=अमावस्या की रात्रि। स्वच्छ प्रात=प्रकाश पूर्ण सवेरा। झलमल=टिमटिमाना। प्रतिबिम्ब=परछाईं। वक्षस्थल=हृदय। पवन पहल=हवा के झोंके। निजी बात=गुप्त बात।

अर्थ—जिस रात श्रद्धा सरस्वती नदी के किनारे जाकर बैठी, वह

अमावस्या की अँधेरी काली रात थी। उस समय ऐसे लगता था मानो प्रकाश देने वाला उजला प्रभात भी उसकी गोद में मुँह छिपाकर सो रहा हो ! नदी के पानी में अर्थात् वक्षस्थल पर तारों के प्रतिबिम्ब टिमटिमाते से दिखाई दे रहे थे। नदी की धारा तो बह रही थी परन्तु तारों की परछाईं अटल थीं। कभी-कभी हवा भी चलती थी तो ऐसे जान पड़ता था। मानो कोई पर्दा धीरे-धीरे खुल रहा हो। वृक्षों की पंक्तियां चुपचाप खड़ी थीं। ऐसे जान पड़ता था मानो वह कोई गुप्त बात सुन रही हों।

विशेष—'स्वच्छ प्रात के सोने' में मानवीकरण, 'धारा बह जाती बिम्ब अटल' में विरोधाभास अलंकार है।

धूमिल छायाएँ······लिया चूम।

शब्दार्थ—धूमिल = धुँधली। लहरी = लहरें। निर्जन = सुनसान। गंध धूम = धूप आदि का सुगंधित धुँआ।

अर्थ—कुमार और इड़ा दोनों श्रद्धा को ढूँढ़ रहे थे, इसलिए अन्धकार में ऐसे लगता था मानो धुँधली-सी छायाएँ घूम रही हों। नदी के किनारे बैठी हुई श्रद्धा के पांवों को पानी की लहरें उछल-उछल कर चूम रही थीं। उसी समय कुमार ने आकर माँ से कहा माँ तू इतनी दूर यहाँ कहाँ आ गई। संध्या कब की बीत चुकी थी। इस सुनसान जगह पर ऐसी कौन-सी सुन्दर वस्तु है जिसे तू देख रही है। उठ अब घर को चल। देखो हमारे घर में धूप आदि का सुगंधित धुँआ उठ रहा है। इतना कहने पर श्रद्धा ने कुमार का मुख चूम लिया।

माँ क्यों तू······जाती हताश।

शब्दार्थ—दुसह = कठिनाई। दह = जलन। हताश = निराश।

अर्थ—कुमार श्रद्धा से पूछता है—माँ तू इतनी उदास और खोई-खोई-सी क्यों रहती है क्या मैं तेरे पास नहीं हूँ जो तेरी चिन्ताओं को दूर कर सकूँ ? पिछले कई दिनों से तू चुपचाप इस तरह क्या सोचती रहती है ? मुझे कुछ तो बता, यह तेरा कैसा असहनीय दुख है, जो बाहर भीतर तुझे जलाता रहता है। तू अत्यन्त शिथिलता के साथ लम्बी-लम्बी साँसें लेती है जैसे तेरी कोई आशा टूट गई हो।

वह बोली······उन्मुक्त द्वार।

शब्दार्थ—अपार=असीम। अवनत=झुके हुए। घन=बादल। सजल=जल से भरे हुए। दिशि=दश दिशाएँ। पल=समय। अनिल=हवा। जुगनू=खद्योत। अविरल=अनवरत।

अर्थ—श्रद्धा पुत्र से स्नेह भरी बातें सुनकर बोली—बेटा! इस नीले और असीम आकाश को देखो जिसमें जल के भार से बोझिल तथा घुमड़ते हुए बादल सदा बरसने के लिए झुके रहते हैं और जिसके नीचे प्राणियों के जीवन में सुख तथा दुःख आते रहते हैं, जिसके नीचे दशों दिशाओं में रहने वाले प्राणी स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करते हैं, जहाँ काल का चक्र निरन्तर गति से चलता रहता है, जिसके नीचे बच्चे के समान खेलता हुआ वायु चला करता है और जिसमें झिलमिलाते सुन्दर तारों के समूह ऐसे जान पड़ते हैं जैसे रात में आकाश में जुगनू लगातार चमक रहे हों। इस प्रकार इस आकाश के नीचे जो उदार संसार विद्यमान है, वही मेरा घर है और इस घर का द्वार सभी के लिए खुला हुआ है।

विशेष—मानवीकरण, उपमा, हेतूत्प्रेक्षा और परम्परितरूपक अलंकार।

यह लोचन······नोंक-झोंक।

शब्दार्थ—लोचन=आँख। गोचर=दिखाई देने वाला। सकल लोक=सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड। संसृति=संसार। कल्पित=जिसकी कोई सत्ता न हो। हर्ष=प्रसन्नता। शोक=दुःख। भावोदधि=भाव रूपी समुद्र। किरणों=सूर्य की किरण, बोध या अनुभव। सजना=सदैव बहने वाली। आलिंगित=स्पर्श करते हुए। नोंक-झोंक=छेड़छाड़।

अर्थ—श्रद्धा कहती है - ये सकल ब्रह्माण्ड जो आँखों के सामने दिखाई देता है और संसार के ये सभी सुख और दुःख जो प्रतीत होते हैं परन्तु वास्तव में इनकी सत्ता नहीं है। ये सब भावों के समुद्र में ऐसे ही उत्पन्न होते हैं जैसे सूर्य की तेज किरणों से ऊपर गया हुआ समुद्र का पानी बरस कर स्वाति नक्षत्र में गिरकर सीपी में मोती और सर्प के मुख में गिरकर विष का रूप धारण कर लेता है। उसी प्रकार यह भाव भी सारे संसार को सुख और दुःख से भर देते हैं। जिस प्रकार पर्वत से निकले हुए झरने पर्वत का स्पर्श करते हुए ऊँची-नीची भूमि पर निरन्तर बहते रहते हैं, उसी प्रकार यहाँ भी सत् (उत्थान की ओर ले जाने वाली) असत् (पतन की ओर ले जाने

वाली) प्रवृत्तियों के झरने लगातार बहते रहते हैं। जिस प्रकार झरने मार्ग में आने वाली बाधाओं को खुशी से झेलते हैं उसी प्रकार यह प्राणी भी संकटों का खेल समझ कर सामना करते हैं।

विशेष—१. 'भावोदधि' और 'उत्थानपतनभय-झरने' में रूपक अलंकार।

२. 'स्वातिकन से' उपमा अलंकार।

जग, जगता······कितना विशाल।

शब्दार्थ—आँखें किये लाल=ऊषा के रूप में लालिमा फैलाना। तम=अन्धकार। मृति=मृत्यु। संसृति=जीवन नति=पतन। उन्नति=उत्थान। सुषमा=सुन्दरता। झलमल=झिलमिलाता हुआ। उडुन्दल=तारागण। अवकाश=शून्य, अंतरिक्ष। मराल=हंस।

अर्थ—श्रद्धा मानव से कहती है कि हे पुत्र! विशाल संसार के रूप में फैले हुए मेरे इस घर की सारी सृष्टि प्रातःकाल ऊषा की लालिमा के रूप में लाल आँख करके सोकर उठती है। रात के समय यह सृष्टि अन्धकार का आवरण ओढ़कर, चादर औढ़कर सोए हुए प्राणी की भाँति मीठी नींद लेती है। जिस प्रकार वर्षा ऋतु में आकाश में रंगीन इन्द्र धनुष नाना प्रकार के रंग बदलता है उसी प्रकार मेरा यह संसार मृत्यु, जीवन, अवनति और उन्नति आदि के द्वारा विविध रूप बदलता हुआ सौन्दर्य से झिलमिलाता रहता है। इस संसार पर रात के समय तारों के समूह फूलों की तरह खिल उठते हैं और प्रातःकाल होते ही फूलों की भाँति मुरझा जाते हैं। जिस प्रकार नीले जल से भरे हुए सरोवर में हंस सुशोभित होता है, उसी प्रकार इस नीले आकाश के बीच में मेरा यह सुन्दर और विशाल घर चन्द्रमा की भाँति सुशोभित होता है।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति और परम्परित रूपक अलंकार।

इसके स्तर······सुखद शांति।

शब्दार्थ—स्तर=तह। ताप-भ्रान्ति=दुःख से उत्पन्न भ्रम। अन्तस्तल=हृदय, आन्तरिक भाग।

अर्थ—अपने घर का परिचय देती हुई श्रद्धा मानव से कहती है कि हे पुत्र! मेरे इस घर की प्रत्येक तह में अर्थात् सर्वत्र पूर्ण शान्ति विद्यमान है। यह अत्यन्त शीतल है और दुःख से उत्पन्न श्रम का निवारण करने वाला

है। यद्यपि इस घर में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है तथापि यह सदैव कल्याणकारी है। इसमें सभी प्रकार के सहयोगी और विरोधी भाव भरे हुए हैं। इसमें कभी-कभी कोलाहल भी सुनाई पड़ता है। किन्तु वह कोलाहल उल्लास से भरा हुआ सा होता है। इस प्रकार मेरा यह निवास स्थान अत्यधिक मधुर शोभा से सम्पन्न है और यह सुख देने वाली शान्ति से परिपूर्ण घोंसले के समान हैं।

विशेष—पुनरुक्ति, मानवीकरण, विशेषण विपर्यय तथा रूपक अलंकार।

अम्बे, फिर······भाग्य, जाग।

शब्दार्थ—अम्ब=माँ। विराग=विरक्ति। सानुराग=अनुरागमयी। छवि=आभा। शशिलेखा=चन्द्र लेखा। रेख=चिन्ह। दीन त्याग=दैन्य से भरा हुआ त्याग।

अर्थ—तब इड़ा ने श्रद्धा पूछा—"हे माता! यदि यह सत्य है तो तब फिर तुम अभी तक इतनी विरक्त क्यों बनी हुई हो। और मुझ पर अपना स्नेह क्यों नहीं प्रकट करती।" इड़ा की इस बात को सुनकर श्रद्धा ने पीछे मुड़कर देखा तो वहाँ इड़ा खड़ी थी। उसके अनुपम अंगों की आभा मलिन पड़ गई थी मानों चन्द्रमा को राहु ने ग्रसा हो। विषैले शोक की छाया उसके मुख पर अंकित थी। मनु के प्रयत्न से जिसका भाग्य एक बार जग कर फिर सो गया था, वही वैभवशालिनी इड़ा आज दीन बनकर श्रद्धा के पास यह आशा लगाए खड़ी थी कि वह कोई त्याग करे तो मैं उसे स्वीकार करूं।

विशेष—१. 'मलिन छवि रेखा' में रूपक अलंकार।

२. 'राहुग्रस्त सी शशिलेखा' में उपमा अलंकार।

बोली ·····चंचला शक्ति।

शब्दार्थ—अन्धानुरक्ति=बिना सोचे समझे प्रेम। अवलम्बन=सहारा चिर आकर्षण=सदैव दूसरों को आकर्षित करने वाली। मादकता=मस्ती। चिर अतृप्ति=अत्यधिक अशान्ति।

अर्थ—श्रद्धा उत्तर देती हुई बोली—मुझे तुमसे कैसे विरक्ति हो सकती है। तुम तो जीवन की अनुरागमयी ऐसी मूर्ति हो जिसे देखते ही मनुष्य बिना सोचे समझे प्रेम करने लगता हो तुमने मुझ जैसे बिछुड़े व्यक्ति को सहारा देकर उसका जीवन बचाया। तुम सदैव दूसरों के मन को आशा से भर देने वाली

हो और प्रत्येक प्राणी को अपनी ओर आकर्षित करने वाली हो। जल से भरे हुए झुके बादलों के समान तुम मस्ती से भरी हुई हो, तुम्हीं को देखकर मनु का मन सदैव अशांत रहा। तुममें कुछ ऐसी शक्ति है जो प्राणी को हमेशा कार्य के लिए प्रेरणा देकर चंचल बनाए रखती है।

मैं क्या······रही डोल।

शब्दार्थ—मोल=बदला। मधुर=मीठी। घोल=मिश्रण। चिर-विस्मृति-सी=बहुत पुरानी भूल के समान।

अर्थ—श्रद्धा इड़ा से कहती है कि मनु के ऊपर किए गए तुम्हारे उपकारों का मोल मैं कहाँ चुका सकती हूँ। मेरे पास तो बदले में देने के लिए दो मीठी बातें ही रह गई हैं। मेरा जीवन ही क्या है, मैं सुख के समय हँस लेती हूँ और दुःख के समय रो लेती हूँ। अभी जिस वस्तु को प्राप्त करती हूँ। दूसरे क्षण उसे खो देती हूँ। मेरे पास अपना कुछ नहीं मैं जो कुछ किसी से लेती हूँ दूसरे ही क्षण उसे दूसरों को दे देती हूँ इस प्रकार मैं अपना जीवन बिताती हुई दुःख को भी सुख मानती हूँ। यद्यपि मैं अनुरागमयी होने के कारण मीठे घोल के समान हूँ परन्तु फिर भी मैं एक पुरानी भूल के समान इस संसार में घूम रही हूँ अर्थात् मुझे प्रिय की प्राप्ति नहीं हो पाती।

विशेष—'मधुर घोल' में रूपक और 'चिरविस्मृति-सी' में पूर्णोपमा अलंकार।

यह प्रभापूर्ण······साधिकार ?

शब्दार्थ—प्रभा=आभा। हृतचेतन=विवेकहीन। माया=मोह। छाया=सुख देने वाली। निश्च्छल=छलहीन। साधिकार=अधिकार सहित।

अर्थ श्रद्धा इड़ा से बोली तुम्हारे आभा से भरे हुए मुख को देखकर एक बार तो मनु सुधबुध गँवा कर विवेकहीन हो गए थे। नारी को मोह और ममता का बल भगवान ने दिया है। वह अपनी शक्ति से सभी को शीतल छाया के समान सुख प्रदान करती है। जिस नारी के अस्तित्व से यह धरती धन्य हुई, उसे क्षमा करने की बात कौन सोच सकता है ? अर्थात् नारी हमेशा दूसरों के अपराध क्षमा कर देती है और स्वयं कोई अपराध करती नहीं। इसलिए यह बात ही सोचना अपराध है। मेरे पति मनु ने तुम्हारे प्रति अपराध किया है उसके लिए मैं क्षमा याचना करूँ मुझे यह अधिकार है और मैं ऐसा सोचती भी हूँ कि तुम मुझे क्षमा कर दोगी।

अब मैं······हो न।

शब्दार्थ—मौन=चुप। पावस निर्झर=बरसाती झरने। रोके=समझावे।

अर्थ—श्रद्धा की बात सुनकर इड़ा बोली—तुम्हारी सब बातें सुनकर अब मैं चुप नहीं रह सकती। क्योंकि यहाँ पर पुरुष से ही केवल अपराध हो ऐसी बात नहीं। पुरुष और स्त्री दोनों सुख-दुख में एक साथ जीवन व्यतीत करते हैं। परन्तु एक दूसरे से केवल अपने सुखों की ही चर्चा करते हैं क्योंकि दुःखों की चर्चा करने से अपने अपराध प्रकट हो जाते हैं। कुछ व्यक्ति अधिकार पाकर अपनी सीमा में नहीं रहते और उसी प्रकार उनका उल्लंघन करते हैं जैसे बरसाती नाले कभी-कभी बाढ़ का रूप धारण कर लेते हैं। भला ऐसे मनुष्यों की रोकथाम कौन कर सकता है? ऐसे सभी प्राणियों को जो उन्हें समझाने का प्रयत्न करें, अपना दुश्मन मानते हैं।

अग्रसर······गया छूट।

शब्दार्थ—अग्रसर होना=बढ़ना। सीमाएँ=विभाजन रेखा। कृत्रिम=बनावटी। विप्लव=विद्रोह। मत्त=मतवाले।

अर्थ—इड़ा श्रद्धा से कहने लगी—आज मेरे सारस्वत प्रदेश में फूट बढ़ रही है। कोई भी व्यक्ति अपनी सीमा में नहीं रहना चाहता। मैंने जो चार वर्ग बनाकर उनका कार्य बाँटा था वे सीमाएं आज टूटती जा रही हैं। वह सभी अपने-अपने कार्य को श्रेष्ठ समझते हैं और दूसरे के कार्य को हेय मानते हैं। जो व्यक्ति सुख शान्ति स्थापित करने के लिए नियम बनाते हैं, वही उन नियमों का उल्लंघन करके क्रान्ति मचाते हैं। वह सभी उसी प्रकार अधिक तृष्णा में फैले हुए हैं जैसे कोई शराबी व्यक्ति शराब के नशे में चूर होकर अधिकाधिक पीने की इच्छा करता है। इसलिए अब मेरा साहस छूट गया है।

मैं जनपद······रही समृद्ध।

शब्दार्थ—जनपद=राष्ट्र। निषिद्ध=बुरी। सुविभाजन=मनुष्यों का जातियों में बँटना। विषम=दोषपूर्ण। जलधर=बादल। उपलोपम=ओले के समान। समिद्ध=धधकती हुई। समृद्ध=बड़ी।

अर्थ—इड़ा बोली—मैं अपने सारस्वत प्रदेश में राष्ट्र का कल्याण करने वाली के नाम से प्रसिद्ध थी और आज मैं ही अवनति का कारण बन गई हूँ।

मैंने सभी मनुष्यों को अलग-अलग जातियों में बाँट कर उनका सुन्दर विभाजन किया था आज वही विभाजन समाज में दोषपूर्ण सिद्ध हुआ। मेरे राज्य में नित्य न जाने कितने नियम टूटते हैं और जिस प्रकार ओलों से भरे बादल स्थान-स्थान पर घिर कर वर्षा करते हैं और खेती आदि नष्ट करते हैं उसी प्रकार यह वर्ग भेद भी कई स्थानों पर अनिष्ट फैलाता है। क्रांति की यह आग आज इतनी उत्तेजित होकर धधकती हुई दिखाई दे रही है, इससे पता चलता है कि बहुत विनाश होकर रहेगा।

तो क्या······छाया अशान्त।

शब्दार्थ—भ्रम=भूल। नितान्त=एकदम। संहार=ध्वंस। वध्य=मार डालने योग्य। असहाय=निर्बल। दान्त=दमन किया हुआ। प्रणति=विनम्र। अनुशासन=आज्ञा।

अर्थ—इड़ा बोली—तब क्या अपनी बुद्धि से प्राणियों की उन्नति के लिए जो कुछ मैंने कल्पना की थी वह मेरी भूल थी? क्या प्राणी को निर्बल होकर सदैव प्रकृति से दबाई जाकर वध के लिए लाए गए बलि के बकरे के समान उनको चुपचाप नष्ट होने देती। मैंने प्रजा को नए नए आविष्कारों द्वारा प्रकृति के साथ संघर्ष करना सिखाया। क्या यह हमारे सभी आविष्कार और प्रयत्न बेकार सिद्ध हुए। हमारी शक्ति भी व्यर्थ सिद्ध हुई। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए किए गए यज्ञ भी निष्फल ही सिद्ध हुए। इसीलिए आज मेरी प्रजा निर्बल व्यक्ति के समान भयभीत होकर प्रकृति की उपासना करती है और उसके कठोर अनुशासन में परतन्त्र प्राणी की तरह जीवन व्यतीत करती है।

विशेष—'शक्ति चिह्न' में रूपकातिशयोक्ति, 'श्रान्त प्रणति' में विशेषण विपर्यय और 'अनुशासन की छाया' में रूपक अलंकार है।

तिस पर······उठे जाग।

शब्दार्थ—दिव्य=अलौकिक। राग=अनुराग। अकिंचन=दरिद्र। विराग=उदासीनता। चेतनता=मन की स्फूर्ति।

अर्थ—इड़ा बोली—इतना सब होने पर भी हे देवी! मैंने तुम्हारे पति मनु को अपने यहाँ वैभव आदि का लोभ दिखाकर अपने पास रोककर तुम्हारा सुहाग छीन लिया था। मैंने मनु को अपनी ओर आकर्षित करने का दुष्कर्म किया। फिर भी मैं आज दरिद्र हो गई हूँ। मैं स्वयं अपने को ही अच्छी नहीं

दूसरों को कैसे अच्छी लग सकती हूँ। मैं जो भी कोई अच्छी बात करती हूँ उसे मैं स्वयं ही सुनना पसन्द नहीं करती अन्य व्यक्ति कैसे सुनेंगे। हे देवी! तुम मुझे क्षमा कर दो और मेरी ओर से इस तरह विरक्त मन बनी रहो। जिससे मेरी स्फूर्ति फिर से जागृत हो और मैं अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर सकूँ।

है रुद्र रोष......श्रान्त।

शब्दार्थ—रुद्र रोष=शिव का क्रोध, देवी प्रकोप। विषम ध्वांत=गहन अन्धकार। सिर चढ़ना=दूसरों पर बलपूर्वक अधिकार करना। चेतन=प्राणी। श्रान्त=थके हुए। श्रान्त=दुःख देने वाला।

अर्थ—इड़ा की बातों को सुनकर श्रद्धा उत्तर देती है कि हे इड़ा! प्रकृति का भयंकर प्रकोप अभी तक शान्त नहीं हुआ है वरन् वह गहन अन्धकार के रूप में अभी तक विद्यमान है। तुम्हारी सबसे बड़ी भूल यही रही है कि तुम सदैव दूसरों पर बलपूर्वक अधिकार करती रही हो, कभी उनके हृदय पर अधिकार नहीं किया। इसी कारण तुम आज तक सारे कार्य करती हुई भी दुःखी हो। तुम्हारी इसी भूल के कारण प्राणियों की सुख देने वाली आत्मता नष्ट हो गई है। और किसी के भी हृदय में अपनत्व के प्रकाश का उदय नहीं हुआ है इसीलिए तुम्हारे प्रजाजन थके हुए पथिक की भाँति अपने जीवन पथ पर चल रहे हैं। और इसीलिए तुम्हारे द्वारा किया गया वर्णों का वर्गीकरण दुःखदायी सिद्ध हुआ है।

जीवनधारा......सरल रहा।

शब्दार्थ—सत=सत्य। तर्कमयी=बुद्धिप्रधान। प्रतिबिम्बित तारा=तारों की परछाईं के समान मिथ्या। आठ पहर=दिन-रात। जड़ता=अज्ञानता।

अर्थ—इड़ा की बात सुनकर श्रद्धा उसे समझाती हुई कहती है कि जीवन की धारा सुन्दर और प्रवाह युक्त है, इसका प्रवाह सत्य, सदैव रहने वाला ज्ञान युक्त और सुखदायक तथा असीम है। परन्तु तुमने बुद्धि प्रधान होने के कारण कभी भी इसके हृदय में बैठकर इसके स्वरूप को जानने का प्रयास नहीं किया वरन् इस अगाध धारा की लहरों की ही गिनती रही और तारों के प्रतिबिम्ब के समान मिथ्या दिखाई देने वाले सुख दुःखों को महत्व देती रही। तुमने रात

दिन इस धारा प्रवाह को खंड-खंड करके ही देखा, इसके सम्पूर्ण रूप को नहीं। यही तुम्हारी बहुत बड़ी अज्ञानता थी। अब भविष्य में इस प्रकार की भूल न करना। जीवन में सुख दुःख मधुर धूप छाँह की भाँति आते ही रहते हैं अर्थात् सुख-दुःख जीवन के अनिवार्य अंग हैं। किन्तु तुमने अपने बुद्धि-अहंकार से जीवन की इस सरल राह को छोड़ दिया और तर्कों के जाल में फँसी रहो।

चेतनता······जाग।

शब्दार्थ—चेतनता का=प्राणियों का। भौतिक विभाग=वर्णाश्रम में विभाजन। चिति=विराट् शक्ति। शतशत=अनेक। नृत्य निरत=नाचता हुआ।

अर्थ—श्रद्धा इड़ा को समझाती हुई कहती है कि सभी प्राणियों के अन्दर एक ही चेतना निवास करती है किन्तु तुमने उनको वर्णाश्रमों में बाँटकर उनमें वैमनस्य पैदा कर दिया है। यह संसार उस विराट् शक्ति का ही नित्य स्वरूप है किन्तु यह अनेक रूप बदलता रहता है क्योंकि इसकी रचना जिन अणु-परमाणुओं से हुई हैं वे सदैव मिलते और अलग होते रहते हैं। परिवर्तन-शील होते हुए भी यह संसार सदैव उल्लासपूर्ण आनन्द से भरा हुआ है और यहाँ पर यही एक गीत सुनाई पड़ता है कि हे प्राणि! तू जाग अर्थात् इस संसार की वास्तविकता को समझने का प्रयत्न कर।

मैं लोक······कर्म कान्त।

शब्दार्थ—लो अग्नि=सांसारिक दुःख। तप=जलती हुई। प्रशान्त=अत्यधिक शान्ति के साथ। जलती छाती—धड़कता हृदय। दाह=जलना। निधि=खजाना। राह=मार्ग। सौम्य=शान्त स्वभाव वाला। विनिमय=आदान प्रदान।

अर्थ—श्रद्धा बोली—हे इड़े! मैं संसार के दुःख की आग में पूर्ण रूप से तपकर अपूर्व शान्त तथा प्रसन्न मन से मेरे पास जो कुछ है उसकी आहुति देती हूँ। अर्थात् यदि मुझे संसार के दुःखी प्राणियों के लिए सर्वस्व न्यौछावर करना पड़े तो मैं सहर्ष करने को तैयार हूँ। परन्तु तुम मुझे क्षमा जैसी तुच्छ वस्तु न दे सकीं, बल्कि तुम्हारे हृदय में मेरे से कुछ लेने की आशा है। इस-लिए तुम्हारे हृदय की जलन शान्त नहीं हुई। यदि ऐसी बात है तो मेरे पास जो मेरी एकमात्र निधि मेरा पुत्र मानव है, उसे तुम ले लो। मैं अपने रास्ते

पर चलती-चलती मनु को खोज लूंगी। तब श्रद्धा अपने पुत्र मानव को सम्बोधित करके कहने लगी—हे शान्त स्वभाव वाले मेरे पुत्र ! तुम यहीं रहो। और अपने सुखद कर्मों द्वारा तुम इड़ा का बदला चुकाओ।

तुम दोनों······सुयश गीति।

शब्दार्थ—राष्ट्रनीति==राज्य प्रबन्ध। भीति=भय। नग=पर्वत। रीति=शासन।

अर्थ—इड़ा और मानव को समझाती हुई श्रद्धा कहती है—तुम दोनों यहाँ पर राज्य प्रबन्ध करो। लेकिन शासक बनकर यहाँ पर अपना भय मत फैलाना। मैं अपने मनु की खोज में जा रही हूँ। नदी, मरुस्थल, पर्वत, कुंज-गली सभी स्थानों पर मैं उन्हें खोजूंगी। वे बड़े ही सरल स्वभाव के हैं और इतना धोखा देने वाले नहीं हैं कि मुझे मिल ही न सके। वह मुझे अवश्य मिल जाएंगे क्योंकि मैं तो उनके प्रेम में लीन हूँ। अब मैं देखूँगी कि तुम दोनों कैसा शासन करते हो। हे पुत्र मानव ! मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ कि तेरे यश के गीत गाए जाएं।

बोला बालक······यही क्रोड़।

शब्दार्थ—ममता=स्नेह। जननी=माता। मुँह मोड़ना=बेरुखी होना। प्रन=प्रतिज्ञा। वरदान=कल्याण कारी। क्रोड़=गोद।

अर्थ—माता की ऐसी बात सुनकर मानव बोला—माँ ! मुझसे इस तरह स्नेह न तोड़ और मुझसे इस प्रकार विमुख होकर मत जा। मैं तुम्हारी आज्ञा का सदैव पालन करता आया हूँ। इसलिए मैं फिर प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम्हारे आशीर्वाद के सहारे मैं सदैव अपने कर्तव्य का पालन करूँगा। और चाहे मैं मरूँ या जीऊँ परन्तु अपनी प्रतिज्ञा को कभी नहीं तोड़ूँगा। और मैं यही प्रयत्न करूँगा कि मेरा तुच्छ-जीवन तुम्हारे वरदान की भाँति सदैव मंगलकारी हो। माँ ! आज तुम मुझे यहाँ छोड़कर जा रही हो परन्तु मैं इच्छा करता हूँ कि कर्त्तव्य पूरा होने के पश्चात् मुझे तुम्हारी गोद फिर मिले।

विशेष—'स्नेह सदा करता लालन' मानवीकरण अलंकार।

हे सौम्य······की पुकार।

शब्दार्थ—शुचि दुलार=पवित्र स्नेह। व्यथा भार=व्यथा का बोझ। श्रद्धामय=विश्वासपूर्ण। मननशील=चिंतनयुक्त। अभय=निडर। निचय=

समूह । समरसता=समानता । पुकार=आंतरिक कामना ।

अर्थ—श्रद्धा मानव से कहती है कि हे शान्त स्वभाव वाले पुत्र ! मेरे दूर होने पर तुझे जो दुःख होगा वह इड़ा के पवित्र स्नेह से दूर हो जाएगा। इड़ा में तर्क की प्रधानता है और तुझ में विश्वास की। और साथ ही तू अपने पिता मनु के समान चिंतनशील है इसलिए अच्छी तरह सोच विचार कर अपना राज कार्य शुरू कर। इसका जो राज्य अस्त-व्यस्त हो गया है और उसे जो कलेश मिला है उस सारे खेद समूह को तू नष्ट कर दें जिससे मानव जाति के भाग्य का उदय हो सके। और मेरे पुत्र ! मेरी आन्तरिक कामना है कि तुम सारस्वत प्रदेश में समानता का प्रचार करना। ऊँच-नीच के भेद-भाव को मिटा देना।

अति मधुर······मृदुल फूल ।

शब्दार्थ—दिव्य=अलौकिक । उद्‌गम=जन्म स्थान । अविरल= निरंतर । घन=बादल । वितरे=वितरण करे । जल=पानी, सुख । निर्वा-सित=दूर निकाल देना । सन्ताप=कष्ट । प्रणत=झुकी हुई । मृदुल= कोमल ।

अर्थ—इड़ा श्रद्धा के स्नेह भरे वचन सुनकर बोली—हे देवि ! मैं यह उपदेश पूर्ण मीठे वचन कभी नहीं भूलूंगी। मैं चाहती हूँ कि तुम्हारा यह प्रबल प्रेम अलौकिक कल्याण को जन्म दे। जैसे बादल पानी की वर्षा कर सारी पृथ्वी का संताप हर लेते हैं वैसे ही तुम्हारे आशीर्वाद के रूप में मिले उपदेश से प्रेरित होकर हम जो कार्य करें उससे सबके दुःख दूर हों। इतना कहकर इड़ा श्रद्धा के सम्मुख झुकी और उसके चरणों की धूलि को अपने मस्तक पर चढ़ाकर साथ ले जाने के लिए कुमार का फूल के समान कोमल हाथ पकड़ा।

विशेष—'आकर्षण घन' और 'कर मृदुल फूल' में रूपक और 'जल' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

वे तीनों ···· दो न ।

शब्दार्थ—मौन=चुप । विस्मृत से=भूले से । विच्छेद=वियोग । आहत =चोर । परिणत=परिवर्तित ।

अर्थ—एक क्षण के लिए वह तीनों चुप रहे। बाह्य जगत को वह इतना भूल गए थे कि वह कौन है और इस समय कहाँ है ? आज मानव और इड़ा

श्रद्धा से पृथक हो रहे थे परन्तु यह वियोग बाहरी था क्योंकि उन तीनों के हृदय मिलकर एक हो गए थे, जैसे जलकण आघात पड़ते पर बिखर जाते हैं परन्तु कुछ ही समय पश्चात् वह फि लहरों में परिवर्तित होकर एक रूप हो जाते हैं। वही हालत इन तीनों के विछोह और मिलन की थी।

इड़ा और मानव चुपचाप सारस्वत नगर की ओर लौट चले। जब कुछ दूर हुए थे आत्मीयता का अनुभव करके यह सोचने लगे कि अब हम दोनों को एक ही राय से राज्य प्रबन्ध करना है। इसलिए वह अपने को पृथक-पृथक न समझकर एक ही समझने लगे।

निस्तब्ध गगन······दीनध्वान्त।

शब्दार्थ—निस्तब्ध=सन्नाटे से पूर्ण। चित्र=दृश्य। कान्त=मनोहर। व्यथित=थकी हुई। श्रम सीकर=पसीने की बूँदें। झरना=गिरना। दीन=दैन्य-पूर्ण। ध्वान्त=अन्धकार।

अर्थ—उस समय आकाश में पूर्ण सन्नाटा छाया हुआ था और दिशाएँ शांत थी। उस समय असीम आकाश एक मनोहर चित्र के समान दिखाई दे रहा था। आकाश के सीने पर तारों के रूप में शून्य के आकार की बूँदें दिखाई दे रही थीं। जो थकी हुई रात्रि के पसीने की बूँदों के समान लग रही थीं। यह पसीने की बूँदें न जाने कितनी देर से दिखाई दे रही थीं परन्तु झरकर नीचे पृथ्वी पर नहीं गिरतीं थीं। पृथ्वी पर अन्धकार की बहुत गंभीर और मलिन छाया पड़ रही थी। नदी के किनारे जहाँ वृक्ष खड़े हुए थे उनके ऊपर आकाश प्रांत से केवल विषाद-भरा अन्धकार ही बिखर रहा था।

विशेष—'शून्य विन्दु' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

शत-शत······जाती तुरन्त।

शब्दार्थ—मंडित=सुशोभित। स्तवक=गुच्छा। माया सरिता=आकाश-गंगा। दुरन्त छाया=रात्रि का घना और विस्तृत अन्धकार।

अर्थ—आकाश सैकड़ों तारों से सुशोभित हो रहा था मानों वसन्त के मन में फूलों के गुच्छे शोभा पा रहे हों। ऊपर आकाश लोक में मधुर हास्य इन तारों के रूप में छा गया था, और आकाश का वक्षस्थल हल्के प्रकाश से भरा हुआ था। ऊपर आकाश में एक अनोखी आकाशगंगा बह रही थी जिसकी लहरें किरणों के रूप में उठ रही थीं। परन्तु आकाश के नीचे रात्रि के घने

अन्धकार की छाया फैली हुई थी जो रात को चुपके-चुपके आकर चारों ओर फैल जाती थी।

विशेष—'किरणों के लोल लहर' में रूपक अलंकार और 'माया सरिता' तथा 'दुरन्त छाया' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

सरिता का……अम्लान फूल।

शब्दार्थ—एकान्त=निर्जन। कूल=किनारा। हिंडोला=झूला। दल=समूह। विरल=रुक-रुक कर। दीप्ति=प्रकाश। तरल=चमकीला। संसृति=रात्रि का नीरव जगत। गंधविधुर=गंधहीन। अम्लान=मुरझाया हुआ।

अर्थ—नदी का निर्जन तट था। वहाँ पर पवन के झोंके एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर इस तरह जाते थे जैसे वह हिंडोले पर झूल रहे हों। लहरें उठ-उठकर किनारों से टकरा कर मिट रही थीं इसीलिए कभी-कभी रुक-रुक कर छप-छप की आवाज आ रही थी। नदी के पानी में तारों का प्रतिबिम्ब ऐसे हिल रहा था मानों वह थर-थर कांप रहा हो। उस रात्रि के गहन अन्धकार में संसार अपनी सुधबुध भूल कर सोया हुआ जान पड़ता था। और वह एक मुरझाए हुए गंधहीन फूल की भाँति जान पड़ता था।

तब सरस्वती……रहा साँस।

शब्दार्थ—शिला-लग्न=पत्थर में जड़े हुए। अनगढ़े=बिना तराशे। निस्वन=ध्वनि। लतावृंत=लताओं से ढकी। जीवित=प्राणी।

अर्थ—तब सरस्वती नदी जैसे सांय-साँय करती बह रही थी उसी प्रकार गहरी साँस लेकर श्रद्धा ने अपनी दृष्टि चारों तरफ दौड़ाई तो उसने देखा कि दो आँखें चमक रही हैं वह ऐसे लग रही थी मानों किसी पत्थर में बिना तराशे हुए हीरे जड़े हुए हों। उस समय उसके कानों में सर-सर की ध्वनि पड़ी वह बहुत हैरान हुई कि यहाँ इस अन्धकार में कौन प्राणी इस प्रकार की ध्वनि कर रहा है। क्या ये नदी की ही तो आवाज नहीं? परन्तु निकट जाने से उसका भ्रम दूर हो गया उसने देखा कि लताओं से ढकी हुई एक गुफा में कोई जीवित प्राणी बैठा हुआ गहरी साँसे ले रहा था।

विशेष—१. 'सरस्वती से' में पूर्णोपमा अलंकार।

२. वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार।

वह निर्जन······विश्व-मित्र।

शब्दार्थ—निर्जन=जन शून्य। उन्नत=ऊँची। शैल=पर्वत। लोक अग्नि=सांसारिक दुःखों की आग। हाथकर=कष्ट झेल कर। गलकर=द्रवित होकर। विश्व-मित्र=संसार की हितैषिणी।

अर्थ—नदी का वह जन शून्य विनाश एक चित्र के समान प्रतीत होता था। वह बहुत ही सुन्दर और पवित्र था। वहाँ हर पर्वत की चोटियाँ कुछ ऊँची थीं परन्तु बहुत ऊँची नहीं क्योंकि श्रद्धा का सिर ही उन सबसे ऊँचा था क्योंकि श्रद्धा के समान उनमें क्षमा, दया, करुणा, स्वाभिमान आदि कुछ भी गुण विद्यमान न थे। श्रद्धा सांसारिक दुःखों को झेलती हुई दुःखों की अग्नि में तपकर सोने की मूर्ति बन गई थी। क्योंकि उसमें सभी गुण आ गए थे। उसे देखकर मनु बोले यह कितनी अनुपम एवं अलौकिक नारी है; यह जगजननी के समान सबका हित करने वाली है।

विशेष—'लोक अग्नि' में रूपकातिशयोक्ति 'स्वर्ण प्रतिमा' में रूपक और 'विश्व-मित्र' में परिकर अलंकार हैं।

बोले रमनी······मन का प्रवाह।

शब्दार्थ—रमनी=भोग की वस्तु। चाह=लालसा। वंचित=ठगी हुई। उसको=पुत्र मानव को। निर्दय=कठोर। प्रवाह=गति।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहने लगे—अरी श्रद्धे! तुम उस तुच्छ नारी के समान नहीं हो। जो केवल भोग करने के लिए होती है और जिसके मन में काम पिपासा की भरमार होती है। अरी श्रद्धा! तुमने अपना सब कुछ त्याग कर मुझे रो-रोकर खोज निकाला। मैं उन सारस्वत प्रदेश के जिन व्यक्तियों से प्राण बचाकर भागा था उन निर्दयी प्राणियों को तुम अपना एक मात्र पुत्र तक दे आई। उस समय हृदय कठोर कैसे हो गया। क्या तुम्हारे कठोर हृदय में पीड़ा नहीं उठी? तुम्हारे मन की गति भी विचित्र है।

वे श्वापद······आह तीर।

शब्दार्थ—श्वापद=हिंस्र पशु। कोमल शावक=कुमार बच्चा। बाल=बालक। हृत्तल=अन्तस्तल। हाथ से तीर छूटना=अवसर निकल जाना।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि सारस्वत प्रदेश के निवासी हिंस्र पशु के समान चीर फाड़ कर खाने वाले हत्यारे हैं। मेरा वह वीर बालक अभी कोमल

बच्चे के समान है। मैं हृदय को शीतल कर देने वाली वाणी सुनता था। उसमें कितना दुलार और निष्कपट स्नेह भरा हुआ था। परन्तु तुम्हारा हृदय न जाने कितना कठोर है जो तुम मानव को उनके हाथों सौंप आई हो। तुम भोली-भाली हो इसलिए इड़ा तुम्हारे साथ भी छल कर गई। परन्तु तुम अभी तक धैर्य धारण किए हुए हो। यही आश्चर्य की बात है। परन्तु अब तो अवसर निकल चुका है। इसलिए अब कर ही क्या सकते हैं।

प्रिय ! अब······स्पष्ट अंक।

शब्दार्थ—सशंक=शंकित। रंक=गरीब। विनिमय=आदान प्रदान। परिवर्तन=अदल-बदल। स्वप्न=आत्मीयजन। निर्वासिता=दूर। डक=पीड़ा। स्पष्ट अंक=खरी बात।

अर्थ—श्रद्धा मनु की बातों का उत्तर देती हुई कहने लगी हे प्रिय ! तुम्हारा हृदय अब भी शंकित है। किसी को कुछ देने से कोई दरिद्र नहीं हो जाता। मैं इड़ा को अपना कुमार दे आई हूं और कुमार को देकर मैंने बदले में तुम्हें प्राप्त किया है। चाहे तुम इसे आदान प्रदान समझो या परिवर्तन। परन्तु यह सत्य है कि तुम्हारा ऋण अब धन का रूप धारण कर रहा है। अर्थात् वह अच्छे कार्य करके सुयश प्राप्त करेगा जिससे तुम्हारे यश की भी वृद्धि होगी। दूसरा यह कि तुम इड़ा के अपराधी होने के कारण राज्य के बन्धन में थे। अब तुमारे पुत्र ने भार संभाल लिया है। इसलिए तुम अब मुक्त हो गए हो। अब तुम घर से निकाले हुए व्यक्ति के समान अपने आत्मीय जनों को छोड़ कर इतनी दूर क्यों चले आए हो। अब तुम्हें पीड़ा पहुंचाने की कोशिश कोई नहीं करेगा। सच्ची बात तो यह है कि अब जो कुछ तुम्हारे पास है उसे प्रसन्नता से दो और जो दूसरे दें उन्हें प्रसन्नता से ग्रहण करो।

विशेष—१. 'बन्धन से मुक्ति' में विरोधाभास अलंकार।
२. 'डंक' में लक्षण-लक्षणा।

तुम देवि······लघु विचार।

शब्दार्थ—निर्विकार=विकारहीन। सर्व मंगले=सभी का हित चाहने वाली। महती=महान। निलय=स्थान। लघु=तुच्छा।

अर्थ—मनु कहने लगे—हे देवि ! स्वभाव से तुम कितनी उदार हो। संसार के प्रति ममता प्रकट करने वाली तुम निर्विकार मूर्ति हो। सबका

कल्याण कर वाली देवि तुम बहुत महान् हो। तुम सबके दुःख अपने ऊपर सहती हो। और दूसरों का कल्याण करने वाली ही बात कहती हो। तुम क्षमा के घर में ही रहती हो। क्योंकि तुम सबको क्षमा कर देती हो। मैं तुम्हें देख कर ही जान पाया हूँ कि तुम एक असाधारण नारी हो। अभी तक मैं अपनी भूल के कारण तुम्हें साधारण नारी ही समझता था। यह मेरे विचारों की ही तुच्छता का कारण था।

विशेष—'सर्वमंगले' में परिवार, 'क्षमानिलय' में रूपक और 'नारी साही' में उपमा अलंकार है।

मैं इस······घुस तीर।

शब्दार्थ—सत्ता=व्यक्तित्व। अधीर=बेचैन। तीखा समीर=तीव्र-वायु। भावचक्र=भाव रूपी चक्की। लघुता=हीनता। अनुराय=प्राचीन वैर।

अर्थ—मनु श्रद्धा से बोले—मैं इस नदी के सूने तट पर अधीरता से घूमता हुआ, भूख, पीड़ा और तीव्र वायु के झोंकों को सहन करता हुआ तथा अपने भावों को चक्की में पिसता हुआ निरन्तर आगे बढ़ता आया था। जैसे मनोविकार मन में उठकर फिर विलीन हो जाते हैं उसी प्रकार आज मैं भी अपना व्यक्तित्व खोकर कुछ भी नहीं रहा हूँ। तुम मेरे वक्षस्थल को चीर कर देखो तो पता चल जाएगा कि सारस्वत प्रदेश से भाग कर आने में मेरी क्षुद्रता नहीं थी बल्कि पुराना वैर मेरे मन में तीर के समान घुसा हुआ है।

विशेष—'भावचक्र' में रूपक और 'विचार-सा' में उपमा अलंकार है।

प्रियतम······सत्य बात।

शब्दार्थ—नत=झुकी हुई। निस्तब्ध=नीरव। विगत=बीती हुई। सम्बल=सर्वस्व। शान्ति प्रात=शान्ति रूपी प्रभात वेला।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहने लगी हे प्रियतम! यह कोमल और शांत रात्रि मुझे बीते हुए समय की बातें याद दिला रही है। जब देवसृष्टि का विनाश करने वाली भयंकर प्रलय का कोलाहल शांत हो चुका था, मैं अपने जीवन का सर्वस्व तुम्हें समर्पित कर निष्कपट मन से तुम्हारी हो गई थी। अभी मेरी स्मृति इतनी कमजोर नहीं हुई कि मैं उन सब बातों को भूल जाऊँ, जिस प्रकार अन्धकार पूर्ण राशि के पश्चात् शान्ति पूर्ण प्रभात का आगमन होता है। अब ऐसे स्थान पर चल कर रहें जहाँ तुम्हें कष्टों के पश्चात् शान्ति मिल

सके। अब विश्वास रखो कि तुम चाहे जैसा भी व्यवहार मेरे साथ करना परन्तु अब मैं तुम्हारी हूँ और सदा तुम्हारा ही साथ दूँगी।

विशेष—'शांति-प्रात' में रूपक अलंकार।

इस देव······लीक।

शब्दार्थ—देव द्वन्द्व=देव-दम्पति। विषम=भयंकर। कर्मोन्नति=कार्यों के द्वारा उन्नति। सम=समान। भ्रम=अज्ञान। अतीत=मिथ्या। लीक=परम्परा।

अर्थ—श्रद्धा इड़ा से कहती है कि—देव दम्पति का पुत्र यह मानव हमारे देवत्व और हृदय का प्रतीक है इसीलिए यह सारस्वत नगर में होने वाली सभी भूलों को ठीक कर लेगा। तुम्हारे द्वारा वर्णाश्रम का विभाजन किए जाने पर जो परस्पर कटुता और द्वेष का भयंकर विष फैल गया है, उसे भी वह अपने शुभ कर्मों के द्वारा उन्नति करके तथा समानता की भावना का प्रचार करके दूर कर देगा। इसके प्रयत्न से सारस्वत के निवासी सभी प्रकार के कष्टों से और विरोधी भावों से छुटकारा पा लेंगे और सभी का अज्ञान नष्ट हो जाएगा। साथ ही वे इस रहस्य को भी जान सकेंगे कि जीवनोन्नति के लिए शुभ कार्य और संयम आवश्यक है। इसके प्रयत्न से सारस्वत नगर के निवासियों के मध्य फैला हुआ मिथ्या का प्रचार समाप्त हो जाएगा। और एक परम्परा समाप्त होकर दूसरी परम्परा शुरू हो जाएगी; अर्थात् निरी बौद्धिकता नष्ट होकर उसका मिलन हृदय से भी हो जाएगा।

वह शून्य······पार।

शब्दार्थ—असत्=असत्य। अवकाश पटल=अन्तरिक्ष। उन्मुक्त=स्वतंत्र। स्निग्ध=चिकना। निर्निमेष=अपलक। शून्य सार=सार भूत अन्धकार।

अर्थ—उस समय सर्वत्र असत्य का भयानक अन्धकार छाया हुआ था जो अन्तरिक्ष के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैले अन्धकार की इस गहनता को देखकर ऐसा प्रतीत होता था जैसे नीले रंग का अंजन अत्यधिक मात्रा में स्थिरता के साथ विश्व के चारों ओर फैल गया है। यह घना अन्धकार मनु को एक आगामी दृश्य की अत्यन्त चिकनी और मलिन पृष्ठभूमि के रूप में दिखाई दिया। मनु इस अन्धकार को अपलक नेत्रों से देख रहे थे। परन्तु यह अन्धकार सीमा रहित होकर इतना अधिक छाया हुआ था इसके आर-पार कुछ भी दिखाई नहीं देता था।

विशेष—गम्योत्प्रेक्षा अलंकार ।

सत्ता का······लहर लोल ।

शब्दार्थ—सत्ता=विराट् शक्ति, परम शिव । स्पंदन=गति । आवरण पटल=अन्धकार का परदा । तम जलनिधि=अन्धकार रूपा सागर । ज्योत्स्ना सरिता=चाँदनी रूपी नदी । आलिंगन=मिलन । रजत-गौर=चाँदी के समान उज्ज्वल । आलोक पुरुष=प्रकाशपूर्ण सत्ता अर्थात् शिव । लोल=चंचल ।

अर्थ—उस समय अन्धकार के परदे को चीरती हुई तथा प्रकाश में हलचल मचाती हुई एक विराट् शक्ति प्रकट हुई जिसमें अन्धकार रूपी सागर का मधुरता से मंथन होने लगा तथा उससे चाँदनी रूपी नदी का मिलन हुआ ; अर्थात् अन्धकार नष्ट हो गया और सर्वत्र प्रकाश फैल गया । वह विराट् शक्ति अर्थात् शिव चाँदी के समान उज्ज्वल वर्ण वाला था, उसका जीवन भी उज्ज्वल अर्थात् अनन्त कल्याणकारिणी शक्तियों से परिपूर्ण था । वह मंगलमय तथा चिति-स्वरूप था । उसके प्रकट होते ही सर्वत्र केवल प्रकाश ही क्रीड़ा करता हुआ दिखाई देने लगा, अन्धकार का कहीं नाम भी था । उस समय प्रकाश की किरणें चंचल लहरों की भाँति तरंगित हो रही थीं ।

विशेष—रूपक अलंकार ।

बन गया······दिशाकाल ।

शब्दार्थ—तमस=अन्धकार । अलक जाल=जटाओं का समूह । सर्वांग=सम्पूर्ण शरीर । अन्तर्निनाद=अनहद नाद । शून्य भेदिनी=अन्धकार को चीर कर प्रकट होने वाली । नृत्य निरत=नाचने में तल्लीन । प्रहसित=हँसता हुआ । मुखरित=ध्वनित । दिशा काल=स्थान और समय ।

अर्थ—जब वह विराट् सत्ता शिव के रूप में प्रकट हुई तो सर्वत्र प्रकाश था, केवल ऊपरी भाग में कुछ अन्धकार शेष रह गया या जो शिव की जटाओं के समूह की भाँति दिखाई दे रहा था, उसका सम्पूर्ण शरीर ज्योति से प्रकाशित और विशाल था । उस समय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अनहद नाद सुनाई देता था । अज्ञान के अन्धकार को भेदकर ज्ञान का प्रकाश करने वाली सत्ता के रूप में स्वयं शिव तांडव नृत्य करने में तल्लीन थे । इस ज्योति के प्रकाश से और अनहद नाद की ध्वनि से सम्पूर्ण अन्तरिक्ष हँसता हुआ-सा और ध्वनित बन गया था । उस समय उत्पन्न होने वाली रूपी ध्वनियाँ एक ही लय में बँधकर ताल दे रही थीं जिनके कारण स्थान और समय का ज्ञान नष्ट हो गया था ।

विशेष—रूपक तथा मानवीकरण अलंकार ।

लीला का……नाद।

शब्दार्थ—लीला का स्पंदित आह्लाद=नृत्य के कारण उत्पन्न होने वाला आनन्द। प्रभा-पुंज=शोभा का समूह। चितिमय=चेतना से भरी हुई। प्रसाद=प्रसन्नता। श्रम सीकर=परिश्रम का पसीना। हिमकर=चन्द्रमा। दिनकर=सूर्य। भूधर=पर्वत। संहार=नाश। सृजन=निर्माण, सृष्टि। युगल पाद=दोनों पैर।

अर्थ—कवि शिव के तांडव नृत्य का वर्णन करता हुआ कहता है कि जब शिव ने अपना तांडव नृत्य शुरू किया तो उनके इस नृत्य के कारण जो आनन्द उत्पन्न हो रहा था, वह शोभा के समूह शिव की चेतना से भरी हुई प्रसन्नता को सूचित कर रहा था। भगवान् शिव अपने इस सुन्दर नृत्य को आनन्दपूर्वक कर रहे थे जिसके कारण उसके शरीर से परिश्रम के कारण पसीने की बूँदें निकल रहीं थीं जिनसे तारों का, चन्द्रमा का और सूर्य का निर्माण हो रहा था। उसके चरणों की धमक से पर्वत धूल के कण के समान उड़ते हुए-से दिखाई दे रहे थे। नाश और निर्माण के सूचक उनके दोनों पैर तीव्र गति से चले रहे थे, अर्थात् उनके तांडव नृत्य के कारण एक ओर तामसी पदार्थों का नाश हो रहा था और दूसरी ओर सात्विक पदार्थों की सृष्टि हो रही थी। सर्वत्र अनहद आनन्द गूँज रहा था।

विशेष—अतिशयोक्ति तथा उपमा अलंकार।

बिखरे असंख्य……रहा डोल।

शब्दार्थ—युग=सत्युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग। विद्युत=बिजली। कटाक्ष=तिरछी दृष्टि। संसृति=सृष्टि। दोल=फूला।

अर्थ—कवि शिव के तांडव नृत्य के प्रभाव का वर्णन करता हुआ कहता है कि शिव के तांडव नृत्य के कारण अगणित गोलाकार ब्रह्माण्ड बिखर गये थे। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग में से क्रमशः एक-एक युग समाप्त हो रहा था और दूसरा युग अपने संतुलन को ग्रहण करता हुआ-सा प्रतीत होता था। जिस ओर भी भगवान् शिव की बिजली के समान चमकने वाली तिरछी दृष्टि पड़ जाती थी, उधर ही भय के कारण सारी सृष्टि काँपने लगती थी। उस समय अनंत चेतन परमाणु बिखर कर या तो विलीन हो रहे थे या कुछ देर बिखर कर और फिर परस्पर मिलकर नवीन रूप धारण कर रहे थे। समूचा संसार किसी भारी फूले की भाँति फूल रहा था। इसमें क्षण-क्षण में

होने वाले परिवर्तनों को देखकर ऐसा प्रतीत होता था जैसे शिव एक परदे के पश्चात् निरन्तर दूसरा पर्दा खोलते हुए चले जा रहे हो।

विशेष—गम्योत्प्रेक्षा और रूपक अलंकार।

शक्ति शरीरी······धवल हास।

शब्दार्थ—शक्ति शरीरी=अनंत शक्ति-रूप शिव। नर्तन=नृत्य। निरत=लीन। कान्ति-सिन्धु=शोभा का सागर। हीरक गिरि=हीरे का पर्वत। विद्युत-विलास=बिजली का प्रकाश। उल्लसित=प्रसन्न। हिम धवल हास=बर्फ के समान उज्ज्वल हँसी।

अर्थ—कवि शिव के तांडव, नृत्य का वर्णन करता हुआ कहता है कि जब उसे अनंत शक्ति-रूप शिव इच्छा, क्रिया, ज्ञान आदि अनंत शक्तियों से मिश्रित स्वरूप धारण किया तो उनसे एक ऐसा अलौकिक प्रकाश निकलने लगा जो सब प्रकार से दुःख और पापों को नष्ट कर रहा था। उन दुःखों और पापों को नष्ट करके शिव तांडव-नृत्य में तल्लीन थे। शिव के शरीर से निकलने वाले प्रकाश से प्रकृति गल-गलकर उस शोभा के सागर शिव के शरीर से इसी प्रकार मिल रही थी जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में मिल जाती हैं। इस समय प्रकृति एक नवीन रूप ही धारण कर रही थी जिससे उसका भयंकर रूप भी रमणीय बन गया था। तांडव-नृत्य करते हुए शिव के मुख पर प्रसन्नता से उत्पन्न बर्फ के समान उज्ज्वल हँसी विद्यमान थी जो ऐसी प्रतीत होती थी जैसे हीरे के पर्वत पर बिजली का प्रकाश सुशोभित हो।

विशेष—रूपक और विरोधाभास अलंकार।

देखा मनु······आनंद वेश।

शब्दार्थ—नर्तित=नाचते हुए। नरेश=शिव। हत-चेत=बेसुध। संबल=सहारा। ज्ञान लेश=ज्ञान का सूक्ष्म अंश।

अर्थ—मनु ने जब नाचते हुए शिव के दर्शन किये तो वे बेसुध-से होकर श्रद्धा से कहने लगे—हे श्रद्धा! यह कितना रमणीय दृश्य है, इसीलिए तू मुझे अपना सहारा देकर शिव के उन चरणों तक ले चल जहाँ पहुँचने पर सारे पाप और पुण्य उसके तीव्र प्रकाश में जलकर समाप्त हो जाते हैं और मनुष्य अपनी कालिमा को खोकर पवित्र और निर्मल बन जाते हैं। जहाँ पहुँचने पर असत्य से उत्पन्न मिथ्याज्ञान का सूक्ष्म अंश भी नहीं रहता और जो देव समरसता से परिपूर्ण होने के कारण अखंड आनन्द की मूर्ति है।

रहस्य

कथासार—जब मनु ने कैलाशवासी शिव के दर्शन के लिए अत्यधिक आग्रह किया तो श्रद्धा उन्हें लेकर हिमालय पर्वत पर चढ़ने लगी। वे दोनों पथिक बड़े ही साहस से अपने मार्ग पर बढ़ते चले जा रहे थे। श्रद्धा आगे-आगे चलकर मनु का मार्ग-प्रदर्शन कर रही थी। हिमालय पर चढ़ते समय उन दोनों ने देखा कि वायु बड़ी तीव्र गति से चल रही है। उसकी चोटियाँ ऊँची-ऊँची हैं जो बर्फ से ढकी हुई हैं। कहीं भीषण गड्ढे हैं तो कहीं मधुर स्वर करती हुई नदियाँ बह रही हैं। बर्फ से ढके शिला-खण्डों पर पड़ती हुई सूर्य की किरणें विविध प्रकार के रंगों में चमक रही हैं। कही-कहीं पर्वत की घाटियाँ हरियाली से ढकी हुई अपना अपूर्व सौन्दर्य दिखा रही हैं। जब मनु पर्वत पर चढ़ते-चढ़ते थक गये तो उन्होंने श्रद्धा से वापिस लौटने का आग्रह किया, किन्तु श्रद्धा नें उनके आग्रह को टालते हुए उन्हें आगे बढ़ने के लिए ही प्रेरित किया। कुछ ऊपर और चढ़ने पर भूमंडल उनकी आँखों से ओझल हो गया और वे दोनों एक ऐसे लोक में पहुंच गये जहाँ नवीन चेतना उदित हो रही थी और तीन प्रकार के तीन गोलाकार बिन्दु दिखाई दे रहे थे। मनु ने इन बिन्दुओं को आश्चर्य से देखा और श्रद्धा से इनके विषय में पूछा। श्रद्धा इन तीनों बिन्दुओं का परिचय देने लगी।

श्रद्धा ने बताया कि ये तीनों बिन्दु इच्छा, ज्ञान और क्रिया नामक तीन लोक हैं। इच्छा लोक लाल रंग का है। इसे भावलोक भी कहा जाता है। इसमें शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध की प्रधानता होती है। इस लोक में माया का राज्य रहता है जो अपनी इच्छा से प्राणियों के हृदय में लालसा एवं तृष्णा उत्पन्न करके उन्हें नाना प्रकार के भोग-विलासों में लिप्त होने के लिए प्रेरित करती रहती है। यह श्याम रंग वाला कर्मलोक है। यहां अनिश्चय की प्रधानता होती है, अतः प्राणी सदैव द्विविधा से संतप्त रहता है। यहाँ सदैव

कर्म का चक्र चलता रहता है और सभी प्राणी किसी न किसी एषणा में आबद्ध होकर निरन्तर दुःख भोगते रहते हैं। तीसरा श्वेत रंग वाला ज्ञानलोक है। यहाँ पर रहने वाले प्राणी सुख और दुःख के प्रति उदासीन रहते हैं। यहाँ बुद्धि की प्रधानता होती है और प्रत्येक प्राणी तथा उसका कार्य बुद्धि से ही नियन्त्रित होता है। इन तीनों लोकों को त्रिपुर कहा जाता है, परन्तु आज कोई भी लोक एक-दूसरे के सुख-दुख में भाग नहीं लेता, इसीलिए ये तीनों पृथक्-पृथक् दिखाई देते हैं। इनका पार्थक्य ही मानव-जीवन के दुःख का मूल कारण है।

इतना कहकर श्रद्धा मुस्करा दी। उसकी मुस्कान से एक ऐसी ज्योति निकली जिसने इन तीनों लोकों को आपस में मिला दिया। तभी शृंग और डमरू की मधुर ध्वनि सुनाई देने लगी और शिव तांडव नृत्य करते हुए दृष्टि-गोचर हुए। इस दृश्य को देखकर मनु की सांसारिक भावनाएँ नष्ट हो गईं और वे श्रद्धा-सहित एक अलौकिक आनन्द में डूब गये।

ऊर्ध्व देश······अभिमानी।

शब्दार्थ—ऊर्ध्व देश=ऊँचा प्रान्त, ऊँचा स्थान। तमस=अंधकार। स्तब्ध=शान्त। अचल हिमानी=अत्यधिक जमी हुई बर्फ। चतुर्दिक्=चारों ओर। गिरि=पहाड़, हिमालय पर्वत।

अर्थ—जब मनु के आग्रह पर श्रद्धा मनु को लेकर हिमालय पर्वत पर चढ़ने लगी तो उन्होंने देखा कि हिमालय का वह ऊँचा स्थान नीले अन्धकार से घिरा हुआ था। अत्यधिक जमी हुई बर्फ शान्त थी, भूतल से आया हुआ मार्ग भी मानो थककर समाप्त हो गया; अर्थात् वहाँ से आगे कोई मार्ग नहीं था। ऊँची-ऊँची चोटियों से युक्त हिमालय ऐसा जान पड़ता था मानो वह अपनी ऊँचाई पर अभिमान करता हुआ सिर उठाकर चारों ओर देख रहा हो।

विशेष—उत्प्रेक्षा तथा मानवीकरण अलंकार।

दोनों पथिक······बढ़ते।

शब्दार्थ—दोनों पथिक=श्रद्धा और मनु दोनों।

अर्थ—श्रद्धा और मनु दोनों ने जाने कब से इस हिमालय की ऊँची-ऊँची चोटियों पर चढ़ते चले जा रहे थे। श्रद्धा आगे-आगे चल रही थी और मनु उसके पीछे-पीछे। उन दोनों को देखकर ऐसा प्रतीत होता था जैसे साहस और

उत्साह दोनों साथ-साथ चल रहे हों।

विशेष—'ऊँचे-ऊँचे चढ़ते-चढ़ते' में पुनरुक्ति और 'श्रद्धा आगे मनु पीछे थे साहस उत्साही से बढ़ते' में यथासंख्य अलंकार है।

पवन वेग……निर्मोही ?

शब्दार्थ—पवन-वेग=हवा के झोंके। प्रतिकूल=विपरीत। निर्मोही=मोह-रहित।

अर्थ—जब श्रद्धा और मनु दोनों हिमालय पर काफी ऊँचे चढ़ गये तो उन्होंने देखा कि हवा के झोंके उनके विपरीत चल रहे थे जो मानो मनु से यह कह रहे थे कि हे पथिक ! लौट जाओ, तुम अपने प्राणों का मोह त्याग-कर मुझे छेड़ते हुए किधर जा रहे हो ? अर्थात् यदि तुम अब और आगे बढ़े तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है।

छूने को……खाई।

शब्दार्थ—अम्बर=आकाश। विक्षत=टूटे-फूटे। भयकरी=भयंकर।

अर्थ—हिमालय की ऊँचाई इतनी अधिक थी कि उसे देखकर यह प्रतीत होता था कि मानो वह आकाश को छूने के लिए मचल उठी हो और इसीलिए निरन्तर बढ़ती जा रही हो। पर्वत में जहां-तहाँ भीषण और भयंकर गड्ढे तथा खाई थीं जो पर्वत के टूटे-फूटे अंगों के समान दिखाई देते थे।

विशेष—'छूने को अम्बर मचली-सी बढ़ी जा रही सतत ऊँचाई' में मानवीकरण और 'विक्षत उसके अंग, प्रकट थे भीषण खड्ड भयकरी खाई' में गम्योत्प्रेक्षा अलंकार है।

रविकर……आ जाता।

शब्दार्थ—रविकर=सूर्य की किरणें। हिम खंडों पर=बर्फ के टुकड़ों पर। हिमकर=चन्द्रमा। द्रुततर=अधिक तेज।

अर्थ—हिमालय पर चढ़कर श्रद्धा और मनु ने देखा कि हिमालय पर पड़ी हुई बर्फ के टुकड़ों पर पड़कर सूर्य की किरणें अनेक चन्द्रमा बना रही थीं; अर्थात् बर्फ के टुकड़ों पर पड़कर सूर्य की किरणें शीतल होकर चन्द्रमा के आकार के समान दिखाई दे रही थीं। हवा भी अधिक तेजी से चक्कर काटकर फिर वहीं लौट आती थी जिस स्थान से वह चलती थी।

विशेष—'हिमकर कितने नये बनाता' में परिकरांकुर और विरोधाभास

अलंकार है ।

नीचे जलधर······गहने ।

शब्दार्थ—जलधर = बादल । सुर-धनु = इन्द्रधनुष । कुंजर-कलभ = हाथी का बच्चा । चपला = बिजली ।

अर्थ—हिमालय पर्वत के नीचे की ओर दौड़ते हुए बादल घूम रहे थे जिनमें इन्द्रधनुष और बिजली चमक रही थी । उस समय ऐसा प्रतीत होता था जैसे बादल इन्द्रधनुष की रंग-बिरंगी माला और बिजली के चमकते हुए गहने पहिनकर हाथी के बच्चे के समान इठलाते हुए घूम रहे हों ।

विशेष—'कुंजर-कलभ सदृश' में पूर्णोपमा अलंकार ।

प्रवहमान······मधु-धाराएँ जैसे ।

शब्दार्थ—प्रवहमान थे = बह रहे थे । निम्न देश में = नीचे के स्थान में । श्वेत गजराज-गण से = ऐरावत हाथी के गण्डस्थल से । मधु-धाराएँ = मद की धाराएँ ।

शब्दार्थ—हिमालय पर्वत के नीचे के स्थान में शीतल पानी से भरे हुए सैकड़ों झरने बह रहे थे जो ऐसे प्रतीत होते थे मानो ऐरावत हाथी के गण्डस्थल से मद की धाराएँ निकल रही हों ।

विशेष—वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार ।

हरियाली······भगते ।

शब्दार्थ—चित्रपटी = चित्र बनाने का पर्दा, चित्रफलक । प्रतिकृतियों के = चित्रों के । नद = नदियाँ ।

अर्थ—हिमालय पर्वत पर उगी हुई हरियाली समतल मैदान में इस प्रकार दिखाई देती थी जैसे वह कोई चित्रफलक हो । उस पर प्रतिक्षण बहती हुई नदियाँ ऐसी प्रतीत होती थीं जैसे वह उस चित्रफलक पर चित्र तैयार करने के लिए स्थिर बाह्य रेखाएँ खींची गई हों ।

विशेष—उपमा और विरोधाभास अलंकार ।

लघुतम वे······सवेरा ।

शब्दार्थ—लघुतम = अत्यन्त छोटे । महामून्य = विशाल आकाश ।

अर्थ—श्रद्धा और मनु हिमालय पर्वत पर इतने ऊँचे चढ़ गये थे कि वहां से पृथ्वी पर स्थित सभी पदार्थ अत्यन्त छोटे दिखाई देते थे । उसके ऊपर

विशाल आकाश घिरा हुआ था। जिस प्रकार सवेरा होने पर रात्रि का अंध-कार समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार अपने गन्तव्य पर पहुँचने के पश्चात् श्रद्धा और मनु की थकान मिटने वाली थी।

कहाँ ले······पथिक हूँ।

शब्दार्थ—निस्संबल=असहाय। भग्नाश=निराश।

अर्थ—हिमालय पहाड़ पर चढ़ते-चढ़ते थककर मनु श्रद्धा से कहते हैं कि हे श्रद्धा ! अब तुम मुझको कहाँ ले चली हो, मैं चलते-चलते बहुत अधिक थक गया हूँ। अब मेरा चलने का साहस भी छूट गया है और मैं असहाय और निराश पथिक के समान बन गया हूँ।

लौट चलो······न सकूंगा।

शब्दार्थ—बात-चक्र से=आँधी के तेज बवंडर से। रुद्ध=बंद। शीत भवन=ठंडी हवा।

अर्थ—हतोत्साह होकर मनु श्रद्धा से कहते हैं कि हे श्रद्धा ! अब वापिस लौट चलो, क्योंकि मैं इतना दुर्बल हो गया हूं कि इस आँधी के तेज बवंडर से लड़ने की मुझमें शक्ति नहीं रही है। ठंड के कारण साँस बन्द कर देने वाली इस ठंडी हवा के विपरीत चलना मेरे लिए दुष्कर हो गया है।

मेरे, हाँ······पाया हूँ।

शब्दार्थ—सुदूर=बहुत दूर।

अर्थ—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि वे सब मेरे थे जिनसे रूठकर मैं चला आया हूँ और वे बहुत दूर नीचे छूट गये हैं। फिर भी अभी तक मैं उन्हें भूल नहीं सका हूँ।

वह विश्वास······ललक उठी थी।

शब्दार्थ—स्मिति=मुसकान। निश्छल=छल-रहित, शुद्ध। कर-कल्लव कोमल पत्तों जैसे हाथ।

अर्थ—जब श्रद्धा ने मनु को हतोत्साह और ममता से भरा हुआ देखा तो उसके मुख पर विश्वास से भरी हुई शुद्ध मुस्कान झलक उठी। उसके कोमल पत्तों जैसे हाथ मनु की सेवा करने को, उसे सहारा देने को, लालायित हो उठे।

दे अवलम्ब······ठिठोली।

शब्दार्थ—अवलम्ब=सहारा। विकल=दुःखी। ठिठोली=परिहास,

मजाक ।

अर्थ—थके हुए तथा हतोत्साह दुःखी साथी मनु को सहारा देकर श्रद्धा मधुर स्वर में कहने लगी कि अब हम इतनी दूर निकल आये हैं कि यहाँ से वापिस लौटना असम्भव है । अतः यह समय परिहास करने का नहीं है, वरन् उत्साहपूर्वक आगे बढ़ने का है ।

दिशा विकम्पित······भूधर है ?

शब्दार्थ—विकम्पित=काँपती हुई । पल=समय । पदतल में=पैरों के नीचे । भूधर=पर्वत ।

अर्थ—श्रद्धा मनु को और आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करती हुई कहती है कि हे मनु ! अब आप ऐसे स्थान पर आ गये हैं जहाँ दिशाएँ काँपती हुई दिखाई देती हैं, अर्थात् उनको जानने का बोध समाप्त हो गया है । समय भी यहाँ सीमाहीन है; अर्थात् समय का भेद भी यहाँ मिट गया है । यहाँ पर केवल अनन्त आकाश ही दिखाई देता है जो ऊपर है । ऐसी स्थिति में, जब दिशा और समय का बोध समाप्त हो गया है, क्या तुम सचमुच यह अनुभव करते हो कि तुम्हारे पैरों के नीचे पर्वत है, अर्थात् क्या अब भी तुम्हें स्थान का ज्ञान बना हुआ है ?

विशेष—यहाँ कवि ने साधक की उस स्थिति का वर्णन किया है जहाँ पहुँचकर वह दिशा और काल की सीमा से दूर चला जाता है । कठोपनिषद् में इस स्थिति का वर्णन इस प्रकार है—

'न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकं नेमा विद्युतो भाति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।'

(अर्थात् न वहां सूर्य रहता है, न चन्द्र, तारे, न यह विद्युत्, अपितु जीव अपनी आत्मा में स्थित होकर ब्रह्म में लीन हो जाता है और उसी की ज्योति से सब-कुछ भासित होता है ।)

निराधार हैं······नहीं है ।

शब्दार्थ—निराधार=बेसहारा, आधारहीन । नियति=संसार की नियामिका शक्ति ।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि यद्यपि हमारे चरणों के नीचे अब पर्वत नहीं है और अब हम निराधार हैं, तथापि हमें आज यहीं पर ठहरना है । यहीं

ठहरने पर हम संसार की नियामिका शक्ति के प्रभाव से बच सकते हैं। इसके अतिरिक्त और कोई ऐसा उपाय नहीं है जिससे हम इस शक्ति के प्रभाव से बच सकें।

विशेष—प्रत्यभिज्ञादर्शन में नियति का यह लक्षण दिया गया है—

'नियतिर्योजन धत्ते विशिष्टे कार्यमण्डले'

अर्थात् नियत संसार के विशिष्ट कार्यों के विशिष्ट कारणों की योजना करने वाली होती है।

झाँई लगती······आ सहती।

शब्दार्थ—झाँई=आंखों के सामने अँधेरा छा जाना। झोंक दूसरी ही=उत्साह।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि सूर्य, चन्द्रमा आदि के न रहने के कारण तुम्हारी आँखों के सामने जो अँधेरा-सा छा रहा है, वह तुम्हें ऊपर उठने की प्रेरणा दे रहा है। जब तुम ऊपर उठ जाओगे तो विपरीत चलने वाली वायु के झोंके भी तुमको हतोत्साह न कर सकेंगे और तुम्हारे मन में इन झोंकों को सहने का उत्साह पैदा हो जायेगा।

श्रांत पक्ष······जम रहें।

शब्दार्थ—श्रांत=थके हुए। पक्ष=पंख। विहग-युगल-से=पक्षियों के जोड़े के समान। शून्य=आकाश।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि जिस प्रकार पक्षी के जोड़े थककर आकाश में हवा में ही अपने पंख फैलाकर तथा आँखें बन्द करके अपनी थकान मिटा लेते हैं, उसी प्रकार हम भी कुछ देर इस निराधार शून्य में ही जम कर आराम कर लें, ताकि आगे बढ़ने के लिए हमें नवीन स्फूर्ति मिल सके।

घबराओ मत······पा गये।

शब्दार्थ—त्राण=रक्षा।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहने लगी कि अब घबराने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अब हम समतल भूमि पर आ गये हैं। देखो तो सही, यह भूमि कितनी रमणीक है। श्रद्धा के वाक्य सुनकर जब मनु ने आँखें खोलकर देखा तो उन्हें लगा जैसे उन्हें अपनी रक्षा के लिए उचित आधार मिल गया है।

ऊष्मा का······व्यस्त थे।

शब्दार्थ—ऊष्मा=गर्मी, चेतना। अभिनव=नवीन। अस्त थे=छिपे हुए थे। दिन-रात्रि=दिन और राति। संधि काल में=मिलन समय में। व्यस्त=लीन।

अर्थ—जब मनु श्रद्धा द्वारा बताई गई समतल भूमि पर पहुँचे तो उन्हें एक नवीन चेतना का अनुभव हुआ। वे जिस स्थान पर पहुँचे थे, वहाँ न तो दिन में सूर्य ही निकलता था और न रात को चन्द्रमा, ग्रह, तारे आदि ही निकलते थे। इनके अतिरिक्त, वहाँ प्रातःकाल और सायंकाल का भी उदय नहीं होता था।

विशेष—इन पंक्तियों में साधक की उस अवस्था का वर्णन है जिसे प्राप्त कर वह सांसारिक धरातल से ऊपर उठकर इसकी क्रिया-प्रतिक्रिया से मुक्त हो जाता।

ऋतुओं के······नवीन सी।

शब्दार्थ—स्तर=क्रम। तिरोहित=छिप जाना। विलीन-सी=छिपी हुई-सी।

अर्थ—श्रद्धा और मनु जिस महादेश में पहुँचे वहाँ पर ऋतुओं का क्रम छिप गया था, अर्थात् किसी भी प्रकार की ऋतु का वहाँ आगमन नहीं होता था। रेखा के समान चमकने वाला भूमंडल भी छिप गया था। वह महादेश निराधार था, किंतु मनु ने वहाँ पहुँच कर नवीन चेतना के उदय होने का अनुभव किया, अर्थात् उन्हें प्रतीत हुआ जैसे उनमें एक नवीन चेतना जन्म ले रही है।

त्रिदिक् विश्व······सजग थे।

शब्दार्थ—त्रिदिक्=तीन दिशाएँ। आलोक-बिन्दु=आकाश के गोले। अनमिल=पृथक्-पृथक्। सजग=गतिशील।

अर्थ—उस स्थान पर पहुँच कर मनु को तीन दिशाओं में आकाश के तीन गोले अलग-अलग दिखाई दिए जो मानो तीनों लोकों का प्रतिनिधित्व करते थे। यद्यपि वे तीनों गोले पृथक्-पृथक् थे तथापि गतिशील थे।

मनु ने······बचाओ।

शब्दार्थ—इंद्रजाल=मायाजाल, उलझा।

अर्थ—तीन दिशाओं में आकाश के तीन पृथक्-पृथक् गोलों को देखकर मनु ने श्रद्धा से पूछा कि हे श्रद्धा! मुझे बताओ कि ये तीन ग्रह कौन-से हैं? मैं किस

लोक के बीच आ गया हूँ। मेरे मन में इस समय जो उलझन उत्पन्न हो गई है, उसका समाधान करके मुझे इस उलझन से बचाओ।

इस त्रिकोण......वाले से।

शब्दार्थ—त्रिकोण=तिकोना। विपुल=बहुत अधिक। क्षमता=सामर्थ्य।

अर्थ—आकाश के चमकते हुए तीन गोलों का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि ये तीन बिन्दु तीन लोगों के पृथक्-पृथक् रूप हैं जिनसे एक त्रिकोण बन रहा है और तुम इस त्रिकोण के मध्य में खड़े हुए बिन्दु के समान हो। अब तुम स्थिर होकर ध्यानपूर्वक इन्हें देखो। ये वस्तुतः इच्छा, ज्ञान और क्रियालोक हैं।

वह देखो......मंदिर।

शब्दार्थ—रागारुण=अनुराग के समान लाल। कन्दुक=गेंद। छायामय=सूक्ष्म। कमनीय=सुन्दर। कलेवर=शरीर। भावमयी=भावों से भरी हुई। प्रतिमा=मूर्ति।

अर्थ—तीनों लोकों का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि इन तीन आकाश के गोलों में से जो गोला अनुराग के समान लाल रंग का है, और जो ऊषा को गेंद अर्थात् उदय होते हुए लाल सूर्य के समान सुन्दर दिखाई देता है, जिसका शरीर सूक्ष्म और सुन्दर है तथा जो भावों से भरी हुई मूर्तियों का मंदिर है, अर्थात् जिसमें भाव पथ की प्रधानता है (यह भावलोक है।)

विशेष—'भावमयी प्रतीक्षा के मंदिर' में रूपक अलंकार है।

शब्द, स्पर्श......तितलियाँ।

शब्दार्थ—पारदर्शिनी=आर-पार देखने वाली।

अर्थ—भावलोक का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि इस लोक में सब इन्द्रियाँ अपने-अपने कर्म का पालन करती हैं। श्रवणेन्द्रियाँ मधुर-मधुर शब्द सुनने के लिए, त्वचा सुन्दर अंगों का स्पर्श पाने के लिए, रसनेन्द्रिय मधुर-मधुर रसों का स्वाद लेने के लिए, नेत्रेन्द्रियाँ सुन्दर-सुन्दर पदार्थों को देखने के लिए तथा नासिका सुवासित पदार्थों की गंध लेने के लिए आर-पार देखने वाली पुतलियों का रूप धारण करके अपने-अपने विषय की खोज में इस प्रकार घूमती हुई दिखाई देती हैं जैसे रूपवती और रंगीन तितलियाँ फूलों के चारों ओर नाच रही हों।

विशेष—मानवीकरण तथा वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार।

इस कुसुमाकर······माया में।

शब्दार्थ—कुसुमाकर=बसंत, यौवन। अरुण पराग=लाल रज का पुष्प-रज, प्रेम। ये=शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध की पुतलियाँ। माया=आकर्षण।

अर्थ—श्रद्धा मनु को भावलोक का परिचय देती हुई कहती है कि जिस प्रकार बसन्त ऋतु में लाल पुष्प रज के समूह से भरे हुए बन में तितलियाँ इठलाती, सोती और जागती हुई मंडराती रहती हैं, उसी प्रकार शब्द, स्पर्श, रूप और गंध को प्राप्त करने के लिए कान, त्वचा, रसना, नेत्र और नासिका नामक इन्द्रियाँ यौवन से परिपूर्ण तथा प्रेम की लाली से युक्त शरीरों के चतुर्दिक् चक्कर काटती रहती हैं। ये इन्द्रियाँ आनन्दोपभोग के कारण कभी मस्त हो जाती हैं, कभी सोती हैं—चेतनाशून्य हो जाती है और कभी चेतनामुक्त होती हैं।

विशेष—'कुसुमाकर कानन' और 'अरुण पराग' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

वह संगीतात्मक······कर देती।

शब्दार्थ—सगीतात्मक ध्वनि=संगीत से मुक्त शब्द-ध्वनि। मादकता=मस्ती। अम्बर=वातावरण। तर कर देती=आनंद से परिपूर्ण कर देती है।

अर्थ—श्रद्धा मनु को भावलोक का परिचय देती हुई कहती है कि इस लोक में जो कोमल और मस्ती से भरी हुई संगीत से युक्त शब्द-ध्वनि होती है वह मस्ती की लहर उठाकर सारे वातावरण को आनन्द से परिपूर्ण बना देती है।

विशेष—मानवीकरण अलंकार।

आलिंगन-सी······मुँदती।

शब्दार्थ—प्रेरणा=इच्छा। सिहरन=रोमांच। अलम्बुषा=छुई-मुई का पौधा। व्रीड़ा=लज्जा।

अर्थ—श्रद्धा मनु को भावलोक का परिचय देती हुई कहती है कि इस लोक में आलिंगन के समान सुखद इच्छा उत्पन्न होकर एक नवीन रोमांच बन जाती है, अर्थात् स्पर्श की मधुर भावना से भरी हुई पुतलियाँ जिस समय

आलिंगन के समान मधुर इच्छा से भरकर किसी का स्पर्श करती हैं तो उस नवीन स्पर्श के कारण शरीर में एक सिहरन-सी दौड़ जाती है जिससे लज्जा के कारण शरीर की दशा छुई-मुई के पौधे के समान हो जाती है, जो स्पर्श पाते ही मुरझा जाता है। इसी प्रकार यौवन से विकसित शरीर स्पर्श पाते ही लज्जा के कारण संकुचित हो जाता है।

विशेष—उपमा अलंकार।

यह जीवन……स्पंदित होती है।

शब्दार्थ—मध्यभूमि = युवावस्था। रसधारा = आनन्द की धारा। प्रवाहिका = नदी। स्पंदित = गतिशील।

अर्थ—अब श्रद्धा भावलोक में इस स्थित के विषय में मनु को बताती हुई कहती है कि भावलोक जीवन की युवावस्था के समान है। जिस प्रकार युवावस्था में प्रेम की आनन्दमयी धारा प्रवाहित होकर जीवन को सींचती रहती है और जिस प्रकार यह युवावस्था रूपी नदी मधुर लालसा की लहरों से गतिशील बनती है, उसी प्रकार इस भावलोक में भी मधुर रस से भरी हुई पुतलियों का जीवन प्रेम की आनन्ददायिनी धारा से सदा आप्लावित रहता है, इनके हृदय में सदैव मधुर इच्छाओं की लहरें उठती रहती हैं और इनकी प्रेम की नदी इन्हीं के कारण प्रवाहित होती रहती है।

विशेष—रूपक तथा रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

जिसके तट पर……मतवाले।

शब्दार्थ—जिसके = प्रेममयी नदी के। विद्युत कण से = बिजली के प्रकाश के समान। छायामय = सूक्ष्म।

अर्थ—श्रद्धा भावलोक के अन्तर्गत रूप तत्व का परिचय देती हुई मनु से कहती है कि इस लोक में जो प्रेममयी नदी बहती है उसके किनारे पर बिजली के प्रकाश के समान मनोहर शरीर वाले सुन्दर, मतवाले सूक्ष्म सौन्दर्य में लीन होकर विचरण किया करते हैं।

विशेष—'विद्युत कण से' में उपमा अलंकार है।

सुमन-संकुचित……धन।

शब्दार्थ—सुमन-संकुचित = फूलों से भरी हुई। भूमि = मध्यलोक। रंध्र = छिद्र। रस पीनी = सरस। वाष्प = भाप।

अर्थ—भावलोक में स्थित गंध तत्त्व का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि इस लोक की फूलों से भरी हुई मध्यभूमि के छिद्रों से सरस मधुर गंध उठा करती है। यहाँ पर मधुर गंध के अनेक ऐसे फुहारे सदैव चलते रहते हैं जो गन्ध की भाप उठने के कारण दिखाई नहीं देते और जिनसे निरन्तर रस की झीनी-झीनी बूँदें टपकती रहती हैं।

घूम रही······माया।

शब्दार्थ—चतुर्दिक्=चारों ओर। चलचित्र=सिनेमा। संसृति छाया=भावलोक के प्राणियों के प्रतिबिम्ब। आलोक-बिन्दु=भावलोक। माया=संसार की रचना करने वाली ईश्वर की शक्ति।

अर्थ—श्रद्धा मनु को भावलोक का परिचय देती हुई बताती है कि जिस प्रकार सिनेमा में चित्र घूमते रहते हैं, उसी प्रकार यहाँ प्राणियों के प्रतिबिम्ब चारों ओर घूमते दिखाई देते हैं और इस लोक का संचालन करने वाली माया-शक्ति इसको घेर कर, अपने नियन्त्रण में रखकर, इसमें बैठी हुई सदैव मुसकराती रहती है।

विशेष—प्रत्यभिज्ञादर्शन में माया को ईश्वर की एक ऐसी शक्ति बताया गया है जो विश्व से अभिन्न होकर भी भेदपूर्ण सृष्टि की रचना करती है। यही शक्ति विश्व का मूल कारण मानी गई है तथा इसी से कला, विद्या, राग, काल और नियति इन पाँच मलों का जन्म होता है।

भाव-चक्र······चूमतीं।

शब्दार्थ—यह=माया। रथ-नाभि=रथ की धुरी। नव रस=शृंगार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र, वीभत्स, अद्‌भुत, भयानक और शान्त रस। अराएं=पहिए के बीच की लकड़ियाँ। अविरल=निरन्तर। चक्रवात=पहिए का घेरा।

अर्थ—भावलोक में स्थित माया का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि यह माया भाव रूपी चक्र को इसी प्रकार चलाती रहती है जिस प्रकार रथ की धुरी उसके पहिए को चलाती है। और जिस प्रकार रथ के पहिए की आराएँ चलते समय पहिए के घेरे को चूमती हुई-सी जान पड़ती हैं, उसी प्रकार इस चक्र की इच्छा रूपी आराएँ शृंगार, हास्य आदि नव रसों को चकित होकर सदैव स्पर्श करती रहती हैं।

विशेष—सांग रूपक अलंकार।

यहाँ मनोमय······फाँसना।

शब्दार्थ—मनोमय विश्व=मानसिक जगत। रागारुण चेतन=प्रेम के लाल रंग से रंगी हुई भावना। परिपाटी=परम्परा। पास=पाश, जाल।

अर्थ—श्रद्धा भावलोक का परिचय देती हुई मनु से कहती है कि इस भावलोक में सभी प्राणियों का मानसिक जगत अर्थात् सभी प्राणी लाल रंग से भरी हुई प्रेम-भावना की उपासना करते हैं; अर्थात् सभी प्राणी प्रेम के उपासक हैं। यहाँ पर मायाशक्ति का राज्य रहता है। जिस प्रकार बहेलिया जाल बिछाकर पक्षियों को अपने जाल में फाँसा करता है, उसी प्रकार यह माया भी प्रेम या मोह का जाल फैला कर जीवों को फाँसती रहती है। यही यहाँ की परम्परा है।

विशेष—दृष्टान्त अलंकार।

ये अशरीरी······सुन्दर झूले।

शब्दार्थ—अशरीरी=शरीर-रहित, मानसिक या सूक्ष्म। वर्ण=रंग, मनोविनोद। अप्सरियों की=मधुर गीत गाने वाली देवांगनाओं की इच्छाओं की।

अर्थ—श्रद्धा भावलोक का परिचय देती हुई मनु से कहती है कि इस भावलोक में रहने वाले प्राणी शरीर-रहित अर्थात् सूक्ष्म हैं। जिस प्रकार फूल अपने ही रंग और गंध में झूमते रहते हैं, उसी प्रकार ये प्राणी भी केवल अपने ही मनोविनोदों और मधुर भावनाओं में मस्त रहते हैं। जिस प्रकार मधुर गीत गाने वाली देवांगनाओं के मधुर गीतों को सुनकर देवता मदमस्त होकर झूले पर झूलते-से दिखाई देते हैं, उसी प्रकार यहाँ के प्राणी इच्छाओं की मधुर ध्वनियाँ सुनकर भावों के मधुर फूलों पर झूलते रहने हैं।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति और विशेषण-विपर्यय अलंकार।

भाव-भूमिका······ताप की।

शब्दार्थ—भाव-भूमिका=भावों की पृष्ठभूमि। प्रतिकृति = मूर्ति। ज्वाला=आग।

अर्थ—श्रद्धा मनु को भावलोक का परिचय देती हुई कहती है कि इस लोक की रचना भावों की पृष्ठभूमि पर हुई है और यह भाव-पृष्ठभूमि ही

सब प्रकार के पाप और पुण्यों को उत्पन्न करने वाली है। यहाँ पर सबके स्वभावों को मधुर ताप की आग में गलाकर बनाया जाता है और तब उनके स्वभाव की मूर्तियाँ ही उनके पाप या पुण्य का सूचक होती हैं।

नियममयी……खिलना।

शब्दार्थ—लतिका=बेल। विटपि=वृक्ष। नभ-कुसुमों का=आकाश-पुष्पों का, असंभव बातों का।

अर्थ—भावलोक का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि जिस प्रकार वन में लताएँ किसी वृक्ष से आकर उलझ जाती हैं, इसी प्रकार भावलोक में सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक नियम ऐसी उलझन पैदा कर देते हैं जो मन के सभी प्रकार के भावों से लिपट जाती है। इसी प्रकार के नियमों के कारण जीवन में एक समस्या उत्पन्न हो जाती है जिससे प्राणियों की इच्छाओं का पूर्ण होना उसी प्रकार असम्भव हो जाता है जिस प्रकार आकाश में पुष्पों का खिलना।

विशेष—सांग रूपक अलंकार।

चिर-बसन्त……डोर।

शब्दार्थ—चिर-बसन्त=बहुत समय तक रहने वाली बसन्त ऋतु, जीवन की उद्दाम लालसा। उद्‌गम=उत्पन्न होने का स्थान। हलाहल=विष।

अर्थ—भावलोक का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि वह लोक मानव-जीवन की उद्दाम लालसाओं को उत्पन्न करने वाला स्थान है, जिस प्रकार बसन्त ऋतु में पुष्प विकसित होते हैं। यहाँ जीवन में विरोध पाया जाता है यदि एक ओर पूर्ण इच्छाओं का बसन्त महकता है तो दूसरी ओर अपूर्ण इच्छाओं का पतझड़ भी दिखाई देता है। यह अमृत और विष साथ-साथ मिले हैं तथा सुख और दुःख एक ही डोर से बँधे हुए हैं।

सुन्दर यह……विशेष है?

शब्दार्थ—श्याम=काला।

अर्थ—भावलोक का परिचय प्राप्त कर लेने पर मनु श्रद्धा से पूछते हैं। कि हे श्रद्धा! यह भावलोक या इच्छालोक जो तुमने अभी दिखाया है, सुन्दर है, किन्तु यह काले रंग वाला लोक किसका है और इसमें कौन-सा विशेष रहस्य छिपा हुआ है?

मनु यह……धूमधार-सा ।

शब्दार्थ—श्यामल=काले रंग का । अविज्ञात=अविदित, न जाना हुआ । धूमधार-सा=धुँए के समान ।

अर्थ—श्रद्धा मनु को कर्मलोक का परिचय देती हुई कहती है कि हे मनु ! यह काले रंग का लोक कर्मलोक कहलाता है । यह लोक कुछ-कुछ धुँधले अंधकार के समान है, इसीलिए यह अभी तक अविदित है ; अर्थात् इसके विषय में पूरी-पूरी जानकारी अभी तक नहीं हो पाई है । जिस प्रकार धुँए की धारा अत्यन्त मलिन होती है, उसी प्रकार यह लोक भी मलिन और धूमिल है । अतः यहाँ के विषय में पूर्ण भेद बता देना असम्भव ही है ।

विशेष—उपमा अलंकार ।

कर्म चक्र……नयी एषणा ।

शब्दार्थ—गोलक=गोल आकार वाला । नियति=भाग्य । प्रेरणा=संकेत । एषणा=इच्छा ।

अर्थ—श्रद्धा मनु को परिचय देती हुई कहती है कि हे मनु ! यह गोल आकार वाला कर्म देश भाग्य की इच्छानुसार कर्म चक्र के समान घूम रहा है । यहाँ के सभी प्राणी किसी-न-किसी नवीन इच्छा के कारण व्याकुल रहते हैं ।

विशेष—'कर्म चक्र सा' में पूर्णोपमा अलंकार है ।

श्रममय कोलाहल……क्रिया-तंत्र का ।

शब्दार्थ—श्रममय=परिश्रम से पूर्ण । कोलाहल=शोर । पीड़न=दुःखदायी । विकल=बेचैन । प्रवर्त्तन=चक्कर चलना । क्रिया-तंत्र=कर्म विधान ।

अर्थ—श्रद्धा बताती हुई कहती है कि जिस प्रकार किसी कारखाने में भारी मशीन वस्तु को दबाती, कुचलती हुई तीव्र गति से चक्कर काटती है तब उस मशीन के साथ काम करने वाले मजदूरों को भी पर्याप्त परिश्रम करना पड़ता है । वहाँ पर मशीन का शोर और पीड़ा बेचैनी से परिपूर्ण वातावरण छाया रहता है । वैसे ही कर्म चक्र प्राणियों से परिश्रम करवाता है । प्राणी रात-दिन परिश्रम, पीड़ा और बेचैनी से युक्त होने पर कार्य में लगे रहते हैं और विश्राम नहीं करना चाहते ।

भाव राज्य……रहे हैं ।

शब्दार्थ—भाव राज्य=कल्पना लोक। मानसिक=काल्पनिक। हिंसा=किसी को मानसिक या शारीरिक कष्ट पहुँचाना, हत्या करना। गर्वोन्नत=भारी अभिमान। हारों=मालाएँ। अणु=विद्युत कण, तुच्छ जीव।

अर्थ—श्रद्धा मनु को बताती हुई कहती है कि जब तक प्राणी कल्पना लोक में रहते हैं तो सुख और आनन्द क्या अनुभव करते हैं परन्तु जब वह कर्मलोक में आते हैं तो उनके सभी सुख दुःख में बदल जाते हैं। इतना सब होने पर भी यह तुच्छ प्राणी दूसरों को शारीरिक और मानसिक कष्ट पहुँचा कर भारी अभिमान से भरे हुए ऐसे अकड़कर घूमते हैं जैसे कोई फूल की मालाएँ पहन कर छाती फुला कर घूमता है।

विशेष—'अणु' में रूपकातिशयोक्ति।

ये भौतिक संदेह……सब कराहते।

शब्दार्थ—भौतिक=पंच भूतों से निर्मित। सदेह=देहधारी। भाव राष्ट्र=इच्छा लोक। नियम=बातें। कराहना=पीड़ा से चिल्लाना।

अर्थ—श्रद्धा मनु को बताती है कि इस लोक के प्राणी पंच भूतों से निर्मित शरीर को धारण कर किसी-न-किसी प्रकार के कर्म में रत रहकर जीवन बिताना चाहते हैं। परन्तु भाव लोक की सभी सुखदायी बातें कर्म लोक में दुःखदायिनी हो जाती है। इसलिए सभी किसी-न-किसी प्रकार की व्यथा से कराह रहे हैं।

करते हैं……कंपित से।

शब्दार्थ—संतोष=शांति, तृप्ति। कृशाघात=कोड़े की मार। भीत=भयभीत। विवश=लाचार। कम्पित=काँपते हुए।

अर्थ—श्रद्धा कहती है कि ये प्राणी रात दिन काम करते रहते हैं परन्तु इन्हें शांति नहीं मिलती। जिस प्रकार चाबुक की मार से घोड़ा आगे बढ़ता रहता है उसी प्रकार ये अज्ञात भय से भयभीत होकर अनिच्छा से कांपते हुए कार्य करते रहते हैं।

नियति चलाती……है उपासना।

शब्दार्थ—नियति=भाग्य। तृष्णा=उत्कट लालसा। अनित=उत्पन्न। ममत्व वासना=मोह भावना, ममता। पाणिपादमय=हाथ पैर वाले। उपासना=पूजा।

अर्थ—श्रद्धा मनु को समझाती हुई कहती है कि इस कर्म लोक को भाग्य ही गतिशील बनाए रखता है । यहाँ पर सभी प्राणियों के हृदय में उत्कट लालसा भरी हुई है, जिसके कारण उनके हृदय में मोह भावना बहुत बढ़ गई है और इसी कारण वह रात-दिन व्यक्ति की पूजा में ही लगे रहते हैं ।

विशेष —'पाणिपारमय पंचभूत' में परिकरांकुर अलंकार ।

यहां सतत............समाज है ।

शब्दार्थ—सतत=निरंतर । संघर्ष=अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए प्रयत्न । विफलता=असफलता । कोलाहल=अशांति । अन्धकार में दौड़ लगाना=बिना सोचे-समझे कार्य करना ।

अर्थ—श्रद्धा कहती है कि यहां पर सभी प्राणी अपना-अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए रात-दिन प्रयत्न करते रहते हैं । परन्तु इसका परिणाम अधिकतर असफलता और अशान्ति ही होते हैं । यहाँ के सभी प्राणी बिना सोच-समझ कर विवेक शून्य होकर रात-दिन तीव्रता से काम करते जाते हैं । इन्हें देखकर ऐसा लगता है मानो कि सारा मानव ही पागल हो गया हो ।

स्थूल हो रहे............गति है ।

शब्दार्थ—स्थूल=सूक्ष्मताहीन, पार्थिव । रूप=आकार । भीषण=भयंकर । परिणति=परिवर्तन । पिपासा=प्यास । निर्मम=कठोर । गति=दशा, स्थिति ।

अर्थ—श्रद्धा मनु को बताती है कि इस लोक के प्राणी अपने-अपने धर्मों के अनुसार ही स्थूल एवं पार्थिव शरीर ग्रहण करते हैं । यह सब इनके कर्मों का ही भयंकर परिणाम है । इसी कारण इनके हृदय में आकांक्षाओं की तीव्र प्यास की ललक उठती है और व्यक्तिगत मोह के कारण इनकी यह दशा होती है ।

विशेष—१. 'तीव्र पिपासा' में लक्षण लक्षणा ।

२. 'आकांक्षा की तीव्र पिपासा' में रूपक अलंकार ।

यहां शासनादेश............गिरवाती ।

शब्दार्थ—शासनादेश=राज्य की माला । हुंकार=गर्वपूर्ण ध्वनि । दलित=शोषित, कुचला हुआ । पदतल=पैरों के नीचे ।

अर्थ—श्रद्धा कहती है कि यह वह लोक है—जिसमें शक्तिशाली, व्यक्तियों

की शासन सम्बन्धी आज्ञाओं की घोषणा की जाती है, उन घोषणाओं में विजय की गर्व ध्वनि स्पष्ट सुनाई देती हो। ये आज्ञाएँ पीड़ितों और पद-दलितों के लिए कोई सहानुभूति पूर्ण नहीं होती बल्कि ये आज्ञाएँ पददलितों, भूखों और हारे हुए व्यक्तियों को विजयी के चरणों में बार-बार गिरवाती हैं। अर्थात् उन्हें चरणों में पड़ने को मजबूर करती हैं।

यहाँ लिए..................छाले।

शब्दार्थ—दायित्व=जिम्मेदारी। ढुलकर=ढुलककर।

अर्थ—श्रद्धा कर्मलोक का परिचय देती हुई मनु से कहती है कि यहाँ पर लोग कार्य करने की जिम्मेदारी लेकर तथा उन्नति के लिए मतवाले होकर कार्य करते हैं, किन्तु कुछ ही दिनों के पश्चात् उनका अस्तित्व उसी प्रकार समाप्त हो जाता है, जिस प्रकार शरीर पर पड़े हुए छाले, जो पहले तो शरीर को पीड़ा देते हैं, किन्तु कुछ समय बाद फूटकर और ढुलक कर नष्ट हो जाते हैं।

विशेष—दृष्टान्त अलंकार।

यहां राशिकृत..................गड़ रहे।

शब्दार्थ—राशिकृत=इकट्ठा किया हुआ। विपुल विभव=अत्यधिक ऐश्वर्य। मरीचिका से=मृगतृष्णा के समान झूठे और सारहीन। विलीन=नष्ट हो जाना। गड़ रहे=लिप्त हो रहे।

अर्थ—कर्मलोक का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि कर्मलोक में हर व्यक्ति अत्यधिक ऐश्वर्य की सामग्रियों को इकट्ठा करने में लगा हुआ है, किन्तु वे सभी सामग्रियां मृगतृष्णा की भाँति झूठी और सारहीन हैं। फिर भी लोग उस क्षणभंगुर सामग्रियों को इकट्ठा करके उनका उपयोग करते हुए स्वयं को भाग्यशाली मानते हैं। शीघ्र ही ये व्यक्ति अपने नश्वर वैभव के साथ नष्ट हो जाते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि जो लोग बच जाते हैं, वे पुनः उन सारहीन सामग्रियों को इकट्ठा करने में लग जाते हैं।

विशेष—'मरीचिका-से' में उपमा अलंकार।

बड़ी लालसा..................गिनती।

शब्दार्थ—लालसा=उत्कट इच्छा। अंध प्रेरणा=असत् प्रवृत्तियां, बुरी भावनाएँ।

अर्थ—कर्मलोक का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि यहां के निवासियों में यश प्राप्त करने की उत्कट इच्छा है और इसी इच्छा के वशीभूत होकर वे किसी भी प्रकार के अपराध करने के लिए तैयार हो जाते हैं। ये व्यक्ति बुरी भावनाओं से प्रेरित होकर ही कार्य करते हैं और स्वयं को उस कार्य का कर्त्ता मानकर अहंकार में झूमते फिरा करते हैं।

विशेष—इस पद पर गीता का प्रभाव स्पष्ट है। गीता में लिखा है—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकार विमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते ॥

अर्थात् सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा ही किये जाते हैं, किन्तु अहंकारी तथा मूर्ख व्यक्ति मैं कर्त्ता हूँ ऐसा मान लेता है।

प्राणतत्व·········बनता।

शब्दार्थ—प्राणतत्व=जीवन। सघन साधना=घोर उपासना। हिम=बर्फ। उपल=ओला। प्यासे=अभावों से दुःखी। घायल हो=वेदनाओं से दुःखी होकर। मर मर कर=भारी दुःख उठाकर।

अर्थ—कर्मलोक का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि इस लोक के निवासी जीवन के प्रति इतने अधिक आसक्त हैं कि दिन-रात उसी के लिए घोर उपासना में लगे रहते हैं अर्थात् उसी की रक्षा के लिए चिन्तित होकर रात-दिन प्रयत्न करते रहते हैं। इसलिए यहां के प्राणियों का जल के समान गतिशील जीवन भी बर्फ और ओले की भांति स्थिर तथा जड़ बन गया है। यहाँ व्यक्ति अभावों के दुखों से इतने अधिक दुःखी रहते हैं कि भारी-भारी कष्ट भोगते हुए ही वे किसी प्रकार अपने जीवन को व्यतीत कर पाते हैं।

यहां नील···   ···मृत्यु सालती।

शब्दार्थ—नील रोहित ज्वाला=नीले और लाल रंग की आग, कर्म की प्रचंडता।

अर्थ—कर्मलोक का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि जिस प्रकार किसी धातु को आग में गलाते समय उसमें से नीली और लाल आग की लपटें निकला करती हैं और फिर हथौड़ों की चोटों से वह किसी एक रूप में ढलता जाता है, इसी प्रकार उसे कर्मलोक में प्रत्येक जीवात्मा कर्म की प्रचंडता से प्रभावित होती है और फिर उसके कर्मानुसार योनि प्राप्ति होती है।

कुछ दिन बंधन में रहने के पश्चात् वह जीवात्मा फिर मुक्त हो जाती है। इस जीवात्मा को न तो कर्मों की चोट प्रभावित कर पाती है और न मृत्यु ही इसे कष्ट दे पाती है; अर्थात् मृत्यु भी इसे नष्ट नहीं कर पाती क्योंकि वह अजर और अमर होती है।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

वर्षा के ......बह जाती।

शब्दार्थ—घन=बादल। नाद कर रहे=गर्जन कर रहे हैं। तटकूलों को =किनारों को और उसके आश्रित पदार्थों को। प्लावित करती=डुबाती हुई। सरिता=नदी।

अर्थ—कर्मलोक का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि जिस प्रकार वर्षा ऋतु के बादलों के गर्जन के कारण अर्थात् अत्यधिक वर्षा होने के कारण, नदी में बाढ़ आ जाती है और वह अपने किनारों को तथा उनके आश्रित पदार्थों को नष्ट कर देती है तथा वन तथा कुंजों को बहाती हुई अपने गन्तव्य समुद्र में जा मिलती है, उसी प्रकार यहाँ के निवासियों के हृदयों में प्रबल आकांक्षाएँ उत्पन्न होने के कारण यहां के व्यक्ति अनेक प्रकार के अपराध करते हैं, यहां तक कि वे अपने आश्रितों को नष्ट करने में भी नहीं हिचकिचाते। और तब वे मार्ग में प्रत्येक पदार्थ को, चाहे वह सुन्दर ही क्यों न हो, अपने लक्ष्य को प्राप्त करते हैं; अर्थात् अपनी आकांक्षाओं को पूर्ण करते हैं।

कहने का भाव यह है कि इस लोक के निवासी इतने अधिक स्वार्थी होते हैं कि अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए ये अधम से अधम कार्य भी कर सकते हैं।

विशेष—सांगरूपक अलंकार।

बस अब ......रजत है।

शब्दार्थ—पुंजीभूत=ढेर। रजत=चाँदी।

अर्थ—कर्मलोक की भयावहता से भयभीत होकर मनु श्रद्धा से कहते हैं कि हे श्रद्धा! तू अब और अधिक मुझे कर्मलोक को न दिखा, क्योंकि यह तो अत्यन्त भयंकर है। पर यह तो बता कि यह तीसरा उज्ज्वल लोक कौन-सा है जो चाँदी के ढेर के समान दिखाई दे रहा है।

विशेष—पूर्णोपमा अलंकार।

प्रियतम............दीनता।

शब्दार्थ—उदासीनता=तटस्थता। निर्मम=कठोर। दीनता=दुर्बलता।

अर्थ—मनु के प्रश्न करने पर श्रद्धा ज्ञानलोक का परिचय देती हुई कहती है कि हे प्रियतम! यह चांदी के समान उज्ज्वल दिखाई देने वाला ज्ञानलोक है। इसके निवासी सुख और दुःख दोनों से तटस्थ रहते हैं, अर्थात् उन्हें न तो दुःख के प्रति विरक्ति है और न सुख के प्रति आसक्ति। यहाँ पर न्याय कठोरता से चलाया जाता है। यहां का प्रत्येक कार्य बुद्धि की कसौटी पर परखा जाता है और उस परख में किसी प्रकार की दुर्बलता नहीं दिखाई जाती।

अस्ति-नास्ति............मुक्ति से।

शब्दार्थ—अस्ति=है। नास्ति=नहीं है। निरंकुश=पूर्ण स्वतन्त्रता से। तर्क-युक्ति से=दलीलों के आधार पर, बुद्धि के बल से। निस्संग=आसक्ति रहित। सम्बन्ध-विधान=सम्बन्ध निश्चित कर लेना।

अर्थ—ज्ञानलोक का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि यहाँ के निवासी बुद्धिजीवी हैं, अतः रात-दिन उन पदार्थों का विश्लेषण किया करते हैं जो हैं और नहीं हैं, अर्थात् ये ब्रह्म और जगत् के अस्तित्वों का समाधान करते हैं। अपने-अपने समाधान को शुद्ध सिद्ध करने लिए अणु जैसे दिखाई देने वाले ये लोग बुद्धिपूर्वक दलीलें देते हैं। यद्यपि यहां के लोग प्रायः आसक्ति-रहित हैं, तथापि मोक्ष से अपना सम्बन्ध निश्चत रूप से रखते हैं, अर्थात् ज्ञान-लोक के निवासी केवल मोक्ष-प्राप्ति के इच्छुक होते हैं।

यहां प्राप्य............चाहती।

शब्दार्थ—प्राप्य=प्राप्त करने योग्य। तृप्ति=सन्तोष। विभूति=ऐश्वर्य। सिकता-सी=बालू के समान।

अर्थ—ज्ञानलोक का वर्णन करती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि इस लोक के निवासी प्राप्त करने योग्य पदार्थों को प्राप्त करने लिए प्रयत्न करते रहते हैं, किन्तु बुद्धि उनके प्रयत्नों के अनुसार ही उन्हें फल देती है, जिससे इन लोगों को सन्तोष नहीं होता। यहाँ पर बुद्धि को ही समस्त ऐश्वर्यों की जननी माना जाता है, किन्तु वह बालू के रेत के समान नीरस होती है जिससे यहाँ के प्राणी सदैव स्वयं का अभावग्रस्त अनुभव करके दुःखी होते रहते हैं और बुद्धि

द्वारा उन्हें जो कुछ मिलता है, उससे उनकी तृप्ति इसी प्रकार नहीं होती जिस प्रकार ओस के चटाने से प्यासे व्यक्ति की प्यास नहीं बुझती।

विशेष—उदाहरण अलंकार।

न्याय तपस ······ जगते।

शब्दार्थ—तपस=तपस्या। पगे=मुक्त होकर। निदाघ=ग्रीष्म ऋतु। मरु=मरुस्थल, रेगिस्तान। स्रोतों के=झरनों के।

अर्थ—ज्ञान लोक का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि इस लोक के प्राणी रात-दिन अनुचित तथा उचित के विश्लेषण द्वारा प्राप्त न्याय से, तपस्याओं से और ऐश्वर्य से मुक्त होकर चमकीले तो दिखाई देते हैं, किन्तु इनकी यह चमक उसी प्रकार की नीरस और केवल दिखावटी चमक है, जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में रेगिस्तान के अन्दर सूख जाने पर झरनों के किनारे चमकीली बालू के कारण सूर्य की किरणों से चमकते है

विशेष—उदाहरण अलंकार

मनोभाव से············वित्त से।

शब्दार्थ—मनोभाव=मनोवृत्ति। कार्य-कर्म का=करने योग्य कर्म का, कर्त्तव्य का। समतोलन=ठीक-ठीक प्रकार से तोलना, अच्छी प्रकार समझना। दत्तचित्त=पूर्ण ध्यान। निस्पृह=आसक्ति रहित। वित्त= धन, लोभ।

अर्थ— ज्ञानलोक का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि इस लोक के निवासी अपनी-अपनी मनोवृत्तियों के आधार पर कर्त्तव्य का निश्चय करते हैं और फिर अपने निश्चय को पूर्ण ध्यान से बुद्धि की तुला पर ठीक प्रकार से तोलते हैं। जिस प्रकार कोई निर्लोभी न्यायाधीश किसी लोभ से अप्रभावित रहकर अपने न्याय में तनिक भी चूक नहीं करता, उसी प्रकार यहां के निवासी आसक्ति रहित होकर अपने कार्य कर्म का निश्चय करते हैं और अपने निश्चय में तनिक भी धन-लोभ या अन्य आकर्षण के कारण गलती नहीं आने देते।

विशेष— रूपक अलंकार।

अपना परिमित············अमर से।

शब्दार्थ—परिमित=सीमित, छोटा। पात्र =यहां बुद्धि से तात्पर्य है। निर्झर=झरना, ज्ञान का स्रोत। जीवन का रस=मोक्ष। अजर=वृद्धावस्था

रहित। अमर=मृत्यु रहित।

अर्थ—ज्ञानलोक का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि ज्ञानलोक के निवासी अपनी सीमित बुद्धि के आधार पर अत्यन्त कष्ट से अत्यन्त प्राप्त होने वाले ज्ञान रूपी झरने से अजर और अमर व्यक्तियों की भांति मोक्ष की प्राप्ति की याचना कर रहे हैं।

विशेष—इन पंक्तियों में ज्ञान प्रधान-साधना को हेय बताया गया है।

64 यहां विभाजन............सांसें भरता।

शब्दार्थ—विभाजन=बँटवारा। धर्मतुला=धर्म की तराजू। व्याख्या करता=ठीक-ठीक निर्णय करता है। निरीह=असहाय। ढीली साँसें भरता =जो कुछ मिल जाए उसी पर संतोष करने का प्रयत्न करते हैं।

अर्थ—ज्ञानलोक का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि यहां पर फलों का बंटवारा धर्म की तराजू से किया जाता है अर्थात् जिसने जितना कर्म किया है, उसी के अनुसार उसे उतना ही फल मिलता है। यह निर्णय धर्म की तुला के आधार पर ही किया जाता है, क्योंकि यही तुला उनके अधिकारों की निर्णायक होती है। अतः यहां के व्यक्ति असहाय से बनकर उन्हें जो कुछ मिल जाता है, उसी पर संतोष करने का प्रयत्न करते हैं।

विशेष—लाक्षणिकता का प्राधान्य।

65 **उत्तमता ....बस लेखो।**

शब्दार्थ—उत्तमता=श्रेष्ठता। निजस्व=निजी धन, पूर्ण अधिकार। अम्बुज=कमल। मधु=शहद, आनन्द। ममाखियाँ=मधुमक्खियाँ।

अर्थ—ज्ञानलोक का वर्णन करतीहुई श्रद्धा मनु से कहती है कि यद्यपि जीवन श्रेष्ठता प्राप्त करना यहां के निवासी अपना पूर्ण अधिकार समझते हैं, तथापि उस श्रेष्ठता का स्वयं उपभोग नहीं करते। जिस प्रकार कमल से भरा हुआ तालाब कमलों की सुगन्धि का स्वयं उपभोग न करके दूसरों को वितरित करता है और जिस प्रकार मधु-मक्खियां शहद को दूसरों के लिए ही इकट्ठा करती हैं, उसी प्रकार ज्ञानलोक के निवासी जीवन का आनन्द तो इकट्ठा करते हैं पर वह दूसरों के लिए ही होता है, क्योंकि वे उसका उपभोग नहीं करते। कहने का भाव यह है कि यहाँ के निवासी श्रेष्ठ जीवन को प्राप्त तो करना चाहते हैं, पर उससे प्राप्त आनन्द को वे दूसरों के लिए ही इकट्ठा करते हैं।

यहां शरद…………बिखरती ।

शब्दार्थ—शरद=शरद ऋतु। धवल=सफेद, निर्मल । ज्योत्स्ना=चांदनी । अन्धकार=अज्ञान । अनव्यवस्था=अव्यवस्था । युगल=दोनों, ज्ञान और अज्ञान दोनों ।

अर्थ—ज्ञानलोक का परिचय देती श्रद्धा मनु से कहती है कि इस लोक में ज्ञान की ज्योति अज्ञान के अधंकार को भेदकर उसी प्रकार प्रकाशित होती है, जिस प्रकार शरद ऋतु की निर्मल चांदनी अंधकार को भेदकर उसी प्रकार प्रकाशित होती है, जिस प्रकार शरद ऋतु की निर्मल चाँदनी अंधकार को मिटा कर चमकती है । परन्तु इस लोक में ज्ञान का पूर्ण प्रकाश न होने के कारण अज्ञान भी किसी-न-किसी मात्रा में अवश्य रहता है, अतः ज्ञान और अज्ञान दोनों के मिलने से यहां एक प्रकार की अव्यवस्था फैली रहती है । इसी अव्यवस्था के कारण यहां जीवन में सदैव छिन्न-भिन्न व्यवस्था ही दृष्टि-गोचर होती है ।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

देखो वे सब…………परितोषों से ।

शब्दार्थ—सौम्य=सरल स्वभाव वाले, भोले-भाले । सशंकिक=भयभीत । दंभ=अहंकार । भ्रूचालन=भौंहों से इशारे करना । परितोष=सन्तोष ।

अर्थ—ज्ञानलोक का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि देखो ! इस लोक के व्यक्ति देखने में तो भोले-भाले हैं, किन्तु सभी इस बात से भय-भीत रहते हैं कि कहीं उनसे कोई अपराध न हो जाए। कभी-कभी अपनी सफलता से प्राप्त हुए सन्तोष को ये भौंहों के इशारों से प्रकट करते हैं जिनमें इनका अहंकार छिपा हुआ होता है । कहने का भाव यह है कि यद्यपि इस लोक के प्राणी देखने में सरल स्वभाव के दिखाई देते हैं किन्तु इनका हृदय भय और अहंकार से भरा हुआ होता है ।

विशेष—'वे संकेत दंभ के चलते भ्रूचालन मिस परितोषों से' में कैतवा-पन्हुति अलकार है ।

यहां अछूत…………होने दो ।

शब्दार्थ—अछूत=अयोग्य । जीवन-रस=जीवन का आनन्द । संचित=इकट्ठा । तृषा=लालसा । मृषा=असत्य ।

अर्थ—ज्ञानलोक का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि इस

लोक में जीवन का आनन्द अभोग्य ही बना हुआ है, अर्थात् कोई भी जीवन के वास्तविक आनन्द को प्राप्त नहीं कर पाता क्योंकि ये जीवन और उसके कार्यों से प्रायः उदासीन ही रहते हैं, इनकी धारणा है कि जीवन के आनन्द को केवल इकट्ठा करते रहो, उसका उपयोग मत करो, क्योंकि जीवन-आनन्द को इकट्ठा करना ही ये अपना अधिकार समझते हैं। यहां के निवासी लालसा को भी असत्य मानकर त्याज्य बताते हैं।

सामंजस्य चले ....झुठलाते हैं।

शब्दार्थ—सामंजस्य=मेल, अनुकूलता। विषमता=भेद-भाव। स्वत्व=अधिकार।

अर्थ—ज्ञानलोक का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि इस लोक के प्राणी प्रयत्न तो करते हैं मनोवृत्तियों में मेल करने का, किन्तु इनके द्वारा मेल न होकर भेदभाव ही अधिक फैलते हैं। इसका कारण यह है कि ये लोग जीवन का मूल अधिकार ज्ञान मानते हैं और हृदय की कामनाओं को ज्ञान-विरोधी मानकर त्याज्य बताते हैं। साथ ही ये लोग अपने हृदय में मोक्ष की कामना भी करते हैं। अतः स्वयं इनके व्यवहार विरोध से मुक्त हैं। इसीलिए इनके द्वारा सामंजस्य के स्थान पर विषमता ही विरोध फैलाती है।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने निवृत्ति मार्ग का खंडन किया है।

स्वयं व्यस्त ....ढलते।

शब्दार्थ—व्यस्त=लीन, कार्य में लगे हुए। अनुशासन=आदेश, आज्ञा। परिवर्तन में ढलते=बदलने रहते हैं।

अर्थ—ज्ञानलोक का परिचय देती हुई श्रद्धा मनु से कहती है कि इस लोक के निवासी स्वयं तो अनेक प्रकार की यौगिक क्रियाओं में लीन रहते हैं, फिर भी ऊपर से देखने पर शान्त ही दिखाई पड़ते हैं। ये शास्त्रों में लिखे हुए नियमों के अनुसार प्रत्येक कार्य और व्यवहार को करते हैं। इनके शास्त्र विरोधी आदेशों से भरे हुए हैं। इसीलिए इनके कार्य भी प्रतिक्षण बदलते रहते हैं।

विशेष—'स्वयं व्यस्त पर शांत बने थे' में विरोधाभास अलंकार है।

यहाँ त्रिपुर..........कितने।

शब्दार्थ—त्रिपुर=तीन लोक, इच्छालोक, कर्मलोक और ज्ञानलोक। ज्योतिर्मय=प्रकाशपूर्ण।

अर्थ—इच्छालोक, कर्मलोक और ज्ञानलोक का परिचय देकर श्रद्धा मनु से कहती है कि यही त्रिपुर है जो तुमने अभी देखा है और जिनमें अनेक भरे हुए प्रकाश तीन बिंदुओं के रूप में दिखाई देते हैं। स्वयं अपने-अपने ही सुखों और दुखों के केन्द्र बनने के कारण ये आपस में एक दूसरे से बहुत भिन्न और अलग हो गये हैं, अर्थात् इनमें कोई सामंजस्य नहीं रह गया है।

ज्ञान दूर............जीवन की।

शब्दार्थ—ज्ञान=विवेक। क्रिया=कर्म। बिडम्बना=उपहास का विषय, दुर्भाग्य।

अर्थ—श्रद्धा मनु से कहती है कि जब ज्ञान और कर्म में सामंजस्य नहीं है तो मन की इच्छा किस प्रकार पूर्ण हो सकती है। ज्ञान, कर्म और इच्छा इन दोनों का एक दूसरे से न मिलना ही जीवन का दुर्भाग्य है, अर्थात् इनके पार्थक्य के कारण ही जीवन में दुःख आते हैं।

महाज्योति............ज्वाला जिनमें।

शब्दार्थ—महाज्योति=अलौकिक प्रकाश। स्मिति=हँसी। सम्बद्ध=परस्पर मिल जाना। ज्वाला=ज्ञान की ज्योति।

अर्थ—मनु को त्रिपुर-रहस्य बताकर श्रद्धा मुस्काई। उसकी मुस्कान एक अलौकिक प्रकाश की रूप रेखा-सी बनकर उन लोगों की ओर दौड़ी जिसके प्रभाव वे तीनों लोक सहसा परस्पर मिल गये और उनमें ज्ञान की ज्योति प्रकाशित होने लगी।

नीचे ऊपर............नहीं नहीं सी।

शब्दार्थ—लचकीली=लचकती हुई। विषम=भयंकर। महाशून्य=विशाल आकाश।

अर्थ—उस समय श्रद्धा की मुस्कराहट से उत्पन्न हुई वह ज्ञान की ज्योति सम्पूर्ण विशाल आकाश में झलकती दिखाई देने लगी, जिसकी लचकती हुई लपटें ऊपर नीचे की ओर दौड़ी रही थीं वे लपटें कभी भयंकर वायु के कारण तेजी से धधकने लगती थीं और यह कहती हुई सी जान पड़ती थीं कि भाव-लोक, कर्मलोक और ज्ञानलोक पृथक पृथक नहीं हैं, अपितु वे तीनों एक ही हैं।

शक्ति तरंग............उठा सा।

शब्दार्थ—शक्ति तरंग=शक्ति की लपटें। पावक=आग। त्रिकोण=

त्रिपुर । शृंग=सींगी बाजा । निनाद=ध्वनि ।

अर्थ—जब श्रद्धा मुस्कराई और उसकी मुस्कराहट से एक दिव्य ज्वाला निकली तो उस समय इच्छालोक, क्रियालोक और ज्ञानलोक के अज्ञान को जला देने वाली ज्ञानाग्नि की शक्तिमयी लपटें त्रिपुर के चारों ओर फैल गईं, जिनके कारण त्रिपुर निर्मल बना हुआ-सा दिखाई देने लगा । उसी समय सींगी बाजे और डमरू की ध्वनि सुनाई देने लगी जो समूचे विश्व में प्रतिध्वनित हो उठी ।

चितिमय चिता ··· ······कृत्य था ।

शब्दार्थ—चितिमय=चेतना से युक्त । चिता=ज्ञानाग्नि । अविरल=निरन्तर । महाकाल=शिव । विषम नृत्य=ताण्डव नृत्य । विश्व रंध्र=अन्तरिक्ष । ज्वाला=ज्ञानाग्नि । विषय कृत्य=अज्ञान-नाश का भयानक कार्य ।

अर्थ—जिस प्रकार कोई चिता धधकती है, इसी प्रकार उस समय चेतना-युक्त ज्ञान की अग्नि निरन्तर धधक रही थी । शिव अपना ताण्डव नृत्य कर रहे थे । समूचा अन्तरिक्ष उस ज्ञानाग्नि से भर गया था और वह अज्ञान-नाश का भयानक कार्य कर रहा था; अर्थात् उस ज्वाला में इच्छा, क्रिया और ज्ञान लोक के निवासियों का सम्पूर्ण अज्ञान जलकर भस्म हो गया था ।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

स्वप्न स्वाप··· ······तन्मय थे ।

शब्दार्थ—स्वप्न=जीवन और जगत की मिथ्या कल्पनाएँ । स्वाप=अज्ञान की अवस्था, सुषुप्ति की अवस्था । लय=विलीन । अनाहद निनाद=अनहद नाद । तन्मय=तल्लीन ।

अर्थ—उस ज्ञानाग्नि के जलने पर और शिव के ताण्डव नृत्य करने पर जीवन और जगत की मिथ्या कल्पनाएँ, सुषुप्ति अवस्था का अज्ञान और जागरण की स्थिति सभी जलकर भस्म हो गईं । इच्छालोक, क्रियालोक और ज्ञानलोक अपना पार्थक्य छोड़कर एक दूसरे में पूर्णतः विलीन हो गये । उस समय समस्त दिशाओं में अलौकिक अनहद नाद ध्वनित हो रहा था, जिसमें श्रद्धा और मनु पूर्णतया तल्लीन हो गये ।

विशेष—यथासंख्य अलंकार ।

प्रसाद जी अखण्ड आनन्दोपलब्धि को ही जीवन का लक्ष्य मानते थे। इसी तथ्य को उन्होंने इस सर्ग में प्रतिपादित किया है। गांधी जी के (वसुधैव कुटुम्बकम्) तथा शैव धर्म के प्रत्यभिज्ञा दर्शन से भी वे प्रभावित थे। शैलीगत, नाटकता प्रतीकात्मकता तथा व्यंजकता की दृष्टि से यह सर्ग अनुपम ही प्रकृति का चित्रण भी अत्यन्त सुन्दर

आनन्द

कथासार—जब श्रद्धा मानव को इड़ा के पास छोड़कर चली गई तो इड़ा ने उसके सहयोग से सारस्वत नगर की पुनः व्यवस्था की, जिसका परिणाम यह हुआ कि सारस्वत नगर के सभी निवा-ी पूर्ण धन्य-धान्य से युक्त हो गये और वे पारस्परिक भेदभाव भुलाकर आपस में एक परिवार की भांति रहने लगे। एक दिन इड़ा और मानव के साथ सारस्वत नगर के निवासी भी कैलाश पर श्रद्धा और मनु के दर्शन करने चल दिये। यात्रियों का यह दल नदी तथा पर्वतों की रमणीयता को देखता हुआ धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। इनके साथ धर्म का प्रतिनिधि वृषभ भी था, जिस पर सोमलताएँ लदी हुई थीं और जिस पर लटकता हुआ घण्टा निरन्तर मधुर ध्वनि करता हुआ बज रहा था। मानव एक हाथ से इस वृषभ की रस्सी पकड़े हुए था और दूसरे हाथ में त्रिशूल लिए हुए था। इड़ा भी गेरुए वस्त्र धारण करके इस वृषभ की बगल में चल रही थी। इसके पीछे सारस्वत नगर के स्त्री-पुरुष और बच्चे थे। एक बच्चे के आग्रह करने पर इड़ा ने उस शान्त तपोवन की कथा सुनाई, जिसकी यात्रा करने को सब यात्री जा रहे थे।

चलते-चलते यात्रियों का यह दल उस स्थान पर आया जहां पर मनु तपस्या में लीन थे और श्रद्धा उनकी सेवा में लगी हुई थी। उन सबकी आवाज से मनु ने अपनी समाधि खोल दी। और उन्हें विराट् शक्ति की अभेदता का उपदेश दिया जो अपना रूप धारण करके संसार में व्यक्त होती है। साथ ही उन्होंने सभी मनुष्यों को भेद-भाव भुलाकर एक होने का भी उपदेश दिया क्योंकि सभी उसी एक परम सत्ता के अंश हैं। श्रद्धा इस उपदेश को सुनकर मुस्काराई जिससे समूचे कैलाश पर्वत पर एक दिव्य और आनन्द पूर्ण वातावरण उत्पन्न हो गया। उस समय सर्वत्र आनन्द और सुषमा का राज्य था। हिमालय के उस दिव्य और अलौकिक दृश्य को देखकर सभी यात्री

आनन्द-विभोर हो गये। सभी लोग अपने पारस्परिक भेद-भाव का भुलाकर स्वयं को दूसरे से अभिन्न समझने लगे। समय जड़ और चेतन का भाव विलीन हो गया, सभी समरसता का अनुभव करने। उन्हें एक विराट् चेतना-शक्ति ही सभी में क्रीड़ा करती हुई दिखाई देने लगी और सभी अखंड तथा आनन्द में डूब गये।

चलता था·········निज सम्बल !

शब्दार्थ—दल=समूह। रम्य=मनोहर। पुलिन=किनारा। गिरिपथ=पर्वत का मार्ग। सम्बल=यात्रा के लिए आवश्यक सामान।

अर्थ—सारस्वत प्रदेश के वासियों का एक दल इड़ा और मानव के साथ कैलाश पर्वत की यात्रा के लिए चल रहा था। यह दल यात्रा में काम आने वाली सभी वस्तुओं को साथ लिए नदी का सुन्दर किनारा पकड़े पर्वत के रास्ते से धीरे-धीरे चल रहा था।

था सोमलता·········गति-विधि।

शब्दार्थ—आवृत=ढका हुआ। वृष धवल=सफेद बैल। प्रतिनिधि=प्रतीक। मंथर=मन्द। गतिविधि=चाल।

अर्थ—उस दल के साथ धर्म का प्रतीक सफेद बैल था, जो सोमलताओं से ढका हुआ (लदा हुआ) था और मन्द-मन्द गति से चल रहा था और उसकी चाल के साथ-साथ ही गले में बँधा हुआ घंटा एक लक्ष्य के साथ बजता चलता था।

वृष रज्जु·········तेज अपरिमित।

शब्दार्थ—रज्जु=रस्सी। वाम=बाएं। अपरिमित=असीम।

अर्थ—इस बैल के साथ-साथ मानव था। जिसके बाएं हाथ में बैल की की रस्सी थी और दाहिने हाथ में त्रिशूल शोभित हो रहा था। मानव के मुख पर असीम तेज झलक रहा था।

केहरि किशोर·········नये थे।

शब्दार्थ—केहरि=सिंह। किशोर=बच्चा। अभिनव=नवीन। अवयव=शरीर के अंग। प्रस्फुटित=खिलना। नये=यौवन की नई-नई उमंग।

अर्थ—मानव के शरीर के नए अंग सिंह के बच्चे के समान खिल उठे थे, अर्थात् युवावस्था के कारण पूर्ण विकसित होकर शोभा दे रहे थे। यौवन की गम्भीरता उसमें आ गई थी और इसी से उसका हृदय युवावस्था की नई-नई

उमंगों से भरा हुआ था।

विशेष—'केहरि किशोर से' में उपमा अलंकार।

चल रही.........कलरव।

शब्दार्थ—पार्श्व=बगल। नीरव=मौन। गैरिक वसना=गेरुए रंग के वस्त्र वाली। कलरव=पक्षियों की चहचहाहट।

अर्थ—बैल के एक ओर इड़ा भी चुपचाप चली जा रही थी। उसने संध्या की लाल आभा के समान गेरुए वस्त्र धारण किए हुए थे। जिस प्रकार संध्या के समय सब पक्षियों का चहचहाना बंद हो जाता है, उसी प्रकार उसकी मनोकामनाएं भी तृप्त होने के कारण शांत थीं।

विशेष—'कलरव' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

उल्लास रहा ......यात्री दल।

शब्दार्थ—उल्लास=हर्ष, मनोविनोद। मृदु=कोमल। कलकल=शोर। मंगलगान=शुभगीत। मुखरित=ध्वनित।

अर्थ—दल के सभी युवक बड़े हर्ष पूर्ण मनोविनोद करते जा रहे थे, बच्चे कोमलता के साथ शोर-गुल कर रहे थे और स्त्रियाँ मंगल-गीत गाती हुई चल रही थीं। इस प्रकार यह दल ध्वनित हुआ जा रहा था।

चमरों पर.........कुतूहल।

शब्दार्थ—चमर=एक पशु विशेष। अविरल=साथ-साथ सटे हुए। कुतूहल=आश्चर्य।

अर्थ—उस दल ने अपना सामान चमरी गायों पर लादा हुई, था जो आपस में सटकर चल रही थीं। उन गायों पर कुछ बच्चे बैठकर चल रहे थे, जो एक दूसरे के लिए तमाशा बने हुए थे।

माताएं पकड़े.........समझाती।

शब्दार्थ—विधिवत=ढंग से।

अर्थ—उन बच्चों को माताओं ने पकड़ा हुआ था और बड़े ही सुन्दर ढंग से उनको यह समझाती हुई जा रही थीं हम कहाँ जा रहे हैं।

कह रहा.........यही हैं।

शब्दार्थ—चमरों पर बैठे हुए एक बच्चे ने कहा माँ! तुम तो कब से कह रही हो कि जिस तीर्थ स्थान पर हम जा रहे हैं वह आने ही वाला है और

उंगली उठा कर कहती है, वह देखो आ ही गया है।

पर रुकने··· ···रही है।

शब्दार्थ—रुकने=घूमने, ठहराने।

अर्थ—परन्तु तुम तो रुकने का नाम ही नहीं लेतीं, लगातार बढ़ती जा रही हो। वह तीर्थ स्थान कहाँ है जिसके लिए तुम इतनी उतावली हो रही हो और दौड़धूप कर रही हो।

वह अगला············हिमकन।

शब्दार्थ—देवदारु=एक पहाड़ी वृक्ष। कानन=वन। घन=बादल। दल=पत्ते। हिमकन=ओस की बूँदें।

अर्थ—मां अपने बेटे का उत्तर देती हुई कहती है, बेटा! वह जो आगे समतल भूमि दिखाई देती है जहां पर देवदारु के पेड़ों का वन दिखाई दे रहा है जिनके पत्तों से ओस की बूँदें इकट्ठी कर के बादल भी अपना कटोरा भरता है।

हां! इसी········पावन तम।

शब्दार्थ—ढालवें=ढालू भूमि। सहज=सरलता से। सम्मुख=सामने। पावनतम=पवित्र।

अर्थ—जब हम इस ढलवां भूमि से सरलता से उतर जाएंगे, तभी हमें हमारे सामने सबसे पवित्र तीर्थ स्थान मिलेगा।

वह इड़ा········सुनने को।

शब्दार्थ—समीप=निकट। कुछ और=अधिक।

अर्थ—वह बालक चमरी गाय से उतर कर इड़ा के समीप पहुंच गया और उसको रोकने के लिए हठ करने लगा। वह इड़ा से उस तीर्थ स्थान के बारे में जानने के लिए मचलने लगा।

वह अपलक लोचन········डग भरती।

शब्दार्थ—अपलक लोचन=टकटकी बांधे। पादाग्र=पैरों का अगला भाग अर्थात् उंगलियां। विलोकता=देखता। प्रदर्शिका=निर्देशिका। डग=कदम।

अर्थ—इड़ा अपनी उंगलियों पर टकटकी बांधे अपने दल का पथ-प्रदर्शन करती हुई आगे-आगे चल रही थी।

बोली········शांत तपोवन।

शब्दार्थ—जगती=संसार। पावन=पवित्र। प्रदेश=स्थल। तपोवन=तपस्या करने का स्थान।

अर्थ—उस बालक के प्रश्न का उत्तर देती हुई बोली कि हम जहां जा रहे हैं, वह सारे संसार का एक पवित्र स्थान है। वहाँ पर एक व्यक्ति ने तप करके सिद्धि प्राप्त की है। वह अत्यन्त शीतल और शान्त तप भूमि है।

कैसा? ······सकुचाती।

शब्दार्थ—शान्त=शान्ति देने वाला। विस्तृत=विस्तार से। सकुचाती=संकोच का अनुभव करती हुई।

अर्थ—उस बालक ने फिर पूछा कि वह कैसा तपोवन है? और शांत क्यों है! तुम मुझे विस्तार से क्यों नहीं समझातीं, तब इड़ा कुछ संकोच का अनुभव करती हुई बोली—

सुनती हूँ·········झुलसाया।

शब्दार्थ—मनस्वी=उच्च मन वाला, बुद्धिमान। जगती=संसार। ज्वाला=पीड़ा। विकल=बेचैन। झुलसाया=जर्जर।

अर्थ—इड़ा कहती है कि मैंने सुना है कि एक दिन बुद्धिमान और मननशील व्यक्ति वहां आया था, जो संसार की पीड़ाओं से बहुत ही व्याकुल और जर्जर हो रहा था।

उसकी वह·········बन अस्थिर।

शब्दार्थ—जलन=पीड़ा। गिरि अचल=पर्वत की तलहटी। दावाग्नि=वन में लगने वाली आग। प्रखर=तीव्र। सघन=घना।

अर्थ—उस व्यक्ति की वह भयानक जलन पर्वत की तलहटी में इस तरह फैल गई जैसे कोई दावाग्नि तीव्र गति से सारे वन में फैल जाती है। अर्थात् उसकी वेदना की पीड़ा के कारण उस पर्वत के सभी प्राणी व्याकुल और बेचैन हो गए।

विशेष—१. 'जलन' और 'दावाग्नि' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

२. 'सघन वन' प्रयोजनवती उपादान लक्षणा।

थी अर्धांगिनी·········भर लायी।

शब्दार्थ—अर्धांगिनी=पत्नी। करुणा की वर्षा=दया के बादल। दृग=आंख।

अर्थ – उस मनस्वी व्यक्ति की पत्नी उसे खोजती हुई आयी । उसने जब अपने पति की ऐसी दशा देखी तो उसका हृदय और भी अधिक करुणा से भर गया और आँखों में आँसू भर आने के कारण ऐसा लगता था मानों करुणा के बादल वर्षा करने को आ गए हों ।

विशेष—'करुणा की वर्षा' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

वरदान बने............सुख-शीतल ।

शब्दार्थ—वरदान=कल्याणकारी । मंगल=कल्याण । हरित=हरा-भरा । सुख-शीतल=सुख और शान्ति देने वाला ।

अर्थ—इड़ा उस बच्चे को उस तपोवन की कथा सुनाती हुई कहती ही गई कि फिर उस विरहिणी के आँसू जग का मंगल करने के कारण वरदान बन गये क्योंकि उनके प्रभाव से जग के सभी प्रकार के कष्ट नष्ट हो गये और वह सूखा हुआ बन हरियाली और सुख देने वाली शीतल छाया से परिपूर्ण हो गया ।

विशेष—'वरदान बने फिर उसके आँसू करते जग-मंगल' में विरोधाभास अलंकार है ।

गिरि निर्झर............में लाली ।

शब्दार्थ—गिरि=पर्वत । निर्झर=झरने । मुसकराये=हरे-भरे हो गए । पल्लव=पत्ते ।

अर्थ – इड़ा कहती है कि श्रद्धा की करुणा के कारण पर्वत झरने फिर से उछलने लगे और चारों ओर हरियाली छा गई । सूखे हुए वृक्ष फिर से हरे-भरे हो गए । और नई लाल-लाल कोपलें निकल आईं । अर्थात् सर्वत्र प्रसन्नता फैल गई ।

विशेष—'तरु के मुस्कयाने' में लक्षण-लक्षणा और मानवीकरण अलंकार ।

वे युगल............ज्वाला हरते ।

विशेष—युगल=पति-पत्नी । संसृति=संसार ।

अर्थ—वे दोनों पति पत्नी वहीं रहकर अब संसार की सेवा करते हैं । वह सबकी दुःख ज्वालाओं को अर्थात् कष्टों को हर कर सबको सुख देते हैं ।

विशेष—'दुःख ज्वाला' में रूपक अलंकार

है वहाँ............है जाता ।

शब्दार्थ—महा ह्रद=बड़ा सरोवर । प्यास=अशांति । मानस=मान-सरोवर ।

अर्थ—इड़ा कहती है कि वहाँ पर एक बहुत बड़ा सरोवर है जो निर्मल जल से भरा हुआ है । जिस प्रकार शीतल जल पीने से प्यास बुझ जाती है उसी प्रकार वह सरोवर मन की अशांति को दूर करता है । उसे मानसरोवर कहते हैं जो उसके पास जाता है उसे सुख मिलता है ।

विशेष—'मानस' में श्लेष और परिकरांकुर अलंकार ।

तो यह ....रही है ?

शब्दार्थ—वैसे ही=खाली ।

अर्थ—बालक इड़ा की बातें सुनने के पश्चात् बोला कि तू इस बैल को खाली क्यों चला रही है । इस पर तू बैठ क्यों नहीं जाती अपने को व्यर्थ ही क्यों थका रही है ।

सारस्वत ....से भरने ।

शब्दार्थ—व्यर्थ=असार, बेकार । रिक्त=खाली । जीवन घर=जीवन रूपी घड़ा । पीयूष=अमृत ।

अर्थ—इड़ा बोली—हम सारस्वत नगर के निवासी उस पवित्र तीर्थ स्थान की यात्रा करने आए हैं और अपने तुच्छ एवं निस्सार जीवन रूपी खाली घड़े को अमृत से (आनन्द से) भरने के लिए आए हैं ।

विशेष—'जीवन-घर' और 'पीयूष-सलिल' में रूपक अलंकार ।

इस वृषभ..........सुख पाकर ।

शब्दार्थ—उत्सर्ग=दान, छोड़ना । चिरमुक्त=सदैव के लिए स्वतंत्र ।

अर्थ—इड़ा कहने लगी कि इस धर्म के प्रतीक बैल को हम वहाँ जाकर छोड़ देंगे, जिससे यह सदैव के लिए स्वतंत्र और निडर होकर घूम सके ।

विशेष—'वृषभ धर्म प्रतिनिधि' में रूपक अलंकार ।

सब सम्हल...........से छायी ।

शब्दार्थ—सम्हल गए=सावधान हो गए ।

अर्थ—अब सभी सावधान हो गए थे क्योंकि आगे नीची भूमि पर उतरने

के लिए उतराई पर चलना था। और जिस समतल घाटी में वह उतर रहे थे उसमें बहुत हरियाली छाई हुई थी।

श्रम ताप ....विलसित।

शब्दार्थ—श्रम = थकावट। ताप = कष्ट। पथ पीड़ा = रास्ते के कष्ट। अन्तर्हित = लुप्त, गायब। विराट = महान। धवल नग = सफेद कैलाश पर्वत। विलसित = सुशोभित।

अर्थ—उस घाटी में पहुँचकर सब यात्रियों की थकावट पीड़ा और मार्ग के कष्ट आदि सभी थोड़ी देर में दूर हो गये। यात्रियों ने देखा कि उनके सामने बर्फ से ढका हुआ सफेद कैलाश पर्वत अपने अखंड गौरव से युक्त शोभा पा रहा है।

उसकी तलहटी ....रही निराली।

शब्दार्थ—तलहटी = घाटी। श्यामल = हरी भरी। तृण-वीरुध = घास, पेड़-पौधे। ह्रद = तालाब।

अर्थ—कैलाश पर्वत की यह समतल घाटी पेड़-पौधों और लताओं से हरी भरी होने के कारण बहुत सुन्दर लग रही थी। यहाँ पर नवीन कुञ्ज, और कन्दराओं में बनी हुई सुन्दर गुफाओं और घरों तथा मान सरोवर के कारण इसकी शोभा निराली ही थी।

वह मंजरियों............में डाली।

शब्दार्थ—मंजरियों = पेड़ों पर आने वाला बौर। अरुण = लाल। पीत = पीला। प्रति पर्व = प्रत्येक खंड। सुमन संकुल = फूलों से भरे हुए।

अर्थ—इस वन में नवीन कोंपलों के बीच मंजरियाँ सुशोभित थीं। जिससे वन का वह भाग लालिमा और पीलापन लिए हुए था। वहाँ पर लताएँ पूर्ण रूप से फूलों से लदी हुई थीं। अर्थात् वहाँ का प्रत्येक भाग फूलों से लदा होने के कारण लताएँ छिप-सी गई थीं।

यात्री दल ....उजाला।

शब्दार्थ—मानस = मान सरोवर। खग = पक्षी। मृग = जंगली जानवर। जगत उजाला = प्रकाश पूर्ण संसार।

अर्थ—कैलाश पर्वत की उस घाटी में रुककर यात्रियों के दल ने मान-सरोवर का विलक्षण दृश्य देखा। वह निर्मल जल से भरा हुआ होने के

कारण पशु और पक्षियों के लिए अत्यन्त सुखदायक था। वह एक छोटा सा प्रकाशपूर्ण संसार सा दिखाई देता था।

विशेष--'छोटा सा जगत उजाला' में उपमा अलंकार।

मरकत की............राका रानी।

शब्दार्थ—मरकत=पन्ना रत्न जो हरे रंग का होता। मुकुर=दर्पण। राका रानी=पूर्णिमा।

अर्थ—उस हरियाली के बीच मानसरोवर का स्वच्छ पानी ऐसा प्रतीत होता था जैसे मरकत मणि की बनी हुई वेदी पर हीरे का पानी रखा हुआ हो या प्रकृति देवी के मुख देखने के लिए छोटा सा दर्पण रखा हुआ है। यह ऐसा प्रतीत होता था मानों उस सरोवर के रूप में पूर्णिमा रानी खुद आकर सो रही हो।

विशेष—'छोटा सा मुकुट' में उपमा अलंकार।

दिनकर गिरि............लगन में।

शब्दार्थ—दिनकर=सूर्य। हिमकर=चन्द्रमा। प्रदोष प्रभा=संध्या की आभा। स्थिर=अविचल। लगन=ध्यान।

अर्थ—इस समय सूर्य कैलाश पर्वत के पीछे छिप गया था और चन्द्रमा निकल आया था। संध्या की उस आभा में कैलाश पर्वत ऐसे लगता था मानो कोई योगी ध्यान में लीन अविचल होकर बैठा हो।

विशेष—'स्थिर बैठा किसी लगन में' में मानवीकरण अलंकार।

संध्या समीप............रसना।

शब्दार्थ—सर=मानसरोवर। वल्कल वसना=पेड़ों की छाल के वस्त्र पहने हुए। तारों=तारागण। अलक—चोटी। कंदब=कंदब के फूल। रसना =करधनी।

अर्थ—उस तलहटी में संध्या की अरुण आभा चारों तरफ फैल गई थी। उस समय ऐसे लगता था मानों संध्या रूपी सुन्दरी वृक्षों की छाल के गेरुए रंग के वस्त्र पहन कर मानसरोवर के निकट आई हो। आकाश में तारे चमक रहे थे जो ऐसे प्रतीत होते थे मानों इस संध्या सुन्दरी की वेणी तारागणों से गुंथी हुई हो। और वहाँ पर फैली हुई कदम्ब के पेड़ों की कतारें फूलों से लदी होने के कारण ऐसी लगती थीं जैसे वह सन्ध्या रूपी सुन्दरी की करधनी हो।

विशेष—मानवीकरण अलंकार ।

खग-कुल············अभिनव ।

शब्दार्थ—खग=पक्षी । किलकारना=चहचाहट मचाना । कलहंस=राजहंस । किन्नरियाँ=देवताओं की एक संगीत प्रिय और नृत्य-प्रिय जाति । अभिनव=नवीन ।

अर्थ—उस समय सन्ध्या सुन्दरी को मानसरोवर के समीप आई हुई देखकर पक्षियों का समूह चहचहा रहा था । सरोवर में रहने वाले राजहंस मधुर कलरव कर रहे थे । इस चहचाहट और कलरव के स्वर पर्वत से टकरा कर जो प्रतिध्वनियाँ उत्पन्न करते थे, वे ऐसे लगती थीं मानों किन्नरियाँ नई-नई तानों में गा रही हों ।

मनु बैठे············निकट में ।

शब्दार्थ—निरत=लीन । निर्मल=स्वच्छ ।

अर्थ—इस मानसरोवर के निकट मनु ध्यान में लीन होकर बैठे हुए थे और श्रद्धा अपनी अंजिल में फूलों को लिए हुये खड़ी थी ।

श्रद्धा ने············बैठे उन्मन ।

शब्दार्थ—शत शत=अनेक । मधुप=भौंरा । तन्मय—तल्लीन । उन्मन=स्थिर चित्त ।

अर्थ—श्रद्धा ने उन फूलों को मनु के चरणों पर डाला उसी समय असंख्य भौंरे आकाश में उड़कर गुंजन करने लगे । परन्तु मनु उस गुंजन से प्रभावित नहीं हुए वरन् अपने ध्यान में लीन स्थिर चित्त होकर बैठे रहे ।

पहचान············में झुकते ।

शब्दार्थ—देवद्वन्द्व=देव दम्पति । द्युतिमय=तप के प्रकाश से देदीप्यमान । प्रणति=दंडवत ।

अर्थ—सारस्वत नगर के वासियों ने उनको देखते ही पहचान लिया था कि यही वह देव दम्पति है । जिसके दर्शनों के लिए वह आये थे । फिर भला वह उनके पास आने से कैसे रुक सकते थे । उन देव दम्पति का अर्थात् श्रद्धा और मनु का मुख तपस्या के प्रकाश के कारण आलोकित हो रहा था फिर फला वह उनको दंडवत करने के लिए क्यों न झुकते ? अर्थात् वह अपने

आपको कैसे रोक सकते थे और वह सभी उनको झुक-झुक कर प्रणाम करने लगे ।

तब वृषभ............डग भरता ।

शब्दार्थ—सोमवाही=सोमलताओं को लादकर चलने वाला । डग भरता=जल्दी-जल्दी चलता ।

अर्थ—उसी समय सोमलताओं को लादकर चलने वाला बैल भी अपने गले में पड़ी हुई घंटी की ध्वनि करता हुआ वहां पहुँच चुका था । और मानव भी इड़ा के पीछे-पीछे जल्दी-जल्दी चल रहा था ।

हाँ इड़ा............रही थी ।

शब्दार्थ—भूली=भेद-भाव भूल जाना । दृश्य=मनु और श्रद्धा का प्रेम । दृग युगल=दोनों नेत्र । सराहना=धन्य समझना ।

अर्थ—हाँ एक बात और भी यह कि इड़ा यहाँ आकर अपने पराये का भेद-भाव भूल गई थी । परन्तु उस भूल के लिए वह मनु और श्रद्धा से क्षमा नहीं माँगना नहीं चाहती थी । इड़ा ने जब मनु और श्रद्धा के पारस्परिक प्रेम और तपस्या के स्वरूप को देखा तो वह इस दृश्य को देखने के लिए अपने नेत्रों को बार-बार धन्य समझ रही थी ।

चिर मीलित............शोभन ।

शब्दार्थ—चिरमीलित=अनन्तकाल से मिले हुए । प्रकृति=ईश्वर की शक्ति, श्रद्धा । पुलकित=आनन्दित । चेतन पुरुष पुरातन=शिवरूप मनु । आनन्द अम्बुनिधि=आनन्द का सागर ।

अर्थ—श्रद्धा के साथ आनन्द में विभोर हुए मनु उसी प्रकार शोभा पा रहे थे जिस प्रकार आदि शक्ति के साथ अनन्त काल तक रहने वाले पुरातन पुरुष भगवान शिव आनन्द-मग्न दिखाई देते हैं और जिस प्रकार विशाल समुद्र अपनी ऊँची-ऊँची लहरों से लहराता हुआ शोभायमान होता है उसी प्रकार शिव मनु अपनी अनन्त शक्ति रूपा श्रद्धा के साथ आनन्द से पुलकित दिखाई दे रहे थे ।

विशेष—रूपक अलंकार ।

भर रहा............गद्-गद् स्वर ।

शब्दार्थ—अंक=गोद । पुलक भरी=रोमांचित ।

अर्थ—श्रद्धा के पास पहुंचते ही मानव ने अपनी माता का शरीर अपनी भुजाओं में भर लिया और उससे लिपट गया। और इड़ा ने अपना सिर श्रद्धा के चरणों में झुका दिया। वह रोमांचित और गद्-गद् स्वर में बोली—

बोली............लायी।

शब्दार्थ—भूलकर=पुरानी बातें भुलाकर। ममता=स्नेह।

अर्थ—इड़ा बोली—हे देवि! आज जो मैं सभी पुरानी बातें भूलकर यहाँ आई हूँ मैं अपने आपको धन्य समझती हूँ। मेरा यहाँ आने का कोई विचार नहीं था बल्कि तुम्हारा स्नेह ही मुझे यहाँ तक खींचकर लाया है।

भगवति............मुझको।

शब्दार्थ—भगवति=देवि। समझ=ज्ञान। भुला रही=भुलावे में डाल रही थी। अभ्यास=स्वभाव।

अर्थ—इड़ा बोली—हे देवि! मुझे आज ही इस बात का ज्ञान हुआ है कि मुझ में सचमुच बुद्धि नहीं थी। यह मेरी आदत ही बन गई थी कि मैं लोगों को भुलावे में डालकर गलत रास्ते पर ले जाती थी।

हम एक............छूट जाये।

शब्दार्थ—कुटुम्ब=परिवार। दिव्य=पवित्र, स्वर्गीय। अघ=पाप।

अर्थ—इड़ा कहने लगी अब हम सभी सारस्वत नगर के वासी एक परिवार बनाकर यहाँ यात्रा करने के लिए आए हैं। क्योंकि इस पवित्र तपोवन की यह प्रशंसा सुन रखी थी कि यहाँ पर सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

मनु ने............नहीं पराया।

शब्दार्थ—मुस्क्याकर=मुस्कुरा कर।

अर्थ—ईड़ा की सब बातें सुनकर मनु कुछ मुस्करा कर कैलाश पर्वत की ओर सबका ध्यान आकर्षित करते हुए बोले—देखो इस तपोवन में कोई भी पराया नहीं है।

हम अन्य............कमी है।

शब्दार्थ—अवयव=अंग। कमी न होना=पूर्ण होना।

अर्थ—मनु कहने लगे—हम आज सभी कुटुम्बी हैं कोई भी अन्य नहीं। बल्कि आज हम अभिन्न होकर एक हो गए हैं। तुम सब मेरे ही अंग हो। जैसे हाथ-पैर आदि अंगों से मिलकर ही शरीर पूर्ण होता है उसी प्रकार तुम

मेरे हाथ पैरों के समान ही मेरे अंग हो जिससे मैं पूर्ण हूँ।

विशेष—'तुम सब मेरे अवयव हो' में रूपक अलंकार।

शापित न·········जहाँ है।

शब्दार्थ—शापित = शापग्रस्त। तापित = दुखी। जीवन वसुधा = जीवन रूपी पृथ्वी। समतल = समान। समरस = समान रूप से आनन्दमय।

अर्थ—मनु बताने लगे यहाँ पर इस तपोवन में कोई भी प्राणी शापग्रस्त नहीं है, न कोई प्राणी किसी प्रकार से दुःखी हैं और न ही यहाँ कोई प्राणी किसी प्रकार का पाप करता है। यहाँ का जीवन समतल भूमि के समान है यहाँ पर कोई ऊँच-नीच का भेद-भाव नहीं है। यहाँ पर जीवन में जो भी जिस स्थिति में आनन्द प्राप्त कर रहा है।

विशेष—'जीवन वसुधा' में रूपक अलंकार।

चेतन समुद्र·········खड़ा है।

शब्दार्थ—चेतन समुद्र = चित्त शक्ति रूपी सागर। विनिमित = बना हुआ।

अर्थ—मनु कहते हैं कि इस चित् शक्ति रूपी सागर में जीवन लहरों की भाँति बिखरा हुआ पड़ा है और जिस प्रकार सागर में पृथक लहरों की कोई सत्ता नहीं होती उसी प्रकार उस विराट चेतना शक्ति से पृथक किसी भी जीव की कोई सत्ता नहीं है किन्तु प्रत्येक जीव जब तक किसी रूप या आकार को प्राप्त किए हुए रहता है तब तक वह अपनी पृथक सत्ता समझता रहता है।

विशेष—रूपक तथा उपमा अलंकार।

इस ज्योत्स्ना·········चमकाये।

शब्दार्थ—ज्योत्स्ना = चाँदनी। जलनिधि = समुद्र। बुद-बुद-सा = बुलबुले के समान। नक्षत्र = तारे। आभा = प्रकाश।

अर्थ—मनु कहते हैं कि जिस प्रकार सागर में बुलबुले एक-सा ही रूप धारण करके प्रकट होते हैं और जैसे चाँदनी में तारे अपनी छवि बिखेरते हुए दिखाई देते हैं।

विशेष—रूपक अलंकार।

वैसे अभेद·········चरम है।

शब्दार्थ—अभेद सागर = अभिन्न चिति रूपी सागर। सृष्टि क्रम = उत्पन्न

होने की स्थिति। रसमय=आनन्द से युक्त।

अर्थ—मनु कहते हैं कि जिस प्रकार तारागणों के घुल मिल जाने पर एक अखंड प्रकाश और बुलबुलों में घुल मिल जाने पर अनन्त सागर की ही स्थिति विद्यमान रहती है। उसी प्रकार समस्त जीवधारियों के घुल मिल जाने पर अखंड आनन्द से युक्त श्रेष्ठ भावों से पूर्ण आनन्दमय शिव ही शेष रहते हैं।

विशेष—रूपक और उपमा अलंकार।

अपने दुख...... ...सुन्दर।

शब्दार्थ—पुलकित=प्रसन्न। मूर्त विश्व=स्थूल जगत। सहचराचर=चेतन और जड़ पदार्थों से युक्त। विराट वपु=विशाल शरीर। मंगल=कल्याणकारी। चिर सुन्दर=अक्षय सौन्दर्य से युक्त।

अर्थ—मनु कहते हैं कि भाँति-भाँति के चेतन और जड़ पदार्थों से भरा हुआ यह स्थूल जगत अपने दुःखों से दुःखी और सुख से सुखी होता है किन्तु सांसारिक प्राणियों की ये स्थितियाँ सत्य नहीं हैं क्योंकि यह समस्त जगत कल्याणकारी शिव का ही विराट शरीर है, जो सत्य और सदैव अक्षय सौन्दर्य से युक्त रहता है।

सब की..........विस्मृति है।

शब्दार्थ—पराई=दूसरों की। द्वयता=भेदभाव। विस्मृति=भूल।

अर्थ—मनु कहते हैं कि यह विश्व एक ही परमसत्ता का विशाल शरीर है अतः यहाँ पर जो अन्य प्राणियों की सेवा की जाती है वह अपनी ही सेवा है क्योंकि उससे अपने ही सुख का निर्माण होता। है इस प्रकार इस संसार का प्रत्येक अणु तथा कण अपने से भिन्न नहीं है। किन्तु इस संसार के प्राणी भेद-भाव की स्थिति में पड़कर अपने और संसार के वास्तविक रूप को पहचानने में भूल कर जाते हैं।

विशेष—पुनरुक्ति अलंकार।

मैं की..........पिये सी।

शब्दार्थ—मैं की=अहं की। चेतनता=ज्ञान।

अर्थ—मनु कहते हैं कि संसार में अहं की भावना और अपने मन का ज्ञान इतना अधिक फैल गया है कि इसने सभी प्राणियों को अत्यधिक प्रभावित कर रखा है। इसी कारण शराब का मादक घूँट पीने वाले और अपनी सुध-बुध

खो देने वाले शराबी की भाँति प्रत्येक जीव अपने को अन्य जीवों से पृथक और भिन्न मानता है।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

जग ले ....धँसता सा।

शब्दार्थ—ऊषा के दृग में=प्रभात वेला में। निशि की पलकों में=रात में। अलकों में=बालों में। साक्षी=गवाह। मानस=मन, सरोवर। गहरे-गहरे धँसाना=अभिन्न भाव से मिलना।

अर्थ—मनु कहते हैं कि यदि मनुष्य अपने भेद-भावों को भुलाकर ऊषा के उदय होने पर सोकर उठे और रात्रि में आराम से सो जाए तथा निद्रा में लीन होकर आनन्द से उसी प्रकार स्वप्न देखता हुआ अपने को तल्लीन रखे जिस प्रकार किसी भावुक व्यक्ति का मन किसी सुन्दरी के घुँघराले बालों में आकृष्ट होकर आनन्द प्राप्त करता है। चेतना शक्ति का गवाह मानव निर्विकार और हँसता हुआ सा उसका परिचय दे। तथा स्वयं को दूसरों से इस प्रकार अभिन्न रूप में मिला ले, जिस प्रकार कोई छोटी नदी किसी गहरे तालाब में प्रवेश करके उसी का रूप धारण कर लेती है।

सब भेद..........बन जाता।

शब्दार्थ—दृश्य=नाटक। विश्व नीड़=संसार रूपी घोंसला।

अर्थ—मनु कहते हैं कि मनुष्य को अपने सभी प्रकार के भेदभाव भुलाकर सुख और दुःख से भरे हुए इस संसार को किसी नाटक की भाँति देखना चाहिए। यदि मनुष्य इस प्रकार अभिन्न और तटस्थ होकर संसार में रहेगा तो वह अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेगा और यह संसार आनन्द से भरे हुए घोंसले की भाँति आनन्दपूर्ण बन जागगा।

श्रद्धा के..........लेखाएँ।

शब्दार्थ—मधु अधर=माधुर्य पूर्ण होठ। रेखाएँ=मुसकान की किरणें। रागारुण=लाल सूर्य। स्मिति=हँसी। लेखाएँ=रेखाएँ।

अर्थ—मनु के इस प्रकार के विशाल और दार्शनिक विचारों को सुनकर श्रद्धा के मधुर होटों पर मुस्काहट इसी प्रकार शोभा देने लगी जैसे प्रातःकालीन लाल सूर्य की किरणें क्रीड़ाएँ करती हुई दिखाई देती हैं।

विशेष—पूर्णोपमा अलंकार।

वह कामायनी............बन वेली ।

शब्दार्थ—कामायनी=श्रद्धा । मंगल कामना=कल्याणकारी इच्छा का साकार रूप । ज्योतिष्मती=प्रकाशपूर्ण । मानस=मानसरोवर ।

अर्थ—वह श्रद्धा संसार के कल्याण की कामना करने वाली थी अतः वह अकेली ही इस संसार में कामना की साकार मूर्ति थी । वह कैलाश पर्वत पर स्थित मानसरोवर के किनारे इसी प्रकार प्रकाशपूर्ण और प्रसन्न दिखाई दे रही थी जिस प्रकार कोई बन की लता फूलों से विकसित होकर और अनुपम प्रकाश लेकर लहराती हुई दिखाई देती है ।

विशेष—परिकरांकुर और रूपक अलंकार ।

वह विश्व............महिमा ।

शब्दार्थ—प्रतिमा=मूर्त्ति । महाहृदे=बड़ा सरोवर ।

अर्थ—वह श्रद्धा विश्व की चेतना से पुलकित होने के कारण पूर्ण काम की साकार मूर्त्ति थी । जिस प्रकार गहरा और स्वच्छ जल से भरा हुआ सरोवर सभी प्यासे प्राणियों की प्यास बुझाता है, उसी प्रकार श्रद्धा भी सभी मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करके उन्हें सुख पहुंचाने वाली थी ।

विशेष—उदाहरण अलंकार ।

जिस मुरली............होता ।

शब्दार्थ—निस्वन=ध्वनि । रागमय=रागनी से युक्त, प्रेम से परिपूर्ण । अगजग=सारा संसार ।

अर्थ—जिस प्रकार मुरली की ध्वनि से सूना अन्तरिक्ष मधुर रागिनी से भर जाता है, उसी प्रकार जब कामायनी हँसती थी तो उसकी हँसी की शोभा से सारा संसार आनन्द से प्रेम-परिपूर्ण हो जाता था ।

विशेष—श्लेष अलंकार ।

क्षण भर............छलके ।

शब्दार्थ—परिवर्तित=बदले हुए । पिंगल=पीला । पराग=पुष्प-रस ।

अर्थ—श्रद्धा की अद्भुत मुस्कराहट को देखते ही कैलाश पर्वत के समस्त प्राणियों में देखते-देखते परिवर्तन हो गया । उस समय सभी प्राणियों के हृदय में प्रेम का आवेग उसी प्रकार झलकने लगा जिस प्रकार कमल के फूल में पीला पुष्प रस झलकने लगता है और सभी के हृदय उसी छलकते हुए मकरन्द के

समान आनन्द का सुधा रस बरसाने लगे।

विशेष रूपक और रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

अति मधुर..........रंजित।

शब्दार्थ—गंधवह=सुगंधित वायु। परिमल=मरकन्द। रंजित=सुशोभित।

अर्थ—जिस समय श्रद्धा मुस्कराई तो उसकी मुस्कराहट से कैलाश पर्वत पर अत्यन्त मनोरम दृश्य उपस्थित हो गया। इसी कारण वहा फूलों की रस की बूँदों से सींचा जाकर तथा कमल केसर का बड़े आनन्द से स्पर्श करता हुआ और उसके सुगन्धित पदार्थ को ग्रहण करके पवन अत्यन्त मधुरता के साथ धीरे-धीरे चलने लगा।

विशेष—मानवीकरण अलंकार।

जैसे............भर लाया।

शब्दार्थ—मुकुलों का=कलियों का। मादन=मस्त।

अर्थ—उस सुगंधित पवन को स्पर्श करके ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह असंख्य कलियों का मस्ती से भरा हुआ विकास करके लौट रहा हो और उनके अछूते अधरों का उसने अनेक बार चुम्बन किया हो।

रुक-रुककर............फूला।

शब्दार्थ—नव कनक कुसुम=नवीन पलाश का पुष्प। रज=पराग। धूसर=सना हुआ। जलद=बादल।

अर्थ—वह पवन इस प्रकार रुक-रुककर और इठलाता चल रहा था जैसे पीछे वह कुछ भूल गया हो। वह पवन नवीन पलाश के पुष्प के पराग से सना हुआ होने के कारण ऐसा प्रतीत होता था जैसे पुष्प-रस की बूँदों से भरा हुआ बादल उमड़ रहा हो।

विशेष—उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार।

जैसे वनलक्ष्मी............निज।

शब्दार्थ—केसर-रज=पराग की धूल। हेमकूट=सुमेर पर्वत। हिम=बर्फ।

अर्थ—उस सुगंधित पवन को स्पर्श करके ऐसा प्रतीत होता था जैसे स्वयं वनलक्ष्मी ने पराग की धूल बिखेर दी हो, अथवा सुदेह पर्वत बर्फ के पानी में अपनी परछाईं झलका रहा हो।

विशेष—वस्तूत्प्रेक्षा और सन्देह अलंकार।

संसृति के............मंगल।

शब्दार्थ—संसृति=सृष्टि। अनिभव=नवीन। मंगल=मांगलिक गीत।

अर्थ—उस पवन से जो मधुर ध्वनि निकल रही थी वह ऐसी प्रतीत होती थी जैसे किसी विरहिणी की भाँति यह सृष्टि भी मधुर मिलन की आशा से लम्बे-लम्बे साँस भर रही हो, और वे साँस ही इकट्ठी होकर आकाश के आँगन में कुछ नवीन मांगलिक गीतों को गा रही हो।

विशेष—रूपक अलंकार।

बल्लरियाँ...........ठहरे।

शब्दार्थ—बल्लरियाँ=लतायें। निरत=लीन। वेणु-रन्ध्र=बाँस के छेद। मूर्च्छना=संगीत की लय से तात्पर्य है।

अर्थ—उस सुगन्धित पवन के स्पर्श से हिलती हुई लतायें भी ऐसी प्रतीत होती थीं जैसे वह किसी आह्लाददायक नाच में लीन हों। उस पवन के कारण चारों ओर सुगन्धि की लहरें फैल गई और बाँस के छेदों में भरकर उसने एक ऐसी मधुर ध्वनि उत्पन्न कर दी जो संगीत की लय को भी चुनौती देने वाली थी।

विशेष—मानवीकरण अलंकार।

गूँजते मधुर............मिलकर।

शब्दार्थ—मधुकर=भौंरे। मदमाते=मस्त। वाणी=सरस्वती। मिल-कर=बलपूर्वक मिलकर।

अर्थ—उस समय नूपुर की मधुर ध्वनि के समान गूँज करते हुए मस्त भौंरे गूँज रहे थे। उनकी गूँज ऐसी प्रतीत होती थी जैसे सरस्वती की वीणा की ध्वनि उस शून्य में अन्तरिक्ष में बलपूर्वक मिलकर गूँज उठी हो।

विशेष—उपमा अलंकार।

उन्मद माधव............झड़ते।

शब्दार्थ—उन्मद=मस्त। माधव=बसंत ऋतु। मलयानिल=मलय पर्वत से आने वाली शीतल और सुगन्धित हवा। परिमल=सुगन्धि। काकली=कोमल

अर्थ—उस समय कैलाश पर्वत पर बसंत ऋतु थी, जो सभी को मस्त बना देने वाली थी। उससे मस्त होकर मलय पर्वत से आने वाली शीतल और सुगन्धित हवा इतनी धीरे-धीरे चल रही थी जो ऐसी प्रतीत होती थी मानो

वह गिरती-पड़ती दौड़ रही हो। कोमल की बोली में इतनी मधुरता थी जैसे वह फूलों की सुगंधि में नहा ली हो। सर्वत्र फूल विकसित होकर झड़ रहे थे।

विशेष—मानवीकरण अलंकार।

सिकुड़न कौशेय·········· सृजन पर।

शब्दार्थ—कौशेय वसन=रेशमी वस्त्र। मादन=मस्ती से भरा हुआ। मृदुतम=अत्यन्त कोमल। सृजन=सृष्टि।

अर्थ—उस बासन्ती वातावरण को देखकर ऐसा प्रतीत होता था जैसे विश्व सुन्दरी प्रकृति ने अपने शरीर पर रेशमी वस्त्र धारण कर लिये हों और वे सिकुड़कर बासन्ती शोभा का रूप धारण कर रहे हों। अथवा सम्पूर्ण सृष्टि में मस्ती से भरा हुआ अत्यन्त कोमल कम्पन छा गया हो।

विशेष—वस्तूत्प्रेक्षा और संदेह अलंकार।

सुख सहचर···········निर्भय।

शब्दार्थ—सहचर=साथी। विदूषक=मसखरा। अभिनय=खेल।

अर्थ—कैलाश पर्वत पर सुख का साथी दुःख रूपी मसखरा अपना हँसी से भरा हुआ खेल दिखाकर अब निर्भय होकर सबकी विस्मृति रूपी परदे में जा छिपा था; अर्थात् जिस प्रकार किसी नाटक में विदूषक अपने अभिनय द्वारा सभी दर्शकों को हँसाकर परदे के पीछे छिप जाता है, उसी प्रकार यहाँ पर दुःख का लोप हो गया था।

विशेष—रूपक अलंकार।

थे गल ········बरसे।

शब्दार्थ—मधुमय=मकरद से भरे हुए। मृदु मुकुल=कोमल कलियाँ। झालर=बन्दनवार। रस=पुष्परस। प्रफुल्ल=खिले हुए। सुमन=फूल।

अर्थ—उस समय कैलाश पर बसन्त की शोभा थी, अतः प्रत्येक डाल पर विकसित हुई कोमल कलियाँ बन्दनवार की भाँति लटक रही थीं। सब फूल पुष्परस से बोधित थे जो धीरे-धीरे अपने रस को पृथ्वी पर बरसा रहे थे।

विशेष—उपमा अलंकार।

हिम खंड···········बजाता।

शब्दार्थ—हिम खंड=बर्फ के टुकड़े। रश्मि=किरण। मंडित हो=सुशोभित होकर। मणिदीप=मणियों से बना हुआ दीपक। मृदंग=मुरज।

अर्थ—बर्फ के टुकड़ों पर पड़ी हुई चन्द्रमा की किरणों से वे टुकड़े इस प्रकार चमकते थे जैसे मणियों से बने हुए दीपक प्रकाश फैला रहे हों। उन टुकड़ों से टकराकर चलती हुई हवा मुरज के समान अत्यन्त मधुर ध्वनि निकालती थी।

विशेष—वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार।

संगीत मनोहर············मिलन की।

शब्दार्थ—कामना=इच्छा, अभिलाषा।

अर्थ—कैलाश पर्वत पर सभी लोग सुखी और भेद-भाव को भूले हुए थे। जिस प्रकार मुरली की मनोहर तान में आनन्द मिला हुआ होता है, उसी प्रकार यहाँ के निवासी आनन्द का संगीत बजाते थे; अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति का जीवन आनन्दपूर्ण था। उनके हृदय की अभिलाषा एकात्मक भाव से इतनी भरी हुई थी कि यह संकेत देती हुई प्रतीत होती थी कि वे सभी प्राणी पारस्परिक भेद-भाव को भूलकर एक-दूसरे से मिलने के लिए बहुत उत्सुक हैं।

विशेष—रूपक तथा मानवीकरण अलंकार।

रश्मियाँ············रचती थीं।

शब्दार्थ—रश्मियाँ=किरणें। अप्सरियाँ=नृत्य करने वाली देवांगनाएँ। परिमल=सुगंधि।

अर्थ—कैलाश पर्वत पर रात्रि के समय चन्द्रमा की किरणें अप्सराओं की भाँति नृत्य करती हुई दिखाईदेती थीं और वे फूलों की सुगन्धि का कण-कण लेकर अपने नृत्य के लिए रंगमंच तैयार करती थीं।

विशेष—रूपक अलंकार।

माँसल सी············कल्याणी।

शब्दार्थ—माँसल=हृष्ट-पुष्ट, सौन्दर्य सम्पन्न। हिमवती=बर्फ वाली। पाषाणी=पत्थर वाली। लास=लास्य, एक प्रकार का नाच। रास=क्रीड़ा। विह्वल=अत्यधिक प्रसन्न। कल्याणी=कल्याण करने वाली प्रकृति।

अर्थ—कैलाश पर्वत के सौन्दर्य को देखकर ऐसा प्रतीत होता था जैसे बर्फ वाली और पत्थर वाली प्रकृति सौन्दर्य से सम्पन्न बन गई हो। उस समय सौन्दर्य सम्पन्न होकर वहाँ की प्रकृति लास्य की क्रीड़ाओं में अत्यधिक प्रसन्न दिखाई दे रही थी। चाँदनी से आलोकित होकर कल्याण करने वाली प्रकृति हँसती हुई-सी प्रतीत होती थी।

विशेष—मानवीकरण अलंकार।

वह चन्द्र············नर्त्तन ।

शब्दार्थ—चन्द्र किरीट=चन्द्रमा का मुकुट। रजत=चाँदी। नग=पर्वत। स्पन्दित=आनन्द विभोर। पुरातन पुरुष=अनादि पुरुष अर्थात् शिव। मानसी =प्रिया, मानसरोवर की। गौरी=पार्वती, उज्ज्वल। नर्तन=नृत्य।

अर्थ—चन्द्रमा रूपी मुकुट को पहने हुए तथा बर्फ के कारण उज्ज्वलता को धारण किये हुए कैलाश पर्वत शिव के समान दिखाई दे रहा था, क्योंकि जिस प्रकार शिव अपनी प्रिया पार्वती का नृत्य आनन्द-विभोर होकर देखते हैं, उसी प्रकार यह पर्वत भी मानसरोवर की लहरों का नृत्य देख रहा था।

विशेष—श्लेष अलंकार तथा मानवीकरण अलंकार।

प्रतिफलित············कला से ।

शब्दार्थ—प्रतिफलित हुई=फल-लाभ करके सफल हुई। विमला=शुद्ध। कला=हृदय में व्याप्त ज्योति का अंश।

अर्थ—उस शुद्ध श्रद्धा के प्रेम की ज्योति को देखकर वहाँ पर उपस्थित सभी व्यक्तियों की आँखें आँखों का फल-लाभ करके सफल हो गई अर्थात् सभी उसके प्रेम को देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए और स्वयं को धन्य समझने लगे। सभी अपने हृदय में व्याप्त परम ज्योति के एक ही अंश को जानकर सब एक-दूसरे के लिए परिचित से लगते थे; अर्थात् सब भेद-भाव भूलकर एकात्म हो गये थे।

समरस············घना था ।

शब्दार्थ—समरस=समान आनन्द में लीन। सुन्दर=सौन्दर्य। चेतनता =विराट् चेतना-शक्ति। विलसती=क्रीड़ा कर रही थी।

अर्थ—उस समय प्रकृति के सभी पदार्थ—चेतना या जड़ दोनों प्रकार के समान आनन्द में लीन थे। सर्वत्र इतनी सुन्दरता छाई हुई थी मानों सौन्दर्य साकार ही प्रकट हो गया हो। सभी एक ही विराट चेतना-शक्ति को समूची प्रकृति में क्रीड़ा करते हुए देख रहे थे और सर्वत्र अखंड तथा अत्यधिक आनन्द छाया हुआ था।

विशेष—सामरस्य की स्थापना कामायनीकार का मुख्य उद्देश्य है और इसी उद्देश्य की यहाँ स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्ति हुई है।

———
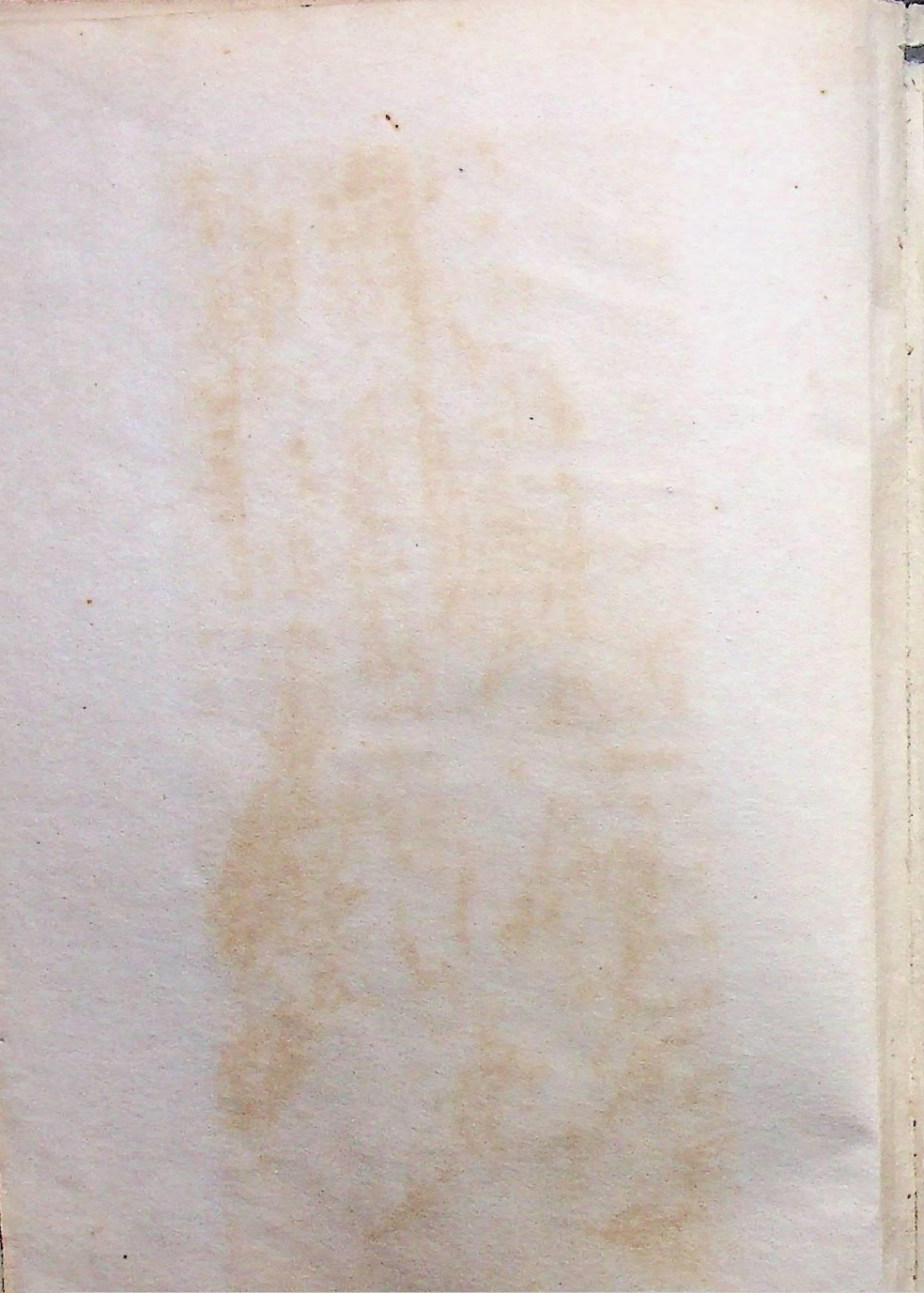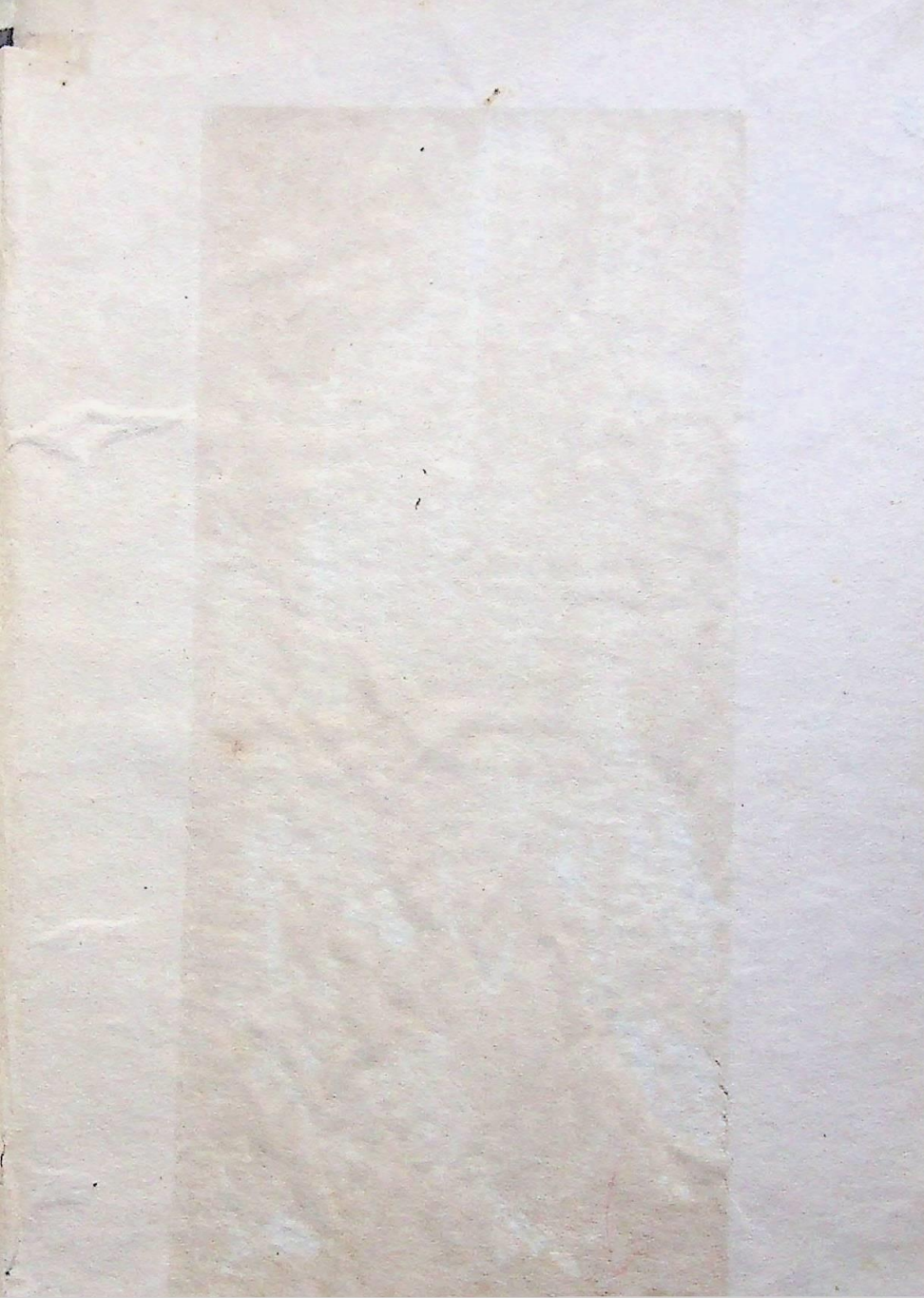
प्रमुख छात्रोपयोगी प्रकाशन

	पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त : डॉ॰ शान्तिस्वरूप गुप्त	१०·००
	भारतीय काव्य-शास्त्र के सिद्धान्त : डॉ॰ कृष्णदेव झारी	८·००
	हिन्दी काव्य के आलोक स्तम्भ : डॉ॰ शान्तिस्वरूप गुप्त	१०·००
४.	हिन्दी साहित्य : प्रकीर्ण विचार : डॉ॰ शान्तिस्वरूप गुप्त	८·००
	बिहारी मीमांसा : (द्वितीय संस्करण) डॉ॰ रामसागर त्रिपाठी	१०·००
	हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियां : डॉ॰ शिवकुमार शर्मा	८·००
	कबीर ग्रंथावली (द्वितीय संस्करण) प्रो॰ पुष्पपालसिंह एम॰ ए॰	१०·००
	जायसी ग्रन्थावली (द्वितीय संस्करण) : डॉ॰ श्रीनिवास शर्मा	१०·००
९.	मीराबाई पदावली (तृतीय संस्करण) : प्रो॰ देशराजसिंह भाटी	५·००
१०.	विद्यापति पदावली : (तृतीय संस्करण) प्रो॰ कृष्णदेव शर्मा	५·००
११.	सूरदास और उनका भ्रमरगीत (द्वि॰ सं॰) डॉ॰ श्रीनिवास शर्मा	७·००
१२.	केशव और उनकी रामचन्द्रिका : प्रो॰ देशराजसिंह भाटी	७·००
१३.	रसखान ग्रन्थावली : प्रो॰ देशराजसिंह भाटी	५·००
	बिहारी सतसई (द्वितीय संस्करण) : डॉ॰ ...विराज एम॰ ए॰	३·५०
	घनानन्द कवित्त (द्वितीय संस्करण) : प्रो॰ लक्ष्मणदत्त गौतम	३·५०
	कबीर साखी समीक्षा (द्वितीय संस्करण) : प्रो॰ पुष्पपालसिंह	३·५०
	बृहद् साहित्यिक निबन्ध : डॉ॰ त्रिपाठी एवं डॉ॰ गुप्त	१५·००
	साहित्यिक निबन्ध : डॉ॰ शान्तिस्वरूप गुप्त	८·००
	अशोक निबन्ध सागर (षष्ठ संस्करण) : प्रो॰ विजयकुमार	५·००
	साकेत की टीका (द्वितीय संस्करण) प्रो॰ ब्रजभूषण शर्मा	५·००
	तुलसी जी की टीका : प्रो॰ देशराजसिंह भाटी	५·००
	प्रियप्रवास की टीका : प्रो॰ लक्ष्मणदत्त गौतम	५·००
	भ्रमरगीत सार की टीका : प्रो॰ पुष्पपालसिंह	५·००
	यशोधरा की टीका : प्रो॰ श्याम मिश्र एम॰ ए॰	५·००
	निराला और उनकी अपरा : प्रो॰ देशराजसिंह भाटी	५·००
	दिनकर और उनका कुरुक्षेत्र (द्वितीय संस्करण) : भाटी	३·५०
	रत्नाकर और उनका उद्धव शतक (द्वितीय संस्करण) : भाटी	२·५०
	पंत और उनका रश्मिबन्ध (तृतीय संस्करण) : देशराजसिंह	४·००

अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-६